सांस्कृतिक गुजरात

(अलैक्जेण्डर किनलॉक फार्ब्स रचित रासमाला का हिन्दी अनुवाद)

अनुवादक एवं टिप्पणी लेखक
गोपाल नारायण बहुरा

सम्पादक
रामस्वरूप मिश्र
व्याख्याता, इतिहास विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रकाशक
पब्लिकशन स्कीम, जयपुर
जयपुर इन्दौर

प्रकाशक :
पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर
57, मिश्र राजाजी का रास्ता,
जयपुर-302001
ब्रांच :
पालदा साजन नगर, इन्दौर

प्रथम संस्करण, 1983

मूल्य—एक सौ रुपये मात्र

प्रधान विक्रेता :
मैसर्स—शरण बुक डिपो
गलता रोड जयपुर-302003
Phone : 44105

मुद्रक :
शुभा कम्पोजिंग सेन्टर
लक्ष्मीनारायणपुरी, जयपुर-302003.

प्राक्कथन

कहा जाता है कि भारत देश में एकता में विविधता और विविधता में एकता पाई जाती है। यह सर्वथा सत्य है। सम्पूर्ण देश में एक ही सांस्कृतिक सूत्र ओत-प्रोत है। जन्म से लेकर मृत्यु और मृत्यूपरान्त संस्कारों में एक आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है। इसी प्रकार दैनिक जीवन, रहन-सहन और व्यवहार में भी एक सा ही प्रकार दृष्टिगत होता है। गुजरात और राजस्थान तो आपस में मिले-जुले प्रान्त हैं। इनकी संस्कृति तो प्रायः एक ही है। अलैक्जेण्डर किनलॉक फार्म्स ने भौगोलिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक विवरण तो पूर्व तीन भागों में दिया है; अत्र सूक्ष्मता से निरीक्षण करके गुजरात की संस्कृति का विवरण 'रासमाला' के अन्तिम और चतुर्थ भाग में प्रस्तुत किया है। यह विवरण यद्यपि गुजरात में प्रचलित मान्यताओं और वहां पर घटी घटनाओं को लेकर ही लिखा गया है परन्तु सम्पूर्ण भारत की एकसूत्रात्मक संस्कृति का प्रतीक माना जा सकता है। स्थान और समय के भेद से इन विवरणों में यत्किञ्चित् परिवर्तन अवश्य दिखाई दे जाता है। इनमें अन्तर्निहित साम्य का कारण यह है कि ये सभी संस्कार और आचार वेदमूलक श्रुति-स्मृतियों पर आधारित हैं। अतः मूल से अनुप्राणित ये सभी शाखाएं एक ही स्वरूप में स्थिति-प्राप्त हैं।

जन जन का दैनिक जीवन, जातियां, रीति रिवाज, विवाह, गृहस्थ जीवन, लेन देन, व्यवहार, दानदक्षिणा, रोग, उपचार, मृत्यु, सती और मरणोत्तर कर्म आदि सभी मूलतः धर्मशास्त्राधारित और बाद में विकृत रूप में रूढ़ हुए प्रसंगों को उन्होंने बारीकी से अध्ययन करके चित्रित किया है। प्रशासन और राजस्व सम्बन्धी प्रबन्धों, गिरासियों ठाकुरों और छोटे-छोटे राजाओं के छोटी-छोटी बातों पर आपसी झगड़ों, बदले की भावनाओं और उनके कारण खूनखराबी से क्षीण हुई जनशक्ति को भी उन्होंने खोल कर स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किए हैं। अंग्रेज अधिकारियों की पत्रावलियों (डिस्पैचेज) से उद्धृत अंशों से उनकी राजनीतिक धारणाओं और कूटनीति का पता चलता है। भारतीयों के आचार-विचार और व्यवहार से उन्होंने जो राजनीतिक लाभ उठाए और उनकी स्वभावगत कमजोरियों पर अनैतिकता एवं स्वनिर्मित कानूनों की अवहेलना का आरोप लगाकर उनको अपमानित और अपदस्थ किया, इसका भी स्पष्ट आभास इन घटना-विवरणों से लगाया जा सकता है। ये सभी बातें तत्कालीन परिस्थितियों और देश की क्षीयमाण राजनीतिक स्थिति के तथ्यात्मक अध्ययन में बहुत सहायक और सत्य को उजागर करने वाले हैं। साथ ही, इनसे शिक्षा लेकर समान परिस्थितियों में प्रेरणा एवं उद्बोधन लेने योग्य भी है।

रासमाला के इस अन्तिम और चौथे भाग का अनुवाद और उस पर आधारित अध्ययनात्मक टिप्पणों सहित यह पुस्तक कोई बीस वर्ष पहले ही तैयार हो चुकी थी और प्रकाशन की प्रतीक्षा में यथावत् पड़ी रही। दोहराने का भी अवसर नहीं आया। इस लम्बे समय में मैं शारीरिक और मानसिक रूप से क्षीण होता गया। रोगों ने आक्रान्त ही रखा। अतः प्रथमवार में मैंने इसके स्थलों को खोलने, अध्ययनात्मक टिप्पणियाँ जोड़ने और सन्दर्भों को स्पष्ट करने के जो प्रयास किए थे वे वहीं तक रह गए। सम्पादन करके मुद्रित कराने के समय जो कुछ सुधार आदि इसमें करने का विचार था वह पूरा न हो सका। इधर मेरे हितैषियों और मित्रों–यथा डॉ. (श्रीमती) चन्द्रमणि, श्री रामस्वरूप मिश्र और सियाशरण नाटाणी ने आग्रह करके इसको यथावत् छपा डालने का पक्का निश्चय कर लिया और मुझ से सामग्री लेकर काम भी चालू कर दिया जो अब सम्पन्न हो रहा है। मुझसे दो शब्द लिखने का अनुरोध किया। रोगशय्या पर पड़ा मैं इनको धन्यवाद देने के अतिरिक्त अधिक क्या लिख सकता हूँ ? पुस्तक के प्रूफ पढने में पं. सत्यदेव द्विवेदी और मेरी पौत्री कुमारी शिप्रा पारीक ने जो श्रम किया है तदर्थ मैं इनको आशीर्वाद देता हूं। जैसा भी यह कार्य बन पडा है वह किसी भी मात्रा में सशोधकों और अध्येताओं के काम आ सकेगा तो मुझे संतोष होगा।

15 अगस्त, **1983** ई०

गोपालनारायण बहुरा

सम्पादकीय

सांस्कृतिक गुजरात फार्ब्सकृत रासमाला के हिन्दी अनुवाद का अंतिम भाग है। इसमें विवेचित विषय त्रिविध है। प्रथम, गुजरात की हिन्दू जातियों का आचार और पारस्परिक सम्बन्ध; द्वितीय, किसान और नागरिक जीवनतथा तृतीय, मुस्लिम-मराठा और ब्रिटिश सत्ताधीन गुजरात के राजपूतों की भूराजस्व-व्यवस्था। ग्रन्थ के अन्त में 'वाघेला वंश विषयक विशेष वृत्तान्त' तथा 'विविध विशेष टिप्पणियाँ हैं।'

सामाजिक-स्थिति की पुनर्रचना का आधार किसी समाज के जन-साधारण के दैनिक जीवन का सूक्ष्मावलोकन हो सकता है। इसके साथ ही अनेक आचारों और प्रतीकों के विषय में गहराई तक उतर कर विचार करने की भी आवश्यकता पड़ सकती है। 'प्रशासक' और 'विदेशी' होने के कारण मूल लेखक को इस ऐतिहासिक-पद्धति के अनुसरण में कठिनाई आई थी जिसे उसने स्वीकार किया है। मूल लेखक की उपस्थापनाओं को छेड़े बिना अनुवादक की पाद-टिप्पण प्रविष्टियाँ तथा आवश्यकता होने पर किञ्चित् विस्तृत परिशिष्टियाँ उक्त अभाव का समुचित निराकरण कर सकी है। यद्यपि यह ग्रन्थ उन्नीसवीं सदी के गुजरात के हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास करता है तथापि सम्पूर्ण विवरण पर 'पुरातनता का जामा' इस सीमा तक चढ़ा है कि सैकड़ों साल पुराने गुजरात की सामाजिक-सांस्कृतिक अवस्था उभर कर सामने आने लगती है। मूलतः यह भारतीय संस्कृति की चिरन्तन शक्ति और सतत् प्रवहमान धारा के अक्षुण्ण वेग के कारण है जिसने लोक और शास्त्र दोनों को समान रूप से आप्लावित किया है।

संधान-स्रोत के रूप में लोक-परम्परा एवं शास्त्र-विधान दोनों का संतुलित संगुम्फन इतिहासकार का ध्येय होता है। लोक-परम्परा एक जीवन्त, प्रवाही शक्ति है जिसका नियमन समय समय पर शास्त्र करता है। स्पष्ट है शास्त्रीय नियमन रोज-रोज नहीं किये जा सकते और न ही लोक-धारा एक बार स्थिर की गई शास्त्र-परम्परा को सुदीर्घ काल तक ढोने के लिए विवश की जा सकती है। शायद यही कारण है कि यथासाध्य शास्त्रीय परम्परा से जुड़े रहने का प्रयास करते हुए अथवा शास्त्र-सम्मत होने की दुहाई देते हुए भी लोकधारा सर्पिल मोड़ खाती नदी की तरह कभी आगे कभी पीछे मुड़ती हुई कितनी नई बातों को ग्रहण करती है, कितनी पुरानी बातों को छोड़ती है और यदा-कदा अति प्राचीन छूटी बात को पुनः गह लेती है। गुजरात-राजस्थान में चारण-परम्परा का अतीव विकास इसी तरह की एक महत्वपूर्ण घटना है जिसने स्थानीय इतिहास और संस्कृति को अपने ढंग से सुरक्षित

रखने का सफल प्रयास किया। चारण लोक-जीवन और लोक-संस्कृति का प्रत्यक्ष-दर्शी रहा है और महाभारतकार के अनुसार 'लोक का प्रत्यक्षदर्शी मनुष्य सर्वदर्शी बन जाता है (प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर :) कालक्रम की विसंगति छोड़ दी जाय तो चारण तथा अन्य लोक साहित्य ऐतिहासिक तथ्यों का निधान सा लगेगा। किसी कथानक जो समयानुकूल बनाने के लिए यत्र-तत्र कल्पना और अतिरंजना का सहारा लेता चारण चतुराई से अपनी भूल भी सकारता है—

> झूंठ बिना फीको लगे, अति झूंठी दुख भौंन।
> एती झूंठ लगाइये, ज्यों आटे में लोन॥ (पृष्ठ 41)

प्राचीन ग्रन्थों, अभिलेखों, इतिहास ग्रन्थों एवं आधुनिक दस्तावेजों से अनुशीलित तथ्यों और परम्परागत लोक-साहित्य पर आधारित गुजरात का यह सांस्कृतिक इतिहास आज भी सरस है और अनेकश: तथाकित 'वैज्ञानिक-इतिहास' जैसा उबाऊ नहीं है।

पश्चिम पयोधि पर अालिन्द सा पसरा गुजरात ऐतिहासिक काल से व्यापार-वाणिज्य का केन्द्र है, पश्चिमी जगत की ओर खुलने वाला भारत का एक महत्वपूर्ण वातायन है और उस तक पहुँच कर उसका 'शुभ' सकलित करने का एक निकष भी। इस वक्तव्य का खुलासा इस ग्रन्थ में अति सजीव ढंग से हो सका है खासकर उन स्थलों पर जहां हम अनेक ऐसे सामाजिक आचारों का दर्शन करते हैं जिनकी उत्पत्ति अनेक समाज एवं संस्कृतियों के पारस्परिक सम्मिश्रण से ही सम्भव हो पाती है।

सम्पादक

विषयानुक्रम

प्रकरण पहला

हिन्दू जातियाँ

समस्त गुजरात में ब्रिटिश द्वारा सर्वोच्च सत्ता ग्रहण करने के स्थल तक यह वृत्तान्त आ पहुँचा है। अव इन अन्तिम प्रकरणों में, हमारा विचार पाठकों के सामने इस देश के हिन्दुओं की वर्तमान सामाजिक स्थिति का सामान्य चित्र प्रस्तुत करने का है। यह कार्य वहुत कठिन है और सहायता व सहयोग उपलब्ध होते हुए भी यही आशंका वनी हुई है कि शायद हम इसे सम्पूर्ण रीति से प्रस्तुत नहीं कर पाएंगे यद्यपि भारत और ब्रिटेन में अव वैसा आकाश पाताल का अन्तर[1] नहीं रहा है, जैसा कि पहले कभी था, फिर भी छः सौ वर्ष पूर्व अन्य पूर्वीय देशवासियों के विषय में जो उक्ति प्रयोग में लाई जाती थी वह हिन्दुओं पर कई वातों में आज भी पूरी तरह लागू होती है। विलियम लांग्यूस्पी (William Longuespee) ने मैसौरा (Massoura) के उस घातक युद्ध के अवसर पर जिसमें सेंट लुई (St.Louis) सारसेनों (Saracens)[2] के हाथों में पड़ कर कैद हुआ था, यह वात कही थी कि यदि हम नवागन्तुक नव–युवकों और परदेशी लोगों को पूर्वी देशों के वारे में जानकारी नहीं है तो इसमें आश्चर्य की क्या वात है? क्योंकि पश्चिम और पूर्व में जितनी दूरी हैं, वहाँ के लोगों में भी उतना ही अन्तर है।[3] हिन्दूओं का घरेलू जीवन अनेक प्रकार के प्रतिवन्धों से

---

1. यहाँ अंग्रेजी मूल में Antipodes शब्द दिया है जिसका अर्थ होता है पृथ्वी के विपरीत गोलार्द्धों में। लेखक ने इसे Bishop Beveridge द्वारा उद्धृत Arnobius के लेख से अवतरित किया है।
   Arnobius साहित्य का अध्यापक था। उसने चतुर्थ शताब्दी में Defence of Christianity नामक पुस्तक लिखी थी।
   William Beveridge ने St. John's College, Cambridge में शिक्षा पाई थी। उसकी Private Thoughts upon Religion नामक प्रसिद्ध पुस्तक 1709 में छपी थी।
   Chamber's Biographical Dictionary p. 69–97
2. पैलेस्टाइन को ईसाइयों के लिए मुक्त कराने हेतु जो सेना यूरोप से गई थी उसके सैनिक क्रूसेडर कहलाते थे और इनसे लड़ने वाले मुसलमान 'सारासेन' नाम से जाने जाते थे।
3. देखिये English History by Mathew Paris : मैथ्यू पैरिस तेरहवीं शताब्दी का वृत्तान्त लेखक था। उसकी मुख्य कृति Historia Major

घिरा हुआ होने के कारण उनमें और विदेशियों में अधिक मेलजोल होना असम्भव हो जाता है; और यदि वह विदेशी सरकारी कर्मचारी हो, जो उनका परिचय प्राप्त करना चाहता है, तो उसकी कठिनाइयाँ तो बहुत ही ज्यादा बढ़ जाती हैं। अधिक कठिनाई उत्पन्न न करने वाला एकमात्र विकल्प यही है कि वह जानकारी प्राप्त करने का कोई अन्यथा उद्योग न करे और उन लोगों के बारे में अनजान-सा ही बना रहे जिनके बीच में रह कर उसे अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग बिताना है; और इस प्रकार, जिन मनोभावों से प्रेरित होकर वे विविध कर्म करते हैं अथवा जिन वास्तविकताओं से वे घिरे रहते हैं उनके बारे में उसे निरन्तर भ्रान्ति ही होती रहती है अतः वह उनका सही निरूपण नहीं कर पाता।

अंग्रेज लोगों को इस तथ्य पर विश्वास ही नहीं होता कि इस उन्नीसवीं शताब्दी में भी ऐसी हिन्दू जाति वर्तमान है जिसके व्यवहार और रीति-रिवाज उन व्यवहारों और आदतों से बहुत ज्यादा मिलते-जुलते है जिनका वर्णन हम एडम्स और पॉटर (Adams and Potter) की पुस्तक में पढ़ते हैं अथवा जिन पर संग्रहालयों के धूल-भरे कक्षों में बैठकर ही विचार किया जा सकता है: दैनिक जीवन में तो उनसे प्रत्यक्ष परिचित होने का सवाल ही नहीं है। अतः हमको यह आशंका है कि सम्भवतः हमारे पाठक यह समझ बैठेंगे कि हमने यह वृत्तान्त किसी जनसाधारण के दैनिक जीवन का सूक्ष्मावलोकन करके नहीं, वरन् किसी प्राचीन अनुसन्धान के आधार पर उद्धृत कर दिया है। हमारा सादर निवेदन है कि ऐसी बात नहीं है; निस्सन्देह, हमारे वर्णन का अधिकांश पुरातनता का जामा पहने हुए होगा क्योंकि मोटे तौर पर हिन्दुओं की दैनिक जीवन प्रणाली आज भी वही है जो कर्ण और जयसिंह के समय में थी; परन्तु, जिन बातों पर हमने यहां विचार किया है, वे आधुनिक भी हैं।

हिन्दू समाज की सब से पहली व्यवस्था, जो विदेशियों का ध्यान बलात् आकृष्ट करती है, वह जातिप्रथा है। सन् 1827 ई. में मिस्टर बोराडेल (Borradaile) को सूरत नगर में हिन्दुओं के रीति-रिवाज़ों के बारे में सूचना एकत्रित करके व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने को लगाया गया था (यह कार्य अब, दुर्भाग्य से, बन्द कर दिया गया है) तब उसके द्वारा गणना करने पर जातियों की संख्या दो सौ सात से कम नहीं थी। इनमें से प्रत्येक जाति के लिए अन्य जातियों से व्यवहार करने में थोड़ी बहुत बाधा अवश्य थी। (इस विषय पर हम कुछ विस्तार से विचार करेंगे) इनमें आपस में रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं हो सकता था न ये एक दूसरे के हाथ का पानी ही पी सकते थे।

है जिसमें सृष्टिकाल से 1258 ई. तक का इतिहास लिखा है।
इसको Archibishop Parker ने 1571 ई. में प्रकाशित किया।
Chamber's Biographical Dictionary, p. 717

सभी जानते हैं कि भारत मे मूल रूप से चार ही जातियाँ थी[4] अर्थात-ब्राह्मण, पूजा पाठ करने वाले–क्षत्रिय, युद्ध करने वाले-वैश्य, कृषि वाणिज्य करने वाले और शूद्र, अवर कर्म करने वाले। ऐसा लगता है कि कुछ समय तक तो ये लोग विभिन्न कर्म करने वाले वर्गों के आधारपर ही जातियों के नामकरण करते रहे,न कि वशपरम्परागत रूप में जैसा कि आज कल करते है। कहते हैं कि शृंगी ऋषि का जन्म मृग से हुआ था, कौशिक कुश नामक घास से निकल पड़े थे, गोतम की उत्पत्ति एक खरगोश से हुई थी, वाल्मीकि सर्प-बिल के ढेर से और द्रोणाचार्य एक पत्ते से उत्पन्न हुए थे: इस प्रकार दूसरे ऋषियो में से कोई धीवर-कन्या की सन्तान थे तो कोई गणिका की, कोई जातिच्युत माता या दासी से उत्पन्न हुए थे, परन्तु थे सभी ब्राह्मण। महाभारत में ऐसे अनेक प्रसंग आए है जिनमे ऋषियों और योद्धाओ के सहभोज का वर्णन है; एक अन्य पुस्तक में लिखा है कि कवि कालिदास जाति से ब्राह्मण था परन्तु उसका विवाह एक राजकन्या से हुआ था, जो निस्सन्देह क्षत्रिय की सन्तान थी।[5]

---

4. V. A. Smith, Oxford History of India (1919), p. 35

5. बहुत प्राचीन काल में आर्य गृहपति ही अपना पुरोहित होता था और स्वय राजा भी अपने करने योग्य यज्ञ आप ही करता था। धीरे धीरे यज्ञ सबधी ऋचाएँ गाने वाले परिवार या दल उत्पन्न हुए और वे राजाओं के यहाँ सेवा में रहने लगे तथा अपने स्वामी की ओर से यज्ञ सम्पन्न करने और मन्त्र एवं स्तोत्र–गान करने के बदले मे दान और इनाम प्राप्त करने लगे। समय के साथ साथ यज्ञो की संख्या और क्रियाकलाप मे भी वृद्धि हुई और विधियों का विस्तार इतना हुआ कि राजा के लिए सहायता के बिना उसका पूरा करना असभव हो गया इसलिए पुरोहित व कुलगुरु जिसको पहले विकल्प से रखा जाता था उसको अब लगातार रखना एक पवित्र कर्तव्य बन गया क्योंकि उसके बिना यज्ञ–यागादि मे व्यवधान पडता था। ब्राह्मण पौरोहित्य के एकाधिकारी बन गए और कर्मकाण्डियो की एक जाति ही बन गई जो अपने में बाहरी तत्वों के प्रवेश को निरन्तर रोकती रही।

   बहुत प्राचीन काल में आर्य और दस्यु का भेद जाति एवं वर्ण ही होता था। ऋग्वेद (9/11/2) में एक ऋचा आती है–

   "देखो, मै मंत्रद्रष्टा हूँ, मेरा पिता वैद्य है, मेरी माता चक्की मे अनाज पीसती है; हम सब का काम भिन्न है।"

   जातियों का निर्माण बहुत करके पेशे के आधार पर हुआ है। प्राचीन आर्य जातियों में यज्ञ-यागादि करने वाले,योद्धा और कृषिकर्म करने वाले लोग थे जो आगे चलकर परम्परागत एवं वंशागत व्यवसायी बन गए यद्यपि आरम्भ में एक वर्ग में से दूसरे वर्ग में सम्मिलित हो जाना सरल काम था।

प्रसिद्ध सप्तर्षि[6] गृहस्थ ब्राह्मण थे और उन सब की एक ही पत्नी थी। ये सब नक्षत्र-मण्डल में परिवर्तित हो गए जिसको हम सप्तर्षि- मण्डल (Pleiades) कहते हैं और जो विष्णुलोक के द्वार पर ध्रुव नक्षत्र के आसपास प्रकाशमान हैं, इसके पास ही किंचित् मन्द-मन्द उनकी पत्नी अरुन्धती भी आलोकित होती है। अधिकांश ब्राह्मण इन्हीं सप्तर्षियों से अपनी उत्पत्ति मानते हैं। सम्भवत: हिन्दुओं में जो बहुत सी जातियाँ बन गई हैं (क्योंकि प्राचीन हिन्दूशास्त्रों में वर्तमान जातियों के नाम नहीं मिलते हैं) उनका उद्गम महान् ब्राह्मण सुधारक[7] शंकराचार्य के समय में हुआ जो बौद्ध मत का खण्डन करने के लिए ईसा से कोई डेढ़ सौ वर्ष पूर्व अवतरित हुए थे उन्होंने देखा कि ब्राह्मणों में परस्पर मतभेद बढ़ रहा था, वे अपने-अपने एक वेद[8] को

विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गए और ऐसा ही गंगा के पुत्रों ने किया। विविध जातियों और कुलों के पुरोहितों ने ब्राह्मण संज्ञा धारण की। ब्राह्मणों की उन्नति उनके वेदों पर एकाधिकार के कारण हुई जिनके पठनपाठन को उन्होंने एक महान रहस्य बना दिया। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के विवाद का एक बहुत प्राचीन प्रमाण विष्णु के परशुराम अवतार की कथा में सुरक्षित है जिसमें लिखा है कि परशुराम ने ब्राह्मण होते हुए क्षत्रियों का वध किया था।

6. सप्तर्षियों के नाम ये हैं-जमदग्नि, भरद्वाज, गोतम, कश्यप, वसिष्ठ, अगस्त्य और अत्रि। ये ही समस्त ब्राह्मणों के आदि गोत्र-प्रवर्तक है।

7. शंकराचार्य मलाबार में रहने वाले वेदान्ती ब्राह्मण थे। उनका समय अन्तिम प्रामाणिक आधार पर ईसा की 9वीं शताब्दी में 805 ई० से 837 ई० के बीच का था, ईसा से एक शताब्दी पूर्व का नहीं (देखिए जर्नल ऑफ दी बाम्बे ब्राँच ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, 1916; पृ० 156) उन्होंने जैन और बौद्ध मतों का भयंकर प्रतिवाद किया; ये मत अशोक (ई० पू० 273–232) और उसके पौत्र सम्प्रति के समय से भारतवर्ष में दृढ़ता पूर्वक छा गए थे। शंकराचार्य ने भारत में सर्वत्र— उत्तर में कश्मीर तक, भ्रमण करके अपने मत का प्रचार किया और नास्तिक बौद्धमत का खन्डन किया; उन्होंने उपनिषदों के मत को पुनर्ग्रहण करने पर बल दिया तथा वेदान्तसूत्रों, गीता और उपनिषदों पर भाष्य लिखे। उनका मत है कि वेदान्त का मूल सिद्धान्त अद्वैत है, ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ सत्य नहीं है; यह जगत् 'माया' है।

8. ब्राह्मणों में वेदों के आधार पर विभाजन हुआ है; जिस वेद का जिस कुल में परम्परा से अध्ययन हुआ उसी के आधार पर वह विभाग चल पड़ा। इस प्रकार ऋग्वेदी, सामवेदी, शुक्ल यजुर्वेदी, श्याम यजुर्वेदी ब्राह्मण हुए। आगे

हीपकड़ कर बैठ जाते थे और चारों में से अन्यतम का अनुसरण करने वाले का निरादर करते थे। महान् सुधारक आचार्य ने उपदेश दिया कि मांस नहीं खाना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने बौद्धमत के सामान्य सिद्धान्त को मान्यता देते हुए वेदों को इस दृष्टिकोण से अलग ही रखा, जिनमें पशु बलि का विधान है; उन्होंने ब्राह्मणों को यह भी उपदेश दिया कि वे अपने-अपने कुल क्रमागत वेद का अनुसरण करें परन्तु दूसरे वेदत्रयानुयायियों से द्वेष न रखें। इस प्रकार शंकराचार्य ने यद्यपि मतभेद दूर करने के प्रयत्न किए, परन्तु वे अनजाने ही मतभेदों की उत्पत्ति के कारण भी बन गए। उनके निधन के बाद, उनका नाम ही भेद का सूचक पद बन गया और जो ब्राह्मण पहले विन्ध्य पर्वत श्रेणी से ही विभक्त थे अब दो और मतों में बँट गए; एक वे, जिन्होंने आचार्य के सिद्धान्तों को ग्रहण किया था और दूसरे वे, जो उनका विरोध करते थे। गौड़ ब्राह्मणों ने मांस भक्षण चालू रखा और द्रविड़ ब्राह्मणों ने इसका त्याग कर दिया, इसलिए ये अब एक दूसरे के पात्र से पानी भी नहीं पीते।[9]

भारत में अन्य स्थानों की अपेक्षा गुजरात के ब्राह्मणों की बहुत अधिक जातियाँ बन गई हैं। औदीच्य ब्राह्मणों की संख्या सबसे ज्यादा है; इनकी उत्पत्ति के विषय में अणहिलवाड़ा के राजा मूलराज के इतिहास में वर्णन कर चुके हैं।[10] वे औदीच्य इसलिए कहलाते हैं कि वे उत्तर दिशा से आए थे—और 'सहस्र' इसलिए कि पहली बार में आने वालों की संख्या एक हजार थी। अपने निवास-स्थानों के कारण उन्होंने विभिन्न नाम ग्रहण किए, जैसे-सिद्धपुरिया औदिच्य या सीहोरिया इत्यादि; इस प्रकार बनी हुई शाखाओं के रीति रिवाज भी आगे चलकर भिन्न-भिन्न तरह के बन गए ब्राह्मणों की जो टोली मूलराज का दान ग्रहण करने से इन्कार करती रही, उनकी टोलकिया औदीच्य नाम से अलग ही जाति बन गई। बाद में, इनमें से जो लोग गरीबी में पड़ गए उन्होंने बाध्य होकर मोची, दर्जी और दमामी आदि जातियों और कोलियों तक की कुल–पुरोहिताई स्वीकार कर ली इसलिए उनको बहिष्कृत कर दिया गया और वे अनेक उपजातियों में बँट गए। दूसरे लोग सूरतनगर में बस गए या कच्छ, बागर (बागड़) और मारवाड़ देशों में चले गए; वहाँ उन्होंने अपने देश के

चल कर वेदों की विभिन्न शाखाओं को लेकर विभाजन हुआ; जो वेद की जिस शाखा का अध्ययन करने लगा वह परम्परा से उसी शाखा का ब्राह्मण कहलाने लगा।

9. समस्त भारत में ब्राह्मणों के दो बड़े विभाग है-(1) पंच गौड़ और (2) पंच द्राविड़। नर्मदा नदी इनकी विभाजन रेखा है।

J. Wilson, Indian caste, vol. II, Bombay, 1877.

10. औदीच्य का अर्थ है उत्तर दिशा से आया हुआ। ये लोग कुरुक्षेत्र से आए थे Bombay Gazetteer, 1, i, 161, viii, 145, दे० **रासमाला** (हिन्दी अनुवाद) भाग 1 पूर्वार्द्ध पृ. 131–33

रीति-रिवाजों का पालन करते हुए निवासस्थान के आधार पर नये नाम ग्रहण कर लिए और मूल जाति से भिन्न हो गए, जैसे—मारवाड़ी औदीच्य ब्राह्मण इत्यादि।

श्रीमाली ब्राह्मणों की उत्पत्ति श्रीमाल–माहात्म्य नामक ग्रन्थ में लिखी है जो, उनके मतानुसार, स्कन्दपुराण का ही एक अंश है। उसमें लिखा है कि जब जालोर में श्रीमाल (अब भिन्नमाल) नामक नगर सबसे पहले बसाया गया तब चारों दिशाओं से ब्राह्मणों को आमंत्रित किया गया था; उनमें से जो वहीं बस गये उनकी एक स्थानीय जाति बन गई। संस्कृत का प्रख्यात महाकवि माघ श्रीमाली ब्राह्मण था।[11] जब श्रीमाल नगर की अवनति होने लगी तो बहुत से ब्राह्मण अपनी कुलदेवी को लेकर उस समय के उन्नतिशील नगर अणहिलवाड़ा चले गए और वहाँ बस गए या गुजरात के अन्य भागों, कच्छ अथवा सोरठ, में चले गये। कुछ लोग मारवाड़ या मेवाड़ में ही बस गए। कुछ लोगों ने भोजन–निर्वाह के लिए जैन धर्म स्वीकार कर लिया इसलिए वे "भोजक"[12] कहलाने लगे। श्रीमाली ब्राह्मण मुख्यतः यजुर्वेद और सामवेद के अनुयायी हैं और इनमें से प्रत्येक शाखा के सात गोत्र होते हैं। गुजरात में इन सब में आपस में बेटी-व्यवहार होता । औदीच्य ब्राह्मणों की तरह श्रीमाली भी अपनी उत्पत्ति गोतम ऋषि से मानते हैं। इस समय गुजरात के पश्चिमी जिलों में इन दोनों ब्राह्मण जातियों में वरिष्ठता के लिए विवाद चल रहा है।

ब्राह्मण लोग प्रायः साथ बैठकर भोजन तो कर लेते हैं परन्तु आपस में बेटी–व्यवहार नहीं करते। गुजरात में, ब्राह्मणों की एक ऐसी भी जाति है जो दूसरे ब्राह्मणों के साथ बैठकर भोजन भी नही करते, वे नागर ब्राह्मण[13] है। गुजरात मे नागर ब्राह्मणों का मुख्य स्थान वड़नगर है, जो इस प्रान्त के प्राचीनतम नगरों में है और जनश्रुति के आधार पर, कनकसेन के वंशजों ने इसकी नीव रखी थी। जब वीसल देव चौहान ने वीसलनगर बसाया तब उसके यज्ञ में बहुत से वडनगरा ब्राह्मणों ने भाग लिया था। इन लोगों ने राजा से दान लेना अस्वीकार कर दिया था, परन्तु वीसलदेव ने किसी युक्ति से उनको भूमिदान लेने के लिए विवश किया। इसी कारण वे मूल जाति से अलग कर दिये गए और उन्होंने वीसलनगरा नागर नाम से पृथक्

---

11. राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान. जोधपुर के संग्रह में सं० 7087 पर संवत् 1552 वि० की लिखी शिशुपालवधम् की प्रति है, उसकी पुष्पिका में माघ को 'वणिक्' लिखा है। (हि. अ.)
12. ये लोग अपने को शाकद्वीपीय ब्राह्मण कहते हैं।
13. मूलतः नागर ब्राह्मण मैत्रक थे जो उत्तर से वलभी के राजाओं के साथ आए थे। उनका आदि स्थान सम्भवतः नगरकोट अथवा काँगड़ा था जो पंजाब में है। वहाँ पर अब भी देवी का प्रसिद्ध स्थान है। (J.A.S.B., 1909 pp. 167, 184; I.A. 1911, p. 33)

जाति वना ली। ऐसी ही घटनाओं के आधार पर सातोड़ा, चीतौड़ा, प्रश्नौरा और कृष्णौरा ब्राह्मणों की जातियाँ वनी हैं। इसी जाति में से 'धारड़' नाम की एक जाति अलग निकल पड़ी है, ये वे लोग हैं जिनके स्वजाति में विवाह नहीं हो सके इसलिए उन्होंने विजाति में से कन्याएं ग्रहण की। इस प्रकार के विवाह के कारण लोग उनसे वहुत घृणा करने लगे और उनको अपना मूल गाँव छोड़ना पड़ा। परन्तु यह जाति निरन्तर वढ़ती चली गई। इन लोगों मे पुनर्विवाह करने की भी छूट है।[14]

इस प्रकार गुजरात की ये प्रमुख जातियाँ हैं परन्तु सव मिलकर इतनी ही हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए। प्रायः कहा जाता है कि ब्राह्मणों की चौरासी जातियाँ है।

भागवतपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र मरीचि के कश्यप हुए, उनके पुत्र सूर्य अथवा विवस्वान् क्षत्रिय हो गए। मरीचि के भाई अत्रि के भी एक पुत्र सोम या चन्द्र नाम वाला था: वह भी योद्धा था। राजपूतों में से अधिकांश अपनी उत्पत्ति सूर्य या चन्द्र से मानते है। संस्कृत ग्रन्थ रत्नकोष की टीका में लिखा है कि क्षत्रिय जाति का आदिपुरुप मनु था; उसी से छत्तीस कुल उत्पन्न हुए जिनमें से कुछ ने तो अपने पराक्रमपूर्ण कार्यों के कारण विविध उपनाम या अवटंक धारण कर लिए, कुछ ने राजपदवी ग्रहण की और कुछ ने कृषि कर्म स्वीकार कर लिया तथा रहे-सहे शूद्र जाति में परिगणित हो गए। चन्द्र वारहठ[15] का कहना है कि जव आवू पर्वत पर ऋषियों का निवास था तो असुरों अथवा दानवों ने उनको कष्ट पहुँचाना आरम्भ किया। तव उन्हीं ऋषियों में से वसिष्ठ ऋषि ने यज्ञ-कुण्ड में से चार क्षत्रियों को उत्पन्न किया—परिहार, सोलंकी, परमार और चौहान। इनसे राजपूतों की छत्तीस शाखाएं उत्पन्न हुई जो इस प्रकार गिनी जाती है—

---

2. ऐसी पुनर्विवाह की कोई चाल नहीं पड़ी थी। साठोदरा नागरों में एक कन्या के पाणिग्रहण की आधी ही विधि सम्पन्न हुई थी कि वर की मृत्यु हो गई। तव उस कन्या के पिता ने उसका अन्य वर के साथ विवाह कर दिया। इस वात पर जाति में दो धड़े हो गये। एक पक्ष मानता था कि कन्या विधवा हो गई, दूसरों का कहना था कि अन्य वर के साथ विवाह शास्त्र-सम्मत था। उन लोगों को अपर पक्ष ने जाति-वहिष्कृत कर दिया; वे 'वरड़' कहलाए। (गु. अ.)

15. चन्द भाट था, वारहठ नही।

छप्पय

रवि, शशि, जादव वंश, कुकुत्स्थ, परमार, तोंवर;
चहुवाण, चालुक्य, छिंद, सिलार, आसीवर;
दोयमत, मकवाण, गरुक्ष, गोहिल, गहीलुत;
चापोत्कट, परिहार, राव राठौड़, रोस-जुत;
देवरां, टॉक, सिंघव, अनग, मोतिक, प्रतिहार, दधिखट;
कारटपाल, कोटपाल, हुन, हरितक, गोरकमाड, जट ॥

दोहा

व्यान पालक, निकुम्भवर, राजपाल, अवनीस ।
कालछर के आदि दे, बरने वंस छतीस ॥[16]

बारहठ और बहीवंचा लोग साधारणतया कहा करते है कि परमार, राठौड़, जादव, चौहाण और सोलंकी ये पांच राजपूत अग्निकुण्ड में से निकले थे और फिर इन्हीं से निन्यानवे शाखाएँ चल पड़ीं। राजपूतों का कहना है कि वे असली क्षत्रिय हैं, परन्तु ब्राह्मण इसको अस्वीकार करते है क्योंकि क्षत्रिय तो कोई बचा ही नहीं था। इसका कारण यह बताया जाता है कि ब्राह्मणों के खाने-पीने में चौके-चूल्हे की कृत्रिम पवित्रता घुस पड़ी और राजपूत कन्याओं का विवाह मुसलमान शहजादों के साथ करना जरूरी हो गया। अब हिन्दुओं में क्षत्रिय जाति ब्राह्मणों से दूसरे दर्जे पर नहीं गिनी जाती है बल्कि उसका स्थान वैश्य जाति के बनियों ने ले लिया है, जो राजपूत के हाथ का पानी भी नही पीते और अब 'उजली वस्ती' या उच्च वर्ण की वस्ती के लिए 'ब्राह्मण-बनिया' एक विशेषार्थ-बोधक पर्याय बन गया है। राजपूत मांसाहार करते है और मद्यपान करते हैं। ये दोनों ही ऐसी बातें है जिनको उनके 'उजले' पड़ोसी अपवित्र मानते है। राजपूतों में तो केवल दो ही नियमों का पालन करने की समझ रही है कि वे गोवध नही करते और उनमें विधवा-विवाह नहीं

16. हम पढ़ चुके है कि राजपूत प्राचीन आर्य क्षत्रियों के वंशज नही हैं, परन्तु इनमें से अधिकांश मैत्रकों, शकों और हूणों आदि की सन्तानें है जो उत्तर-पश्चिम से आए थे। हूण जाति का तो नाम भी राजपूतों की एक शाखा में अब तक सुरक्षित है। राजपूत सूर्य, चन्द्र और अग्निकुल के हैं। चन्द्र-वंशियों में यादव मुख्य है, जिनके नेता श्री कृष्ण थे। ये लोग सम्भवतः उस शक जाति के हैं जिसने पश्चिमी भारत पर ई० पू० पहली और दूसरी शताब्दी में आक्रमण किया था। सूर्य वंश की मुख्य शाखा में सीसोदिया या चित्तौड़ के गुहिलोत है जो अपने को राम की सन्तान मानते हैं। डी० आर० भण्डारकर का मत है कि वे नागर ब्राह्मणो से सम्बद्ध थे और सम्भवतः मैत्रक थे। अग्निकुल (जिसमें मि० फार्ब्स ने भूल से सूर्यवंशी राठौड़ों को भी सम्मिलित कर लिया है, आबू पर अग्निकुण्ड से

—→

होता। इनकी शाखाओं मे एक दूसरे के साथ भोजन करने व वेटी-व्यवहार करने पर कोई प्रतिवन्ध नही है इसलिए यह नही कहा जा सकता कि ये भिन्न-भिन्न जातियों के लोग है।

प्रत्येक राजपूत सरदार के घर पर वहुत सी सेविकाएं रहती हे, जिनको या तो वाल्यावस्था में खरीद लिया गया था या वे उन स्त्रियों की सन्तानें हे जो पहले इसी तरह खरीदी गई थी। वे प्रायः सभी जातियों की होती हैं और बहुत करके हब्शी होती है। काठियावाड़ में इनको 'छोकरी' और महीकाँठा में 'वडारण'[17] कहते। ऐसा प्रसिद्ध है कि इनका शील मन्द होता है और इनका कभी विवाह नही होता; यदि होता भी है तो उसी जाति के किसी पुरुष से होता है। अन्य जातिवालों से इनका सम्वन्ध घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। जब किसी बडारण के गर्भ रह जाता है तो उसकी मालकिन या रानी उसको वुलाकर होने वाले बच्चे के पिता का नाम बताने को मजबूर करती है और यदि वह धनाढ्य होता है तो उससे जबरन दण्ड लिया जाता है। स्त्री पर कोई दोष नही लगाया जाता। इस प्रकार पैदा होने वाले बच्चे गोला कहलाते हैं और यदि राजा या उसका स्वामी उनमें से किसी को उच्च पद दे देता है तो वह 'खवास' कहलाता है। पदवृद्धि होने पर भी वे ठाकुर या राजा के तो गुलाम ही रहते हैं। राजा या ठाकुर की पुत्री के विवाह में ऐसे बहुत से पुरुष व स्त्रियाँ दहेज में दी जाती है। ये लोग घर में साधारण काम काज करते है और कभी-कभी, जब उनके ठाकुर की मृत्यु होती है तो शव को उठाकर श्मशान मे ले जाते है और उसी के साथ जल मरते है।

वैश्यों में अभी तक भी मुख्यतः कृषि और वाणिज्य का ही व्यवसाय होता है। गुजरात के अधिकतर काश्तकार कुणबी है, जिनकी तीन वड़ी शाखाएं हैं, लेवा, कँड़वा और आंजणा।[18] वे अपनी उत्पत्ति क्षत्रियों से मानते हैं और इनमें बहुत से तो राजपूतों की शाखाओं से मिलते-जुलते उपनामों का भी प्रयोग करते हैं। व्यापार करने वाला वर्ग वनियों का है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। मुख्य-मुख्य

उत्पन्न हुआ माना जाता है; यह कुल परशुराम द्वारा क्षत्रियों का विनाश हो जाने पर उनका स्थान लेने को उत्पन्न किया गया था। कुछ लोगों का कहना है कि यह किम्वदन्ती हूणों और गुर्जरों द्वारा आक्रमण करके बौद्धों और जैनों के विनाश का संकेत करती है। हूण और गुर्जर हिन्दू धर्म के कट्टर समर्थक हो गए थे।

देखिए—V.A. Smith, Early History of India. 3rd edition, p. 414 and Bhandarkar in J.A.S.B., 1909, pp. 167 184.

17. राजस्थान में वरिष्ठ सेविका को वडारण और अन्यों को छोकरी, बाई या गोली कहते है।(हि. अ.)

18. कुणवियों की चौथी जाति 'मूमना कहलाती है।

जिलो व नगरों के आधार पर इनकी चौरासी जातियाँ बन गई है। इन जातियों के दस्सा या बीसा (दाएँ या बाएँ) नाम से और भी उपभेद हो गए हैं, जिनसे इनके पद और श्रेणी का ज्ञान होता है तथा दस्स और बीस शब्दों से इनको व्यक्त किया जाता है। धार्मिक भेदों के अनुसार बनियों के और भी छोटे-छोटे भेद है–जैसे माहेश्वरी या वैष्णव हिन्दू और श्रावक अथवा जैन। बनियों के वहीवाचे प्रायः उनके धर्म के अनुसार ही होते है, यथा-जैन साधु, या भाट। चारण या भाट लोग प्रायः अपनी उत्पत्ति किसी राजपूत शाखा से बताया करते है। इनमें सगोत्र विवाह का निषेध है।

छोटे-मोटे घरेलू काम करने वाले शूद्र कहलाते हे, जैसे–नाई, वारी, धोवी इत्यादि। भील, कोली, मीणा, मेर और अन्य आदिवासी जातियों के लोग भी शूद्र ही माने जाते हैं और ये जातियाँ प्राय. निम्न-कोटि में ही गिनी जाती है। इनमें व्यवसाय-धन्धे के आधार पर विभिन्न जातियाँ बन गई है। हिन्दू राज्यों में शूद्रों को अपने वंश-परम्परागत कामधन्धे को छोड़ने की परवानगी नही मिलती है, न उनको अच्छे वस्त्र पहनने की इजाजत है, न अच्छे घर बनाने की। पुराने जमाने में निम्न जातियों के लोगों को बिल्कुल गाँव के वाहर रहना पड़ता था और अपनी जाति की पहचान के लिए खास तरह की पोशाक पहननी पड़ती थी। शूद्रों के भी भाट और वहीवाँचे होते हैं जो क्षत्रियों से उत्पत्ति की बात बता-बताकर उनके गौरव-भाव का पोषण करते रहते है। अत्यन्त निम्न जाति के ढेड़ आदि भी चौहान वाघेला आदि उपनाम धारण करते हैं और तुरी उनके गायक होते है तथा गरुड़ा उनके कुलपुरोहित। ये गरुड़े द्विजों का अनुकरण करके जनेऊ पहनते हैं और अपने को ब्राह्मण बतलाते है। ये निम्न वर्गीय लोग प्रायः कबीर-पन्थी होते हैं। यह पन्थ इनको इसलिए स्वीकार्य हुआ कि इसके अनुसार 'जात-पाँत पूछे नहिं कोय, हरि को भजे सो हरि का होय।' इसके भी दो भेद है–ढेड़ और ओलगाणा। यदि कोई ढेड़ किसी ओलगाणा के साथ खा-पी लेता है तो वह नीचा समझा जाता है और जातिच्युत कर दिया जाता है। फिर, यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि ओलगाणा भी म्लेच्छ या अहिन्दू से श्रेष्ठ समझा जाता है। एक किस्सा है कि एक बार मुसलमान वादशाह ने अपने हिन्दू वजीर से पूछा, सबसे नीची जाती कौनसी है? वजीर ने सोचकर जवाब देने की मोहलत माँगी और जब मिल गई तो वह ढेड़ों की वस्ती में गया और कहने लगा–'वादशाह तुमसे नाराज हो गया है और तुम सब को मुसलमान बनाने का इरादा करता है। इस पर ढेड़ वहुत डर गए और इकट्ठे होकर वादशाह के महल पर पहुचे। अदब से दूर खड़े होकर वे खूब जोर से चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगे–अगर हमने हजूर को नाराज किया है तो और कोई भी सजा दी जाय, पीटा जाय, हम पर जुर्माना कर दिया जाय, अगर मर्जी हो तो फाँसी पर लटका दिया जाय मगर हजूर! हमको मुसलमान न वनाया जाय।" यह सुनकर वादशाह मुस्कराने लगा, उसके पास ही हिन्दू वजीर इस तरह

बैठा था जैसे इस मामले से उसका कोई सरोकार न हो। तब बादशाह ने उसकी तरफ देखकर कहा, "अच्छा, तो सबसे नीची जाति तो मेरी ही हुई।"

जैनों में मुख्य रूप से उपवास करना और जीवहिंसा न करना ही धर्म गिना जाता है, इनमें जाति भेद नहीं होता। फिर भी, श्रावक लोग बहुत से हिन्दू रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। यदि कोई श्रावक किसी नीच जाति के व्यक्ति का स्पर्श कर लेता है तो वह पुनः पवित्र होने के लिए अग्नि अथवा जल का स्पर्श करता है। यदि उसे किसी ढेड़ से कोई वस्तु लेना होता है तो वह, अन्य हिन्दुओं की तरह, पहले उस वस्तु को जमीन पर रखवा लेता है फिर उसे ग्रहण करने से पूर्व जल के छींटे अथवा अग्नि से पवित्र कर लेता है। कोली और भरवाड़ गड़रिये भी ढेड़ों को छूने से परहेज करते हैं और इसी रीति से अपनी शुद्धि करते हैं।

ईसवीय सन् 1835 के अगस्त मास में एक कोली ने गुजरात की एक फौजदारी अदालत में गवाही देते हुए कहा, "भगवान और सेड़ा भरवाड़ ने मेरे पास आकर कहा कि वे दोनों ढेड़ों से छू गए थे और अपवित्र हो गए थे, इसलिए उन्होंने मुझे आग लाने को कहा। मैंने अपने हुक्के में से एक सुलगता हुआ अंगारा दिया जिसका उन दोनों ने अपने-अपने सिर से स्पर्श किया। मैंने फिर उस अंगारे को फेंक दिया और बाद में उन दोनों ने मेरे साथ हुक्का पिया।" इसका तात्पर्य यह हुआ कि आग को छूकर वे पवित्र हो गए थे अन्यथा वह उनको अपना हुक्का नहीं देता।

जातियों में उपविभाजन होने का एक कारण यह भी है कि जातिभोज करने में खर्चा बहुत अधिक होता है। धनाढ्य पुरुष लोकप्रिय होने के लिए आवश्यकता से भी बड़ा भोज देता है अथवा एकाध दिन तक अधिक जीमणवार करता है। दूसरे लोग, उससे हल्के साबित न हों इसलिए, उसका अनुकरण करते हैं और इस प्रकार यह एक रीति ही बन जाती है जिसका गरीब लोगों को भी कर्ज आदि लेकर पालन करना पड़ता है। ऐसे लोग, जब कभी जाति में कोई झगड़ा खड़ा होता है तो बड़े प्रसन्न होते हैं और अलग होने का मौका निकाल लेते हैं। यदि जाति के बहुत से आदमी एकमत हो जाते हैं तो जाति-विच्छेद सरलता से हो जाता है, परन्तु यदि असन्तुष्टों की संख्या कम होती है तो उन्हें बहुत कष्टों का अनुभव करना पड़ता है। उस दशा में जाति वाले उनसे मिलना-जुलना, व्यवहार करना, उनकी सन्तानों से विवाह करना और उनको अपने चूल्हे से आग देना आदि बन्द कर देते हैं और उनको सार्वजनिक कुएँ से पानी भी नहीं भरने देते। जातिबहिष्कृत लोगों की बहू-बेटियों का आवागमन बन्द हो जाता है और उनके मृतक उस समय तक नहीं उठाए जाते जब तक वे आत्मसमर्पण न कर दें या जाति वालों पर अन्य किसी प्रकार से अपना प्रभाव न जमा लें क्योंकि मृतक के शव को श्मशान तक ले जाने का अधिकार उन्हीं को होता है।

वहुत सी जातियों में ऐसा रिवाज है कि पुरुष अपनी इच्छानुसार कितने ही विवाह कर सकता है। एक राजपूत कभी-कभी वीस-वीस विवाह भी कर लेता है और औदीच्य प्राय: पाँच या छ: विवाह तक करता है; अन्य जातियों में पहली पत्नी के जीवित होते हुए दूसरा विवाह नहीं किया जा सकता। राजपूतों में विधवा-विवाह नहीं होता, परन्तु कुछ दूसरी जातियों में एक स्त्री एक से अधिक विवाह भी कर सकती है। कभी-कभी, यदि पति-पत्नी में अनवन हो जाय तो वे आपस की रज़ामन्दी से एक दूसरे को छोड़ सकते हैं। ऐसे अवसर पर स्त्री अपनी ओढ़नी का पल्ला फाड़ कर पुरुष को देती है और पुरुष उसको 'छूटक्या' (त्यागपत्र) लिख कर देता है। कुछ जातियों में यह आवश्यक समझा जाता है कि लड़कियों का विवाह वारह वर्ष की अवस्था से पहले ही कर देना चाहिए; दूसरी जातियों में, उच्च कुल का वर प्राप्त करने की प्रतीक्षा में, लड़कियाँ तीस-तीस वर्ष तक कुँआरी वैठी रहती हैं। कुछ जातियों में, मृतक की उत्तर-क्रिया न करने वालों को जातिवहिष्कृत कर देते हैं तो कुछ ऐसी जातियाँ हैं जिनमें ऐसी क्रियायें विल्कुल नहीं करते।

भोजन के विषय में भी कई तरह के प्रतिषेध हैं जिनकी अवहेलना करने पर लोगों को जाति से वाहर कर दिया जाता है। साधारण नियम यह है कि अन्य जाति के, मुख्यतः अपने से निम्न जाति के, लोगों का वनाया हुआ भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिये। यदि ब्राह्मण के लिये वनाये हुये भोजन को शूद्र छू लेता है तो फिर वह शुद्र के ही खाने योग्य हो जाता है। कुछ जातियों में भोजन चौके से वाहर नहीं ले जाया जा सकता। वर्तनों के उपयोग के वारे में भी अनेक नियम हैं। ब्राह्मण एक पात्र को काम मे ले चुकने के वाद उसका दुवारा उपयोग करने के लिए उसे पानी से धोता है, परन्तु वैश्य उसको राख से माँज कर ही सन्तोष कर लेता है। काँसा, भरत, पत्थर, कलई, टीन, लकड़ी और मिट्टी के वने हुए पात्र यदि दूसरी जाति वाले के हैं तो ब्राह्मण उन्हें उपयोग में नहीं लेंगे। ऐसे किसी वर्तन को जो ब्राह्मण का हो और उसे कोई वैश्य या शूद्र छू लेता है तो वह उस ब्राह्मण के लिए अप्रयोज्य हो जाता है। जल के विषय में आवश्यकता और परिस्थिति के कारण कुछ नियम ढीले कर दिए जाते हैं। साधारण नियम तो यह है कि हिन्दुओं में एक जाति वाला दूसरी जाति वाले के वर्तन में भरा हुआ पानी नहीं पीता है और यदि अन्य जाति वाला उस वर्तन को छू लेता है तो वह अपवित्र हो जाता है। पश्चिमी गुजरात में गरमी के मौसम में पानी की वहुत कठिनाई रहती है इसलिए वहाँ ऐसा रिवाज है कि अन्य जाति वाले के ताँवा या पीतल के वर्तन को अच्छी तरह मिट्टी से माँजने और पानी से झकोलने के वाद ब्राह्मण उसे काम में ले सकता है। चमड़े के डोल को सिर्फ धो लेना ही काफी होता है क्योंकि वह शुरू शुरू में चमार के घर से आता है जो वहुत नीची जाति का होता है और ऐसा खयाल किया जाता है कि अव उसमें अधिक अशुद्धता आने की सम्भावना नहीं है। कुछ कट्टर ब्राह्मण न चड़स से

निकाले हुए पानी को पीते हैं और न उनसे स्नान ही करते है। पश्चिमी गुजरात में प्राय: एक गाँव में एक ही कुआ होता है। ऐसी दशा में जब नीच जाति के लोग ढाणे पर एक ओर से पानी भर कर चले जाते है तब ब्राह्मण लोग आकर दूसरी ओर से पानी भरते हैं। जब गॉव में बहुत से कुएँ होते है तो प्राय: ढेड़ों आदि के लिए एक पृथक् कुआँ नियत कर दिया जाता है। यदि कुऐ में कुत्ता या अन्य पशु गिर जाता है तो वह अपवित्र हो जाता है। इसको फिर शुद्ध करने के लिए पाँच बार उसका पूरा पानी निकाल कर गंगाजल या गो-मूत्र उसमें डाला जाता है। यदि कोई ब्राह्मण या बनिया जाति की स्त्री पानी भर कर घर लौटती हो और सामने मुर्दा मिल जाय तो वह उस पानी को अपवित्र समझकर तुरन्त गिरा देती है या कभी-कभी घूँघट निकाल कर और मुँह फेर कर दूर खड़ी हो जाती है। जब शव-यात्रा उससे कुछ कदम दूरी से निकल जाती है तो पानी अपवित्र होने से बच जाता है। पशु का मृत-शरीर भी अपावन समझा जाता है; यदि कोई पशु कुएँ के मार्ग में मरा पड़ा होता है तो जब तक उसे हटा नहीं दिया जाता और भूमि शुद्ध नहीं कर दी जाती, उधर से कोई पानी भरने नहीं जाता। यदि किसी बर्तन पर बैठ कर कौआ पानी में चोंच डुबो दे तो कुछ स्त्रियाँ उस पानी को फेंक देती हैं और कुछ इसे सामान्य-सी बात समझ कर नहीं फेंकतीं। इधर ध्यान भी नहीं देती है। इंगलैण्ड और यूरोप के अन्य देशों में एक ऐसा अन्धविश्वास प्रचलित है कि कौआ एक अशुभ पक्षी है, इसी प्रकार इसका बैठना गुजरात में भी अपशकुन माना जाता है; शायद यह प्रथा इसी विचार से सम्बद्ध हो।

प्रकरण दूसरा

किसान

यूरोपीय किसानों की तरह गुजरात के सभी किसान अपने-अपने खेत पर नहीं रहते बल्कि गाँव में ही इकट्ठे रहते हैं। किसानों के रहने के घरों के समुदाय को ही गाँव नहीं कहते; गाँव शब्द का तात्पर्य है वह समस्त भूमि जो उनके अधिकार में होती है। पहले लिख चुके हैं कि इस प्रान्त का बहुत बड़ा भाग बड़े-बड़े पेड़ों से ढका हुआ है। कच्छ के रण के आस-पास जहाँ वनस्पति की कमी है वहाँ भी गाँवों के पास वृक्षों का झुरमुट अवश्य होता है। शहरों की तरह गाँव से लगा हुआ झरना या तालाब भी होता है और इसी तरह हर एक गाँव की अपनी-अपनी मसजिद या मंदिर होता है। प्रान्त के अधिक सर-सब्ज भाग में खेतों के चारों ओर ऊँची ऊँची, मजबूत और बारहों मास टिकने वाली बाड़ होती है तथा उसी के पास पास बड़े-बड़े पक्के पेड़ होते हैं जो खेत के दृश्य को ऐसा घना बना देते हैं कि जब तक मनुष्यों की बातचीत, चरखे की सन्नाहट और कुत्तों के भौंकने की आवाज न सुनाई दे कोई राहगीर अनजाने सीधा गाँव में ही जाकर खड़ा हो जाय। यहाँ के वृक्ष और झाड़ियाँ, मोर से लेकर छोटी-छोटी चिड़िया तक, सभी प्रकार के पक्षियों से भरे रहते हैं: सभी तरह के शिकार की बहुतायत है और बन्दरों की डार (झुण्ड, सेना) इधर-उधर घूमती फिरती है। देश के झालावाड़ जैसे, दूसरे भागों में दृष्टि, मानो पानी सतह पर, बहुत दूर तक बे-रोक-टोक फैल कर एक ही बार में बीसों गाँवों की झलक ले लेती है। यहाँ तक कि हरिणों का झुण्ड या बीस-पच्चीस घुड़सवारों की टोली भी कई मीलों की दूरी से आती हुई दिखाई दे जाती है।

यहाँ के किसान उद्योगी और निरुपद्रवी होते हैं। इनका रहन-सहन भी बहुत सीधा सादा है। वे बहुत तड़के ही उठकर अपने बैलों को चारा डालते हैं और फिर कुछ मिनटों तक अपने घरू काम काज में लग जाते हैं। इस बीच में बैल चारा चर लेते हैं और वे स्वयं भी खेत पर जाने को तैयार हो लेते हैं। अब वे बैल को आगे आगे हाँकते हुए खेत के लिए रवाना हो जाते हैं। वहाँ वे दिन भर मौसम के अनुसार खेती के काम में व्यस्त रहते हैं। नौ बजे के लगभग उनकी स्त्रियाँ घर पर तैयार किया हुआ भोजन या कलेवा लेकर उनके पास खेत पर ही पहुँच जाती हैं और फिर वे शाम को घर लौटते हैं, जहाँ सूर्यास्त के थोड़ी देर बाद ही ब्यालू कर लेते हैं। कुछ कुणबी तो दिन में चार बार खाते हैं।

कुणबी जब तहसील की कचहरी में आता है तो बहुत दीन और विनम्र दिखाई देता है, परन्तु जब अपने लोगों में रहता तो बड़ा दृढ़ और वीर मालूम देता है। वह अपनी स्वाधीनता और दूसरों की अपने प्रति आश्रितता की बातें बढ़-बढ़ करता है। इस बारे में वह कुछ कहावतें भी कहता है, जैसे–ज्याँ वर्षादनु गाजणु, त्यां कुणबीनु पादणु' (जहाँ बादल गरजना शुरू करते हैं वहाँ ही कुणबी उस स्थान का भू-स्वामी हो जाता है)—कुणबी पाछल लाखो जन, पण कुणबी कोई नी पाछल वण, (कुणबी के पीछे लाखों जन चलते हैं, परन्तु कुणबी किसी के पीछे नहीं चलता)। जहाँ कुणबी होगा, वहां उसके बैल पहले होंगे जहाँ एक की बात करो वहाँ दूसरे की बात जरूर करनी पड़ेगी। अपने ढोरों के लिए उनकी ममता उचित भी है क्योंकि प्रकृति ने उनको जिन परिस्थितियों में रख दिया है उनको देखते हुए वे एक दूसरे के लिए बहुत अनुकूल हैं और इसीलिए उनकी इतनी प्रसिद्धि फैली हुई है। जब मेवाड़ का राजकुमार कर्ण पराजित हो गया तो उसकी और बादशाह जहाँगीर की मुलाकात हुई[1] उस समय बादशाह उसका असाधारण स्वागत करने को समुत्सुक था। कहते हैं कि उसने राजकुमार को अपने दाहिने बाजू बैठाया अन्य दुर्लभ्य एवं उत्तम वस्तुओं के साथ उसे गुजराती बैलों की एक जोड़ी भी भेंट की। कुणबी अपने बैलों पर प्यार जताने के लिए उन्हें हांकते समय तरह तरह की गालियाँ देता है जैसे–यदि वह सोरठ प्रायद्वीप का है तो उसकी गाली 'अरे तुझे काठी पकड़ ले जाए' होगी। यदि ईडरवाड़ा या पहाड़ी इलाके का होगा तो कहेगा, 'अरे तुझे बाघ खाय'। सारे गुजरात में यह कहने की तो चाल ही है 'तेरा धणी मरे', परन्तु ऐसा कहने में हाँकने वाले का तात्पर्य बैल के पहलेवाले स्वामी से होता है, स्वयं से नहीं, क्योंकि जब वह ज्यादा ध्यान से गाली देता है तो कहता है, 'तेरा बेचने वाला मरे।'[2]

---

1. यह मेवाड़ (उदयपुर) की अप्रिय लड़ाई बहुत लम्बे समय तक चलती रही थी, अन्त में 1614 ई० में महाराणा अमरसिंह और उसके पुत्र कर्णसिंह ने शाहजादा खुर्रम के सामने आत्म समर्पण कर दिया तब यह समाप्त हुई। (V. A. Smith, Oxford History of India, 1919 P. 381

2. राजस्थान मे भी किसान प्रायः बैलों को हाकते समय ऐसी ही गली देते हैं। 'काठी' ले जाय की एवज 'वणजारो ले जाय' और 'बाघ खाय' की जगह 'कालो (नाग) खाय' कहते हैं। 'थारी धणी मरे' प्रायः सर्वत्र कहते हैं। इस बात पर मुझे एक रोचक प्रसंग का स्मरण आता है। भूतपूर्व जयपुर राज्य में मेरी जागीर का गाँव था। वहाँ हमें लोग फसल पकने पर वसूली

जब आखातीज (वैशाख शु० 3, अक्षय तृतीया) आती है तो उस दिन गाँव का ठाकुर कृषकों को एकत्रित करके कहता है कि अब वाह्-जोत शुरू करने का समय आ गया है । तब वे कहते हैं "नहीं" गई साल 'कूता' बहुत सख्त किया गया, था; आपने हम पर बहुत लगान लाद दिया था; इस पर भी, अगर सच कहें तो, हमारे सिर पर कोई 'धणी' ही नहीं है; लोग हमारे घर जला देते है, हमारी जमीनों को बरबाद कर जाते हैं । आप न हमारी रक्षा करते हैं न युद्ध पर जाते है ।" तब ठाकुर उलटे-पलटे कई तरह के बहाने बनाता है जिनमें प्रायः यही बात मुख्य और आसान होती है, 'यह सब कुसूर बदमाश मेहता (कामदार) का है, इसको तुरन्त निकाल देने का मेरा इरादा है । तुम्हारी भलाई का खयाल मुझ से ज्यादा किसको हो सकता है ? अगर सच पूछो तो तुम तो हमारे बेटे-बेटी हो ।" ऐसा कहने में, वास्तव मे, ठाकुर अपनी भावनाओं में कोई विशेष बनावट नही लाता है क्योंकि वह जानता है कि किसानों के बिना उसकी जमीनों का मूल्य कौड़ी का भी नहीं है और गुजरात में तथा पूर्व के अन्य देशों में भी "बहुत प्रजा तो राजा की शोभा, अल्प प्रजा तो राजा की हानि" होती है । इस प्रकार आपस मे बहुत कुछ 'रमझट' होने के बाद जब ठाकुर गाँव के पटेल को पाग बँधा देता है ।

के समय पर ही जाया करते थे अन्यथा शहर में रहते थे । वैसे बारहों महीने हमारी तरफ से तालुकदार या शाहना वहाँ रहता था । एक बार जब मैं गाँव में था तो एक किसान पर एक बोहरा (व्यौहरिया बनिया) अदालत से कुर्की ले आया । किसान ने मेरे पास आकर कहा, "मुझ पर बोहरे की कुर्की आ गई है, जरा शहनाजी को भेज दीजिये वरना वह मेरे बैल भी ले जायगा ।" बाद में, मुझे समझाया गया कि 'गाँव के सभी बैलों का 'धणी' तो जागीरदार है, जब भी कुर्की आती है तो जागीरदार का आदमी स्थल पर जाकर खड़ा हो जाता है और कुर्की-कुनिन्दा को बैलों की 'रास' (रस्सी) के हाथ नही लगाने देता है ।' बैलों का वास्तविक स्वामी तो वह किसान ही होता था परन्तु जागीरदार की ओर से उसके पास कमाकर खाने का साधन, वह बैलों की जोड़ी बच रहती थी; जमीन की उसके लिए कोई कमी नहीं थी । मुझे यह भी बताया गया कि गाँव के सब बैलों के 'धणी' होने कारण मेरे पितामह ने उस गाँव में 'तेरा धणी' मरे' ऐसा कहकर बैल हाँकने की मनाही करा दी थी । इस प्रकार यह एक आपसी समझौता था जिससे किसान के ढोरों की रक्षा होती थी । आजकल 'बैलों' की जोड़ी का आदर्श चिन्ह दिखाकर शासन सत्ता प्राप्त करने वालों के इन्तजाम में आए दिन किसानों के बैल और जमीनें नीलाम होती हैं, यह दुख की बात है । (हि० अ०)

और उदारतापूर्वक लगान में रियायत करने के बहुत से वादे कर लेता है तो मुहूर्त निकाल कर उसी शुभ दिन से खेती का काम चालू हो जाता है। पहला काम गत वर्ष के गेहूँ और कपास के डंठलों को हटाने का होता है और फिर खाद डाला जाता है, जिसके गोबर के ढेर के ढेर किसान लोग पहले से ही इकट्ठे कर लेते हैं या सूखे हुए तालाब के तल की मिट्टी ला-ला कर उन खेतों में डालते हैं जिनमें उनको फसल उगानी होती है। इसके बाद हल से 'वावनी' और बीजों की 'ओरणी' आदि काम यथाक्रम चलते रहते हैं जिनका सामान्यत: 'कुनबी का दुख' शीर्षक निम्न गीत से ज्ञान हो जायगा। यह गुजरात की स्त्रियों का प्रिय गीत है—

सांभल[1] रे श्रीकृष्ण ! अमारी[2] वीनती,
कणबी केरा[3] दु:खनी कहुं कथाय जो।
दे दु:ख टाली,[4] अवनीना[5] आधार तूँ,
अमथी[6] राखो तेम राम ! रहेवाय जो॥ साँभल० ॥1॥

चड़े बादला मास अषाढो आवताँ,
मेघ तणों तो पड़वा मांडे[7] नीर जो,
राश[8] परेणो[9] कणवी केरा हाथ माँ,
भीजी जाए छे कणवी केरूँ शरीर जो॥ साँभल ॥2॥

श्रावण मासे मेहुलो बरसे शरवड़े,[10]
लदबद पलणी जाए[11] नर ने नार जो,
छोकरानी वहू ससरा पासे जाई कहे,
ससराजी काँई[12] बावो डाँगर[13] जार[14] जो॥ साँभल ॥3॥

---

1. सुनों 2. हमारी 3.—कुणबी के 4—दूर कर दो। 5—पृथ्वी के। 6—हमको। 7—पड़ने लगता है, बरसने लगता है। 8—बैलों की रस्सी। 9—बैलों को हाँकने की लकड़ी, जिसकी नोंक पर कील लगी होती है। 10—अनिश्चित रूप में,चाहे जब। 11—तर-ब-तर हो जाते हैं। 12—क्या। 13—गाँव के काँकड़ (सीमा में)। 14—जा कर।

भलो आवियो भादरवो महिनो हवे,[15]
कणबी केरी नारी लदबद थाय[16] जो,
चार[17] तणो भारो माथे तो नीगले,[18]
छैयाँ[19] डेडे[20] रड़तां पलणी[21] जाय जो ॥ सांभल० ॥4॥

आसोजाँ आसा तो राखी अति घणी,[22]
वाट जोयलो[23] मेघ बरसवा काज जो,
ज्वार बाजरी डुंडे आवी[24] बेसताँ,
डाँगर पाणी वण[25] सूकाये आज जो ॥ साँभल० ॥5॥

कातिक माँ उधरातदार[26] ते आवियो,
करे आँकडो[27] सीम माँह[28] तैयार जो,
"एक सिंग के कण नव काँई उपाड़सो"[29]
एवी राय[30] तणी अज्ञानो सार जो ॥ साँभल० ॥6॥

मगशर महीनो आव्यो रूड़ी[31] रीत थी,
प्हेलो हफ्तो[32] उधरावा मंडाय[33] जो,
मुखी[34] तलाटी[35] ओरे बेसे[36] जाई चड़ी[37],
दुखियो कणबी बहु रीते कुटाय[38] जो ॥ साँभल० ॥7॥

15—अब। 16—भीग जाती है। 17—चारा, घास। 18—गीला, टपकता हुआ। 19—बच्चे। 20— गोद मे, कमियाँ। 21—रोते हुए। 22—बहुत। 23—बाट देखते हुए, प्रतीक्षा करते हुए। 24—बालियो में अनाज भरने लगा है। 25—विना। 26—कूंता करने वाला। 27—हिसाब, अंक। 28—सीमा पर, खेत की मेड पर खड़ा होकर। 29—एक बाल या दाना भी न उपाड़ा जाय। 30—ठाकुर। 31—सुन्दर। 32—पहलीकिश्त। 33—कूंती जाने लगी है। 34—मुखिय35—हिसाब करने वाला, कानूनगो। 36—बैठते है। 37—ऊंचे चढ कर। 38—पीटा जाता है।

पोपे वीजो पाक[39] रवीनो[40] थाय छे,
रूनां[41] काला काटी थाय समांज जो,
जूनी बंधी दूर करी छे आ समे[42],
पण त मात्र नवी चलावा काज जो[43] ॥ साभल० ॥8॥

आव्यो माघ महीनों रूडी रीत थी,
लीलां कच[44] सौ[45] खेतर तों देखाय जो,
राजानो जे कर ते सघलो[46] आपियो[47],
पण माथा पर हीम तणु[48] मय थाय जो ॥ सांभल० ॥9॥

फागण महीनों आव्यो रूड़ी रीत थी,
हमें घहूं नो[49] कीधो पूरो नाश जो,
"चालो आपण सटिये[50]" पण शा कामनु,
मूषिये मूंनी चोकी चारे पास जो[51] ॥ सांभल० ॥10॥

चौरे[52] तो सौ थाय एकठा चैत्र मां,
मांगे लावो कर[53] जो तुम पर थाय जो,
कांतनारी[54] विधवानी मजूरी ले लूंटी,
सर्वे जोर जुलम थी लूंटी जाय जो ॥ सांभल० ॥11॥

जमीनदार वैशापे आपीने लूटे,
गाय भेसना दूध दहीनो जे कांय[55] जो,
छाश[56] बिना छैयां[57] सौ टलवल[58] बहु करे,
पण पापियो चालू रहे लूट मांय जो, ॥ सांभल० ॥12॥

जेठ महीनो आव्यो रूड़ी रीत थी,

39—दूसरी फसल। 40—उन्हालू की फसल। 41—कपास की डोडियाँ फटने लगती है। 42—इस समय पुराने प्रतिबन्ध दूर कर दिए गए है। 43—परन्तु वे नये वन्धन लगाने के लिए ही है। 44—नीले सघन। 45—सव। 46—तमाम। 47—चुका दिया। 48—वर्फ का, ओले पड़ने का 49—अव गेहूं का। 50—चलो हम कही सटक जावे। 51—परन्तु मुखिया ने पहरा वैठा दिया है। 52—चवूतरे पर। 53—लगान। —54कातने वाली। 55—जो कुछ भी। 56—छाछ, मठा। 57—वच्चे। 58— विलखते है।

चीडाई गयलो[59] कणवी थंडो थाय जो,
सम वातां ने आशा तेने आपतां,
खेतर माँ खातर ते पूरवा जाय[60] जो ॥ साँभल० ॥13॥
बारा महीनां रूपामां[61] पूरा थया,
तेमां कणवी केरी कथी कथाय जो,
जो कोई गाय अने सीखे ने साँभले,
वास स्वर्ग माँ तेनो झट[62] थई जाय जो ॥ साँभल० ॥14॥

जब अनाज पक कर तैयार हो जाता है तो राजा या ठाकुर स्वयं खेत की उपज का कूँता करने जाता है अथवा अपने कामदार को भेजता है। कूँता करने की कई रीतियाँ हैं परन्तु उनमें जो सामान्यतया प्रचलित हैं वे नीचे लिखी जाती है—

जमीनदार, ठाकुर या उसका कामदार गाँव के पटेल या मुखिया को साथ लेकर प्रत्येक खेत पर जाता है। मुखिया अपनी समझ के अनुसार उपज का अनुमान बताता है, जैसे वह कहता है कि इस खेत में प्रति एकड़ या बीघा में इतना अनाज पैदा होने का अनुमान है। जमीनदार भी अपना हिसाब फैलाता है। जब किसान ठाकुर का कूँत सुनता है तो तावड़-तोड़ चिल्लाने लगता है "पृथ्वीनाथ! इतना तो इसमें कभी नहीं पैदा होगा, मैं गरीब हूँ, मैं मारा जाऊँगा।" इस प्रकार खूब रमझट होती है और अन्त में कोई आँकड़ा निश्चित कर दिया जाता है। परन्तु कुणवी तो उसका विरोध करता ही रहता है, भले ही वह परिणाम उसकी अपेक्षा से कितना ही अधिक अनुकूल हो। फिर वह किसान जमानत दिला देता है कि ठाकुर का भाग पहुँचा देगा और उसको फसल काटने की परवानगी मिल जाती है।

जमींदारों का भाग भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न रीति से निश्चित है, जैसे झालावाड़ में कहीं तीसरा भाग, कहीं दो-तिहाई तो कहीं-कहीं आधा भी। चावल की फसल या जो तालाब या कुए से सींची जाने वाली फसलें हैं उनका प्रायः एक तिहाई भाग लिया जाता है। रवी की फसल के गेहूँ और जौ का चतुर्थांश ग्रहण किया जाता है। कितनी ही फसलों में जमीनदार का हिस्सा नाममात्र का होता है, परन्तु हालियों और बैलों आदि पर कर लगा कर वह अपनी आमदनी पूरी कर लेता है। भाल इलाके में रवी की गेहूँ की फसलों के लिए, जो बिना सिंचाई वरसात से ही पैदा होती है, और जो "चासीया" (आकाशिया ?) कहलाती हैं, चूडासमा शाखा के जागीरदार ने एक अलग ही तरीका ईजाद किया था। इस

59—चिढा हुआ। 60—खेत में खाद डालने जाता है। 61—इस रूप में, तरह। 62—तुरन्त।

प्रणाली के अनुसार बीज बोते समय हलों से बनाई हुई प्रत्येक तीसरी लकीर (जिसको 'ऊमरा' कहते है) गिन ली जाती है। खेत के एक हिस्से में अच्छी उपज होती है तो दूसरे में कमज़ोर भी हो सकती है इसलिए खेत के तीन भाग कर लिए जाते है। प्रत्येक भाग के पहले, बीच के और अन्तिम ऊमरे का धान काट लिया जाता है और उसका भूसा कूट कर दाने निकाल लिये जाते हैं, उनको तौल कर ऊमरों की गिनती से गुणा करके खेत की उपज का अनुमान कर लिया जाता है। फिर उसमें से एक मन बीघा के हिसाब से बीज और दसवाँ भाग किसान की मेहनत का कम कर दिया जाता है। बाक़ी के दो बराबर के हिस्से कर दिए जाते है जिनमें से एक जागीरदार ले लेता है और दूसरा किसान के पास रह जाता है।

हाँसिल वसूल करने का सबसे पुराना तरीका यह है:—

किसानों को लावणी करने (फसल काटने) की परवानगी इस शर्त पर दी जाती थी कि वे अपना अपना 'लाण' (कटे हुए अनाज का अलग-अलग ढेर) 'खाते' (एक निश्चित स्थान) में डालें। कटे हुए अनाज (लाण) को बैलों से गाहते है (इसे गाठा करना कहते है)। फिर उसे बरसा कर दाना और भूसा या खाखला अलग-अलग कर लिए जाते है। तैयार होने पर, जमींदार, कामदार, पटेल, अनाज तौलने वाला बनिया (पटवारी), किसान और चौकीदार 'खाते' में एकत्रित होते है। बड़ा जमघट होता है; तब अनाज की तुलाई और बँटाई होती है। पहले, करीब चालीसवाँ तो ठाकुर की नज़र (भेंट) का निकाल दिया जाता है, फिर उससे कुछ कम कामदार, बड़े कुँअर के जेब खर्च, गाँव के शहने, पटवारी, पटेल, देवी या विष्णु के मन्दिर, गाँव के तालाब, कुत्तों और अन्य छोटी-मोटी बहुतेरी लागों (दस्तूर) के लिए अनाज निकाला जाता है। जब तुलाई होती रहती है और खतम होने को आती है तो किसान तराजू को ज़ोर से पकड़ लेता है या बाटों पर अपना हाथ रख देता है और कहता है "बस, बस इतना ही बहुत हो गया।" बचा हुआ अनाज 'लूट' के नाम पर उसे छोड़ दिया जाता है। जब सभी लाग-बाग (दस्तूर) चुका दी जाती है तो बाकी बचे हुए अनाज के दो बराबर के भाग कर दिए जाते हैं, एक ठाकुर लेता है, दूसरा किसान के पास रह जाता है। अनाज तौलने का सबसे पुराना तरीका शायद 'डालों' या 'ढकोलों' से मापने का था[3]।

3. समान आकार के घड़ों से भी अनाज मापा जाता था; ये दो-दो के जोड़ भरे जाते थे। फिर, एक जोड़ को तौल कर हिसाब लगा लेते थे। बँटाई भी इन्हीं 'जोड़' के द्वारा अलग-अलग ढेर करके की जाती थी। जैसे यदि तीसरा या चौथा हिस्सा ठाकुर को लेना होता तो अनाज की पूरी राशि के इन्हीं जोड़ों से बराबर के तीन या चार ढेर कर दिए जाते थे, फिर किसी एक ढेर में से 'धोबा' भर कर (दोनों हाथों की अंजुली भरकर) ठाकुर या

—क्रमशः

जब ठाकुर को लड़की का विवाह करना होता या ऐसा ही कोई अन्य खर्चा उस पर आ पड़ता तो वह किसानो से कर वसूल कर सकता था।[4] कभी-कभी वह अपने वशभाट या अन्य किसी साधु-सन्त को भी प्रति हल अथवा 'खाते' मे स्थित प्रत्येक ढेर मे किंचित् अंश लाग के रूप मे वसूल करने का अधिकार दे देता था। ऐसी लाग केवल एक ही वर्ष के लिए होती थी और कभी-कभी स्थायी भी। कभी-कभी ऐसी लाग जागीरदार के सभी गाँवो से वसूल हुए राजस्व की रकम के हिसाब मे भी उसी मे से दी जाती थी।

बडे दुःख की और बुरी बात यह है कि गुजरात मे सभी किसान और ठाकुर कर्जे मे इतने डूबे हुए हैं कि इस आपदा से निस्तार पाने का उनके पास कोई उपाय ही नही है। रुपया उधार देने वाले वोहरे प्राय: माहेश्वरी वैष्णव या जैन श्रावक जाति के गुजराती वनिए होते हैं। जब कोई वनिया व्यापार शुरू करता है तो वह अपना कुछ समय तो नगर मे और कुछ किसी दूर के गाँव मे बिताता है। वह शहर मे से कुछ रुपया व्याज पर उधार लेकर थोडा-थोडा घी, तेल और गुड़ आदि मोल लेता है जिससे अपनी गाँव की दुकान को सजाता है। किसानो के पास नकद पैसा तो होता नही, इसलिए वे कुछ अनाज या कपास के बदले मे इतना-सा तेल जिससे शाम को घण्टे भर दीपक जल सके या और छोटी-मोटी परचूरण की सामग्री वनिए से खरीद लेते हैं। किसानो को अपने पैदा किए हुए कच्चे माल के बाजार भाव का कोई ज्ञान नही होता इसलिए वनिया जो कुछ देता है वही लेते रहते हैं। और यदि कभी वह नरमी दिखाकर सौदे मे एक मुट्ठी डाल देता है या जरा सा अधिक दे देता है तो वे बहुत सन्तुष्ट हो जाते हैं और समझते है कि उन्हे सौदा ठीक-ठीक ही मिल गया।

जब कच्चा माल काफी मात्रा मे इकट्ठा हो जाता है तो वह वनिया उसको शहर मे ले जाकर अच्छे दामो मे बेचता है और इस तरह जब उसकी पूँजी

क्रमश.

उसका आदमी अपने चुने हुए ढेर मे डाल देता था। वह ढेर हटा लेने के बाद शेष अनाज किसान का रह जाता था। बराबर के जोड भरते-भरते जब जमीन पर इतना ही अनाज रह जाता कि जोड नही भरे जा सकते तो वह अनाज 'थापे' के नाम पर रह जाता और उसी मे से सब 'लाग-बाग' चुकाई जाती। (हि. अ.)

जो परगने अंग्रेजो अधिकार मे आ गए उनमे धीरे-धीरे चकबन्दी आदि का ठीक प्रबन्ध हो रहा है परन्तु यहाँ हम उसका उल्लेख मात्र ही कर सकते हैं।

4. ऐसा कर "न्यौता" (निमन्त्रण) के नाम से वसूल किया जाता था। पर ऐसे अवसरो पर जागीरदार पूरे गाँव को दावत भी देता था। (हि० अ०)

बढ़ जाती है तो वह गाँव में आकर बड़े पैमाने पर व्यापार शुरू कर देता है। कभी-कभी किसान का बैल मर जाता है तो बनिया तुरन्त ही उसको व्याज पर रुपया देने को तैयार हो जाता है और इस तरह बैल की कमी पूरी करा देता है, या कभी कृषक को अपने बच्चों का विवाह करना होता है या माँ-बाप का नुकता करना होता है तो बनिया रुपया उधार दे देता है या घी, गुड़, कपड़े और ऐसे अवसर के लिए अन्य आवश्यक वस्तुएँ लाकर दे देता है तथा हिसाब में एक-एक के दो-दो करके कीमतें लगाता है। कभी-कभी किसान का मन स्वयं ही शहर जाकर खरीद करने का होता है, परन्तु तब भी उसके लिए बनिए को दलाल बनाकर साथ ले जाना जरूरी होता है क्योंकि वह समझता है कि ऐसा न करने पर शहर का व्यापारी चीजों की मनमानी कीमत लगा लेगा; इसके अलावा, उसके पास नकद पैसा नहीं होता और वह गाँव के बोहरे अतिरिक्त उधार भी नहीं ले सकता क्योंकि अधिकारों के विषय में हिन्दुओं में जो विचित्र भावनाएँ भरी हुई हैं वे यहाँ प्रबल हो जाती हैं; यदि और कोई व्यापारी उसके धुरिए या आसामी से व्यवहार करता है तो वह इसमें उसके द्वारा अपना पेट फोड़ा जाना समझता है। ऐसे अवसरों पर वह बनिया खूब पैसे बनाता है। कभी-कभी तो वह किसान को कहता है "मेरे पास तो इस वक्त नकद पैसा है नहीं, लेकिन तुम कहो तो हम दोनों साथ चलें,तुम चाहो सो खरीद लेना और वह सब मैं अपने खाते(हिसाब)में लिखवा दूँगा।" ऐसे मौके पर वह अपनी धूर्तता से ग्राहक के पूर्वजों की उदारता का बखान करके उसको फुसलाता है और व्याह या 'मौसर' के अवसर पर अधिक से अधिक से अधिक खर्चा करके शान कायम रखने की बात सुझाता है। वह यह भी कहता है "ऐसे आरे-मौसर रोज़-रोज़ नहीं होते, जिन्दगी में एक या दो बार ही खुलकर पैसा खर्च करने का मौका आता है, पैसे का क्या है ? वह तो फिर कमाया जा सकता है।" फिर कहता है "मेरा तुम पर पूर्ण विश्वास हैं, तुम चाहो उतनी रकम देने को तैयार हूँ।" इस तरह की चापलूसी से उसके गर्व को उभार-उभार कर वह उसको ऋण में गहरा डुबा देता है।

हिन्दुओं की उन्नति में धन और उसके व्यय सम्बन्धी ऐसे उल्टे विचार बहुत बड़े बाधक हैं। इनके मत से व्यापारी बनिये की 'आबरू' (इज्जत) होती है, वह आदरणीय और बड़ा आदमी-महाजन होता है; इन सब बातों से उनका आशय यही होता है कि वह पैसे वाला है यद्यपि वास्तव में वह परम स्वार्थी और ओछे स्वभाव वाला ही क्यों न हो, और प्रायः वह ऐसा ही होता भी है। इसी प्रकार जमींदार या किसान 'धीरजवाला', साहसी और उदार कहलाता है—इसका मतलब यह होता है कि वह ऐसी मुसीबतों में कूद पड़ता है कि जिनसे उसका उद्धार होना कठिन है और यह सब सिर्फ इसलिए होता है कि उसके स्वभाव में अपने पड़ौसियों द्वारा की गई अपकीर्ति या तानेजनी सहन करने की हिम्मत नहीं होती।

खैर, वनिए की वात पर फिर आते हैं। जब इस प्रकार के अपव्यय का वह 'अवसर' पार पड़ जाता है तो वनिया अपना 'खत' लिखवाने आता है। वह किसान को कहता है "तुम्हे इतना तो घी वाले का देना है और इतना कपड़े वाले का, इत्यादि।" किसान चुपचाप सब मंजूर कर लेता है; तव वनिया कहता है "इतना मेरा 'कोथली-छुड़वाने' अथवा अपनी थैली की रस्सी ढीली करने का दस्तूर होता है।" यह पैसा नक़द देना पड़ता है क्योंकि यह शकुन की वात होती है। तव वेचारा किसान एक प्रतिशत रकम कहीं से भी लाकर उसको देता है। इसके अतिरिक्त उसको 'खत' लिखने वाले व उस पर साक्षी करने वालों को भी भेंट देनी पड़ती है। व्याज दो रुपया प्रति सैकड़ा प्रति मास की दर से लिखा जाता है और यदि वनिया कुछ नरम हुआ तो एक रुपया प्रति सैकड़ा। जव खत लिखकर तैयार हो जाता है तो किसान उसके नीचे अंगूठे की निशानी या भौंडा सा 'हल' का निशान वना देता है। जव अगली फसल तैयार होती है और सरकारी वाँटा चुका दिया जाता है तो वनिया वचा हुआ पूरा अनाज ले जाने पर ज़ोर देता है। वहुत आरज़ू-मिन्नत करने पर इतना-सा अनाज छोड़ता है कि किसान के कुछ दिन निकल सके, वाक़ी अनाज उसके खाते(हिसाव) में जमा करता है। कभी-कभी वनिया पूरा ही अनाज ले जाता है और पीछे कुछ भी नहीं छोड़ता। जव किसन अपने गुजारे की वात कहता है तो वह उत्तर देता है "तुम्हे क्या चिन्ता है? तुम्हें चाहिए उतना मेरी दुकान से ले आना।" इस प्रकार वह किसान खाने के लिए और खेत मे डालने को वीज के लिए वनिए की दुकान का मुहताज हो जाता है। अनाज वाढ़ी (लगभग दुगुनी मात्रा) सहित आने वाली फसल पर लौटाने की शर्त होती है। दूसरी फ़सल आती है, परन्तु अव सरकारी लगान चुकाने के वाद वचा हुआ सम्पूर्ण अनाज वनिया गतवर्ष उधार दिए हुए अनाज के हिसाव मे ले जाता है और किसान के पास 'खत' की रकम का व्याज चुकाने को कुछ भी नहीं वचता। अव वह व्याज की रक़म मूल में शामिल हो जाती है और इस तरह खत की रकम वरस-दर-वरस (प्रतिवर्ष) वढ़ती ही रहती है। वनिया कचहरी के कायदे कानूनों से वाकिफ़ होता है इसलिए समय-समय पर 'खत' को वदलवाता रहता है और उसमे ऐसी कोई कमी नहीं रहने देता कि उसका शिकार किसी तरह उसके चंगुल से वचकर निकल सके।[5]

5— इन वनियों की दरिद्रता ही इन्हें इतना निर्दयी वना देती है। कहते हैं कि पैसे वाला जुल्मी अपने आसामी को गरीव वनाकर छोड़ता है, परन्तु निर्धन ज़ुल्मी उसके पास कुछ नहीं छोड़ता।"

" जव निर्धन किसी गरीव पर अत्याचार करता है तो वह उस भयंकर वर्षा के समान होता है जो खाने की वस्तु तक को वहा ले जाता है।"

वाइविल की कहावत, 28

अब, साहूकार ज्यादातर शहर में ही रहना शुरू कर देता है और जब गाँव में आता है तो अपने कर्ज़दार आसामी के यहाँ ही ठहरता है और वह बेचारा उसकी हर तरह से खातिर करने को बाध्य होता है, भ ही, वह कितने ही दिन ठहरे। कदाचित् बनिए के लड़के का विवाह हो या वह कहीं यात्रा के लिए जाता हो तो किसान को अपने गाड़ी बैल देने पड़ते हैं और नियमानुसार थोड़ी बहुत भेंट भी देनी पड़ती है। अब, बोहरा की बातों में रुखाई आ जाती है और वह बड़े बोल भी बोलने लगता है। किसान का घर और बैल बिकवाने की धमकी देता है, वास्तव में, जैसा कि किसान कहा करता है; "वह तो राजा से भी ज्यादा जुल्मी हो जाता है।"

इस प्रकार कुछ ही वर्षों में कई आसामियों का बोहरा बनकर बनिया बहुत सा धन इकट्ठा कर लेता है। अब उसका ध्यान गाँव के ठाकुर या जमींदार जैसी मोटी मुर्गी को फाँसने की ओर जाता है और वह उसका बोहरा बनने की लालसा करता है। उसका पहला काम कामदार से रब्त-जब्त बढ़ाना और उसे भेंट-दक्षिणा व आश्वासन देकर अपने वश में करना होता है। वह कामदार ठाकुर के सामने साहूकार की खूब बड़ाई करता है और यह भी कहता है कि वह आवश्यकतानुसार रुपया उधार देने को तैयार है। जब मौका आता है तो उस बनिए से, जो अब साहूकार या सेठ कहलाने लगा है, रुपया उधार लिया जाता है और कामदार खत तैयार करके ठाकुर के हस्ताक्षर कराने लाता है। अपनी सही करने और मोहर लगाने के उपलक्ष में नजराना के रूप में प्राप्त होने वाली नकद रकम के लिए तो वह ठाकुर बालकों की तरह हठ करता है, परन्तु उस खत में क्या लिखा है इसको जानने की चिन्ता नहीं करता और न इस बात की भी क्षण भर परवाह करता है कि उसमें लिखे गए इकरार उसे पूरे करने पड़ेंगे। ऐसे इकरारनामें तहरीर होने के बाद में जो कुछ परिणाम आना चाहिए वही आ जाता है। साहूकार अदालत में दावा करता है, कामदार पहले से ही कोई हिसाब–किताब न रखने की सावधानी बरतता रहता है क्योंकि हिसाब देखने पर उसकी पोल खुल सकती है। फिर ऐसे कठिन समय में वह अपने स्वामी को छोड़ भी जाता है। गरासिया दावे का विरोध करने की कोशिश करता है और कहता है कि वह इस रकम के दसवें हिस्से का भी देनदार नहीं है। उसे जबाब–दावा के सबूत में हिसाब पेश करने की इतला दी जाती है और जब वह कहता है कि उसके गुमाश्ते ने कोई हिसाब नहीं रखा तो उसका बयान गलत साबित हो जाता है और कहा जाता है कि ये सब बातें इसलिए कही गई हैं कि अगर असली बही खाते पेश कर दिए जावें तो मुद्दई का दावा सच्चा साबित हो जायगा। अब, ठाकुर कुछ नहीं कह सकता और उस पर डिक्री का हुक्म हो जाता है तथा जायदाद पर जब्ती कर दी जाती है।

इस विषय पर हम अगले प्रकरण में और भी लिखेंगे। हम अपने पाठकों

से अनुरोध करते हैं कि वे इस पर विश्वास करें यद्यपि हमने एक ही ऐसा प्रसंग चुना है जो इस विषय पर पूरी तरह लागू होता है, फिर भी, हमने ऐसा विवरण दिया है कि जिसमें कुछ स्थानीय हेर–फेर करने पर वह समस्त गुजरात प्रान्त में चालू माना जा सकता है।[6]

---

6. मराठों के समय में अदालत ने जो डिक्रियाँ दी थीं उनकी वसूली से रैयत पर जो संकट आ पड़ा था उसके विषय में मिस्टर एल्फिस्टन ने इस प्रकार लिखा है:—

"इस पूरी मुसीबत की जड़ इस बात में है कि दावा स्वीकार करने के लिए खत की सनद को ही पूरी तरह तुरन्त सही मान लिया जाता है जब कि वास्तव में यह ठीक नहीं है, क्योंकि समय–समय पर कई बार कर्ज देने और उसको थोड़ा–थोड़ा चुकाने के कारण रैयत हिसाब के एक ऐसे जाल में पड़ जाती है कि जिसमें से सुलझ कर बाहर निकलना उसके लिए असम्भव हो जाता है। हिसाब की रूह से तो बोहरे का बहुत रुपया बाकी निकलता है क्योंकि रैयत वाले अपनी साल भर की पैदावार कर्ज में जमा करा देते हैं और अगली फसल तक खर्चा चलाने के लिए फिर उधार लेते रहते है। इन कारणों से वे बोहरे की मुट्ठी में रहते हैं और उसे अप्रसन्न करने के बदले उसके किसी भी खत पर दस्तखत कर देते हैं। इसका इलाज यही है कि नए परगनों में ऐसा इन्तजाम कर दिया जावे कि जब रैयत के कर्जे का पुराना खत पेश हो तो उसी पर पूरा विश्वास न कर लिया जावे बल्कि पूरे हिसाब की जाँच इस तरह की जावे जैसे खत था ही नहीं। इस तरह जो रकम वाजिब निकले उसकी डिक्री दी जानी चाहिए। अगर रैयत द्वारा कर्जा चुकाने का नियम भी सरकारी हासिल की रकम के अन्दाज से सालाना किश्तें कायम करने का बना दिया जाये तो इस रोग की जड़ ही नष्ट हो जाय। अस्तु, कर्ज में खेती के औजार और बैलों का बिकना तो बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए।

"जिस प्रकार गुजरात में कुणबी किसान बनियों के हाथों दुख पाते हैं उसी प्रकार मंगोल एवं तातार चीनी अत्याचारियों के द्वारा चूसे जा रहे हैं:

"एक मंगोल कहता है 'वे हमारे पास भीख माँगते हुए आए, हमने दया करके उनको जोतने के लिए थोड़ी-सी भूमि दे दी'। मंगोल भी उनके आचरण का अनुकरण करने लगे, वे चीनी दारू पीने लगे, उन्हीं की तमाखू पीने लगे और उनसे उधार कपड़ा खरीदने लगे— और जब हिसाब करने का समय आया तो वे (चीनी) कीमत से चालीस या पचास प्रतिशत अधिक दाम लगाने लगे। नतीजा यह हुआ कि मंगोलों को सब मकानों, जमीनों और ढोरों से हाथ धोने पड़े।

"तुम अदालत में इसका न्याय नहीं करा सकते थे?"

"ओह, वह असम्भव है, किताात (Kitat) बातें बनाना और झूठ बोलना जानता है। मंगोल चीनी से कभी मुकदमा नहीं जीत सकता। मेरे मालिक

लामा प्रभु ! गेचेक्टेन (Gechekten) राज्य के नाम पर अब कुछ नहीं रहा ।"

एम० हुक (M. Huc) ने **'तातारी देश की यात्रा'** (Travels in Tartary) नामक पुस्तक लिखी है जिसका श्रीमती पर्सी सिनेट (Percy Sinnett) ने उल्था किया है । इस पुस्तक के एक अन्यतम भाग में एक अत्यन्त स्थूलकाय किसान का ऐसा ही वर्णन आता है जो अपने को 'तातारों को खाने वाला' कहता है और अपने इन-नाम का विवरण यों देता है:—"क्यों, क्या तुम तातारों को नहीं जानते ? क्या तुम यह भी नहीं जानते कि जब वे हमारे नगरों में आते हैं तो बच्चों की तरह भोले होते हैं ? वे जो चीज देखते हैं उसी को लेने की इच्छा करते हैं परन्तु उनके पास पैसा नहीं होता इसलिए हम उनकी मदद करते हैं । हम उनको उधार माल देते हैं इसलिए उन्हें ऊँचे दाम देने ही चाहिए । जब लोग बिना पैसा दिए माल ले जाते हैं तो उस पर तीस या चालीस सैकड़े का मामूली ब्याज वाजिब ही है । धीरे-धीरे ब्याज बढ़ता है और फिर ब्याज पर ब्याज लगाना पड़ता है । लेकिन यह व्यवहार तातारों के साथ ही है, चीन में ऐसा व्यापार कानूनन मना है । परन्तु हमको तो केवल घास की जमीन पर ही गुजर करना होता है, तो थोड़ा-सा अधिक मुनाफा ले लेते है, इसमें क्या बुरा है ? क्यों, ठीक है न ? तातार का कर्जा कभी नहीं चुकता, यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता है। हर साल जब कोई ब्याज वसूल करने जाता है तो उसको भेड़, बैल, ऊँट, घोड़ा आदि के रूप में ब्याज दे दिया जाता है, जो नकद से हर हालात में अच्छा है । हमें ये जानवर बहुत सस्ते मिल जाते हैं और हम बाजार में उनके अच्छे दाम बाँट लेते हैं । ओह, तातार का कर्जा बहुत अच्छी चीज है ! यह तो सोने की की खान है ।"

एम० हुक आगे कहते हैं "याओ चांग ती Yao Chang ti" (कर्ज का रुपया उगाहने वाले) ने अपने इस व्यापार के वर्णन को खूब हँस-हँस कर सुनाया ।"

तातारों और हिन्दुओं में ही ऐसा रिवाज चलता हो, ऐसी बात नहीं है, हमारे पाठक इसी तरह के निम्नलिखित वृत्तान्त को पढ़ कर क्या कहेंगे ? यह उद्धरण विलियम जॉन्स्टन महोदय (Mr. William Johnston) की पुस्तक England as it is in the middle of the 19th century के दूसरे भाग पृ० 200, (1851 ई०) से दिया जा रहा है:—

मिस्टर जान्सटन ने केन्ट (Kent) के पादरी का वक्तव्य उद्धृत करते हुए लिखा है "उस भले आदमी ने कहा कि शायद गाँव की दूकानों में चीजों की इतनी बढ़ी-चढ़ी कीमत स्पर्धा के अभाव के कारण होती है । ऐसा समझा जाता है कि एक मजदूर को मामूली मूल्य की छोटी-मोटी चीजें उधार दे दी जाती हैं तब उसको मजबूर होकर आगे भी वहीं से खरीद करनी पड़ती है क्योंकि उसे यह भय रहता है कि ऐसा न करने पर दूकानदार कर्ज का रुपया माँगने लगेगा और उसको

चुकाने के लिए उस समय उसके पास नकद कुछ नहीं होता या दे देने के बाद उसके पास कुछ नहीं बचेगा। यह तो सच है कि आसामियों की मृत्यु अथवा ऐसे ही अन्य कारणों से दूकानदार का रुपया डूब जाता है परन्तु यह नुकसान उसके द्वारा कमाए हुए भारी लाभ को देखते हुए कुछ भी नहीं है। फिर, वह हर एक आदमी को व्यक्तिगत रूप से जानता है इसलिए अपने विवेक से ऐसे-वैसे आसामी को तो यों ही टाल देता है। कपड़े की दूकान वाले भी प्रायः इसी रीति का अनुसरण करते हैं। लन्दन में जहाँ थोक बिक्री होती है उससे दोगुनी कीमत पर कम्बल इन दुकानों में बिकते हैं। जूते भी बहुत ही मँहगे बिकते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि मज़दूर हमेशा तंगदस्त रहता है और यही शिकायत करता रहता है कि पगार में उसका गुजर नहीं होता परन्तु वास्तविकता यह है कि वह उसका फायदे के साथ उपयोग नहीं कर पाता। जो औसत तखमीने पेश किए जाते हैं उनसे कोई काम नहीं चलता। वहाँ तो सीधी दलील यही है कि "हमसे माल खरीदो या कर्ज़ चुकाओ।" मेरा खयाल है कि गरीबों की बदतर हालत का एक कारण यह भी है।

प्रकरण—3

नागरिक जीवन—ब्राह्मण-बनिये-राजपूत-चारण-भाट

गुजरात के शहरी घरों की बनावट के बारे में समझने के लिए अधिक प्रयास की आवश्यकता नहीं है। सभी घरों में प्रायः कमरे समान एवं एक ही क्रम में बने होते हैं, स्थिति के अनुसार ढाँचे में आवश्यक फेरफार कर लिया जाता है। गाँव के घरों में सामान्यतया दो ही कमरे होते है जो 'ओरड़ो' और 'पड़साल' कहलाते हैं; पड़साल के आगे एक लम्बा चौड़ा बरामदा होता है जो लकड़ी के खम्भों पर टिका रहता है। इसको 'अड़ाली' कहते हैं। अधिकांश मकान पकी हुई ईटों के बनते हैं और उन पर नलियाँ छाई जाती है।

शहर के चारों ओर प्रायः परकोटा होता है, अन्दर की ओर प्रत्येक नगर मोहल्लों में बँटा होता है, प्रत्येक मोहल्ले में बहुत से घर होते हैं, परन्तु उनका सदर दरवाजा एक ही होता है। यह आन्तरिक दुर्ग का ही एक प्रकार होता है। सरकारी दफ्तरों को छोड़ कर सभी सार्वजनिक इमारतें धार्मिक अभिप्राय से ही बनी होती हैं— जैसे, मन्दिर, मसजिद, सराएँ और जैन-उपाश्रय आदि। प्रत्येक छोटे या बड़े शहर के पास कोई नदी या बड़ा कृत्रिम तालाब होता है जिसके किनारे पर बहुत से पूजागृह या मन्दिर बने होते है।

शहर में रहने वाले प्रत्येक ब्राह्मण अथवा बनिया गृहस्थ की दिनचर्या कुछ इस प्रकार की होती है— वे प्रातःकाल चार बजे (ब्राह्म मुहूर्त्त में) शैया छोड़ देते हैं और अपने इष्टदेव का स्मरण करते हैं, यथा—हे महादेव! हे ठाकुर जी (विष्णु), हे अम्बा माता! इत्यादि। कोई पण्डित या संस्कृत पढ़ा हुआ होता है तो श्लोकपाठ करता है— मैं प्रातः काल में भवभीति निवारण करने वाले देवताओं के स्वामी का स्मरण करता हूं। [1]

---

1. आचारार्क नामक संस्कृत ग्रन्थ में प्रातः स्मरण के बहुत से स्तोत्र संगृहीत हैं, यहां जिन श्लोकों का संकेत किया गया है वे इस प्रकार हैं:—

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गंगाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वांगशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ 1 ॥

→

जो भक्त होता है वह किसी कवि का बनाया हुआ पद गाता है या निम्न-लिखित मानसिक पूजा का ध्यान करता है:—

मेरे देव किसी भव्य भवन में सुन्दर शैया पर शयन कर रहे हैं, मैं निकट जाकर उनके चरणों को दबाता हूं तब वे जग जाते हैं, अपना दुशाला कन्धे पर ओढ़ कर वे शैया का त्याग करते है। मैं सोष्म जल से उनके चरण धोता हूं और सुगन्धित् तेल एवं इतर लगाता हूँ। मैं उन्हें सोष्म जल से स्नान कराता हूँ,

---

संसार के भय हरने वाले, समस्त देवताओं के स्वामी, (जटा में) गंगा को धारण करने वाले, बैल की सवारी करने वाले, अम्बिका (पार्वती) के पति, एक हाथ में खट्वांग (खाट का डंडा), दूसरे में त्रिशूल, तीसरे में वर और चौथे में अभय मुद्रा धारण करने वाले, संसार रूपी रोग को हरने के लिए अद्वितीय (बेजोड़) औषध स्वरूप ईश (महादेव) का मैं प्रातः काल में स्मरण करता हूँ ॥ 1 ॥

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं
सर्ग-स्थिति-प्रलयकारणमादिदेवम् ।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ 2 ॥

गिरीश, जिनकी आधी देह मे गिरिजा (पार्वती) विराजमान है, जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारणरूप आदिदेव है, विश्व के स्वामी हैं, समस्त लोकों के मन को जीतने वाले हैं, सुन्दर है, ऐसे संसार–रोग की अद्वितीय औषधि स्वरूप ईश (महादेव) को मै प्रातः काल में नमस्कार करता हूं ॥2॥

प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ 3 ॥

मैं प्रातःकाल में शिव का भजन करता हूं, जो एक है, अनन्त है, आद्य (सबसे पहले उत्पन्न होने वाले) है, उनको वेदान्त के द्वारा ही जाना जाता है, वे निष्पाप है, आदिपुरुष है, महान् से भी महान् है, नाम, रूप आदि भेदों से रहित है और अहंकारादि छः प्रकार के भाव उनमें नहीं है— वे संसार रूपी रोग के लिए अद्वितीय औषध है ॥ 3 ॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति ।
ते दुःखजालं बहुजन्मसंचितं, हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः ॥ 4 ॥

जो लोग सुबह उठकर शिव का स्मरण करके नित्य ये तीन श्लोक पढ़ते है वे अनेक जन्मों में एकत्रित पापों के जाल को तोड़कर उसी समय शम्भु के पद को प्राप्त होते है ॥ 4 ॥

पीताम्बर धारण कराता हूँ, दुपट्टा ओढ़ाता हूँ और विराजने के लिए सिंहासन रखता हूँ। फिर, मैं उनके भाल पर तिलक चर्चित करता हूँ, स्वर्ण के आभूषणों से उनका शृंगार करता हूँ, कण्ठ में पुष्पमालाएँ धारण कराता हूँ, सुगन्धित धूप और दीप जलाता हूँ और फिर चावल, दूध और मिश्री का भोग सम्मुख धरता हूँ। मैं, फिर, आरती उतारता हूँ, उन्हें मुकुट, जामा, कमरबन्ध और अन्य वस्त्र धारण कराता हूँ। इसके बाद, मैं साष्टांग दण्डवत् करता हूँ और मेरे देव मुझ पर प्रसन्न होते है।

आरती अथवा आरार्तिक विधि के विषय में अगले प्रकरण में सविवरण लिखेंगे।

ब्राह्मणों और भक्तों का यह नियम होता है कि वे सूर्योदय से पहले स्नान कर लेते है इसलिए उठ कर प्रातः स्मरण करने के बाद वे या तो घर पर ही गर्म पानी से स्नान कर लेते है या फिर किसी नदी या तालाव के लिए रवाना हो जाते है। स्नान के बाद वे कल के धोए हुऐ रेशमी वस्त्र को धारण करके पूजा में बैठ जाते है। प्रत्येक ब्राह्मण के घर में एक देव–मन्दिर होता है जिसमें एक सिंहासन पर सात या आठ मूर्तियां विराजमान होती है— जैसे, शालग्राम शिलाएँ (विष्णु की प्रतीक), बालमुकुन्द, शिव, गणपति, दुर्गा देवी, सूर्य, हनुमान् इत्यादि। इन मूर्तियों का स्नान, वस्त्र, मुकुट, पुष्प, नैवेद्यादि द्वारा षोडश उपचारों से पूजन होता है जिसके विषय में आगे लिखेंगे। ब्राह्मण की प्रातःकालीन उपासना प्रायः इस प्रकार होती है:— वह सूर्य की स्तुति करके अर्घ्य प्रदान करता है और फिर अपना दाहिना हाथ गोमुखी में डाल कर रुद्राक्ष के एकसौ आठ मणियों (दानों) वाली माला को फेरता हुआ रहस्यमय गायत्री मंत्र अथवा अपने इष्ट देव का जाप करता है। कुछ ब्राह्मण चार या पाँच माला का नित्य जाप करते हैं। इसके बाद वह कलेवा करने को तैयार हो जाता है।

घर के मध्य भाग में चौक होता है जिसमें एक तरफ रसोई घर बना होता है। दिन में दो वार भोजन करने की सामान्य रीति है, परन्तु समृद्ध लोग कभी-कभी दिन में चार बार भी भोजन करते हैं। प्रातःकाल का भोजन संध्या-पूजा से निवृत्त हो कर सुवह के दस या ग्यारह बजे होता है। ब्रह्मण लोग भोजन करने से पहले एक वार फिर अच्छी तरह स्नान करते हैं, क्षत्रिय और वैश्य केवल हाथ पैर ही धोते है। वे फिर रेशमी पीताम्बर पहनते है, जो कटि से नीचे के भाग का परिधान होता है, भोजन करते समय उनके शरीर पर वही एकमात्र वस्त्र होता है। प्रत्येक पुरुष एक आयताकार लकड़ी के पाटे पर बैठता है और ऐसा ही छोटे-छोटे पायों वाला एक पटरा उनके सामने भोजन परोसने के लिए रखा जाता है। भोजन के पात्र काँसे, पीतल या ताँवे के होते हैं— गोल, चपटी थाली मे रोटियाँ, अचार व अन्य व्यंजन तथा तीन या चार वाटकियों (प्यालियों) में सब्जी व तरकारियाँ

परोसी जाती है। पानी का बर्तन चाँदी या पीतल का होता है जो एक ओर रखा रहता है और उस पर एक छोटा सा कटोरा या गिलास धरा रहता है। दूसरी परोसगारी चावल, दही या ऐसे ही अन्य पदार्थों की होती है। पर्व के अवसरों पर कई तरह के पकवान परोसे जाते है।

भोजन के बाद हाथ पैर धोकर ही शुद्धि कर ली जाती है। घर के सब पुरुष एक ही पाँतिये पर भोजन कर लेते हैं, फिर उन बर्तनों को माँजकर स्त्रियां उनमें स्वयं भोजन करती हैं। जब घर के सब लोग भोजन कर चुकते है तब नौकरों को भोजन मिलता है, उनके बर्तन अलग होते हैं। किसी नीच वर्ण वाले के स्पर्श से अपवित्र न हो जाए इसलिए पुरुष भोजनोपरांत सुपारी खाते हैं। कदाचित् ऐसे संस्पर्श से कोई अपवित्र हो जाता है तो वह 'पंचगव्य' लेता है और पूरे दिन उपवास रखता है।

संध्या समय प्रायः (शाम के) आठ बजे व्यालू होती है, यह भोजन प्रातः-कालीन भोजन की अपेक्षा हल्का होता है।

ब्राह्मण जब भोजन बनाता है तो 'चौका' लगाता है अर्थात् उस स्थान को गोबर और मिट्टी से लीप लेता है। यदि घर पर भोजन बनता है तो उसके 'रसौड़े' में चौका लगता है, परन्तु यदि यात्रा में भोजन बनाने की आवश्यकता हो तो सड़क के किनारे किसी पेड़ या झाड़ी के नीचे, या अन्य सुविधाजनक स्थान पर भी इसी तरह का चौका लगाया जा सकता है। चौके में वह एक अस्थाई चूल्हा बनाकर उसे पानी और गोबर से छिड़कता है और फिर उस पर भोजन बना लेता है। पूरबिया ब्राह्मणों के आचार-विचार इस मामले में बहुत कट्टर होते हैं, यहाँ तक कि भाई भी भाई के चौके में नहीं घुसता है और न एक दूसरे के चूल्हे से आग ही लेता है, इसीलिए कहावत चल पड़ी है कि 'बारह पूरबिया तेरह चूल्हे' क्योंकि प्रत्येक ब्राह्मण के आग लेने के लिए एक अतिरिक्त चूल्हा होता है।

जब रसोई बनकर तैयार हो जाती है तो जीमने से पहले ब्राह्मण 'तर्पण' करता है, अर्थात् वह एक ताम्रपात्र में पानी भर कर उसमें जौ, तिल, पवित्र तुलसी-पत्र, चन्दन आदि डालता है, तब दर्भ या कुश हाथ में लेकर दोनों हाथों की अंजलि में पानी भरकर वापस ताम्रपात्र में छोड़ देता है और बोलता है 'मैं सब देवों का तर्पण करता हूँ।" फिर, वह इसी प्रकार जल छोड़-छोड़ कर मनुष्य, पशु, वृक्ष, नदी, समुद्र, भूतवर्ग, प्रेत, ऋषि, प्रजापति आदि सभी का तर्पण करता है। इसके बाद उसे अपने पूर्वजों, माता के पूर्वजों और मृतक बन्धु-बान्धवों के जो नाम याद होते हैं उन सबके नाम ले-लेकर तर्पण करता है। तत्पश्चात् वह तांबे या मिट्टी के हवन-कुण्ड में विभिन्न देवों के नाम ले-लेकर अग्नि में आहुतियाँ डालता है। हवन की सामग्री में चावल और घृत अवश्य होते हैं। भोजन से पूर्व ब्राह्मण पाँच भाग अलग रख देता है—वह गाय, याचक, श्वान (कुत्ता), चींटी और कौओं के लिए होते

हैं।[2] फिर प्रत्येक थाली में से थोड़ा–थोड़ा लेकर पंचपात्र में रखकर देवों के भोग लगाता है। इसके बाद वह भोजन करने बैठता है, परन्तु आरम्भ करने से पूर्व चुल्लू में पानी लेकर गायत्री मंत्र का जाप करता है और उस अभिमंत्रित जल को भोजन-सामग्री पर छिड़क देता है तथा तीन भाग ब्रह्मा, विष्णु, और शिव के नाम पर अलग रख देता है। प्रथम पाँच ग्रास पंचप्राणों को अर्पण करता है जो शरीर में जीव धारण करने के लिए अति आवश्यक होते हैं। भोजन समाप्त करने पर कुछ उच्छिष्ट अंश को भूमि पर डाल देता है, वह नरक में रहने वाली आत्माओं का भाग माना जाता है। पाठक सोचते होंगे कि यह तो बड़ा लम्बा–चौड़ा और कष्टप्रद आचार है, परन्तु दीर्घ अभ्यास ने ब्राह्मणों को इतना दक्ष बना दिया है कि जितना समय इसका विवरण देने में लगा है उससे भी कम समय में ही वे सब क्रियाएँ कर लेते हैं।

ब्राह्मण लोग प्रायः ऐसा सोचते हैं कि अन्य जातियों से अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने के लिए इस प्रकार के कठिन और विशिष्ट नियमों का पालन आवश्यक है। इनमें सबसे कठिन आचार तो नागर ब्राह्मणों का 'नवण'[3] या 'भोजन की शुद्धता' का है। वह ब्राह्मण स्नान करके रेशमी या ऊनी वस्त्र पहनता है अथवा सूती वस्त्र हो तो पहले उसको पानी में डुबोकर निचोड़ लेता है और ऐसी जगह सुखाता है जहाँ किसी अपवित्र वस्तु से उसका स्पर्श न हो सके। इस प्रकार का वस्त्र पहन कर वह भोजन करने बैठता है, परन्तु फिर भी कितने ही ऐसे संयोगों से चौकस रहता है जो उसको अपवित्र बनाकर भोजन करने से रोक देते हैं। यदि वह किसी भरे हुए मिट्टी के पात्र से छू जाए तो अपवित्र हो जाएगा, परन्तु यदि वह पात्र कोरा है तो कोई डर नहीं है। यदि वह किसी सूती कपडे की लीर (चिथडे), चमड़े अथवा कागज़ के टुकड़े पर भूल से बैठ जाए तो अपवित्र हो जायेगा, परन्तु यदि कागज़ पर हिन्दू अक्षर (देवनागरी लिपि) लिखे हुए हैं तो वह अशुद्धता से बच जायगा क्योंकि वे अक्षर 'सरस्वती' के प्रतीक हैं। यदि चमड़े या कपड़े पर ये अक्षर लिखे हों तो अपवित्र ही रहते हैं। इसी प्रकार गीता अथवा किसी अन्य शास्त्रीय पुस्तक की आवश्यकता पड़े तो वह सूती वस्त्र में लपेटी हुई न होकर रेशमी कपड़े में वेष्टित होनी चाहिये, चमड़ा होने का तो कोई सवाल ही नहीं है और जिल्दसाज़ को भी साधारण आटे और पानी की 'लेही' का उपयोग न करके इमली के बीजों को पीस कर चिपकाने का काम करना पड़ता है। छपी हुई पुस्तक से ब्राह्मण का काम नहीं चलता क्योंकि छापे की स्याही में अपवित्र द्रव्य होता है। कुछ लोग मृगचर्म और व्याघ्रचर्म के स्पर्श में अपवित्रता नहीं मानते हैं। कच्चा सूत अपवित्र नहीं होता

---

2 ये गोग्रास, अतिथिग्रास, श्वानग्रास, कीड़ीग्रास और काकग्रास कहलाते है—सब मिलकर पंचग्रास कहलाते हैं।

3 स्नपन, स्नात अवस्था।

परन्तु 'नवरा' अवस्था में कोई ब्राह्मण रूई की बँटी हुई दीपक की बत्ती का स्पर्श कर लेता है तो वह अपवित्र हो जाता है; फिर, यदि वह बत्ती तेल या घी में भीगी हुई हो तो कोई आपत्ति नहीं होती। हड्डियाँ अपवित्र होती हैं, परन्तु स्त्रियों के हाथी-दाँत के चूड़े अपवित्र नहीं माने जाते तथापि जिन प्रान्तों में ऐसे चूड़े पहनने का रिवाज़ नहीं है वहाँ पर वे वर्जित हैं। यदि अपनी ही जाति का शिशु, जिसका अन्नप्राशन संस्कार नहीं हुआ है, छू जाये तो डर की बात नहीं, परन्तु यदि अन्न खाने वाला बालक स्पर्श कर ले तो अपवित्रता आ जाती है। गधे, कुत्ते और सूअर का स्पर्श वर्जित है, कुछ लोग बिल्ली की भी छूत मानते है, परन्तु कुछ का विचार है कि बिल्ली को बाहर रखना आसान नहीं है। जो ब्राह्मण 'नवरा' में भोजन करता है या भोजन करके उठ जाता है वह यदि किसी ऐसे नवरा-स्थित ब्राह्मण से छू जाए जिसने अभी भोजन करना आरम्भ नही किया है तो वह उस दूसरे ब्राह्मण को अपवित्र कर देता है।

बनिये और दूसरे व्यापारी वर्ग के लोग तड़के ही उठकर देव-दर्शन के लिए मन्दिर में जाते है। कुछ लोगों में ऐसा वहम होता है कि प्रातः उठ कर सबसे पहले अमुक व्यक्ति का मुँह देखने से दिन भर अच्छा निकलेगा इसलिए अपनी आँखें पूरी तरह बन्द किए हुए उस व्यक्ति का शुभ मुँह देखने को सुबह-सुबह निकल पड़ते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि निस्सन्तान, नीच, गधे और झगडालू मनुष्य का मुँह देखना अशुभ होता है। दूसरे लोग प्रातः पवित्र तुलसी या पीपल के वृक्ष का पूजन करते हैं। सुबह का भोजन करके पान खाने के बाद वे बाजार चले जाते है और वहाँ शाम तक अपना काम धन्धा करते रहते हैं। सन्ध्या-समय जब व्यालू के लिए घर लौटते है तो मार्ग में फिर देव-दर्शन करते जाते है।

घर-गृहस्थी के लिए बाजार से सौदा-सुलफ खरीदना और हिसाब-किताब रखना पुरुषों का काम है, बाकी सब घरेलू काम-काज निपटाना स्त्रियों का कर्तव्य है।

गरीब गृहस्थ घरों में स्त्रियाँ बहुत सबेरे तीन बजे ही उठकर चक्की पीसने बैठ जाती हैं और प्रायः तीन घण्टे तक इस कार्य में व्यस्त रहकर अगले दो दिन तक का आटा तैयार कर लेती है। यदि पीसना न हो तो भी वे उतनी ही जल्दी उठती है और गायों को दुहने, दहीं बिलौने तथा मक्खन निकालने के काम में लग जाती हैं। छः बजे कपड़े-लत्ते पहनकर और अपने-अपने बर्तन लेकर वे नदी के (या तालाब के) घाट पर जाती है, वहाँ स्नान करके अपने-अपने घट भर कर घर लौट आती हैं। कुछ स्त्रियाँ घर पर ही स्नान करके पानी भरने जाती है, समृद्ध घरों की स्त्रियाँ स्नान कराने को दासियाँ रखती है।

पानी भर कर लौटने के बाद स्त्रियाँ रसोई बनाने में लग जाती है। जब भोजन तैयार हो जाता है तो घर के पुरुष थोड़ी-थोड़ी जगह छोड़कर एक

पंक्ति में बैठ जाते हैं और भोजन करते हैं । जब वे उठ जाते हैं तो स्त्रियाँ बैठ जाती हैं । पुरुष तो अपने-अपने काम-धन्धे पर रवाना हो जाते हैं और स्त्रियाँ घर की सफाई चौका-बर्तन व पीसने के लिए अनाज साफ करने के कामों में लग जाती हैं । करीब तीन बजे दिन में उनको कुछ फुर्सत मिलती है तब वे अपने बच्चों को सम्हालती हैं या अपने लम्बे-लम्बे बालों में तेल डालकर कँघी-चोटी करती हैं । शाम को फिर वे दिया-बत्ती करने की तैयारी करती हैं; ब्यालू तैयार करती हैं और बाद में बिस्तर लगाती हैं ।

जब जातिभोज होता है तो अतिथिगण अपने घर पर स्नान करके रेशमी वस्त्र पहन कर आते हैं, और यदि फासला अधिक होता है तो वे अपने पवित्र वस्त्र साथ ले जाते हैं और भोज देने वाला उनके स्नान के लिए पानी की व्यवस्था करता है । जब वे वस्त्र पहन कर तैयार हो जाते हैं तो पुरुष यजमान (मेजबान) के घर के बाहर दो पंक्तियों में बैठ कर भोजन करते हैं; पुरुषों के निवृत्त होने के बाद स्त्रियाँ भी उसी तरह बैठ कर जीमती हैं । कुछ स्थानों पर पुरुष और स्त्रियाँ एक साथ ही बैठते हैं परन्तु उनकी पंक्तियाँ अलग-अलग और कुछ दूर-दूर होती हैं । रसोई तैयार करने वाले रसोईदार सामग्री बना कर अतिथियों को परोसते हैं और जब सब लोग भोजन कर चुकते हैं तब स्वयं जीमते है । साबरमती नदी के पश्चिम में रहने वाली स्त्रियाँ भोजन के समय सूती वस्त्र पहनती हैं; पूर्वीय जिले वाले लोग, जिनकी स्त्रियाँ रेशमी वस्त्र पहनती हैं, इस बात को नीची समझकर उनकी चर्चा करते हैं । कुछ स्थानों में ऐसा नियम है कि कोई भी विजातीय मनुष्य स्नान किए और रेशमी वस्त्र पहने बिना मेहमानों की दोनों पंक्तियों के बीच में से नहीं निकल सकता, यदि निकलता है तो 'छूत' हो जाती है; इसलिए यजमान को अपने घर के बाहर की गली को दोनों ओर से (कनात लगाकर) बन्द कराने की व्यवस्था करनी पड़ती है । प्रान्त के दूसरे भागों में कोई जातीय, अथवा उच्च जातीय मनुष्य बिना कपड़े खोले पंक्तियों के बीच में हो कर निकल सकता है, परन्तु उस समय उसको जूते पीछे खोलने पडेंगे और अपनी पगड़ी उतार कर हाथ में ले लेनी होगी ; उसको इस बात का भी विशेष ध्यान रखना होगा कि चमड़े की जिल्द बँधी हुई किताब या कोई और चमड़े की वस्तु उसके साथ नहीं होनी चाहिए । पाँच या छः स्वजातीय मनुष्य पंक्तियों के दोनों सिरों पर कुत्ते ताड़ने को खड़े कर दिए जाते हैं, परन्तु इस काम में वे प्रायः असफल ही होते हैं । जब कुत्ता अन्दर आ जाता है तो एक अजीब हंगामा मच जाता है, चारों ओर से लोग हाथ उठा-उठा कर उसको ताड़ने के लिए हल्ला मचाते हैं और इस दृश्य का अन्त इस प्रकार होता है कि वह कुत्ता या तो किसी की पत्तल में पैर रख देता है या किसी के ऊपर हो कर कूद जाता है या दो आदमियों के बीच में हो कर उनको अपवित्र बनाता हुआ भाग निकलता है । इस प्रकार अपवित्र हुए मनुष्य उस समय तो इस दुर्घटना को चुपचाप सहन कर लेते

हैं और उनकी पत्तल में जो कुछ बचा होता है उसको खा लेते हैं क्योंकि ऐसा न करने से अन्न-देवता का अपमान करने का अपराध लग जाता है —अथवा कभी-कभी वे उन रखवालों को बुला कर वह पत्तल उठवा देते हैं और दूसरी मँगवा लेते हैं।

सुख-शान्ति के दिनों में राजपूत की जिन्दगी आलस्य और एक ही ढर्रे में बीतती है। सूर्योदय के कुछ समय बाद वह उठता है और हुक्का भर कर मँगवाता है; हुक्का पी लेने के बाद वह चाय या काफी[4] का शौक करता है और फिर नहाने-धोने व कपड़े-लत्ते पहनने में लग जाता है जिसमें प्रातःकाल का बहुत सा समय निकल जाता है। थोड़ी ही देर बाद भोजन का समय हो जाता है और भोजन के बाद फिर हुक्के की माँग होती है और दो पहर तक बातचीत के बीच-बीच में इसी तरह कई बार हुक्का चलता रहता है। अब 'पौढ़ने' का समय आ जाता है और तीसरे पहर तीन बजे तक वह आराम करता रहता है। उस समय उठकर ठाकुर हाथ-मुँह धोता है और दिन के सब से बड़े कार्यक्रम अर्थात् कसूँबा पीने या अमल बाँटने को तैयार हो जाता है। वह अपने सभी मित्रों को बुला कर दीवानखाने (बैठक के कमरे) में बैठता है या उन लोगों को साथ लेकर किसी बगीचे में चला जाता है। वहाँ पीतल की 'बाटकी' में पीस कर पानी में घुला हुआ अमल आता है और फिर एक थाली नीचे रख कर ठाकुर की हथेली में चम्मच से थोड़ा सा डाला जाता है। तब एक-एक कर मेहमान आते हैं और प्रत्येक यह कहता है कि कसूँबे में मेरी बिलकुल रुचि नहीं है, मेरी तन्दुरुस्ती को नुकसान पहुँचाता है इत्यादि; फिर, कुछ मनुहार के बाद एक के बाद एक ठाकुर के हाथ को दो तीन जगह से छूते है[5] और अपने देव, मित्रों या अन्य किसी के नामों को बोलते रहते हैं और तदनन्तर कसूँबे को गटक जाते है। हर एक मेहमान के कसूँबा पी लेने के बाद नौकर पीकदानी और पानी की झारी पेश करता है तब वह मेहमान ठाकुर का हाथ धोकर अपने रूमाल से उसको पोंछ देता है और दूसरे मेहमान के लिए स्थान खाली कर देता है। इस प्रकार अमलपाणी के बाद ठाकुर अपने मेहमानों के साथ दरबार–भवन में बैठता है और वहाँ वे सब ताश, चौपड़, सतरंज या गंजीफा खेल कर मन बहलाते हैं या कभी 'रामजनी' (गणिका) बुलाई जाती है जो अपना वही

---

4. इन लोगों में चाय या काफ़ी पीने का चलन तो बहुत बाद में चला है, उस समय तो वे हुक्का पी कर शौचादि से निवृत्त होकर दातून–कुल्ले आदि में ही बहुत सा समय व्यतीत करते थे।

5. इस प्रकार अमल पीने के लिए अरुचि प्रदर्शित करना, ठाकुर के हाथ को वापस देने का अभिनय करना, देव, मित्रों और दूसरों की सौगन्ध आदि खाना-और ठाकुर का मनुहार करना आदि की क्रियायें 'रंग देना' कहलाती है अर्थात् ऐसा करने से वह अफीम अधिक आनन्दप्रद हो जाता है।

पुराना, लम्बा, कभी खतम न होने वाला नाच नाचती रहती है या कभी गाने बजाने वाले आते हैं अथवा नित्य के साथी और मर्जीदान चारण-भाट तो मौजूद ही रहते हैं। सूर्यास्त होते ही मशालची आकर कचहरी में 'दीयाबत्ती' करता है और उस समय वहाँ पर बैठे हुए सभी लोग उठकर ठाकुर की गद्दी को 'मुजरा' करते है। वे फिर बैठ जाते हैं और खेल, नाच, गाना या वार्ताप्रसंग पहले की तरह चलने लगता है। करीब आठ बजे ठाकुर व्यालू व हुक्का-पाणी के लिए उठ जाता है और मजलिस बर्खास्त हो जाती है।

इस वृत्तान्त में हम पहले वर्णन कर चुके है कि राजपूत सरदार के बहुत-सी पत्नियाँ होती हैं जिनके रहने के अलग-अलग महल होते है। वह बारी-बारी से हर एक रानी के महल में भोजन करता है और वहीं पर रात बिताता हैं। जिस रानी की बारी होती है उस दिन वह अपनी दासियों सहित भोजन बनाती है और जब ठाकुर जीमने बैठता है तो उसके पास बैठ कर पंखा झलती रहती है और तरह-तरह की बातें कह कर उसका मनोरंजन करती है। यदि कहने वाला सच्चा है, (क्योंकि उस समय किसी अनजाने व्यक्ति का तो वहाँ पहुँचना अशक्य होता है) तो ये बातें बड़ी-गूढ़ और मर्मभरी होती है।

राजपूतों के निकटतम सम्पर्क में रहने वाले कवि, भाट या चारण होते हैं।[6] इनकी उत्पत्ति के विषय में विशेष ज्ञात नहीं है परन्तु ये लोग कहते है कि ये

---

6. ये भाट और चारण कवि, बखान करने वाले, उद्घोषकर्ता अथवा राजपूत कुलों की वंशावलियाँ लिखने वाले होते है। भाट मूलतः ब्राह्मण होते है; वे ब्राह्मण-संस्कारों का पालन भी करते हैं, जैसे जनेऊ पहनना आदि, यद्यपि देशकाल के भेद से प्रक्रिया में भेद हो जाता है। यह भी स्मरणीय है कि वैदिक राजाओं की सभा में भी ब्राह्मण पवित्र ऋचाओं का गान करते थे। एक पुरानी कहावत है:—

   'आगे ब्राह्मण पीछे भाट,
   ताके पीछे और जात।

   चारण लोग, जैसा कि इनके नाम से ही ज्ञात होता है, विचरने या घूमने फिरने वाले थे; बाद में, वे भी दरबारी कवि और भाटों की तरह सम्मान्य हो गए। परन्तु, इन दोनों जातियों की विशेषता यह है कि इन्होंने 'त्रागा' या 'धरना' के बल पर असाधारण शक्ति प्राप्त कर ली थी। आगे पढ़ेंगे कि 'त्रागा' या 'धरना' द्वारा की गई आत्महत्या के परिणामस्वरूप भूतों का कैसा आतंक फैला हुआ था। ब्राह्मण, भाट या चारण का भूत तो और भी अधिक दुखदायी होता था क्योंकि ये लोग प्रतिभाशाली और पवित्र होते थे। चारण-स्त्री बहुचरा ने →

महादेव अथवा शिव से उत्पन्न हुए हैं। कुछ स्थानों पर ये लोग खेती का काम करते हैं तो कहीं-कहीं पर लेन-देन का धन्धा भी करते हैं, परन्तु इनका मुख्य कार्य तो आपस के मुआयदों में जमानतें देना या अपने राजपूत यजमानों की वंशावलियाँ लिखना ही है।

अणहिलपुर के राजवंश को मुसलमानों ने नष्ट किया तब से लेकर ब्रिटिश सत्ता कायम होने और समुचित बन्दोबस्त होने तक गुजरात मे जो थोड़ी-बहुत अराजकता फैली रही, उसका वर्णन हम कर चुके हैं। ऐसे समय में (ब्रिटिश द्वारा शान्ति-व्यवस्था करने के प्रयत्नों में) चारण की ज़मानत भी उन कतिपय उपलब्ध मुख्य साधनों में थी जो राज्य-सम्बन्धी कौल-करार, आपसी लेखपत्र और व्यापारी कामकाज को निर्विघ्न और आश्वस्त रूप में चलाने के लिए अपनाए गए थे। सर्वोच्च सत्ता को अपने अर्द्ध-स्वतन्त्र जागीरदारों से 'खण्डणी' की ज़मानत लेनी हो, प्रजा का कोई आदमी अपने अपराध के लिए ठाकुर से क्षमापत्र चाहता हो, बोहरा अपने रुपये वापस मिलने का आश्वासन चाहता हो, व्यापारी, लुटेरो से भरे इलाके में हो कर, अपना माल सुरक्षित रूप से दूसरे स्थान पर पहुँचाना चाहता हो तो ऐसे सभी अवसरों पर चारण ही ऐसा व्यक्ति था जिसकी जमानत समान रूप से सब लोग बेखटके स्वीकार कर लेते थे। लोग उन (चारणों) को देवताओं की प्रिय सन्तान समझते थे, उनके शरीर को पवित्र मानते थे और इसी कारण उनकी सब से ज्यादा इज्जत करते थे। वे जो कुछ माँग करते वह पूरी की जाती थी क्योंकि इसके लिए उनके पास ऐसे उपाय थे जो कभी निष्फल नहीं जाते थे। ये उपाय 'त्रागा' और 'धरना' थे। 'त्रागा' का आशय यह था कि चारण स्वयं या अपने किसी कुटुम्बी के शरीर अथवा अवयवों को काट-काट कर प्राण दे देता था और इस हत्या का पाप उस अपराधी-अत्याचारी को लगने तथा उस पर ईश्वरीय कोप की प्रार्थना करता था जिस

आत्मघात किया और वह देवी या माता के समान पूजी जाने लगी। भाटों और चारणों को बड़ी-बड़ी रकमों के लिए जमानती भी इसलिए बनाते थे कि कर्ज़दार कभी पैसा चुकाने से मुकर नहीं सकता था क्योंकि वह डरता था कि यदि ऐसा हुआ तो बाँहधर त्रागा करेगा और उसका भूत जन्मभर दुख देगा। इसी तरह वे यात्राओं में मार्गदर्शक का काम करते थे क्योंकि कोई भी यात्री को इसलिए बाधा पहुँचाने की हिम्मत नहीं करता था कि उसका मार्गदर्शक 'त्रागा' करके आततायी के पीछे लग जायगा। इस प्रकार 'त्रागा' ऐसे अवांछित कार्यों से बचाव का साधन तो बना ही, साथ ही, लोगों से पैसा ऐंठने का जरिया भी बन गया। गुजराती साहित्य तो इसके प्रयोग की भयानक कथाओं से भरा पड़ा है। ब्रिटिश शासन मे इस घृणित व्यवहार को अपराध घोषित कर दिया गया था और तब से भाट और चारण लोग खेतीवाड़ी या लेन-देन का सम्मान्य धन्धा ही करते है।

के लिए उसे 'त्रागा' करना पड़ा और साथ ही, उससे स्वर्ग में बदला लेने की कामना करता था। 'घरना' का अर्थ यह होता था जो कि मनुष्य करार या आश्वासन पूरा नही करता था उसके घर को घेर कर चारण लोग बैठ जाते और अनशन करते तथा घर वालों को भी अनशन करने को बाध्य करते; यह अनशन तब तक चलता रहता जब तक कि उनकी माँग पूरी न हो जाती। ब्रिटिश सत्ता कायम होने के बाद ये असभ्य तरीके बन्द हो गए[7] और चारणों की जमानत की प्रथा भी लुप्त हो गई।

वंशावलियो के संरक्षण और कविता के गुणों के कारण चारण लोग बहुत समय से समाज मे मान्य और प्रसिद्ध रहे हैं। चौमासा उतरते ही, जब आवागमन पुनः आरम्भ हो जाता है, वे अपने किसी नगर या कस्बे के 'भाटवाडा' मोहल्ले से निकल कर वार्षिक फेरी पर रवाना हो जाते हैं। बारी-बारी से वे उन सभी राजपूत यजमानो के यहाँ पहुंचते है जिनसे उनको कुछ भूमि मिली होती है या नकदी में कोई 'बरसोत' (वार्षिक रकम) मिलती है: प्रायः वे ऐसा मौका देख कर वहाँ पहुंचते है जब कोई शादी-विवाह या दूसरा ऐसा ही कोई उत्सव होता है। जब उनका स्वागत-सत्कार हो जाता है तो वे अपनी बही निकालते है, जो उनके या उनके बापदादों के अस्पष्ट और टेढ़े-मेढे अक्षरो मे लिखी होती है; यदि ठाकुर 'टीकायत' या घराने का मुखिया होता है तो उसमे वंश के मूलपुरुष से वर्तमान सरदार तक के नाम होते है, यदि वह 'फूटाया' या छुटभाई होता है तो जो पुरुष उस शाखा से फूटा या अलग हुआ उससे लेकर वर्तमान छुटभाई तक के नाम लिखे होते है। वे बीच-बीच मे कुछ कवित्त या गीत भी ऐसी लय से पढ़ते है कि श्रोताओं की मण्डली प्रसन्न हो जाती है; फिर, वे उन्ही से सम्बद्ध बातें या कथाएँ भी मौखिक रूप से सुनाते है। उस बही में वंश का गौरव बढाने वाली बातें होती है या उनसे गीत की अभिरुचि को सन्तोष प्राप्त होता है; केवल इतना ही नही, वरन् जब विवाह प्रसंग आते है तो जाति की शुद्धता या अशुद्धता का निश्चय इन्हीं बहियों से होता है; जब पैतृक जागीर का बंटवारा होता है तब भी इन्ही बहियों से सहायता ली जाति है क्योंकि राजपूतों में बहुविवाह की और जागीर में से सभी पुत्रों को कुछ न कुछ हिस्सा देने की प्रथा प्रचलित है इसलिए ये मामले बहुत उलझन-भरे हो जाते हैं। जब भाट आता है तब उसके पूर्वआगमन के पश्चात् घर में जितने नए बच्चे पैदा होते है, जितनी शादियाँ और मौतें होती है उन सबको बही मे दर्ज कर लेना उसका कर्तव्य होता है; साथ ही, वह उन सब घटनाओं का भी उल्लेख करता है

---

7. परन्तु, अंग्रजों ने भारत छोडा तब तक 'अनशन' का प्रयोग तो किसी न किसी रूप में उनके लिए सिर-दर्द बना ही रहा; और अब तक भी, भारत में तो, राजनीतिक मांगें मनवाने, मजदूरों का वेतन बढवाने और छात्रों की मांगें पूरी कराने आदि कार्यों के लिए यही एक अन्तिम और अमोघ अस्त्र-प्रयोग में लाया जा रहा है। (हि. अ.)

जो उसके यजमान के भाग्य-परिवर्तन का कारण वनी होती है। हमने आज तक कहीं ऐसा नही सुना कि भाट के लेखों के सही होने में शंका प्रकट की गई हो; वह अपना काम ईमानदारी से पूरा करता है, इसमे भी कोई सन्देह नही है।

चारणों का रहन-सहन उनके राजपूत यजमानों से बहुत मिलता-जुलता होता है, उनकी पोशाक भी बिलकुल वैसी ही होती है। कोई भी चारण अपनी कटार के विना वाहर नही निकलता जिसका निशान वह अपने हस्ताक्षरों के साथ बनाता है और प्रायः उसकी एक भौंडी सी अनुकृति उसके स्मारक पत्थर पर भी वनी होती है जो इस बात को प्रमाणित करती है कि उसने पवित्र 'त्रागा' कर्म में अपने प्राणों का उत्सर्ग किया है। बही वाँचने का काम वंश-परम्परागत होता है इसलिए जव कोई चारण अपने सालाना दौरे पर निकलता है तो उसके साथ नौकर-चाकर और पूरा लवाज़मा तो होता ही है (केवल स्त्रियाँ घर पर रहती हैं), उसके लड़के भी साथ जाते हैं जिससे उनको यजमानों की वंशावली, इतिहास व उनके स्मारकों तथा वंश-परम्परागत तत्सम्बंधी कथाओ से परिचित होने के अनेक अवसर प्राप्त होते रहते हैं— और यह ज्ञान ही उनका पैतृक धन होता है।

हमने पाठकों को चारणो की ऐतिहासिक कविता का मूल्यांकन करने के कुछ अवसर दिए है। सम्भवत: उनके विषय मे यह कहा जा सकता है (जैसा कि जॉनसन[8] ने तथाकथित 'पोयम्स आफ ओसियन' के विषय में कहा था) कि 'अगर एक बार शुरू कर दो तो लिखने के लिए इससे सरल शैली कोई नही है।' जहाँ कविता वंश-परम्परागत धन्धा वन जाती है वहाँ वह (कविता) उपर्युक्त आलोचना से किसी सद्भाग्य से ही वच सकती है। उनकी अतिशयोक्तिया स्थूल और अशोभन होती है, उनकी प्रत्येक छोटी मछली वड़ी व्हेल मछली की तरह बोलती है,[9] उनकी उपमाओं और वर्णन-शैली में कोई नवीनता नही होती, प्रायः सब एक ही साँचे में ढली हुई होती है। फिर भी, हमारे मत से, यह तो मानना ही पड़ेगा कि चारणी कविता रंग-रूप मे कितनी ही भौंडी क्यों न हो तथापि उसमे जोश और प्रभावोत्पादकता तो होती ही है। इनके ऐतिहासिक मूल्य की परख तो उसी नियम से ठीक-ठीक की जा सकती है जो **'क्वीन्स ऑफ इंगलेंड'** की चरित्र-लेखिका ने

---

8. सुप्रसिद्ध अंग्रेज लेखक जो क्लिष्ट और आडम्बरपूर्ण भाषा लिखने के लिए सुविदित है; वास्तव में, उसके विषय मे गोल्डस्मिथ ने आलोचना की थी कि यदि उसे छोटी मछलियों की कहानी लिखना होगा तो वह उन्हें विशाल व्हेल मछली की तरह बुलवाने लगेगा।

9. ओसियन आयरलैण्ड की अनुश्रुतियों में वर्णित वीर और कवि। कहते है कि वह तीसरी शताब्दी में हुआ था। उसकी साहित्यिक कृतियों के विषय में सुना ही सुना जाता है, वे उपलब्ध नही हुई।

बताया है। मिस स्ट्रिकलैण्ड लिखती हैं "जो लोग इतिहास का अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें दन्तकथाओं की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए क्योंकि दन्तकथाओं के तथ्यों में तो सत्यता होती है परन्तु समयक्रम के बारे में वे अप्रामाणिक और खोटी होती हैं। चारण लोग जो काव्य लिखते हैं वह यदि बिना मौखिक भाष्य किए समझ में आ जाए तो उसकी तुलना अन्य देशीय समकालीन गीतकाव्यों से की जा सकती है: और जो काव्य लिखा नहीं जाता वह तो आनुमानिक सामान्य मौखिक किम्वदंतियों के समान ही होता है। जो वंशावलियाँ लिखित होती है और यदि उनको काल्पनिक समय तक बढ़ा चढ़ा न दिया गया हो तो वे मूल रूप से वास्तव में सही होती है। जिन विषयों में अधिक सावधानी आवश्यक न हो तो उनमें कुछ शिथिलता आ जाना स्वयं चारण लोग भी स्वीकार करते हैं परन्तु वे इस बात पर जोर देते हैं कि उनका मुख्य आशय तो खरा ही होता है। उनका नियम यह है :–

> भूँठ बिना फीकी लगे, अति भूंठी दुख भौंन;
> एती भूँठ लगाइये, ज्यों आटे में लोंन ॥

दूसरे पद्य में कहते हैं –

> दुन्द बडी सुख सूचवे, नदी सूचवे छे झरानी हैयात ;
> वर्षा गरमी सूचवे, कवन जणावे बनी गई बात ॥[10]

परन्तु. एक -विषय ऐसा है जिसके बारे में हम चारणों की सनद को झूठी नहीं कह सकते– उस विषय से हमारा आशय रीति–रिवाजों से है। इनकी रचनाओं में जो कुछ बढ़ा–चढ़ा कर लिखा गया है उस पर दलील या विवाद किए बिना हम कह सकते हैं कि भाट लोगों ने अपनी परम्परागत कथाओं की भौंडी पेटी में अम्बर[11] की विपरीत प्रक्रिया को प्रश्रय दिया है कि जिससे बहुत सी कथाएं इतिहास के लिए मूल्यवान हो गई हैं। फील्डिंग स्वयं एक उत्कृष्ट लेखक था; उसने

---

10. जैसे बड़ी तोंद सुख की सूचना देती है, नदी छोटे-छोटे झरनों का अस्तित्व सूचित करती है और वर्षा से अनुमान लगाया जा सकता है कि गरमी का मौसम रहा है उसी प्रकार कवियों ने जो बात बना दी है (रच दी है) उसमें वर्णित घटनाएं कभी–न–कभी अवश्य घटी हैं।

11. सर एडवर्ड की बातचीत बहुधा कुटुम्ब विषयक दन्तकथाओं और वंशावलियों पर आधारित होती थी जो अम्बर के विपरीत गुणों वाली हुआ करती थीं। अम्बर अपने आप में तो बहुत मूल्यवान पदार्थ होता है, परन्तु इसके साथ मक्खियां, घास और अन्य बहुत सी छोटी–मोटी चीजें मिली होती हैं जो बेकार →

प्रसिद्धि–प्राप्त अपनी लेखन-शैली पर अभिमान करने वाले इतिहासकारों के लेखों के विषय में कहा है कि उनमें नामों और तारीखों के अतिरिक्त कुछ भी सच नहीं है जब कि उसके स्वयं के लेखों में नाम और तिथि को छोड़ कर सब कुछ सच है।[12] इस फर हैजलिट[13] ने टिप्पणी की है, 'यदि ऐसा है तो वह जीत गया।'

अपने गुण दोषों, स्वल्प सत्यांश और अत्यधिक सारहीन बकवास सहित चारणी कविता अब प्रायः मौन है और पुनः कभी नहीं पनप सकती; जिन तलवारों का वह यशोगान करती थी वे टूट चुकी है और उन में जंग लग रही है, जिस जाति के वीरकार्यों से इसे प्रेरणा प्राप्त होती थी वह जाति द्रुत गति से विलुप्त हो रही है। कदाचित्, जो कविता सैकड़ों वर्षों तक क्षत्रिय–पुत्रों को शान्तिकाल मे मनोरंजन और युद्धकाल में उत्साह प्रदान करती रही है उसकी ओर अन्तिम बार ध्यान आकृष्ट करने का दुर्भाग्यपूर्ण कर्त्तव्य भी इन्ही कतिपय विवश और अनधिकार-पूर्ण पृष्ठों में ही बद्ध होकर रह जाय।

होती हैं। इसके विपरीत इन वर्णनों में ये महत्वहीन और छोटी–मोटी बातें हमें प्राचीन रहन–सहन और रीति रिवाजों के वे दुर्लभ्य और मूल्यवान सूत्र प्रदान करती है जिन तथ्यों को किसी अन्य माध्यम से सुरक्षित रखकर इस युग तक ले आना असम्भव होता। बेवरली, प्रकरण–4

12. हैनरी फील्डिंग प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यास लेखक था। उसका जन्म 1707 ई० में और मृत्यु 1754 ई0 में हुई। अंग्रेजी साहित्य के महान उपन्यास 'टोम जॉन्स' और 'अमेलियाँ' उसीके लिखे हुए है। 'टोम जॉन्स' मे लेखक जोसेफ एन्ड्रयूज ने अपने जीवन की बहुत सी घटनाओं का वर्णन किया है। यह कृति उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। 'जोनाथन वाइल्ड' नामक सुप्रसिद्ध उपन्यास भी फील्डिंग की ही कृति है।

13. विलियम हैजलिट अंग्रेजी लेखक था; उसने नेपोलियन का विस्तृत जीवन-चरित्र लिखा है; इसके अतिरिक्त उसके बहुत से निबन्ध, शेक्सपियर का अध्ययन और अंग्रेजी कविता पर समीक्षाएं भी सुप्रसिद्ध है।

प्रकरण चौथा

मुसलमानों और मरहठों के समय में राजपूतों की भूराजस्व प्रणाली

आक्रमणकारी मुसलमानों ने रणक्षेत्र में तो विजय प्राप्त की, परन्तु अलाउद्दीन खिलजी के समय तक उन्होंने गुजरात पर स्थायी रूप से अधिकार स्थापित करने की दिशा में कोई उद्योग नहीं किया। कुतुबुद्दीन ऐबक की चढाइयों का भी महमूद गज़नवी के आक्रमणों से कुछ ही अधिक ठोस परिणाम निकल सका और यदि प्रथम सोलंकी वंश की समाप्ति न हुई होती तो अणहिलवाड़ा राज्य दिल्ली में अब कायम हुए साम्राज्य के विरुद्ध भी शस्त्र उठाए बिना न रहता। भीमदेव द्वितीय की मृत्यु के बाद गद्दी तो खाली नहीं रही, परन्तु राज्यसत्ता का सचालन या तो अनिश्चित रूप में हुआ अथवा बहुत ही दुर्बल प्रकार से। राजा अपनी दुर्बल सत्ता के दोष से खालसा की भूमि पर भी दृढ़ता के साथ अधिकार नहीं रख पाते थे और आसपास की भूमि तो उनके कब्जे से निकली ही जा रही थी। उनके चन्द्रावती के परमार पटावतों को चौहानों ने दबा लिया था; कच्छ के विजित राव स्वतन्त्र हो गए थे; सोरठ के रावों ने प्रायद्वीप में पुनः सत्ता हस्तगत कर ली और उन्होंने जिनको अपने आश्रय में रखा वे भी जल्दी ही मालिकों के समान शक्तिशाली बन गए। राजसिंहासन की कमजोरी से फायदा उठा कर आदिवासी जातियाँ भी पुनः अपना सर उठाने लगी थीं। धंधुका के मेर और ईडर के सोढ राजकीय ठाठबाट का प्रदर्शन करने लगे; घोघा और पीरम के बारैयों ने अणहिलपुर के राजाओं की रही-सही शक्ति की भी अवहेलना करना शुरू कर दिया और कांट भील सोरठ के रावो पर हावी होने लगे, तथा उनके भाई-बन्धुओं ने स्वयं बाघेलों की भूमि में लूटपाट शुरू कर दी। उस समय कुछ ऐसी भी परिस्थितियां बन गई कि कुछ परदेशी सरदार देश में प्रवेश पा गए; उन्होंने पहले तो राजी-राजी राजा के करदाता बनना स्वीकार कर लिया, परन्तु बाद में अपनी अशान्त महत्वाकांक्षा के वश वे राजसभा की निर्बलता के अतिरिक्त कारण बन गए। एक राठौड़ ने ईडर की पहाड़ियों में बराबरी का राज्य स्थापित कर लिया तो एक झाला, मूल राज्य के एक महत्वपूर्ण भाग पर अधिकार करके नाममात्र की अधीनता रख कर, बिल्कुल स्वाधीन बन बैठा और इतना प्रबल हो गया कि उसने अपने राजा को भी एक परगना नजर कर दिया। उत्तर से गोहिलों, सिन्ध से सोढ़ा, परमारों और काठी आदि अन्य जातियों ने गुजरात

में आकर चूड़ासमा राजपूतों, वाला और आदिवासी मेरों से विवाह-सम्बन्ध स्थापित किए और उन लोगों की सहायता से वे यहाँ के भोमियों की भूमि पर अधिकार करने के प्रयत्न अथवा कभी-कभी आपस में ही एक दूसरे के विरुद्ध तलवार का प्रयोग करने लगे। सच्ची बात तो यह है कि गुजरात पर केवल मुसलमानों ने ही आक्रमण नहीं किया था; जिस सेना को इसकी रक्षा करनी चाहिए थी वह टुकड़ों-टुकड़ों में बँट गई और निस्सन्देह प्रत्येक टुकड़ा उसी भूमि को बचाने के प्रयत्नों में लगा हुआ था जिस पर उसने स्वतन्त्र अधिकार कर लिया था; परन्तु न तो वे समान हितों के नाम पर एक थे और न किसी एक को समान रूप से नेता ही स्वीकार करते थे। ऐसी परिस्थितियों में अलाउद्दीन खिलजी के सेनानायकों को अपने पूर्ववर्ती आक्रमणकारियों की अपेक्षा बहुत ही क्षीण विरोध का सामना करना पड़ा था। साथ ही, अन्ततो गत्वा उसको जो लूट की सम्पत्ति मिली उसका भी बहुत कुछ मूल्य कम हो गया।

गुजरात पर अधिकार होने के बाद जो प्रथम वर्णन स्वयं मुसलमानों ने लिखा है उससे ज्ञात होता है कि उस समय सर्वत्र अराजकता के दृश्य उपस्थित थे और निस्सन्देह, इसका कारण यह था कि कुछ तो उनमें शान्ति स्थापित करने की क्षमता नहीं थी और कुछ यह है कि बादशाहों की स्वार्थभरी नीति हिन्दुओं के लिए ही नही, उनके कार्यकर्त्ता अधिकारियों के प्रति भी प्रयुक्त होती थी। हम देखते हैं कि उनके सूबेदार निरन्तर बदलते रहते थे; कुछ तो 'काफिरों' के हाथों शहीद होने की इज्जत हासिल कर लेते थे, अथवा जो अपने शत्रुओं का दमन करने में अधिक सफलता प्राप्त कर लेते थे वे जिस बादशाह की सेवा करते थे उसी के द्वारा या तो अपमानित होते या मार दिए जाते थे। यह भी कहा जाता है कि उस समय चारों ओर विद्रोह खड़े हो रहे थे। आरम्भ में तो यह विद्रोह हिन्दुओं तक ही सीमित थे परन्तु बाद में विदेशी मुसलमान अधिकारी और अन्ततः स्वयं सूबेदार भी बादशाह की सत्ता के विरुद्ध बगावत में शामिल हो जाते थे। मोहम्मद तुगलक ने इन विद्रोहों को दबाने का काम स्वयं अपने हाथ में लिया था, परन्तु उसको आंशिक व्यवस्था स्थापित करने के अतिरिक्त अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके बाद राजस्व की वसूली का यह नया तरीका निकाला गया कि खेतों के और गाँवों के बहुत बड़े-बड़े और सख्त ठेके बाँध कर रकम वसूल करने के लिए सूबेदार रखे गए; परन्तु, प्रत्येक सूबेदार गुजरात की भूमि पर चरण धरते ही एक नये राज्य की स्थापना का सूत्रपात कर देता था जिसको रोकने के निमित्त ही उसकी नियुक्ति की जाती थी।

उस समय मुसलमानों का सामना करने वाले राजपूतों में दो ही प्रमुख थे, एक सोरठ का राव और दूसरा उसी का पटावत मोखड़ाजी गोहिल। जूनागढ़ ने मुसलिम आक्रमण को रोका और यद्यपि पीरम बरबाद हो गया, इसका संस्थापक

मारा गया परन्तु गोहिलों की ताकत अक्षुण्ण रही; घोघा और दूसरे इलाके उनके अधिकार में रहे और एक छुटभाई तो इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने राजपीपला में स्वतन्त्र सत्ता ही कायम कर ली।

सुलतानों ने गुजरात विजय करने के लिए जो कदम उठाये और जो कुछ सफलता उनको मिली उसके विषय में हम पहले विचार कर चुके है। महमूद वेगड़ा ने सोरठ के राव और चाँपानेर के रावल को राज्य-च्युत कर दिया था; परन्तु, ईडर के रावों ने वार-वार हमले होने पर भी अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखी; चावड़ों झालों, गोहिलों और अन्य राजपूतों ने भी अपनी-अपनी भूमि पर अधिकार वनाए रखा। अपनी सत्ता वनाए रखने वाले ये ही वड़े हिन्दू जमींदार नहीं थे वरन् देश के प्रत्येक भाग में परम्परागत राजपूतों की जागीरें थीं और इस प्रकार प्रत्येक जिले का एक वहुत वड़ा भाग उनके अधिकार में था।

यहाँ 'मीराते अहमदी' के मुसलमान लेखक के आधार पर सामान्य विवरण दिया जाता है—"सुलतान अहमद गुजराती के समय में सभी जमींदारों ने सिर उठा कर बगावत और गड़वड़ी पैदा कर दी थी। किसी तरह उनको उनके ठिकानों से निकाल-निकाल कर सजा दी गई और हर जगह सुलतान के कारकुन तैनात कर दिए गए। नतीजा यह हुआ कि अपने घरवार से विलकुल महरूम और नाउम्मीद होकर इन काफिरों की टोली ने सड़कों पर व गाँवों में लूटमार शुरू कर दी। वदअमली बढ़ गई, गड़वड़ी फैल गई, खेतीबाड़ी में कमी साफ दिखाई देने लगी और रैयत परेशान हो गई। जिन लोगों का फर्ज सलाह देने का था उन्होंने अपनी दूरन्देशी से इन आफतों को खत्म करने के इरादे से हर एक गाँव के जमींदार से यह लिखावट लिखवा ली कि वह आइन्दा खिलाफत नहीं करेगा। हर एक गाँव की जमीन तीन हिस्सों में वाँटी गई; ये हिस्से 'तलपत' कहलाते थे और बादशाह की सम्पत्ति माने जाते थे; एक हिस्सा 'वाँटा' के नाम पर जमींदारों को दे दिया जाता था जिससे वे अपने गाँव के पहरे-चौकी का इन्तजाम करते थे और जरूरत पड़ने पर वादशाह की खिदमत में हाजिर होते थे। जब इन लोगों ने देखा कि वादशाह की अधीनता स्वीकार किए बिना टिकाव नहीं होगा तो वे मातहती कवूल करने को राजी हो गए और अपने 'वाँटा' में से खजाने में 'सलामी' जमा कराना भी मन्जूर कर लिया; तभी से 'सलामी' और 'पेशकश' इन पर लागू हो गए। हलधरवास, घोड़ासर, आतरसुंवा, मॉडुवा और अन्य कितने ही गाँवों के जमींदार मुसलमान वना लिए गए और उन्होंने अपने तालुकों व जागीरों को वचाने के लिए इकरारनामें लिख दिए जो उनको शाही दरवार से 'दीन की वहवूदी' के लिए फिर इनायत कर दिए गए लेकिन शाही पेशकश देना उनको मन्जूर करना पड़ा। दूसरे मुख्य जमींदारों से भी, जिन तक फतह का हाथ अभी नहीं पहुँचा था, पेशकश की वसूली की जाने लगी।"

मुसलमान इतिहासकारों के ही वृत्तान्तों से ज्ञात होता है कि कठिनाइयों का सामना किए बिना और निरन्तर पर्याप्त सेना रखे बिना इन करों की वसूली नहीं हो पाती थी। प्रतिवर्ष सुल्तानों की सेना इन हिन्दू ठाकुरों पर चढ़ाई करती थी (जैसे पूर्वकाल में अणहिलपुर के महाराजाओं की सेना सोरठ, कच्छ और मालवा पर प्रयाण किया करती थी); इन चढ़ाइयों का उद्देश्य हिन्दू राजाओं को अधीनता में लाने या जितनी हो सके उतनी नकदी वसूल करने का होता था।

चारणों और भाटों ने भी अपनी अपरिष्कृत घरेलू ख्यातों और वातों में इन्हीं घटनाओं का वर्णन किया है। उनसे हमें ज्ञात होता है कि किस प्रकार कितने ही क्षत्रियपुत्रों ने इसलाम अंगीकार कर लिया; कितने ही, जो अधिक आग्रही थे, बाहरवाट होने के दुर्गम मार्ग पर उतर गए और उन्होंने इसके द्वारा अपनी बपौती का थोड़ा बहुत अंश वापस प्राप्त कर लिया; ऐसे भाग्यशाली तो बहुत थोड़े ही थे जो अपने जलते हुए घरों को छोड़कर पर्वत की कन्दराओं में निवास करने चले गए और ढाल का तकिया बनाकर निद्राहीन रातें बिताते हुए तब तक प्रबल अत्याचारियों के साथ संघर्ष करते रहे जब तक कि वे नामशेष न हो गये।

बादशाह अकबर[1] ने अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा अधिक उदार नीति का अनुसरण किया। हम देख चुके हैं कि बड़े-बड़े हिन्दू राजाओं को राज्य की सैनिक सेवाओं में स्थान दिया गया था और अब उनको शाही दरबार में भी इस शर्त पर प्रवेश मिलने लगा कि वे अपने रिसाले के घोड़ों पर शाही निशान का दाग लगवावें[2] और खास-खास मौकों पर प्रान्तीय सूबेदार की सेवा में उपस्थित हों। शाही प्रतिनिधि या सूबेदार की शक्ति बनाए रखने के लिए प्रायः अहमदाबाद में एक बहुत बड़ी सेना रहती थी और वास्तव में वह नगर एक विशाल छावनी ही बन गया था। राजधानी के बिलकुल आसपास का प्रदेश और ऐसे इलाके जहाँ पर सीधा शाही शासन था 'खालसा' कहलाता था और सूबेदार की वरिष्ठ सत्ता खानदेश की सरहद पर जालौर से सोनगढ़ तक तथा द्वारका से मालवा[3] की सरहद तक अबाध रूप से स्वीकार की जाती थी। अहमदाबाद में जो बड़ी सेना रखी गई उसके

---

1. देखिए, भा. 1, पृ. 7
2. घोड़ों के दाग लगाने की प्रथा मुगलों से भी पहले से चली आती थी। विवरण के लिए देखिए—आइन-ए-अकबरी अंग्रेजी अनुवाद ब्लॉखमैन, दिल्ली, 1965 ई.; पृ. 147–48।
3. गुजरात प्रान्त विषयक यह सूचना कर्नल वॉकर को अमृतलाल की जबानी मिली थी जो लगभग 30 वर्ष तक पेशवा की तरफ से अहमदाबाद के सूबेदारों की कचहरी में वकील रहा था।
[illegible] नहीं दी थी (ग. ग्र.)

अतिरिक्त बहुत से अन्य सुरक्षित स्थानों पर भी शाही सेना की टुकड़ियाँ रहती थीं जो 'थाने' कहलाते थे। सारा ही प्रदेश हिन्दू सरदारों में बँटा हुआ था और वे सभी मुगल शासन के अधीन थे; चाहे राजा हों, राजपूत हों, कोली हों या गरासिया हों, इन सबको सामान्य रूप से 'जमींदार' कहते थे। जमींदारों से या उनके गाँवों से जो राजस्व वसूल किया जाता था वह एक बँधी हुई निश्चित रकम के रूप में होता था। यह पैदावार का हिसाब लगाकर उस पर किसी भाग या हिस्से के रूप में लागू नहीं किया जाता था वरन् हर एक मालिक ने अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा से थोड़ा कर कायम करा लिया था। क्या बादशाहों और क्या गुजरात के सुलतानों के समय में, जमींदारों से राजस्व ग्रहण करने के लिए सेना की आवश्यकता तो निरन्तर बनी ही रहती थी।

इतिहासकार लिखता है कि यदि प्रान्त का सूबेदार बड़ी सेना लेकर वात्रक नदी के तट की ओर, जो पश्चिम में है, रवाना हो और उस दिशा में सरहद पर डूँगरपुर-बाँसवाडा तक चला जाये, जो अहमदाबाद से सौ कोस है, और फिर बाँसवाड़ा से दक्षिण की तरफ होकर लौटे तो सोंठ, जालीरा, बारिया परगना, राजपीपला, माण्डवी और रामनगर (जो समुद्र तट पर है) के जमीदार पेशकश का फैसला करेंगे; यदि वह डूँगरपुर की तरफ बढ़े, जो वायव्य कोण में है, तो ईडर जिला, सिरोही, दाँता, गिरकी पहाड़ियों, राण बाबा फाफर, खण्डिया नगर, कच्छ तालुका का प्रबन्ध करता हुआ वहाँ से झालावाड़ के जमीदारों, मोरबी, हलवद, इसलाम नगर (भुज) की सरकार, जगतारण भाउ, सोरठ की सरकार, पोरबन्दर, चानाई के सोजी, ऊना, और काठियावाड़ के अन्य तथा गोहिलवाड़, लोलियाना, धन्धुका और धोलका के जिलों में होता हुआ अन्त में खम्भात पहुँचेगा जो समुद्र तट पर स्थित है।

बहुत से जमीदार औरंगजेब के राज्यकाल तक खिदमत करते रहे परन्तु उसके बाद उन्होंने पुनः स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। उसी अव्यवस्था के समय में छोटे-छोटे जमीदारों ने भी अपना दाँव लगाया और उनसे शाही सल्तनत ने जो जमीनें बलपूर्वक छीन ली थी उन्हें वापस प्राप्त करने में किसी हद तक सफलता प्राप्त कर ली।

वही मुसलमान लेखक कहता है कि "कुछ समय और बीतने पर राजपूत और कोली प्रबल हो गए और वे गड़बड़ी फैलाने लगे; गाँवों से ढोर उठा ले जाते और फसल के मौके पर किसानों को मार डालते। लोगों को छुटकारे का जब और कोई उपाय न सूझा तो इन आपदाओं से बचने के लिए उन्होंने उन उपद्रवकारियों को कुछ वार्षिक नकदी देकर या एक-दो खेती-योग्य खेतों पर अधिकार देकर पिण्ड छुड़ाने की तरकीब निकाली। इस प्रकार छुटकारे के लिए जो कुछ दिया जाता था वह 'ग्रास' या 'वोल्' कहलाता था। धीरे-धीरे सूबेदारों की कमजोरी के कारण यह

प्रथा इतनी पनप गई कि इन परगनों में शायद ही कोई ऐसा राजपूत, कोली या मुसलमान निवासी होगा जो 'ग्रास' का अधिकारी न हो।

"ये लोग स्वभाव से ही उद्धत और चोरी, राजमार्ग पर लूट तथा दंगा करने वाले होते हैं। इसलिए जहाँ पर सूबेदार के शासन में जरा सी भी कमजोरी नजर आती है वहाँ ही उपद्रव खड़ा कर देते हैं। इसीलिए कुछ भूतपूर्व और वर्तमान सूबेदारों ने परगनों के दुर्गों को दृढ़ बनवा कर उनमें पर्याप्त सेना का सन्निवेश कर दिया; यही स्थान 'थाने' कहलाने लगे। प्रत्येक थाने की पगार सरकार द्वारा तय कर दी गई है और कुछ जमीनें भी इसी प्रयोजन के लिए अलग नियत कर दी गई हैं कि जिससे न तो थाने के लोग वहाँ से हटें और न उपद्रवियों को गड़बड़ी पैदा करने का मौका ही मिले। अब जैसे-जैसे परगनें में अव्यवस्था बढ़ी तो इन उपद्रवी जातियों के लोगों ने, जिनके नाम ऊपर गिनाए गए हैं, कुछ छोटी-मोटी गढ़ियों को, जिनमें पहले थाने थे, तोड़-फोड़कर समतल बना दिया और कुछ में स्वयं जाकर बस गए; इस प्रकार 'ग्रास' के बजाय अब वे सरकारी भाग 'तलपत' के भी अधिकारी बन गए हैं।

"इस समय (1747–48 से 1757 ई.) भी सूबेदार सेना इकट्ठी करता है और जिन 'वाँटादारों' के हाथ में जो 'तलपत' है उनसे, प्रत्येक स्थान की जाँच करके, स्थिति के अनुसार रुपया वसूल करता है और अपने ही 'अमलदारों' (अधिकारियों) की जमानत भी लेता है। परन्तु, जब कोई बड़ा जमींदार खिरणी (खण्डणी. कर) देने से इन्कार कर देता है तो सूबेदार के पास जबरन वसूल करने की क्या ताकत है? यह लोग ऐसे अविश्वसनीय हो गए हैं कि वह सूबेदार कुछ रक्षक साथ लिए बिना नगरद्वार के बाहर भी नहीं निकल सकता।"

मुसलमानों की विजय के अतिरिक्त राजपूतों की शक्ति का ह्रास होने के कितने ही स्वतन्त्र कारण भी थे। पैतृक जागीर में से छोटे भाइयों को कुछ-न-कुछ हिस्सा मिलना आवश्यक था। बड़े तालुकों के विषय में यह अधिकार भूमि के कुछ भाग तक सीमित होता था, जिसको खानगी या गुजारा के नाम से दिया जाता था और इसका परिमाण तालुके की अवस्था के अनुसार निश्चित किया जाता था; छोटा भाई या 'फुटाया' बड़े भाई या 'टीकायत' का पटावत होकर रहता था; परन्तु जब किसी छुटभाई की जागीर का बँटवारा होता तो सब छोटे भाई बराबर-बराबर जमीन बाँट लेते और बड़े भाई को कुछ बड़ा हिस्सा दे देते। यदि परिस्थितियाँ ऐसी होतीं कि इस प्रथा का निरन्तर कड़ाई से पालन किया जाता तो स्पष्ट था कि जमींदारों के परिवार कुछ ही पीढ़ियों में अवश्य ही कृषक की श्रेणी में उतर आते और बहुत से परिवारों में तो ऐसा हुआ भी है। परन्तु जहाँ कोई मुख्य एवं प्रबल राज्य नहीं था और जहाँ आपस में तथा बाहर के लोगों से झगड़े चलते रहते थे वहाँ कुछ छुट-भाइयों को, जो अच्छे राजपूत थे, अपनी तलवार के बल पर (अपनी)

बपौती को बढ़ाने के प्रायः अवसर मिल ही जाते थे। बहुत से लोग सेना में नौकरी करने के लिए बपौती छोड़ कर घर से दूर चले जाते थे और जहाँ सदा ही युद्धकालीन स्थिति बनी रहती थी वहाँ इन जातियों में मृत्यु-संख्या भी अपेक्षाकृत बड़ी होती थी इस कारण भी भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े न होने में मदद मिली। जब छुट-भाई का वंश निस्सन्तान हो जाता तो ठिकाने का ठाकुर ही उसका अन्तिम उत्तराधिकारी होता था। कभी-कभी, जब छुट-भाई का भाग इतना छोटा होता कि उसमें उसका गुजारा चलना भी कठिन होता तो वह अपना हिस्सा ठाकुर को गिरवी रख देता या उसे बेच देता, कभी-कभी वह जानबूझ कर या मजबूर होकर अपना पूरा या अधूरा हिस्सा ठाकुर को न देकर किसी शक्तिशाली पड़ोसी को दे देता था; इस में उसका आशय या तो उसकी शरण ग्रहण करने का होता था या फिर इसलिए कि वह उसको तंग न करे। इसके अतिरिक्त राजपूत सरदारों की आमदनी को क्षीण करने वाला एक कारण यह भी था कि वे धार्मिक भावना से प्रेरित हो कर अथवा कीर्ति के लोभ से ब्राह्मणों, गुसाइयों और धर्म के नाम पर अन्य मंगतों (माँगने वालों) को तथा अपनी कीर्ति का संरक्षण करने वाले चारण भाटों को अनिवार्य रूप से दान देते रहते थे। इन लोगों को प्रान्त के कुछ भागों में सामान्य रूप से 'याचक' कहते थे। ईडर के राव वीरमदेव और अन्य सरदारों द्वारा अपव्ययपूर्ण 'लाख पसाव' दिए जाने के हाल हम पढ़ चुके हैं। यह दान केवल नकदी, पोशाक, जवाहरात, घोड़ों और अन्य बहुमूल्य पदार्थों तक ही सीमित नहीं होता था अपितु इसके साथ भूमि भी दी जाती थी जिसको पूर्व शब्द के समान 'पसायता' कहते थे; यह प्रदाता की ओर से सभी प्रकार के करों से मुक्त होती थी परन्तु अन्ततोगत्वा अन्तिम अधिकार करने का हक उसी (प्रदाता) को प्राप्त था। सैनिक सेवाओं के उपलक्ष में 'पसायता' का पट्टा सैनिकों को भी दिया जाता था और इसी प्रकार अन्य सेवाओं के बदले में कुम्हार, नाई और अन्य घरेलू नौकरों को भी भूमि मिल जाती थी।

पहले लिख चुके हैं कि 'ग्रास' शब्द मूलतः धार्मिक लोगों को दिए हुए दान के अर्थ में प्रयुक्त होता था जिसके लिए अब विशेषतः 'पसाव' शब्द का प्रयोग होता है। चारण कवियों की ख्यातों में इस शब्द का निरन्तर प्रयोग उस जमीन के अर्थ में हुआ है जो किसी ठाकुर द्वारा अपने छुटभाइयों को गुजारे के लिए दी जाती थी और यही अर्थ बहुत समय तक प्रचलित भी रहा, यद्यपि कभी-कभी अन्यान्य अर्थों में भी इसका प्रयोग होता रहा है। अन्त में, ग्रास शब्द उस धन अथवा भूमि का भी द्योतक बन गया जो किसी गाँव वाले अपने प्रबल और उपद्रवी पड़ोसी को अपनी रक्षा करने और दूसरों के आक्रमणों से बचाने के बदले में देते थे; आगे चल कर इसी प्रकार के अन्य अर्थों में भी इसका प्रयोग होने लगा। इस प्रकार 'ग्रासिया' या 'गरासिया' पद, जो आरम्भ में सम्मान का सूचक था और इस को धारण करने वाला कोई राजवंशीय छुटभाई समझा जाता था, धीरे-धीरे और अन्त में अपकीर्ति

और अप्रतिष्ठा का सूचक बन गया जिससे किसी भंकोड़ा के मेलीकर कूम्पाजी जैसे पेशेवर लुटेरे या बटमार का बोध होता था।

ऊपर लिखे हुए 'ग्रास' शब्द के अर्थभेद को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है क्योंकि ऐसा न करने से घपले मे पड़ जाने और कदाचित् गैर-इन्साफी कर बैठने की आशंका रहती है। अपने वंश-परम्परागत ईडर संस्थान की भूमि दबा लेने वालों से राव चाँदा ने जो 'ग्रास' या 'वोल' बलात् प्राप्त किया था उसको और असहाय ग्रामवासियों से राजपीपला के पहाड़ी लुटेरों द्वारा दबाकर ग्रहण किए गए 'ग्रास' या वोल को तथा यात्री व्यापारियों से डुँवाल के धाड़ैतियो द्वारा लूटे हुए धन को एक ही श्रेणी मे नही रखना चाहिए; इस प्रकार के हक मे और किसी राजपूत घराने के छुटभाई ग्रासिया द्वारा वंश-परम्परागत भूमि के भाग का उपभोग करने के अधिकार मे बहुत अन्तर है; इस भेद मे विवेक से अन्तर परखना चाहिए।

काठियावाड के राजाओं और ठाकुरों के विभिन्न पदो और उपाधियों के विषय मे निम्नांकित विवरण लिखा है; यह प्रायः समस्त गुजरात पर ही लागू होता है—

राजा पदवी किसी कुल के प्रधान पुरुष को ही प्राप्त होती है। वह स्वतंत्र होता है अर्थात् उसको अपने कुटुम्ब के किसी अन्य पुरुष को 'जमा' या 'कर' नहीं देना पड़ता। मुगलो या मरहठो को जो 'खण्डणी' या खिरनी' देनी पड़ती है उससे उसके स्वाधीन पद मे कोई अन्तर नहीं पड़ता। राजा का 'सिरनामा' इस प्रकार होता है—महाराजा राज श्री........। राणा पद की, जो राजा से किसी प्रकार ओछा नही है, उत्पत्ति सन्तोषप्रद रीति से ज्ञात नही है (इसी प्रकार 'राव' पद की भी)। इनसे उतरती पदवी 'रावल' की है, जो भावनगर के स्वामी पर ठीक-ठीक लागू होती है; यह पदवी उसके पूर्वजो ने डूँगरपुर के रावल से किसी प्रकार की सहायता प्राप्ति करने के उपरान्त धारण की थी। उनका 'सिरनामा' इस प्रकार चलता है—'रावल श्री..............'। राजाओं, राणों (रावों) और रावलों के पुत्र अपने पिता के जीवनकाल में 'कुँअर' कहलाते है; इनके पुत्रों को यदि कोई जागीर मिल जाती है तो वे ठाकुर कहलाने लगते है। ठाकुर के लड़के भी अपने पिता के जीवन काल मे कुँअर ही कहलाते है। ठाकुर की मृत्यु हो जाने पर सब से बड़ा पुत्र ठाकुर होता है और छोटे भाई भूमियां, भोमिया या ग्रासिया कहलाते है। रावल से नीचे ठाकुर की पदवी होती है जो उन सभी भूस्वामियों को प्राप्त होती है जो राजा पदवी धारण करने के लिए पर्याप्त रूप से सशक्त नही होते अथवा जो किसी वंश की एक अलग शाखा के प्रमुख होते है। ठाकुर लोग अपने वंश के टीकायत[4] के अधीन होते है और उसको कर देते है; इस अधीनता के प्रमाण-

4. टीकायत या तिलकायत।

स्वरूप वे नकदी खिराज या घोड़ा पेश करते हैं अथवा स्वयं राजा की सेवा में उपस्थित होते हैं। अपनी-अपनी-जागीरों में ठाकुर भी राजा की तरह ही स्वतन्त्र होते हैं। 'भूमिया' शब्द उन सब भूमिधारियों के लिए प्रयुक्त होता है जो न राजा होते हैं न ठाकुर; यह इन दोनों से उतरती हुई श्रेणी है। हमने इन लोगों के लिए प्रायः 'ग्रासिया' शब्द का ही प्रयोग किया है क्योंकि इनके अधिकार में जो भूमि है वह बहुत समय से इनकी बपौती के रूप में चली आ रही है। इसी आशय को लेकर 'ग्रास' शब्द का प्रयोग किया गया है जो 'असिल' या 'कदीम' के समकक्ष है (ये दोनों मुसलमानी शब्द हैं जिनका अर्थ मूल, उत्पत्ति, नींव और प्राचीन, जूना या पहले से चला आया (परम्परागत) होता है। ऐसा समझना चाहिए कि सन् 1755 ई० में अहमदाबाद के पतन के बाद ही मरहठा शक्ति की स्थापना हुई। इससे कुछ समय पहले पीलाजी और दामाजी गायकवाड़, पेशवा बाजीराव और अन्य लोगों के नेतृत्व में प्रतिवर्ष आक्रमण होते थे और बड़ौदा पर तो पूरी तरह से अधिकार ही हो चुका था। इस समय तक जो मरहठों के आक्रमण होते रहे उनका उद्देश्य लूट-खसोट का ही रहता था; लूट के माल के अलावा उनका और किसी बात से वास्ता नहीं था; यद्यपि मुगल बादशाहत के अधिकारियो द्वारा 'चौथ' वसूली का ठहराव हो चुका था परन्तु फिर भी इसको ग्रहण करना मरहठों की सैनिक शक्ति के विस्तार पर ही निर्भर था - अहमदाबाद का पतन होने के बाद सारे प्रदेश को पेशवा और गायकवाड़ ने बराबर-बराबर हिस्सों में बाँट लिया था, जिसमें जमींदारों से वसूल होने वाला कर भी शामिल था। जब मुगल और मरहठा शक्तियाँ सत्ता के लिए संघर्ष कर रही थीं तब ये जमींदार पूर्ण तटस्थ भाव से अपने परगने के स्थानीय अधिकारी को ही अपनी 'जमा' या 'खण्डणी' समान रूप से देते रहे थे। उनकी आन्तरिक नीति में न मुगल हस्तक्षेप करते थे, न मरहठे; अपितु मरहठों के शासन में तो वे उन्हीं अधिकारों, सुविधाओं और पदों का उपभोग करने लगे थे जो उन्हें अकबर के समय में प्राप्त थे—अन्तर केवल इतना ही था कि मरहठा सेनाएँ राजस्व की रकम में क्रमशः बढ़ोतरी करती रहती थीं।[5]

मिस्टर एल्फिन्स्टन कहते हैं "दोनों नदियो के बीच में आई हुई खुली जगह में और दक्षिण की तरफ के मैदान में मरहठा सरकार को अपने अधिकारी रखकर न्याय करने का अधिकार प्राप्त था और वे प्रत्येक गाँव की उपज का हिसाब लगाकर उस पर अपना हिस्सा कायम करते थे। दूसरे गाँव वाले अपना बँधा हुआ कर चुका कर पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। बहुत से गाँव, जो अधीनस्थ प्रदेश के बीच में नदी-तट पर स्थित थे, अपना लगान निकटतम राजस्व अधिकारी

---

5 पेशवा के गुमाश्ता (एजेण्ट) अमृतलाल द्वारा कर्नल वॉकर को दी हुई सूचना के आधार पर।

को जमा कराते थे; परन्तु, जिनकी स्थिति अधिक मजबूत होती थी या जो दूर पड़ते थे वे उस समय तक कर नहीं जमा करते थे जब तक फौज पहुँच कर उन्हें मजबूर न कर देती। जो गाँव अदालती अधीनता में थे और जिनकी उपज का लेखाजोखा लिया जाता था वे "रैयती" कहलाते थे और जो केवल कर देते थे वे 'मेवासी' कहलाते थे परन्तु यह 'मेवासी' शब्द ईडर और लूणावाड़ा जैसे राजाओं के लिए प्रयुक्त नहीं होता था। राजस्व अधिकारी को जो वार्षिक कर जमा कराया जाता था उसे 'जमाबन्धी' कहते थे और सेना के अधिकारी जो कर वसूल करते थे वह 'घासदाना' कहलाता था। बहुत से मेवासी ऐसे थे कि छोटी-मोटी रकमें तो जमाबन्धी वसूल करने वाले अधिकारी के पास जमा करा देते थे परन्तु बड़ी रकमें देने को तब तक तैयार नहीं होते जब तक कि सेना आकर उनको मजबूर न करती। ये लोग 'जमाबन्धी' और 'घासदाना' दोनों ही प्रकार के कर देते थे; जमाबन्धी तो 'कमाविसदार' प्रतिवर्ष वसूल करता था और 'घासदाना' सेना का 'अमलदार' तब वसूल करता जब उसको इस कार्य के लिए भेजा जाता था। ये दोनों ही प्रकार के कर 'खण्डणी' कहलाते थे और उपज पर कायम नहीं किए जाते थे।[6]

जिन राजपूत ठाकुरों को यहाँ पर 'ग्रासिया' नाम से कहा गया है उनके बारे में कर्नल वॉकर ने इस प्रकार लिखा है—"सभी को अपने-अपने गाँव में मृत्यु-दण्ड देने या प्राणदान देने अथवा अन्य सभी प्रकार के न्याय चुकाने की पूर्ण सत्ता प्राप्त है; किसी अपराधी या अनाज्ञाकारी रैयत को सज़ा देने या उसे माफ़ कर देने के विषय में उच्च सरकार के, कसबों में (मुख्य ग्राम या जिले में) रहने वाले, अधिकारियों से पूछताछ करना या उनकी स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझा जाता। यदि कोई सरकार के विरुद्ध अपराध करता है तो वह अपराधी जिस ग्रासिया के गाँव का रहने वाला होता है उसी को कहा जाता है कि उसे दण्ड देने का समुचित प्रबन्ध करे। बाहरी सम्बन्धों के विषय में भी इन्हें ऐसी ही स्वतन्त्रता प्राप्त है। ऐसी छोटी-छोटी रियासतों के बाहरी सम्बन्ध कोई बहुत लम्बे-चौड़े नहीं होते और अधिकतर अड़ोस-पड़ोस तक ही सीमित होते हैं। परन्तु इन्हें आपस में युद्ध और शान्ति रखने का अधिकार प्राप्त था। ये लोग आपस में ऐसे सम्बन्ध बनाते थे कि जिनसे इनके व्यापार की बढ़ोतरी और सुरक्षा पर प्रभाव पड़ता था; साथ ही, किले बनाकर सेनाएँ भी रखते थे। कोई भी बड़े राज्य, जिनको वे कर देते थे, उनके आपसी मामलों में तब तक दखल नहीं करते थे जब तक कि उनसे निजी शत्रुता न हो। यह भी साधारणतया माना गया है कि कर न देने से किसी करदाता की स्वतन्त्रता में कोई बाधा नहीं आती है।

---

6 देखिए बम्बई गजेटियर, भा० 7 (बड़ौदा), प्रकरण 8; पृ० 340 (भू-प्रशासन)।

वंश-परम्परागत जागीर के साथ-साथ इनको कई तरह की उपाधियाँ, पदवियाँ और विशेषाधिकार भी प्राप्त होते हैं। गाँवों के ग्रासिया भूस्वामी अपनी जान-माल के सुरक्षार्थ सैनिक सेवाओं के लिए अन्य राजपूतों को जमीनें देते है; आवश्यकता पड़ने पर वे गाँव में रहने वाले सभी कारीगरों को बुला सकते है; आँधी-अंधड़ या और किसी कारण से गिरे हुए सभी वृक्षों पर इनका अधिकार होता है यद्यपि उस वृक्ष के फल-फूल उसी किसान के होते है जिसकी भूमि में यह उगा होता है। विवाह करने की आज्ञा प्राप्त करते समय इनको शुल्क देना पड़ता है और जब इनके पुत्र उत्पन्न होते हैं तो इनको नजरें (भेंट) देनी पड़ती है; रैयत से वसूल होने वाले लगान की दरों में ये अपनी इच्छानुसार घटा-बढ़ी कर सकते है।"

इन ठाकुरों की आमदनी का मुख्य जरिया उपज से मिलने वाला भाग होता है। बाग, गन्ना, कपास, तमाखू. अफीम और अन्य ऐसी फसले जिनका कलतर (कूत) करके हिस्सा कायम करना कठिन है उनके लिए वे नकदी में लगान निश्चित कर देते है। कभी-कभी वे प्रत्येक हल पर लगान कायम कर देते है। कदाचित पैदावार का हिस्सा बहुत कम होता है तो वे नाममात्र के लिए कुछ नकद रकम ही ले लेते है। जब किसी ठिकाने के छुटभाई को जमीन दी जाती तो प्रांत के कुछ भागों में ऐसा रिवाज है कि जिन फसलों का नकदी में लगान वसूल होता वह तो स्वयं ठाकुर लेता और जो लगान उपज की किस्म में वसूल होता वह छुट-भाई लेता है। जब किसान किसी पड़ी हुई (पड़त) जमीन को खेती के योग्य बनाता तो वह कुछ वर्षो तक 'दाणा' (दाना) के रूप में लगान न देकर 'नाणा' (नकद) के रूप में ही ठाकुर को लगान देना स्वीकार करता है। प्रायः सभी वृक्षों की उपज जागीरदार की होती है, लावारिस के माल का भी वही हकदार है और गाँव में भूल कर आए हुए ढोर भी उसी के माने जाते है। व्यापारी के माल पर चुंगी (या मापा) लेने, शराब की दुकान से कर वसूल करने और गाँव में मरे हुए जानवरों की खाल के बदले में ढ़ेड़ों और चमारों से लाग वसूल करने का भी उसको हक होता है।

शादी विवाह की 'लाग' नाम-मात्र की होती है, जिसके अठन्नी से दो रुपये तक लिए जाते है। सभी फौजदारी मामलों में ठाकुर दण्ड वसूल करता है और कभी-कभी न्यायालय में कोई अदालती मामला आता है तो उसमें भी दावे का चौथा हिस्सा ले लेता है।

'रैयत'—परगनों का पूरा प्रबन्ध मरहठों की ओर से 'कुमाविशदार' अर्थात् जमाबन्धी वसूल करने वाले अधिकारी के हाथ में रहता था। यह अधिकारी परगने में केवल आवश्यक समय पर ही उपस्थित होता, बाकी इधर-उधर रहता था; यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसकी अपेक्षा अधिक रकम वसूल करके देने का आश्वासन देता तो तुरन्त ही पहले वाले कर्मचारी के स्थान पर उसको नियत कर दिया जाता

था– इसलिए उसका लक्ष्य अधिक से अधिक रुपया वसूल करने का रहता था। परगने के राजस्व को स्थायी रूप देने या रैयत की खुशहाली का उसको कोई ख़याल नहीं होता था। उसके मालदार बनने का एक तरीका यह भी था कि वह फौजदारी अपराधों पर खूब जुर्माने वसूल करता था– ये दण्ड अधिक कठोर नहीं होते थे इसलिए अत्यन्त घातकी और गर्हित अपराध भी दर-गुजर कर दिए जाते थे। अदालती मामले बहुधा जमीन की हकदारी, कर्ज की लेन-देन और जाति-पाँति के झगडों को लेकर हुआ करते थे, इनके फैसले कुमाविशदार की तहत पचायत द्वारा होते थे; कुमाविशदार केवल इतना ही दखल देता था कि वह अपने अधिकार से जुर्माने की रकम वसूल करा देता था और उसमे से चौथा हिस्सा स्वयं रख लेता था।

राजपूतों के ठिकानों मे कभी फौजदारी या अदालती मामले खडे होते तो उनको निपटाने के पूर्ण अधिकार 'ग्रासिया' को प्राप्त होते थे। भाटों और चारणों का प्रभाव बहुत प्रवल था, वे जिन विषयो मे जमानतदार होते उन अनुबन्धों का उचित रीति से पालन कराते थे। जब कभी झगडे पचायत को सौंपे जाते तो ग्रासिया का मत प्राय कुमाविशदारो के ही पक्ष मे रहता था। झगडने वाले दोनो ही पक्षों से ठाकुर नाम-मात्र की रकम वसूल करता था और उसे किसी पुण्य कार्य मे खर्च कर देता था।[7]

बहुत करके अग्निपरीक्षा और सौगन्ध-शपथ के ही आधार पर न्याय होता था और यह तरीका गायकवाड़ रियासत के खालसा गाँवो, काठियावाड़ के मुल्कगीरी के परगनो और महीकाँठा मे अब तक भी प्रचलित है। फरियादी के पास चाहे कितना ही बडा सबूत मौजूद हो परन्तु वह उस सबको छोड़कर इसी बात पर जोर देता है कि तथाकथित अभियुक्त, मुद्दाअला या प्रतिवादी की अग्निपरीक्षा हो या वह सौगन्ध खाए; उधर प्रतिवादी भी वादी के द्वारा न्याय की इसी रीति का पालन कराने के लिए पहले ही प्रार्थना करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार विषय का निपटारा तभी होता है जब विवादियो मे से एक विपक्षी को अग्नि-परीक्षा करवा देता या उसे सौगन्ध खाने पर मजबूर करता है। इज्जतदार आदमी तो ऐसे अग्नि-परीक्षादि का अवसर आने से पहले ही अपने आपको किसी तरह विवाद से दूर हटा लेते हैं।

रैनाडो (Renaudot) की पुस्तक अरबी यात्री (Arabian Travellers) मे वर्णित अग्निपरीक्षा का वृत्तान्त इस प्रचलित तरीके के बिल्कुल समान है,

---

7 पेशवा और गायकवाड़ से कम्पनी को जो प्रदेश बाद मे प्राप्त हुए उनके विषय मे मिस्टर डिगले (Mr. Diggle) का कर्नल वॉकर के नाम भेजा गया विवरण; दि० 18 जून, 1804 ई० के पत्र के साथ संलग्न परिशिष्ट।

'वे कहते है कि हिन्दुस्तान में जब एक व्यक्ति दूसरे पर मृत्युदण्ड के योग्य अपराध लगाता है तो लाछित व्यक्ति से पूछा जाता है कि क्या वह अग्निपरीक्षा मे उतरने को तैयार है ?' यदि वह हाँ कर लेता है तो वे एक लोहे की छड़ को इतनी गरम करते है कि वह लाल हो जाए; जब वह छड़ तैयार हो जाती है तो वे उसे हाथ फैलाने को कहते है और उस पर भारतीय वृक्ष[8] के सात पत्तो पर वह लोहे की लाल छड़ रख देते है; इस दशा में वह कुछ देर आगे पीछे चलता है और फिर उसे फेंक देता है। इसके बाद तुरन्त ही उसके हाथ को एक चमड़े की थैली पहना कर उस पर राजा की मोहर लगा दी जाती है; तीन दिन बाद यदि वह उपस्थित होकर प्रकट करता है कि उसे कोई तकलीफ नही हुई तो वे उसे हाथ निकाल कर दिखाने को कहते है; यदि हाथ पर आग का निशान नही होता तो वे उसे निरपराध घोषित करके आशंकित दण्ड से मुक्त कर देते है; उस पर तोहमत लगाने वाले व्यक्ति को एक सुवर्ण-पुरुष की मूर्ति राजा को दण्ड-स्वरूप भेट करनी पड़ती है।

कभी-कभी वे एक कड़ाह में जल भर कर इतना गरम करते है कि कोई भी उसके समीप नही जा सकता; फिर, वे उसमें एक लोहे की कड़ी डाल देते है और तथाकथित अपराधी को उसमें हाथ डालकर कड़ी निकाल लेने को कहते है। इस अवसर पर भी मुद्दई को सुवर्ण-पुरुष की मूर्ति भेंट करनी पड़ती है।

एक वर्तमान गुजराती लेखक कहता है, 'मेरे गाँव के पास एक नीम का वृक्ष है जो 'चोर लीवडा' कहलाता है क्योंकि उसके नीचे चोरों की अग्निपरीक्षा होती है। जब चोर पकड़ा जाता है या कही आपस मे तकरार हो जाती है और यह मालूम नही होता कि अपराध किसका है तो झगडने वाले दोनों पक्षों मे से एक को शपथ दिलाई जाती है। पन्द्रह वर्ष पहले एक सुनार को सौगन्ध दिलाई गई थी। मै स्वयं तो मौके पर नही गया परन्तु इसका हाल सुना है जो इस प्रकार है— राजा के कारभारी ने 'चोर लीवड़ा' के नीचे एक लोहे के कड़े को गरम करवाया और सुनार के विपक्षी कोली को उसे उठाने लिए कहा। लोगों का कहना है कि कोली ने कारभारी को रिश्वत दे दी थी इसलिए उसने कडा उठाते समय सूर्य देवता को प्रार्थना की "हे सूरज जी महाराज। अगर मैं सच्चा हूँ तो मेरी रक्षा करना।" ऐसा कह कर उसने अपने हाथ से कड़ा छू लिया और कारभारी ने तुरन्त कहा 'कोली तो तिर गया'; तब उसने सुनार को कहा, 'अगर तू सच्चा है तो कड़ा

8 यह भारतीय वृक्ष वटवृक्ष है। इसके पत्ते अग्निपरीक्षा में उतरने वाले व्यक्ति को जलने से बचाते है। मि० फार्बस लिखते है कि उन्होने स्वयं ऐसी परीक्षा होते हुए प्रत्यक्ष देखी है।

उठा।' सुनार ने अपनी पगड़ी और कुरता उतारा और वहाँ पास ही गंगा वावड़ी में वह स्नान करने गया। वह बहुत उदास था और सोच रहा था कि कुएँ में कूद कर प्राण क्यों न दे दे ? उसी समय कुएँ में से आवाज आई 'हिम्मत रख'। यह सुनकर सुनार ने इधर उधर देखा परन्तु उस शून्य स्थान में से कोई भी दिखाई नहीं दिया इसलिए उसने सोचा कि यह तो कोई देव है जो उसको हिम्मत बँधा रहा है। नहा धो कर वह वावड़ी से बाहर आया; उसे कुछ कुछ हिम्मत बँध रही थी परन्तु जब उसने धधकते हुए कड़े की तरफ देखा तो उसका भय पुनः पूर्ण वेग के साथ लौट आया। उसी समय उसने दखा कि कड़े पर एक चीटियों की कतार चल रही है, इससे उसे विश्वास हुआ। अन्त में सूर्य देव का स्तवन करते हुए उसने कहा 'सूरज बापजी। मैं सच्चा हूँ तो मुझे बचाना।' यह कह कर उसने आग में से कड़ा निकाल कर अपने गले में पहन लिया। तब कारभारी ने कहा, तुम बच गए; अब कड़े को निकाल कर फेंक दो।' सुनार ने उत्तर दिया, नहीं, मैं पहले बाई जी राज (ठकुरानी) के सामने जाऊँगा और फिर कड़ा निकालूँगा। उस समय दो ग्वालों में से एक ने अपने डण्डे के द्वारा सुनार के गले में से कड़ा निकाला। जिस जगह वह कड़ा डाला गया वहाँ की मिट्टी बहुत गरम हो गई। तब उन लोगों ने कोली को कहा, अब तुम इसी तरह कड़े को गले में पहनो परन्तु, वह उसे उठा भी न सका और जिस जगह से उसने कड़े को पहली वार छुआ वहाँ से उसका हाथ जल कर उस पर फफोले पड़ गए। इस प्रकार कोली को झूठा और सुनार को सच्चा घोषित किया गया। बहुत से ग्रामवासी, जो शपथ का तमाशा देखने गए थे, वहाँ से बिखर गए और बड़े साधुभाव से यह कहते हुए अपने अपने घर लौटे आखिर, इस कलियुग में भी पृथ्वी पर से परमात्मा की सत्ता लुप्त नहीं हुइ है।

कभी कभी लोहे की साँकल या गोला भी इसी तरह काम में लाया जाता है और अपराधी को उसे उठाने को कहा जाता है; कभी कभी उससे कड़ा या ताँबे के तीन सिक्के बरतन में उबलते हुए तेल में से निकालने को कहा जाता है। मैंने सुना है कि एक मनुष्य ने अपनी अग्नि-परीक्षा कराना स्वीकार कर लिया तो एक कड़ाह में तेल गरम किया गया; तब यह देखने को कि तेल अच्छी तरह गरम हुआ या नहीं, एक नारियल उसमें डाला गया जो तुरन्त फट गया और इसके बाद भी वह तथा-कथित अपराधी उस तप्त तेल में से ताम्बे के सिक्के निकाल कर अपने को निर्दोष सिद्ध करने में सफल हो गया। उसने कहा कि वह तेल उसे ठंडे पानी के समान शीतल प्रतीत हुआ।

धोलेरा के पास भडियाद नामक गाँव में एक सुप्रसिद्ध मुसलमान पीर की मज़ार है।[8] इसको 'पीर भडियादरो' कहते हैं। इस स्थान पर बहुत से आदमी उनकी मन्यता की परीक्षा के लिए लाए जाते हैं। जिस पर अपराध लगाया जाता है उस मनुष्य को दोनों पैरों में लोहे की बेड़ियाँ पहन कर पीर की कब्र के पास से निकलने को मजबूर किया जाता है; अगर बेड़ियाँ खुल जाती हैं तो उसे निर्दोष मान लिया जाता है। मैंने सुना है कि इन बेड़ियों के बनाने में कोई ऐसी तरकीब रखी जाती है कि जिससे ये खुल जाती हैं।

भावनगर में एक दूसरी ही तरह की परीक्षा होती है। वहाँ एक ऐसा पत्थर है जिसके बीच में छिद्र है; यदि संदिग्ध अपराधी उस छेद में होकर निकल जाता है उसे बरी कर दिया जाता है; यदि वह नहीं निकल पाता तो उसे झूठा करार दे दिया जाता है। इस पत्थर को 'झूठ साँच की बारी' कहते हैं।[9]

ठण्डी या सामान्य परीक्षा की रीति यह है—सौगन्ध खाने वाला मनुष्य शिव की प्रतिमा पर से एक फूल उठा लेना स्वीकार करता है या किसी अन्य देव-प्रतिमा का चरण-स्पर्श करके सौगन्ध खाना मंजूर करता है; यदि सामने वाला भी इस बात पर सहमत हो जाता है तो इस प्रकार शपथ लेने पर उसे अपराध-मुक्त कर दिया जाता है। यदि किसी हिन्दू की अत्यन्त कड़ी ठंडी परीक्षा करनी होती है तो उसे ब्राह्मण के गले पर हाथ रखकर शपथ लेने को कहा जाता है; अथवा, इससे भी कड़ी परीक्षा करनी हो तो उस सौगन्ध खाने वाले के हाथ से गाय के गले पर छुरी रखवाते हैं—इसका तात्पर्य यह होता है कि यदि वह शपथ का उल्लंघन करेगा तो गो-ब्राह्मण की हत्या का पाप लगेगा। ये सभी शपथें बहुत प्रबल होती है, ऐसी मान्यता है और इनका प्रयोग तभी किया जाता है जब कि झगड़े का मामला बहुत उलझा हुआ होता है; छोटे-छोटे मामलों में मामूली शपथों से काम चल जाता है।

ब्राह्मण जनेऊ की सौगन्ध खाता है, क्षत्रिय अपनी तलवार की; बनिया शारदा या सरस्वती की (जिससे उसका तात्पर्य अपने बहीखाते से होता है) सौगन्ध खाता है; किसान अपने धोरी या बैल की; मुसलमान रोजा या किसी पीर की मज़ार की कसम खाता है; श्रावक अपने धर्म की शपथ लेता है या पच्चखवाण कहता है। बहुत से लोग अपने बेटे की सौगन्ध खाते हैं, रिजक (रोजगार) की सौगन्ध खाते हैं, आस-औलाद की, जवानी की, भाई की, बाप की, मां की या आंखों की सौगन्ध भी खाते हैं; उनका आशय यह होता है कि यदि वे शपथ तोड़ें तो उन्हें इन प्रियजनों तथा अंगों की हानि उठानी पड़े। स्त्रियां अपने 'धणी' (पति) और बेटों की सौगन्ध

---

8. देखिए—धर्मराज और द्रौपदी के सम्मान में अग्नि-भोज का वर्णन।
—L. D. Barnett, Antiquities of India, 1913, p. 127.

9. देखिए—रासमाला (मूल) भा. 1; पृ. 436, 437.

खाती है; यदि कोई विधवा होती है तो कहती है "यदि मैं झूठ बोलूं तो मुझे सात जन्मों तक यही दशा भुगतनी पड़े (अर्थात् रंडापा काटना पड़े)।" वैष्णव अपनी कण्ठी की सौगन्ध खाता है और सन्यासी माला की; कारीगर अपने हुनर रोजगार की सौगन्ध खाता है, माँझी रत्नाकर समुद्र की; धनाढ्य लक्ष्मी की सौगन्ध खाता है और विद्यार्थी विद्या की। स्वर्णकार माता की सौगन्ध खाते हैं, जिससे उनका तात्पर्य किसी भी देवी से होता है, मुख्यतः दुर्गा या सिंहवाहिनी माता से, परन्तु वे यह कह कर इस सौगन्ध से टल जाते हैं कि उनका आशय किसी 'माता' (मोटे-तगड़े) मनुष्य से था। यदि कोई मनुष्य अपने पूर्वज अथवा मृतक की सौगन्ध खाता है तो वही मानी जाती है। लड़के समझते हैं कि यदि वे अपनी जीभ को दांतों में दबा कर (जैसे अंग्रेज लड़के बाईं तरफ दबाते हैं) सौगन्ध खाते हैं तो कोई बात नहीं है। जब कोई मनुष्य किसी मकसद से किसी को कसम खिलाता है तो बाद में वह यह कह कर मुक्त कर देता है कि 'कसम खुल गई।' देहात के छोटे-छोटे गाँवों में ऐसी सौगन्धों के आधार पर ही बहुत-सा लेन-देन चलता है और बहुत-से आदमी कभी झूठी सौगन्ध नहीं खाते।

महीकाँठा में अहमदनगर के पास पीर मढ़ियारा का एक और स्थान है। जहाँ लोगों को शपथ खिला कर उनकी परीक्षा ली जाती है। पीर के सामने परीक्षा का दूसरा तरीका यह है कि उसके सामने मिट्टी के खिलौने जैसे घोड़ों में से एक को उठवाया जाता है। ये घोड़े पीर के सामने उसके भक्त रख देते हैं। कड़ी के पास में लाड़ी माता का मन्दिर है। इस माता के सामने शपथ लेने की सामान्य रीति, जो प्रायः प्रयोग में लाई जाती है, यह है कि सौगन्ध खाने वाला, मूर्ति के सामने जलते हुए दीपकों में से एक को हाथों में लेकर कहता है "यदि मैं झूठ बोलता हूं तो मैलाड़ी माता इतने दिनों में मुझे पूछे।" सादरा के पास उबोड़ा में हनुमान का देवालय है जो उबोडिया हनुमान कहलाता है। छोटी-मोटी सौगन्ध खाने के लिए लोग इस प्रतिमा के पैरों के हाथ लगाते हैं; यदि भारी सौगन्ध का अवसर होता है तो सौगन्ध खाने वाले को हनुमान पर चढ़ाए हुए तेल का प्याला पीना पड़ता है। शामला जी (के मन्दिर) में सौगन्ध खाने वाला देव को अर्पित पुष्प उठाता है।

पालनपुर और दांता के आसपास के परगनों में तकरार मिटाने के लिए निम्नलिखित सामान्य तरीका काम में लाया जाता है। प्रतिवादी अपने मित्र के साथ नदी या किसी ऐसे स्थान पर जाता है जहाँ काफी पानी होता है। वादी भी एक धनुष और बाण लेकर साथ जाता है। फिर, अपने पर लगाई गई तोहमत से बरी होने के लिए प्रतिवादी को पानी में डुबकी लगाकर पर्याप्त समय तक बैठा रहना पड़ता है जब तक कि वादी द्वारा छोड़े हुए तीर को लेकर उसका मित्र वापस न आ जाय।

कर्नल टॉड ने भावनगर जैसे ही एक पत्थर का वर्णन किया है परन्तु उसमें और भी अधिक चमत्कारिक शक्तियाँ बताई गई हैं। यह पत्थर पास ही के शत्रुञ्जय पहाड़ पर है। वह कहता है, "नेमिनाथ की चौंरी के पास ही एक सीधा सपाट पत्थर है; जहाँ यह भूमि मे गड़ा हुआ है वहां से तीन फीट की ऊंचाई पर पन्द्रह इंच व्यास का एक वर्गाकार छिद्र है जिसको 'मुक्तिद्वार' कहते हैं। जो कोई अपने शरीर को इतना सिकोड़ सकता है कि उस छेद में में निकल सके। उसकी मुक्ति अवश्यंभावी है। मैमन (Mammon)[10] के पुत्रों में से, जो दुर्बल पृथ्वी को चर्वी से दवाए हुए हैं, वहुत थोड़े ही ऐसे हैं, जो अपना मांस सुखाए बिना इस परीक्षा में पार उतर सकते हैं। एक बड़ी विचित्र बात यह है कि 'मुक्तिद्वार' के निकट ही जीवित ऊंट के बराबर आकार वाली ऊंट की एक पत्थर की प्रतिमा बनी हुई है। ये सब खड़े हुए पत्थर 'सूल' या सूई कहलाते हैं इसलिए हमारे धार्मिक ग्रन्थ (बाईबिल) में लिखी हुई बात ध्यान में आए बिना नहीं रहती है।[11]

इसी तरह का एक पत्थर डभोई में है जो 'मामा डोकरी' कहलाता है और 'ओरियण्टल मैम्वायर्स' के लेखक ने भी इसका उल्लेख किया है।[12]

परीक्षा के इन सभी प्रकारों का व अन्य बहुत से तरीकों का, जो गुजरात के भिन्न-भिन्न भागों में प्रचलित हैं, हेतु एक ही है। न्याय करने वाले, अप्रत्यक्ष रूप से तथाकथित अपराधी के प्रति निर्णय देने की अक्षमता को स्वीकारते हुए, अपराधी के ही मुख से गुनहगार होने या न होने की घोषणा कराना चाहते हैं। इस प्रकार ये सब परमात्मा से न्याय प्राप्त करने के तरीके और, वास्तव में, कठिन परीक्षाएं है।[13]

---

10. लोभी और धनाढ्य के लिए धार्मिक गीतों में प्रयुक्त निन्दात्मक शब्द है। मध्यकालीन यूरोप में यह नाम एक राक्षस के लिए प्रयुक्त हुआ है। मिल्टन के "पाराडाईज लॉस्ट" में भी इस शब्द का इसी तरह के अर्थ में प्रयोग हुआ है। (हि. अ.)

11. बाइबिल में लिखा है कि सूई के छेद में हो कर ऊंट पार हो सकता है परन्तु धनवान् लोभी का स्वर्ग के द्वार मे प्रवेश करना कठिन है।

12. फार्बस. जेम्स कृत 'ओरियण्टल मैम्वायर्स' 1812,

13. ग्लॅस्टनबरी (Glastonbury) के प्राचीन गिर्जाघर की पवित्रता के प्रमाण में मैलमेस्बरी के विलियम (William of Malmesbury) ने लिखा है मानवीय स्मृति में यह बात है कि वहाँ अग्नि और पानी की परीक्षा में उतरने से पहले सभी मनुष्यों ने अपनी-अपनी अर्जियाँ प्रस्तुत कीं और उनका छुटकारा हुआ, इससे वे प्रसन्न हुए; केवल एक ही के विषय में अपवाद हुआ, परन्तु उसका क्या मामला था, यह बताने से उसने इन्कार कर दिया। यदि

यह कथन सत्य है तो हमें भय है कि 'इतने सन्तों यह उपाश्रय' अवश्य ही कभी-कभी असत्य को प्रश्रय देने के कारण अपवित्र हुआ होगा।

कैन्टरबरी (Canterbury) मे सेण्ट थामस-ए-बैकट (st. Thomas-a-Backet) नामक स्थान है, वहाँ भी ऐसे चमत्कार हुआ करते थे, जिनके विषय मे एक मठवासी इतिहासकार कहता है कि उक्त सन्त की शहादत (धर्म के लिए बलि) के समय वह उपस्थित था और उसके ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उस समय राजकीय अधिकारियों को जल-परीक्षा का बार-बार प्रयोग करना पड़ता था। वह कहता है जगलात के कानून के मातहत दो मनुष्यों पर जंगल मे से हिरण चुरा लेने का अपराध लगाया गया; जल-परीक्षा के उपरान्त एक दोषी प्रमाणित हुआ और उसे फाँसी दे दी गई; दूसरे ने सेन्ट थामस की सहायता के लिए प्रार्थना की इसलिए वह बच गया। एक दूसरे मनुष्य पर साण का पत्थर (चाकू छुरी पैनाने का पत्थर) और एक दस्तानो की जोडी चुराने का अपराध था। उसकी भी जल परीक्षा हुई और उसकी आँखे निकाल ली गई तथा उसके कुछ अंग काट दिए गये, परन्तु जब उसने धर्म पर बलिदान होने वाले सन्त की प्रार्थना की तो उसे वे सब वापस प्राप्त हो गए।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि इंगलैण्ड मे ऐसी कठिन परीक्षाए किसी विशेष अवसर पर ही होती हों, ऐसी बात नही है, वरन्, वास्तव में, यह तो उस समय अपराधी की जाँच करने का एक तरीका मात्र था और मूलभूत एग्लो-सैक्शन कानून की आत्मा बना हुआ था। हेनरी तृतीय के राज्यकाल तक भी सौगन्ध-शपथ द्वारा जाच का तरीका बन्द नही हुआ था उस समय तक इस न्याय के व्यवहार की आज्ञा पादरी और राजा दोनों की ही ओर से इंगलैण्ड और स्वीटन मे अनुमत थी और ब्लैकस्टोन (Black stone) लिखता है कि ऐसे न्याय के लिये केवल गिर्जाघरो तथा अन्य पवित्र स्थानों मे ही छूट थी। यह सब कुछ होते हुए भी, ऐसा लगता है कि, इस प्रणाली को बन्द कराने मे मुख्य हाथ गिर्जाघरो का ही था क्योंकि हेनरी ने अपने राज्यकाल के तीसरे वर्ष मे लैंकास्टर, कम्बरलैण्ड और वैस्टमोरलैण्ड (तत्कालीन उत्तरी वृत्त) देशो के चल न्यायधीशों के नाम यह घोषणा की थी कि उस प्रान्त की स्थापना के समय यह निश्चित नही किया गया था कि चोरी, लूट, हत्या, आगजनी और ऐसे ही अन्य अपराध करने वालों को किस प्रकार का दण्ड दिया जाए और क्योंकि 'अग्नि एवं जल-परीक्षा' के विषय में रोमन चर्च ने मनाही कर दी है इसलिए बादशाह ने, 'राज्य-सभा की' अनुमति से, यह प्रावधान किया है कि उपर्युक्त अपराधो के अभियुक्तों के प्रति न्यायाधीश उस समय किए हुए विधान के अनुसार ही व्यवहार करें। उसी काल के लगभग बादशाह वाल्देमार, द्वितीय (King Valdemar II) ने भी डेनमार्क मे कठिन परीक्षा या शपथ के द्वारा अपराध की जाँच का तरीका बन्द कर दिया था। पुरातत्व सशोधको ने बहुत समय बाद तक ऐसे रिवाजों के अवशेष

देश की चाल के अनुसार, जिस गांव की सीमा में चोरी होती थी उस गांव के लोग ही चोरी के माल के लिए जिम्मेदार ठहराये जाते थे; यदि चोरों के खोज (पदचिन्ह) उनकी सीमा के बाहर चले जाते तो उनकी जिम्मेदारी समाप्त हो जाती

विद्यमान होने की खोज की है। मिड समर ईव (ग्रीष्मोत्सव)[14] के दिन अग्नि पर से कूदना भी एक ऐसा ही उदाहरण है, यह फुर्तीलेपन का लक्षण माना जाता था और कहते हैं कि वृद्ध पादरियों को चर्च की आज्ञा से इसमें भाग लेने से रोक दिया जाता था। ऐसी ही और भी बहुत सी प्रथाएँ थीं, जैसे, जिन पर जादू टोने आदि का सन्देह होता उनको जल में तैराया जाता या गिर्जा की बाइबिल की पुस्तक से तौला जाता था। ये दोनों ही प्रथाएं बहुत समय तक प्रचलित थीं। इनमें से प्रथम के विषय में किंग जेम्स (King James) ने अपनी पुस्तक डैमॉनॉलाजी (Daemonologie) में ब्रांड (Brand) के लेखानुसार कहा है, "जान पड़ता है कि जादू टोने की भयानक अपवित्रता के अर्थ ही परमात्मा ने यह चिन्ह नियत किया है कि जल उन लोगों को अपनी क्रोड़ (गोद) में धारण नहीं करेगा जिन्होंने बपतिस्मा के पवित्र जल को अपने शरीर पर से धो डाला है और जानबूझ कर उस लाभ को अमान्य कर दिया है जो उससे होने वाला था।" एक कहावत चल पड़ी है—'किसी की सहायता के लिए आग पानी पार करके जाना', यह भी शायद इसी आधार पर बनी होगी। ऐसी ही परीक्षा का शायद एक अवशिष्ट रूप यह है कि अपराधी से यह कहलाया जाता था कि मेरा न्याय परमात्मा और देश करे; इसका अधिक शुद्ध रूप सम्भवतः यह था ''मेरा न्याय परमात्मा करे या देश करे' जिसका अर्थ यह होता था कि या तो ज्यूरी (पंच) मेरी परीक्षा करें अथवा परमात्मा (ऐसी ही प्रथा द्वारा) परीक्षा करे।

इंगलैण्ड में हमारी प्रान्तीय अदालतों में और स्काटलैण्ड की शैरिफ अदालतों में भी वादी प्रतिवादी जो सौगन्ध खाते है उसी पर मुकदमे के निर्णय का सम्पूर्ण अथवा अधिकांश आधार होता है; इस प्रकार हम बहुत कुछ उस पुरानी परीक्षा वाली हालत में ही वापस पहुंच गए है।

बेन्थम नामक एक न्यायशास्त्री का कहना है "ऐसे भी मुकदमें आते हैं जिनमें कोई गवाही या सबूत नहीं होता और वादी एवं प्रतिवादी अपनी अपनी हाँ या ना पर डटे रहते है; ऐसी दशा में क्या वादी को प्रतिवादी के अन्तःकरण को अपील नहीं करने दिया जाय? क्योंकि इसके सिवाय कोई चारा ही नहीं रहता। मेरा उत्तर है कि ऐसे सभी मुकदमों में (यह बात केवल दीवानी मामलों में ही लागू नहीं है क्योंकि यह तो गर्मा गर्म लोहे या पानी के प्रयोग के सदृश है) यह बहुत ही अच्छा तरीका है।" इत्यादि—

---

14. यह पर्व जून की 21वीं तारीख को मनाया जाता था।

थी। इसलिए पुलिस का यह काम था कि वे दिन भर इस बात की निगाह रखें कि कोई ऐसे-वैसे (शंकास्पद) आदमी गाँव में न ठहरने पावे। दिन निकलते ही उनको रात के सभी अपरिचित पदचिन्हों की खबरदारी से जाँच करके उन्हें सुरक्षित रखना पड़ता था जिससे आवश्यकता पड़ने पर, वे उनके सहारे (चोर की) तलाश को आगे बढ़ा सकें।[15]

देश के परम्परागत ठाकुरों और केन्द्रीय सरकार की अधीनता में जो भू-भाग था उसके अतिरिक्त भी गुजरात कुछ ऐसी जमीनें थीं जिन पर ऐसे मध्यस्थ वर्ग के लोगों का अधिकार था कि जिसको वंश परम्परागत तो नहीं कहा जा सकता परन्तु उन्होंने इसकी सफलता से ऐसे अधिकार के बराबर-सा ही बना लिया था। उदाहरण के लिए मुख्य रूप से ऐसे वर्ग के लोगों में से हम धोलका के कसबातियों को लेना चाहेंगे। कर्नल वॉकर कहता है, "मुगल साम्राज्य के पतन से पहले कुशल युद्धजीवी कसबातियों ने धोलका में अपना जमाव कर लिया था। संख्या में अधिकता और युद्धप्रिय स्वभाव के कारण उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया था तथा लूटमार करने वाली काठी जाति के लोग उनसे भयभीत रहते थे। जब मरहठों ने इस देश में अधिकार प्राप्त किया तो ये उनके लिए बड़े सहायक सिद्ध हुए। उस समय राज्य में

---

15. आश्चर्य है कि जो बात हमने ऊपर कही है उसमें और किसी समय हमारे देश में प्रचलित प्रथा में बहुत समानता पाई जाती है। 'आधुनिक यूरोप का इतिहास (History of Modern Europe) नामक पुस्तक के भाग 1; पृ० 53 पर रसल (Russel) ने कहा है कि "एंग्लो-सैक्सन लोगों के फौजदारी कानून, अन्य बहुत-सी असभ्य जातियों की तरह अधिक सख्त नहीं होते थे। किसी भी प्रकार की हत्या के बदले में आर्थिक दण्ड पर्याप्त समझा जाता था— वह हत्या किसी भी श्रेणी के व्यक्ति की हो, चाहे राजा अथवा धर्मगुरु की ही क्यों न हो—परन्तु. केण्ट के कायदे के अनुसार धर्मगुरु के मस्तक का मूल्य राजा के माथे से अधिक होता था; सभी प्रकार के जख्मों का भी मूल्य निश्चित था और यदि कोई पुरुष अपने पड़ौसी की स्त्री के साथ व्यभिचार करता हुआ पकड़ा जाता तो, एथल्बर्ट (Ethelbert) के नियम से, उसे जुर्माने के साथ नई स्त्री खरीद कर देना पड़ता था। चोरी धाड़े के लिए विभिन्न प्रकार के दण्ड निर्धारित थे परन्तु मृत्युदण्ड किसी को नहीं दिया जाता था। यदि किसी के मवेशी किसी अन्य की भूमि में पाए जाते तो उस भूमि के मालिक को मवेशियों की कीमत चुकानी पड़ती थी या उनके खोज (पद-चिन्ह) अपनी भूमि से बाहर जाते हुए दिखाने पड़ते थे।"

"यद्यपि एंग्लोसैक्सन लोगों में अपराधों के लिए दण्ड-विधान विचित्र था परन्तु (बचाव के लिए) उनके बनावटी प्रमाण भी किसी तरह कम चमत्कारिक नहीं थे।" इसके आगे ग्रन्थकर्ता विविध प्रकार की परीक्षाओं का वर्णन करता है।

व रुकार विद्रोह और लड़ाइयाँ होती थीं इस कारण गुजरात में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी और धोलका का तालुका तो करीब-करीब अजोत और ऊजड़ मैदान-सा ही बन गया था। इस अव्यवस्था को रोकने और परगने को पुनः आबाद करने में गायकवाड़ सरकार यहाँ के सत्ताधारी और धनवान लोगों के आश्रय के बिना अशक्त थी। इस मौके पर कसबातियों ने जाहिर किया कि वे कुछ गाँवों को इस शर्त पर आबाद करने को तैयार थे कि जिन गाँवों मे खेती बाड़ी शुरू करें वे निश्चित लगान पर कई वर्षों के लिए उनको इजारे पर दे दिए जावें। उनकी यह माँग मंजूर कर ली गई और तभी से यह रिवाज-सा बन गया है कि जो गांव समय-समय पर ऊजड़ हो जाते वे कसबातियों को ठेके पर दे दिए जाते।"

प्रकरण पांचवां

ब्रिटिश सत्ता के अधीन राजपूत भू-राजस्व

मिस्टर एलिफंस्टन ने अपने 6 अप्रैल, 1821[1] के संक्षिप्त विवरण में गुजरात में ब्रिटिश सत्ता के प्रवेश से उत्पन्न परिणामों का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि महीकाँठा के उत्तर में ब्रिटिश-अधिकृत प्रदेश दो जिलों में बँटा हुआ है अर्थात् अहमदाबाद और खेड़ा; इन दोनों ही जिलों में दो तरह के गाँव हैं—खालसा और गरासिया। मुगल और मराठा सरकारें जिनका सीधा प्रबंध अपने आप करती थीं वे खालसा के ग्राम कहलाते हैं और गरासिया ग्राम वे हैं जो वंश परम्परागत ठाकुरों के अधिकार में हैं।[2] खालसा के गाँव सीधे सरकार के अधीन हैं और गरासिया गाँव गरासिया ठाकुरों के अधिकार में; सरकार उन गांवों का लगान वसूल करने के लिए उन्हीं पर निर्भर है और पहले तो वहां की व्यवस्था भी उन्हीं लोगों के द्वारा होती थी। गरासिया गांवों के स्पष्ट दो भेद हैं; जो गांव राजपूत या गरासिया लोगों के ताबे में हैं वे गरासिया कहलाते हैं और जो कोलियों के कब्जे हैं वे सामान्यतया 'मेवास' नाम से प्रसिद्ध हैं। राजपूत यद्यपि बाहर से आए हुए हैं परन्तु जब मुसलमानों ने आक्रमण किया था तब गुजरात उनके अधिकार में था; उस समय कुछ तालुके और गाँव उनके पास रह गए थे और बाद में जब मुगल बिल्कुल कमजोर हो गए तो उन्होंने कुछ अन्य तालुके और गाँव भी वापस छीन कर अपने कब्जे में

---

1. देखिये—ईस्ट इण्डिया हाउस के रेकार्ड (अभिलेखों) में से संकलित और कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स द्वारा 1826 ई० में प्रकाशित संग्रह भा० 3, पृ० 677–697। संकलनकर्त्ता का कथन है कि, "मूल पत्रों का बहुत सा भाग खण्डित और अस्पष्ट है।" इसीलिए हमने जहाँ समझ में आया वहां सही नाम देने की सावधानी बरती है।
2. (अ) 'मरुभारती जनवरी 1960' वर्ष 7 अंक 4 : पृष्ठ—56–57
   (डा० कन्हैयालाल सहल)

   ठाकुर

   'ठाकुर' शब्द किसी प्रदेश के अधिपति, नायक, सरदार, जमींदार, गाँव के मालिक, स्वामी तथा ईश्वर, परमेश्वर, भगवान आदि अनेक अर्थों में व्यवहृत होता है। तुलसी और जायसी ने भी अनेक बार 'ठाकुर' शब्द का प्रयोग किया है।

कर लिए। स्पष्ट है कि ये लोग कोलियों की अपेक्षा अधिक सभ्य और शूरवीर जाति

उदाहरणार्थ—

(1) मन्त्र कुंवरन फिर खेंचा हाथू।
ठाकुर जेंव तो जेवैं साथू॥ (जायसी)

(2) ठाकुर अन्त चहै जेहि मारा।
तेहि सेवक कर कहां उवारा॥ (जायसी)

(3) तेहि सेवक के करमहि दोसू।
सेव करत ठाकुर होइ रोसू॥ (जायसी)

(4) जहं अंकोर तह नैगिन्ह राजू।
ठाकुर केर बिनासहि काजू॥ (जायसी)

(5) निडर, नीच, निर्गुन, निर्धन कहं।
जग दूसरो न ठाकुर ठांव॥ (तुलसी)

यद्यपि विद्वानों ने 'ठाकुर' शब्द के लिए संस्कृत 'ठक्कुर' की कल्पना करली है, तथापि यह शब्द, बहुत सम्भव है, तुर्की भाषा के 'तेगिन' शब्द से आया हो जिसका अर्थ होता है स्वामी या मालिक। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या 'ठाकुर' शब्द को 'तेगिन' से व्युत्पन्न मानते है। भाषा विज्ञान के अध्येता इस बात को भलि-भांति जानते हैं कि शब्दों के अर्थों में जैसे उत्कर्ष होता है, वैसे ही उनमें अपकर्ष भी होता है। 'ठाकुर' के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ। ईश्वर या स्वामी के अर्थ में प्रयुक्त 'ठाकुर' शब्द बंगाल की तरफ 'रसोइये' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। सम्मानार्थ नाई को भी लोग ठाकुर कहने लगे।

(ब) मरुभारती, अप्रैल 1960, वर्ष 8 अंक 1, पृष्ठ 132.

(डॉ० दशरथ शर्मा)

ठाकुर शब्द को डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या तुर्की भाषा के 'तेगिन' शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं। किन्तु ठाकुर शब्द तेगिन से कैसे बना कब बना और भारत के पश्चिमी किनारे से पूर्वी किनारे तक कैसे फैल गया, क्या यह विचारणीय नहीं है ? ठाकुर शब्द तुलसी और जायसी से कहीं अधिक प्राचीन है और दसवीं शताब्दी या सम्भवतः उससे पूर्व भी हमें यह शब्द शिलालेखों में मिल सकता है। अनेक ठाकुर क्षत्रियेतर जातीय भी हैं। कुवलय माला कथा (रचनाकाल सन् 778 ई.) में एक जीर्ण ठक्कुर का रोचक वर्णन है। उसका पुत्र इतना मानी था कि छोटी-छोटी बात पर तलवार सम्भालता था। हरिभद्र सूरि (सन् 700–701 ई.) ने भी समराइच्च कहानी में इस शब्द का प्रयोग किया है। अतः यह सिद्ध है कि आठवी शताब्दी में ठक्कुर शब्द का पर्याप्त प्रचार था। इससे अधिक प्राचीन प्रसूति गवेष्य है और इसी गवेषणा के बाद सम्भवतः हम यह निश्चय कर सकें कि यह शब्द देश्य है या विदेशी।

के हैं; और शायद इन्हीं कारणों से तथा इसलिये भी कि प्रदेश का शासन पिछले समय तक इन्हीं के अधिकार में था, कोलियों की अपेक्षा इनके दावों को अधिक मान दिया जाता है। कोली लोग, जो संभवतः यहां के मूल निवासी हैं, हुल्लड़बाज, झगड़ालू और गाँवडेल समझे जाते हैं, जिन्होंने भूतपूर्व सरकार की कमजोरी देख कर राज्य के वाजिव अधिकारों को भी अदा करने से किनारा कर लिया है या मना कर दिया है। दोनों ही जाति के लोग सरकार को कर देते हैं जिसमें बढ़ोतरी करने का हक उसको हासिल है। उनकी अन्तरंग व्यवस्था में दखल देना या उनके गाँवों की उपज की स्थिति की जाँच पड़ताल करने का रिवाज नहीं था। हमारी सरकार ने, निरन्तर आन्तरिक मामलों में दखल न देते हुए भी यह अधिकार प्राप्त कर लिया है और अभी थोड़े ही समय से गरासिया और मेवास के गाँवों में तलाती (अधीनस्थ कर-संग्राहक) नियुक्त करके वहाँ की कर-वसूली की जाँच पड़ताल करना भी शुरू कर दिया है। मुख्य-मुख्य कस्बों को छोड़ कर धन्धूका, राणपुर और गोघा के सभी परगने गरासिया राजपूतों के अधिकार में हैं; इसी तरह धोलका का भी बहुत-सा भाग उन्हीं के हाथ में है। वीरमगाँव में भी थोड़े बहुत परगने थे परन्तु मरहठों के अत्याचार उन्हें हड़प गए। धोलका के कस्वाती यद्यपि मुसलमान हैं और पाटड़ी का ठाकुर कुणबी है तथा इन दोनों की राजस्व-प्रणाली भी दूसरों से भिन्न है तथापि इनकी गणना इसी श्रेणी में की जा सकती है; परन्तु, फिर भी इस वर्ग में अधिकतर तो राजपूत ही हैं। ये लोग अपने पड़ौसी और जाति-भाई झालावाड़ वालों जैसे ही हैं परन्तु उनकी अपेक्षा अधिक समझदार और प्रतिष्ठित हैं। लींबड़ी और भावनगर के ठाकुरों की अन्यत्र भी बहुत बड़ी-बड़ी जायदादें हैं परन्तु इन परगनों में तो वे हमारी प्रजा में ही सम्मिलित हैं। ये सब शान्त और आज्ञाकारी हैं। धोलका परगने के सभी गाँवों में तलाती नियुक्त कर दिए गए हैं और उनके हिस्से का, उपज का बीस प्रतिशत एवं रैयत का हिस्सा छोड़ कर सम्पूर्ण राजस्व सरकार वसूल करती है। पुलिस का काम, या तो उनकी सत्ता से स्वतंत्र करके, मुखिया पटेलों को सौंप दिया गया है अथवा विनम्र पुलिस अधिकारी के सभी प्रतिबन्धों सहित उन्हीं के सुपुर्द कर दिया गया है। बाकी लोग पहले की तरह ही अपना राजस्व वसूल करते हैं परन्तु वे अदालत के मातहत कर दिए गए हैं; वे या तो स्वयं न्यायाधीश के प्रतिनिधि रूप में काम करते हैं अथवा उनके स्थान पर पटेलों को नियुक्त कर दिया गया है। मेवासियों में मुख्य चुँवाल, पराँतीज, हरसोल और मोड़ासा परगनों के कोली हैं। चुँवाल के कोली तो बिलकुल हल्के पड़ गए हैं, उन्होंने तलातियों की नियुक्ति स्वीकार कर ली है और पच्चीस प्रतिशत छोड़ कर सम्पूर्ण राजस्व की रकम अदा कर देते हैं, परन्तु परांतीज, हरसोल और मोड़ासा वाले अभी तक अपनी स्वतन्त्रता बनाए हुए हैं तथा उन्होंने कई बातों में अपनी हुल्लड़बाजी, विद्रोह और लूटमार की आदतें नहीं छोड़ी हैं।"

"हमारी सरकार की प्रगति में दो बातें बड़ी चमत्कारिक और स्पष्ट हैं— एक तो वे असाधारण बाधायें जो शान्ति स्थापना के मार्ग में बाधक हुईं और दूसरी वह आश्चर्यकारक सफलता जो उनका शमन करने के फलस्वरूप प्राप्त हुई। गायकवाड़ पेशवा और खम्भात के नवाब की भूमि से हमारे इलाकों का अविछिन्न सम्पर्क होना, काठियावाड़ और महीकांठा इलाकों में बन्दोबस्त न होना, हमारी ही सीमा में गरासियों और मेवासियों का पूरी तरह वशीभूत न होना, प्रत्येक गाँव में कई तरह के और अस्पष्ट तरीके की भूमि पर अधिकार होना और अधिकांश जनता का स्वभाव अशान्त और लूटपाट में लगा हुआ होना, ये सब बातें ऐसी मिल गई थीं कि माही के पार वाले इलाके का प्रबन्ध करना कम्पनी के लिए अपने अन्य किसी इलाके के प्रबन्ध की अपेक्षा बहुत कठिन हो गया था; फिर भी, सरकार की सावचेती और स्थानीय अधिकारियों की समझबूझ एवं धैर्य के कारण हमारा अधिकार और प्रबन्ध बहुत शान्ति से जम गया है और किसी आकस्मिक अथवा भारी परिवर्तन के द्वारा न तो हमने अपनी प्रजा को ही क्षुभित किया है न हम ही किसी गड़बड़ में पड़े हैं। पिछले कुछ वर्षों से तो हमारे नवीन सुधार वेग से आगे बढ रहे हैं; और, यद्यपि जल्दी-जल्दी सुधार करने मे अब खतरा कम हो गया है फिर भी यह आवश्यक है कि उनकी गति धीमी कर दी जाय अथवा कम से कम ऐसी सीमा कायम कर दी जाय कि जिसको लाँघने की बात न सोचनी पड़े।

"जब पहले-पहल हमारे अधिकार में वे परगने आए जिनसे जूना खेड़ा के जिले का निर्माण किया गया तो वे सब कर्नल वॉकर के अधीन रखे गए और वही अपने सहायकों द्वारा इनका प्रबन्ध करता रहा; सब इन्तजाम पुराने तरीके पर ही कायम रखा गया और हालात की वास्तविकता ज्ञात करने के सिवाय कोई प्रयत्न नहीं किया गया। जब नियमित रूप से कलक्टर नियत कर दिए गए तो भी लम्बे समय तक वही पुराना तरीका चालू रखा गया।

राजस्व विभाग द्वारा एक मात्र इस परिवर्तन के लिए प्रयत्न किया गया कि गरासियों से वसूल होने वाले लगान में उचित वृद्धि कर दी गई, परन्तु, जब तक वे खेडा जिले के अधीन रहे तब तक कर-वसूली सम्बन्धी नियमों का पालन किया गया और, धोलका के कस्वाती बापू मियाँ के विषय में एकमात्र और अल्पकालीन अपवाद को छोड़ कर, किसी की भी आमदनी के जरियों अथवा प्रबन्ध की जाँच पड़ताल नही की गई।

न्याय सम्बन्धी नियमों की स्थापना, वास्तव में, एक बडा परिवर्तन था और वह बहुत पहले ही से लागू कर दिया गया था; परन्तु, यह बात सन्देहास्पद ही है कि इस परिवर्तन के प्रभाव का भी जल्दी ही अनुभव किया जाने लगा या नहीं। ऐसा तो सम्भव नही जान पड़ा कि गरासिया गाँवों के निवासी नालिश करने को हमारी अदालतों में आते हों, परन्तु जहाँ वादी (मुद्दई) खालसा गाँव का होता वहाँ उसके पक्ष मे सरकार का हस्तक्षेप स्वाभाविक और उचित ही समझा जाता था।

सबसे पहले परिवर्तन, जो इन लोगों को बहुत अखरे वे, मुखिया पटेलों और तलातियों की नियुक्ति सम्बन्धी नियमों के थे और इनमें भी तलातियों की नियुक्ति का असर सबसे अधिक हुआ। जिन गरासियों के अधिकार में एक से अधिक गाँव थे उनको मुखिया पटेल नियुक्त करने को बाध्य किया गया और वे लोग अपनी नियुक्ति के समय से ही केवल दण्डनायक (मैजिस्ट्रेट) के प्रति उत्तरदायी हो गए। जिनके पास एक ही गाँव था वे स्वयं ही मुखिया पटेल नियुक्त कर दिए गए; जहाँ ऐसा नहीं था उन्हें दूसरे व्यक्तियों को गाँववार नामजद करना पड़ा और वे (नामजद व्यक्ति) मैजिस्ट्रेट के प्रति जवाबदार थे न कि गरासियों के प्रति। धोलका के सभी गरासियों के गाँवों में तलाती नियुक्त किए गए और धन्धूका, राणपुर तथा गोघा के भी गरासिया गाँवों में उन्हें दाखिल करने का विचार किया गया। धोलका में सरकार को कर देने की जो प्रणाली थी उसमें एक और परिवर्तन हुआ है और वह यह कि सरकार की लगान वसूली का कुछ हिस्सा गरासिया को छोड़ दिया जाता है। वह भाग सरकारी लगान का बीस प्रतिशत मात्र होगा और गाँव का सब खर्चा व तलाती का वेतन उसी में से दिया जायगा।

इस परिवर्तन के कारण इन ठाकुरों की आमदनी पर जो असर पड़ा है वह तीन मुख्य गरासियों की अदायगी रकम की तालिका से विदित हो जायगा। इनके साथ दो मुख्य कसवाती भी शामिल कर दिए हैं यद्यपि इनकी स्थिति बहुत कुछ भिन्न है।

	1802 ई० रुपये	1817 रुपये	1820 रुपये
कोट के ठाकुर	48,000	57,000	72,000
गांगड के ठाकुर	15,500	19,000	23,000
ऊँटेलिया के ठाकुर	6,000	6,000	11,000
बापूमियाँ कसवाती	50,000	73,000	89,000
लतीफ खाँ कसवाती	11,000	13,000	16,000

इनकी अदायगी की रकम, मुख्यतः गरासियों की, बहुत बढ़ गई है; गत तीन वर्षों में तो इसमें इतनी बढ़ोतरी हो गई है जितनी पिछले पन्द्रह वर्षों में भी नहीं हुई।

तलातियों की नियुक्ति इन ठाकुरों के लिए बहुत अरुचिकर हुई है; धोलका वालों ने तो मुझे कहा कि इस कर्मचारी की उपस्थिति उनको लगान में वृद्धि से भी अधिक अखरी है। उन्होंने कहा, 'ये लोग ऐसा ढंग अपनाते हैं जैसे ये ही सरकार के कर्त्ताधर्त्ता हों, रैयत से अर्जिया लेते हैं, गाँवों में गड़बड़ी पैदा करते हैं और हमारी प्रजा में हमारे प्रभाव को नष्ट करने के प्रयत्न करते हैं।

इन ठाकुरों के साथ निकट सम्पर्क होने पर मालूम हुआ कि अदालत भी इनको भारी मालूम पड़ती थी; और हमें सचमुच खेद है कि जब ये कानून बनाये गये तब इनको उन लोगों पर लागू करने से पहले इनमें कुछ संशोधन नहीं किए गए, जिनकी सामाजिक स्थिति इनमें (हमारे कानून में) विचार योग्य स्थिति से भिन्न है तथा जब इन लोगों ने इन कानूनों पर हस्ताक्षर किए तब यह सम्भावना स्पष्ट नहीं थी कि ये इतनी सख्ती से लागू किए जावेंगे। 1804 ई० की कर्नल वॉकर की रिपार्ट के समय कोट का राजा 150 घुड़सवार एवं 2000 सिरबन्धी के सिपाही रखता था; मैजिस्ट्रेट द्वारा जारी किए गए सम्मन पर ध्यान न देने के कारण उसको जेल खाने भेज दिया गया; जिस पाटड़ी के ठाकुर ने एक बार दो मास तक गायकवाड़ की सेना का मुकाबला किया था उसी को अपनी स्वतन्त्रता की व्यवस्था में, युद्ध और लगान के चुकारे के लिए, लिए गये ऋण को न चुका सकने के कारण जेल मे ठूँस दिया गया। जो कुछ जमाने में बदल आया है उसे बताने के लिए इससे और क्या सुदृढ़ प्रमाण दूँ कि ये वही लोग हैं जिनको, कर्नल वाकर और मेरे ख्याल से उन सभी सज्जनों ने जो हमारी प्रथम सत्ता जमाने के लिए नियुक्त किये गये थे, सर्वोच्च सम्मान्य राजा कह कर घोषित किया था और कर वसूल करने के अतिरिक्त जिनके मामलों में हस्तक्षेप करने का हम को कोई अधिकार नहीं था—वे ही लोग आज अपनी समस्त शक्ति, प्रभाव और प्रायः पूरे राजस्व से वंचित हो गये हैं। प्रायः ये सभी परिवर्तन पिछले तीन वर्षों में प्रभावशील हुए हैं। वे बेचारे इन से दुखी होने सिवाय क्या कर सकते हैं ? और यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि शायद अन्याय नहीं तो दुःख और कष्ट उनको अवश्य झेलने पड़े हैं।

राजपूत ताल्लुकेदारों के साथ न्यायपूर्ण बरताव हुआ या नहीं, इस मुद्दे पर मिस्टर एल्फिंग्टन कुछ हिचकते-से मालूम पड़ते हैं। यदि इस महापुरुष का महान् साहित्यिक कार्य पूरा हो जाता, हम सभी की सहज अभिलाषा होनी चाहिए कि वह पूरा होता, तो शायद भारत का (कोई) इतिहास लेखक उस प्रश्न पर अपना फैसला देता जिस पर निर्णय देने से बम्बई का गवर्नर पराङ्मुख हो गया था। वर्तमान स्थिति में तो हम इसका अनुमान मात्र ही लगा सकते है कि उसकी इस हिचकिचाहट का क्या कारण रहा होगा ?

स्थानीय ताल्लुकेदारों के अधिकारों के विषय में तो कम से कम ब्रिटिश सरकार ने समरूपता नहीं बरती है। जब 1802 ई० में इन्होंने तत्कालीन पेशवा-अधिकृत घोलेरा का परगना हस्तगत किया, जो धन्धूका जिले का ही एक भाग था, और मरहठा राजा के हक-हकूक के स्थान पर अपना झण्डा पहराया तथा ये वहाँ के सार्वभौम सत्ताधारी बने तब इन्होंने स्थानीय तालुकदारों के अधिकारों को मान्यता ही नहीं दी वरन् उन्हें वहाँ का राजा भी स्वीकार कर लिया परन्तु बाद में, कई बार इससे इन्कार कर दिया। तेरह वर्ष बाद जब गोघा का परगना मरहठों ने इनके सुपुर्द

किया तो भावनगर के रावल के अधिकारों के प्रश्न पर कई ऐतिहासिक दलीलें देते हुए इन्होंने यह साबित करने का प्रयत्न किया कि उसे यहाँ शासन करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था परन्तु ये सब दलीलें लचर थीं और खींचातानी करके ही पेश की गई थीं। उनकी जिस अधीनस्थ स्थिति को हम प्रतिपादित करना चाहते थे वह वास्तव में, अपदस्थ मुसलिम एवं मरहठा शासन के समय कायम थी, परन्तु इस सामान्य प्रश्न को अनावश्यक और पार न पड़ने वाली दलीलों से घपले में डाल दिया गया। इस मुद्दे पर आगामी पृष्ठों के आधार पर पाठक अपना अभिमत स्थापित कर सकेंगे। सम्भवतः वे हमारे साथ सहमत होंगे कि 'विजय का हाथ' उस सीमा तक नहीं पहुँचा था कि जिस दृढ़ता के साथ व्यवहार किया जा रहा था और भोमियाँ सरदारों को यद्यपि करद बना लिया गया था परन्तु उनमें से बहुत से अभी तक अपनी स्थानीय सत्ता बनाये हुए थे। अस्तु, हम इन राजपूत ठाकुरों को स्वतन्त्र सत्ताधारी राजा तो नहीं मान सकते, कम से कम उस अर्थ में, जो स्काटलैण्ड के पर्वतीय कैल्टिक राजाओं पर लागू होता है और न स्काटलैण्ड मे परम्परागत अधिकार हनन के समान इनके अधिकारों की समाप्ति को ही अन्यायपूर्ण मानते हैं। अहमदाबाद के सुलतानों और उनसे भी अधिक दिल्ली के बादशाहों का इन हिन्दू राजाओं पर, कम से कम वैसा ही आधिपत्य था जैसा कि क्रोमार्टी (Cromarty)[3] या अरगाइल[4] (Argyle) पर स्टुअर्ट[5] राजघराने का था। अणहिलपुर के वैभव-

---

3. स्काटलैण्ड के उत्तरी भाग का परगना। वहाँ पर्वतीय केल्टिक जाति के लोग रहते थे जो स्काटलैण्ड के स्टुअर्ट राजाओं के समय में बहुत लम्बे काल तक लूटपाट के लिए कुख्यात थे। 1861 ई० से यहाँ के शासक अर्ल (Earl) कहलाते थे बाद मे 1895 ई० से विस्काउण्ट (Viscount) हो गए।
4. अरगाइल (Argyle) स्काटलैण्ड के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित परगना है। इसी नाम का एक राजवंश ईसा की 12वीं शताब्दी में प्रसिद्ध हुआ और स्टुअर्ट राजाओं के समय में इस वंश की देश के इतिहास में प्रमुखता रही है।
5. इस वंश का मूल पुरुष रावर्ट द्वितीय 1371 ई० में स्काटलैण्ड की राजगद्दी पर बैठा था। वह सुप्रसिद्ध रावर्ट ब्रूस का पौत्र था। उसने 1390 ई० तक राज्य किया। उसके बाद इस वंश के राजा 1603 ई० तक स्काटलैण्ड की राजगद्दी पर बैठते रहे। उसी वर्ष इंगलैण्ड की महारानी एलिज़ाबेथ (प्रथम) की मृत्यु के उपरान्त स्काटलैण्ड का राजा जेम्स षष्ठ इंगलैण्ड का भी राजा हुआ और दोनों राज्य एक हो गए। स्काटलैण्ड का जेम्स षष्ठ ही इंगलैण्ड जेम्स प्रथम कहलाया।

   इन स्टुअर्ट राजाओं के समय में ही प्रजा में जनतन्त्र सत्ता के विचार पनपने

काल में तो महाराजा की सर्वोच्च सत्ता के विषय में कोई संदेह हो ही नहीं सकता।

यह तो स्पष्ट है कि ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रों में सामन्ती अधिकार अधिक दिनों तक नहीं निभ सकते थे; गुजरात में ही नहीं, हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों में सार्वभौम सत्ता का सूचक 'सुनहरी सिंहों वाला' झण्डा फहरने लगा था; और, जब शिवाजी और तैमूर की सन्तानों ने ही घुटने टेक दिए तो यह कैसे सम्भव हो सकता था कि उनसे भी पुराने और स्पष्टतः निर्बल राजा-पद अधिक समय तक चल सकते। इसके अतिरिक्त, विजेता जाति पर जिन जनतन्त्रात्मक भावनाओं ने अधिकार कर लिया था उनसे विजित जाति के लोगों पर भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा; जो तूफान इंगलैण्ड की समुद्री चट्टानों से टक्कर ले रहा था वह, थोड़े ही समय में अवश्यमेव, अधिक ऊंची उछालें मारती हुई लहरों में सोरठ के समुद्री तट पर प्रकट होने वाला था; और, जिस बाहु ने मैक्कॅंजी (McKenzie) और मैक्शिमी (McShimie)[6] घरानों की सत्ता को भंग कर दिया था उसकी लपेट से

लगे थे और इसी के परिणामस्वरूप राजा चार्ल्स प्रथम की गर्दन उड़ा दी गई तथा 1688 ई० में जेम्स द्वितीय को गद्दी से उतार दिया गया। इस प्रकार स्टुअर्ट राजवंश का अन्त हुआ। जेम्स द्वितीय के पुत्र जेम्स एडवर्ड ने 1715 ई० में स्काटलैण्ड जाकर पुनः राजगद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु वह असफल हुआ। इसके बाद उसके पुत्र चार्ल्स ने 1745 ई० में फिर एक बार कोशिश की लेकिन वह नाकामयाब रहा। इस प्रकार स्टुअर्ट वंश के राजवंशियों का इतिहास से सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

6. मैक्कॅंजी (McKenzie) और मैकशिमी (McShimie) ये उन बहुत सी जातियों में से है जो स्काटलैण्ड की उत्तरी पहाड़ियों में बसती थीं और 'हाइलैण्डर' नाम से प्रसिद्ध थीं। इन जातियों के नाम के पहले मैक (Mc) शब्द लगा रहता है जिसका अर्थ होता है 'पुत्र' या सन्तान। साथ मे दूसरा शब्द मूल पुरुष का सूचक होता है। इस प्रकार मैक्कॅंजी का अर्थ हुआ कॅंजी की सन्तान और मैक्शीमी का अर्थ हुआ शीमी नामक मूल पुरुष की सन्तान।

ये लोग शूरवीर और लड़ाकू होते थे और पहाड़ी इलाकों में बहुत लम्बे समय तक अलग-अलग स्वतन्त्र राजघरानों की तरह रहते थे। स्टुअर्ट राजाओं के समय में ये घराने कभी आपस में और कभी राजा के विरुद्ध लड़ाई करते रहते थे। सन् 1715 ई० में जब जेम्स एडवर्ड ने इंगलैण्ड की गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न किया तब इनमें से बहुतों ने उसकी सहायता की थी। बाद में 1745 ई० में जब चार्ल्स ने पुनः ऐसा प्रयत्न किया तब भी इनमें से अनेक जातियों ने हृदय से उसका साथ दिया। इन

साणन्द के बाघेला और पीरम के गोहिल बच निकलने की आशा नहीं कर सकते थे। जब राजसत्ता समाप्त हो गई तो राजाओं के अधिकार भी समाप्त हुए ही समझने चाहिए और यह भी स्वाभाविक है कि महान् आधिपत्य या प्रभुत्व के आगे लघु सत्ताएं फीकी पड़ ही जाती हैं जैसे सूर्य के आगे अग्नि।

जब हम कतिपय मुख्य उदाहरणों पर दृष्टिपात करते हैं तो मिस्टर एल्फिन्स्टन की हिचकिचाहट का कारण स्पष्ट हो जाता है। दृष्टान्त के रूप में हम कोट अथवा साणन्द के राजा का मामला ले सकते हैं; वह जैतो या अजैतसिंह (अजीतसिंह)[7] बाघेला का उत्तराधिकारी था और अणहिलपुर के अन्तिम महाराजा कर्ण की गद्दी का हकदार नहीं तो उसका वंशज अवश्य माना जा सकता था। उसकी जागीर और स्थिति के विषय में साक्षी रूप से कर्नल वॉकर के ही शब्दों को दोहरा देना समुचित होगा—वह कहता है—मेवास के (धोलका के) गाँव स्वतन्त्र स्थिति में हैं और 'घास दाणा' की रकम भी बहुत कठिनाई से देते हैं। यह रकम बड़ी फौज द्वारा या सम्बन्धित ठाकुर से करार करवा कर वसूल की जाती है या कायम की जाती है; जब इकरारनामा लिखाया जाता है तो उस सूरत में ठाकुर को कुछ छूट भी देनी पड़ती है। इन ताल्लुकेदारों में कुछ तो थोड़ी बहुत सत्ता वाले गरासिया हैं परन्तु कोट का स्वामी राजा की उपाधि धारण करता है और बहुत ऊँचे खानदान का बताया जाता है। हर एक सरदार के साथ कुछ सशस्त्र सेवक रहते हैं जो स्वेच्छा से उसकी सेवा करते हैं और जो कुछ प्रसन्न होकर दे देता है उस पर या सम्मिलित लूट के माल पर गुजर करते हैं। परन्तु कोट के राजा के पास दो हजार सिरबन्धी के सिपाही और डेढ़ सौ घुड़सवार रहते हैं, जो उसके इलाके का

अवसरों पर इन लोगों की बड़ी हार हुई और इसके बाद ही इनकी स्वतन्त्र सत्ता छीन ली गई। लड़ाई के भी सभी साधनों से इनको वंचित कर दिया गया। अमुक-अमुक संस्थान के सरदारों को अमुक-अमुक भूमि की पैदावार ग्रहण करने मात्र का अधिकार रहा। कालान्तर में इन पर फौजी पोशाक पहनने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया और ये लोग खेती बाड़ी के धन्धे की ओर उन्मुख हो गए।

उक्त बातों से भारतीय सामन्तों के इतिहास का भी बहुत साम्य है। हमारे यहाँ भी राजवंशों और राजपूतों में मूल पुरुष के नाम पर जातियों की प्रसिद्धि होती रही है और 'मैक्' उपसर्ग की तरह 'वत' या 'ओत' प्रत्यय लगता है—जैसे गुहिलोत अर्थात् गुहिल के वंशज, राजावत, शेखावत, नाथावत आदि। सामन्तशाही के ह्रास में भी प्रायः वैसा ही क्रम चला है। धीरे-धीरे इन लोगों में से सैनिकता तिरोहित होकर खेतीबाड़ी एवं अन्य धन्धे पनप रहे हैं। (हि० अ०)

7. कर्ण के बाद सारंगदेव, फिर वीरसिंह और फिर महीप हुआ जिसने दिल्ली के विरुद्ध लाहरवाटी करके राज्य प्राप्त किया। उसके बड़े पुत्र जेता को कलाल परगना प्राप्त हुआ और वीरसिंह को साणद परगना मिला। (गु. अ.)

पहरा देते हैं, उसकी अंग-रक्षा करते हैं तथा अधिराजों की फौज के समान शत्रुओं पर चढ़ाई करने के काम आते है। कोटग्राम के चार दीवारी या शहरपनाह नही है अपितु वह जंगल के बीच में स्थित है और इसके चारों ओर किले ही किले हे। कोट वाले (राजा) के अधिकार मे चौबीस गाँव हैं और सामान्यत: 42,723) रु० वार्षिक की जमा अदा करता हे परन्तु, परिस्थितियों के अनुसार इस रकम में घटाबढ़ी होती रहती है।

"मरहटों द्वारा दिये हुये नाम के अनुसार ये मेवासी धोलका में इतने प्रबल है कि करीब-करीब मुल्कगीरी से खिराज देने वाले ठाकुरों के बराबर ही हो गए हैं और इनसे जमा या 'घास दाणा' वसूल करने के लिए वार्षिक सैनिक अभियान करना आवश्यक होता है। यदि फौज अधिक होती है तो फसल पर बढे हुए अनुपात से कायम की गई रकम भी तुरन्त वसूल हो जाती है; परन्तु, यदि सेना कमजोर और संख्या में कम होती है तो छोटी-मोटी लड़ाई अवश्य होती है क्योकि, परिणाम कुछ भी हो, सामना करने में मेवासी अपना गौरव समझते है। बाद में, जब इन पर विजय प्राप्त करके इलाके मे लूट-पाट की जाती है तो परिस्थिति के अनुसार कमो-बेश करके मामला तय कर दिया जाता है।"

मुल्कगीरी खिराजगुजारों में और उक्त ठाकुरों मे जो राजस्व के रूप में नहीं, बल्कि सैनिक दबाव से ही कर देते है, वास्तव में, बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है जो सहज ही ध्यान में नही आता। परन्तु, इन दोनों भाँति के ताल्लुकदारों के भाग्य विपाक मे बहुत बड़ा अन्तर रहा। कदाचित साणंद का ठिकाना कुछ मील हट कर धोलका परगने के पड़ोस में मुल्कगीरी-प्रदेश को विभक्त करने वाली रेखा के पार होता तो इस ठाकुर के पुश्तैनी हक-हकूक और इज्जत बनी रहती और उसके राजस्व की रकम थोड़ी बहुत बढा दी जाती परन्तु फिर वह भविष्य के लिए निश्चित हो जाती। उससे वसूल होने वाली राजस्व की रकम थोडे ही वर्षों मे 43,000) से बढ़ा कर 72,000) कर दी गई। एक परदेशी सत्ता के प्रतिनिधि बनकर उसी के नौकर उसी के महलों में बैठ कर उसी पर शासन करने लगे और, मिस्टर एल्फिन्स्टन के शब्दों में, 'उसकी शक्ति, वैभव एवं प्राय: समस्त आय छीन ली गई तथा अदालत के एक ऐसे परवाने की तामील न करने पर, जिसका शायद वह ठीक-ठीक मतलब भी न समझ सका, उसे जेल भेज दिया गया—तो इसमे आश्चर्य करने की क्या बात है कि वह अणहिलपुर का राजवंशी यदि अपने साथ हुए अन्याय और अपनी दुर्दशा की शिकायत करे और अपने पड़ौसी लीम्बड़ी और बढवाण के झाला सरदारो के भाग्य से ईर्ष्या करे, जो कभी उसके पूर्वजों के मातहत थे परन्तु अब सयोगवश ब्रिटिश हुकूमत की अधीनता मे न आकर मरहठा-शासन के नीचे रह गए थे।

यदि हम इस विषय पर विस्तार से विवेचन करने लगें तो वह इतना लम्बा हो जायगा कि उसको यहाँ स्थान देना कठिन होगा और पाठक भी उससे ऊब

जावेंगे। इसलिए हम यहाँ पर एक या दो मुद्दों पर ही लिखेंगे। ऐसा जान पड़ता है कि धोलका के कसवातियों जैसे केवल इजारदारों और भूमि पर सदा से अधिकार रखते आए राजपूत सरदारों के अधिकारों के बीच कोई भेद नहीं बरता गया। इन राजपूतों के अधिकारों के विषय में कर्नल वॉकर ने ठीक ही कहा है कि, "इनके हक पुश्तों से चले आ रहे हैं और इतने पुराने हैं कि उनके अभिलेख मिलना कठिन है; सभी लोग इन अधिकारों को एकमत हो कर मानते हैं और आज दिन तक इन में किसी तरह की कोई कमी नहीं आई है। दुर्दमनीय भावनाओं और शस्त्रों के बल पर इन अधिकारों की रक्षा होती आई है, युगों युगों के विद्रोहों से इन्होने टक्कर ली है और मुसलमानों ने भी इन को समाप्त करने के लिए उनसे जो कुछ बन पड़ा वह किया परन्तु उनके शासन की समाप्ति के अनन्तर भी ये यथावत वर्तमान हैं।"

जाड़ेचा गरासियों के भू-राजस्व के विषय में लिखते समय बम्बई सरकार[8] ने राजपूतों की भायात के विषय में स्पष्ट विवरण दिया है। वे कहते हैं "अंजार के जाड़ेचा भूतपूर्व रावों के छुट-भाइयों की सन्तान हैं, जिनको गरास मिला था। बाद के वर्षों में, वह 'गरास' उनके अनेक वंशजों में बँटता चला गया। वे अपने-अपने 'करम भाग'[9] के धणी हैं, जो उन्हें जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में प्राप्त हुआ है; मूलतः वे रावों को कोई रकम अदा नहीं करते थे परन्तु यह प्रायः निश्चित था कि इनको जो ग्रास मिला हुआ था उसकी एवज में इन्हें आपत्ति-काल में जब 'भायात' एकत्रित होती थी तो अपने लिए भोजन और अफीम तथा घोड़ों के लिए दाना मिलता था। जो भूमि इनको निजी उपभोग के लिए दी जाती थी वह 'आवगो ग्रासिया, (awgo-grassia) कहलाती थी; उसके लिए यह नियम था कि उसमे यदि ये स्वयं काश्त करते तो उसका कोई लगान नहीं लिया जाता था। इसको गुजरात में 'जिवाई' कहते हैं। परन्तु, यदि उस भूमि में रैयत से काश्त कराई जावे तो उस पर सरकारी 'वेरा' या कर वसूल किया जाता है और ग्रासिया को केवल जमीन का मालिक होने का हक मिल जाता है।"

ऐसे मामलों की बहुत सी नजीरें इस पुस्तक में जगह-जगह पर दी गई हैं; और, वास्तव में, इस दुनिया में भूमि पर स्वाधिकार जैसी कोई वस्तु हो (हम जानते हैं, बहुत से लोग इससे सहमत नहीं होंगे) तो गुजरात में गरासियों के जो अधिकार हैं उनसे बढ़कर हक हुकूक ढूंढ़ निकालना बहुत कठिन होगा। परन्तु,

8. सेलेक्शन आफ पेपर्स (Selection of Papers) भा. 3, पृ. 750 में प्रकाशित दि० 31 मई, 1818 का बम्बई सरकार के रेवेन्यू विभाग का पत्र।
9. अर्थात् पूर्वजन्म के कर्मानुसार जो भाग या ग्रास मिला है।

संचालक मण्डल (कोर्ट ऑफ डाइरैक्टर्स) का खयाल इससे भिन्न है। उनके मत से जाड़ेचा गरासियो को जो भूमि मिली हुई है वह केवल चाकरी की शर्त' पर मिली है। वे कहते है "भारत के अन्य भागों में चाकरी की एवज मे जिन लोगों को जागीरे मिली हुई है उनसे सेवा लेना आवश्यक न होने के कारण उनके मामलो का निपटारा करने मे जो कठिनाई और गड़बडी पैदा हो गई है वही इन अधिकारों का निर्णय करते समय सामने आती है। हमारे विचार से इन जागीरों को स्वतन्त्र मिल्कियत की जागीरे या ग्रास नहीं मानना चाहिए। जब चाकरी बन्द हो जाय या उसकी जरूरत न रहे तो सरकार अपना निर्णय लेने में स्वतन्त्र है।"

बम्बई के डिस्पैच (पत्रावली) में केवल यही लिखा है कि गरासियो को जिन शर्तों पर भूमि मिली हुई है उनमें से एक चाकरी की शर्त भी है; और हमारे देश (इंगलैण्ड) के इतिहास के आधार पर भी हम शायद ही इस नतीजे पर पहुंच सके कि जिन लोगों को सामरिक सेवाओं के बदले मे भूमि मिली हुई है उसे केवल इसी कारण जब्त कर लिया जाय कि अब 'राजा' को उस प्रकार की सेवा की आवश्यकता नहीं है। यह बात अधिक ध्यान देकर देखने योग्य है कि गुजरात की प्रथा हमारी प्रथा से बहुत भिन्न है और वहाँ गरासियों का भूमि पर अधिकार इसी सीमा तक बद्ध नहीं है कि महाराजा को इनकी चाकरी की आवश्यकता न हो तो वह उसे जब्त कर ले।

संचालक-मण्डल (कोर्ट ऑफ डाइरैक्टर्स) ने सन् 1819 ई. मे लिखा है कि "हमारे ख्याल से, गरासियों से वसूल होने वाली 'सलामी' या कर की रकम मे वृद्धि करने का सरकार का अधिकार स्पष्ट रूप से निश्चित हो चुका है। यह अधिकार पूर्व में हुए राजसत्ता-सम्बन्धी निर्णय से अपने आप सिद्ध हो जाता है कि राजसत्ता कम्पनी की रहेगी और गरासिया, भील तथा कोली जो अपना हक जाहिर करते है वह रद्द किया जाता है। इस फैसले का नतीजा यह हुआ कि ये जातियाँ भी शेष रैयत की श्रेणी में रखी गई, और ऐसा होने पर, सार्वजनिक हित के कार्यों के भार की दृष्टि से राजसत्ता दूसरों के समान इनकी जायदाद से वसूल होने वाले कर में भी आवश्यकतानुसार थोड़े समय के लिए या सदा के लिए घटाबढ़ी कर सकती है और ये लोग इसके विरुद्ध कोई आपत्ति नही कर सकेंगे।"

गरासियो से वसूल होने वाली जमा में बढ़ोतरी करने का हक शायद ही ऐसा था कि जिस पर ब्रिटिश सरकार दबाव डाल सकती थी। कदाचित इसका कोई अस्तित्व था भी तो अवश्य ही मुसलमानों से ग्रहण किया गया था; और यदि यह सच है तो मुसलमानों के ही अपने वर्णन से ज्ञात होता है कि इसका आधार बल-प्रयोग के अतिरिक्त और कुछ नही था। अनुच्छेद के उत्तरार्द्ध मे जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है उसके अनुसार कोट के राजा के मामले में (हम उसी नजीर को आगे बढ़ाते है) जो कुछ हुआ है उसकी अपेक्षा उसका पक्ष अधिक अनुकूल था और उसका

खुलासा इस प्रकार है—उसका राज्य ब्रिटिश अधिकार में होता; महीकांठा और काठियावाड़ में जिस तरीके से राजस्व की रकम कायम की गई थी उसी को दृष्टि में रखते हुए उससे वसूल होने वाली जमा भी उसी जमाबन्धी के आधारों पर निश्चित की जाती जिसके अनुसार वह भूतपूर्व सरकारों को खिराज अदा करता था और (यदि यह रकम राज्य की आवश्यकताओं को देखते हुए कम पड़ती हुई समझी जाती) तो उसको इसके अतिरिक्त 'रा य भार का अपना हिस्सा अदा करने के लिए बाध्य किया जाता,' इसके लिए या तो अपने इलाके मे पुलिस और कचहरियों का खर्च वह स्वयं वहन करता या सरकार को आवश्यक रकम देना स्वीकार करता; परन्तु, अपनी भूमि के किसानों से मामलात तय करने के विषय में सरकार का कोई हस्तक्षेप न होकर वह उसी प्रकार स्वतन्त्र होता जैसे मुसलमानों या मरहठों के समय में था। हमने जिस गड़बड़ी का हाल ऊपर लिखा है, शायद वही उन सब कष्टों का मूल है कि जिसको लेकर गरासियों के साथ इतना कठोर व्यवहार किया गया है।

संचालक-मण्डल ने आगे कहा है, "अब यह स्पष्ट हो गया है कि गरासिया लोग जिन विशेषाधिकारों की मांग करते हैं वे सम्पूर्ण रूप से नहीं तो किसी अंश में उन लोगों की लापरवाही, कमजोरी या काहिली के कारण उत्पन्न हुए हैं। जिनके हाथ में सरकार की सत्ता के संरक्षण का भार था उनके वांटा की भूमि भी आपस के झगड़ों, ठगी या जबरदस्ती से ही उनके अधिकार मे रही है, इसके अतिरिक्त और इससे अच्छा कोई आधार उनके हकों के बारे में नहीं मिलता (?); 'तोड़ा ग्रास' के नाम से जो लाग (कर) ये लोग वसूल करते हैं उसका मूल भी प्रायः इसी तरह का है; और, कितनी ही ऐसी लागें तो बहुत ही आधारहीन एवं स्वेच्छाचारपूर्ण घटनाओं से निकली हुई हैं जिनको अपनी निर्बलता तथा ऊपर के डर से लोग सहन कर रहे हैं।"

कोर्ट द्वारा तीन वर्ष बाद दी गई टिप्पणी में भी गरासिया वर्ग के विरुद्ध वही धारणा व्यक्त होती है जो, हमारे विचार से, आरम्भ में ही इन लोगों और अन्य वर्गों के विषय में बन गई थी; इसका कारण यह था कि यद्यपि ये दोनों ही प्रकार के अधिकार ग्रास नाम से बोले जाते थे परन्तु इनकी उत्पत्ति और व्यवहार में बहुत भिन्नता थी, जिसको अच्छी तरह समझा नहीं गया था। वे कहते है "जोर-जबरदस्ती से प्रबल हुए गरासियों और अन्य जाति के लोगों ने जिन जागीरों पर कब्जा कर रखा है उनके विषय में ऐसा लगता है कि पुराने जमाने में या तो वे उनको सैनिक सेवाओं के बदले में दी गई थी, जिनकी अब आवश्यकता नही है या ये प्रजा से जबरन छीन ली गई थीं क्योंकि ये लोग युद्ध और लूटमार करने वाली जाति के थे और इन उपद्रवों से पिण्ड छुड़ाने के लिए ही लोगों ने इन्हें स्वामी मान लिया होगा। इन सभी जागीरों पर हम ऐतराज किए बिना नहीं रह सकते और यद्यपि सहज ही में यह बात हमारी समझ में आती है कि समयानुकूल कार्य करने

की रीति के कारण हमें इन्हें सहन करना पड़ रहा है परन्तु इनके हकों का दायरा जैसे-जैसे कम होता जाएगा, वैसे-वैसे ही हमे हमेशा खुशी महसूस होगी।"

इसमें सन्देह नहीं कि न्याय और औचित्य को ताक में रख कर इन स्थानीय ठाकुरों के विरुद्ध बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं; यह तर्क दिया जा सकता है कि अब इनकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी; इनकी 'सेवाओं' की 'अब कोई आवश्यकता नहीं है'; और इनकी सुस्ती व काहिली दूर करके इनको शांतिपूर्ण कलाओं में पुनः संलग्न करना उतना ही कठिन है जितना कि इनको उस अनुशासन में रखना जो इनको युद्धकाल में पूर्ववत् उपयोगी बना सके। परन्तु, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अनुभवी प्रशासक अब तक यह मानते हैं कि क्षत्रिय-पुत्रों ने प्रबल शत्रुओं की टक्कर में इतने समय तक इतने लोगों पर जो अपना प्रभुत्व जमाए रखा था उसके नष्ट हो जाने से ही गुजरात के आन्तरिक प्रबन्ध को इतनी हानि पहुंची है; यह बात भी निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि गरासियों के साथ यदि अधिक उदारतापूर्ण व्यवहार किया जाता तो उनके चरित्र में कोई सुधार न आता; और, आज भी इस मत के बहुत से समर्थक मौजूद हैं कि ये भूस्वामी जमीन के पुश्तैनी मालिक होने के कारण सत्कार-योग्य हैं तथा अपनी भूमि की रक्षा के लिए ढाल का काम कर सकते हैं। अस्तु, ये बातें कुछ भी हों, परन्तु एक स्वदेश प्रेमी को इस बात पर दुखी होने का अधिकार तो होना ही चाहिए कि गुजरात में ब्रिटिश सत्ता के आगमन से यहां के कितने ही निवासियों को, जैसे अजीत सिंह वाघेला और मोखड़ा जी गोहिल की सन्तानों को शिकायत करने योग्य सुदृढ़ कारण उत्पन्न हुए और उनको गहरी चोट पहुंची है।

स्थानीय ठाकुरों के हित में जो बातें ऊपर कही गई हैं और मिस्टर एल्फिंस्टन ने जो अभिप्राय व्यक्त किए हैं उनमें कोई विरोध नहीं है। उनकी तजवीज थी कि धोनका में से तलाती हटा दिए जावें और गरासियों की जमा इस तरह बांधी जाय कि उन्हें सरकारी राजस्व पर बीस के बदले तीस प्रतिशत बचत रहे तथा हर पांचवें वर्ष इसी नियम के आधार पर उस जमा में आवश्यक परिवर्तन होता रहे; उन्होंने सिफारिश की थी कि न्यायालय के व्यवहार में गरासियों को कुछ विशेष छूट दी जाय; और उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया था कि पुराने कर्ज के मामलों में दस्तावेज पेश होने पर भी उन परिस्थितियों की जाँच की जावे जिनके कारण दोनों पक्षों में वह अनुबन्ध लिखा गया था, इससे कर्ज की वास्तविकता ज्ञात हो सकेगी; और, गरासियों को पकड़ कर जेलखाने में डालने के बदले उनके ठीक-ठीक गुजारे लायक भाग छोड़ कर जागीर का उतना भाग जब्त करने के लिए जजों को कलेक्टरों के नाम आदेश लिख भेजना चाहिए जिससे कर्जा किश्तों द्वारा धीरे-धीरे चुकाया जा सके।" मिस्टर एल्फिन्स्टन ने आगे सलाह दी है कि "सुविधानुसार, जहाँ-जहाँ सम्भव हो, गरासियों को पुलिस के मुख्य स्थानों पर नियुक्त किये

जाय और उनको मुखिया पटेल की उपाधि न दी जाय क्योंकि राजपूत लोग, अवश्य ही, इसको अपने लिए अपमानजनक समझते है।"

मेवासियों के विषय में (वे इस शब्द को कोली ठाकुरों तक ही सीमित रखते हैं) मिस्टर एल्फिन्स्टन की सिफारिश और भी जोरदार है और वाघेला राजा का विवरण देते हुए ऊपर हम जो कुछ लिख आए हैं उससे मेल खाती हुई है। गवर्नर ने लिखा है "ऐसा लगता है कि ये लोग (मेवासी) आजकल जिस परतन्त्रता में हैं उससे अधिक इनकी पराधीनता का प्रमाण इतिहास में नहीं मिलता और इससे सिद्ध होता है कि इनको अधिक दबाने का हक हमें अपने पूर्ववर्तियो से प्राप्त नहीं हुआ है अतः हमको स्वाभाविक नियमों का ही आधार लेकर ऐसा करना चाहिए, जिनसे हमको अपने पड़ौसी पर उतना ही काबू रखने का उचित अधिकार मिलता है जितना कि हमारी अपनी सुरक्षा के लिए आवश्यक है और हमारे हस्तक्षेप की सीमा बस इतनी ही रहनी चाहिए। जब हम पहले पहल गुजरात में आए थे तो हमारे पास इस प्रदेश में बहुत थोड़ी सेना थी; उसको देखते हुए मेवासियों ने हमें बहुत ही कम कष्ट दिया है; और अब, थोड़ी सी राजस्व की रकम बढ़ाने व पुलिस में कल्पित सुधार करने के नाम पर इस शान्ति को जोखिम में डालना न्याय और नीति के विरुद्ध ही होगा। इससे कोई वास्तविक सुधार होगा, यह भी सन्देहास्पद ही लगता है, क्योंकि जब तक कोलियों में मेहनत-मजदूरी करने व अनुशासन में रहने की आदत नहीं पड़ जाती तब तक उन्हें वश मे रखने को उनके चाल चलन के लिए समस्त जाति को ही जवाबदार बनाना होगा; और अगर हम चुपचाप प्रत्येक व्यक्ति को हमारी पुलिस के अधिकार में लाने में सफल भी हो गए तो मेरा विचार है कि अवश्य ही चोरी डकैती के मामले बढ़ जावेंगे। इसलिए मेरा सुझाव है कि मेवासियों के गांवों में राजस्व वसूल करने व प्रजा में शान्ति कायम रखने की जवाबदारी गाँव के ठाकुर पर ही डालनी चाहिए। यदि आवश्यक समझा जाय तो उसकी जमानत ले ली जाय, चोरी का माल बरामद करने को उसे जिम्मेदार ठहराया जाय, और अपराधियों को पेश करने के लिए भी उसी को पाबन्द किया जाए परन्तु मुखिया पटेलों के लिए जो नियम बने हैं उनमें से कोई भी उस पर लागू न किया जाय तथा उसके इलाके मे किन मामलों को दर्ज करना और किन को नहीं, इसका अधिकार मैजिस्ट्रेट को प्राप्त हो। सभी गम्भीर मामलों को अवश्य दर्ज किया जाय और अपराधी को ठाकुर के द्वारा तलब किया जाय। यह तलबी मोसल और रोजीना जुर्माने (अजूरे) के जरिये होनी चाहिए। यदि वह अपराधी को हाजिर न करने की जिद करे तो ठाकुर को गिरफ्तार किया जाय और अगर सामना करे तो सार्वजनिक शत्रु के समान उस पर आक्रमण कर दिया जाय। यदि स्वयं ठाकुर के विरुद्ध कोई गम्भीर शिकायत हो तो उसे बन्दी बनाने से पहले कलक्टर अपनी तौर पर जांच पड़ताल करे; यदि उसे पकड़ना आवश्यक हो जाय तो उसे जाब्ते में फौज-

दार के सुपुर्द कर देना चाहिए। जो ठाकुर आदतन लूटपाट और चोरी में हिस्सा लेते हैं उन्हें गद्दी से उतार कर जेलखाने भेज देना चाहिए और उनके परिवार में से किसी अन्य को ठाकुर बना देना चाहिए; अथवा, गाँव में सेना तैनात कर दी जाय और उनके समस्त मेवासी अधिकार छीन लिए जावें।

"तलाती नियुक्त न किए जावें और राजस्व की रकम निश्चित रहे। सरकार का हक बनाए रखने के लिए कहीं-कहीं कभी-कभी उचित रूप में थोड़ी बहुत वृद्धि की जा सकती है, परन्तु सामान्यतया लाभ (बचत) का अधिकांश गाँव वालों के लिए ही छोड़ दिया जाय कि जिससे वे खेती बाड़ी के काम में अधिक रुचि लेने लगें। दीवानी मामले नियमानुसार अपने ढंग से चलें, परन्तु कुछ गाँवों में यह अधिक सुविधाजनक रहेगा कि पहली बार में मामला मैजिस्ट्रेट के पास दर्ज हो और वही यह तय करे कि उसे अदालत में भेजे या पंचायतों या मोसलों की सहायता से वहीं निपटा दिया जाय।"[1]

अब हम इस विषय से रुखसत लेते हैं क्योंकि यहाँ पर इसको जितना स्थान दिया जा सकता था उससे अधिक लिख चुके हैं यद्यपि इसके वास्तविक महत्व को देखते हुए तो यह भी बहुत कम है। हम अपने पाठकों को स्मरण दिला दें कि मिस्टर एल्फिन्स्टन के सुझावों का व्यावहारिक मूल्य आज दिन तक भी कम नहीं हुआ है क्योंकि, जल्दी हो या देर से वह घड़ी आने वाली है कि जब गुजरात प्रान्त का वह भाग, जहाँ अब भी गरासिया और मेवासी मौजूद हैं। चाहे उनकी प्रतिष्ठा में कोई कमी न आई हो या उनकी आदतों में कोई बदल न आया हो, अवश्य ही ब्रिटिश सरकार के सीधे अधिकार में आ जावेगा।

गुजरात में ब्रिटिश शासन की स्थापना से वहाँ के निवासियों के एक वर्ग विशेष को जहाँ मुसीबत का सामना करना पड़ा है वहाँ इस बात पर सन्तोष प्रकट किया जा सकता है कि प्रजावर्ग के अधिकांश को बहुत लाभ पहुँचा है। मिस्टर एल्फिन्स्टन कहते हैं 'यह नहीं सोचना चाहिए कि इन जिलों में अपने मुकाम के दौरान यहाँ के लोगों की असली हालत के बारे में ठीक-ठीक अन्दाज लगा सका हूँ। चलते-चलते जो बात जाहिर लगती है वह यह है कि गरासिया कमजोर हो गए हैं और दब गए हैं; देसाई और दूसरे पुश्तैनी कारगुजार, जिनमें पटेल भी शामिल हैं, अपनी ताकत और असर खो बैठे हैं परन्तु बदले में उन्हें निजी व माली हिफाजत की तसल्ली मिल गई। हमारे लगान वसूली के तरीके में हेर-फेर हो जाने के कारण साहूकारों की आमदनी का एक जरिया बन्द हो गया है और इतनी देशी रियासतों के खतम हो जाने व मिल्कियत का बराबर बंटवारा हो जाने से व्यापार भी बैठ गया है और इस तरह धन कमाने का दूसरा दरवाजा भी बन्द हो गया है, जिन भाटों (और चारणों) का गुजरात में इतना मान था वे अब नगण्य हो गए हैं और आम रियाया को, जो पहले दुख भोग रही थी, धन, आराम और निर्भयता प्राप्त हो गई

है। व्यापार का धन्धा करने वाले और गरासिया ही शायद ऐसे लोग हैं, जिनको शिकायत हो सकती है। अब पुश्तैनी ठाकुर नहीं रहे, कायमी फौजी नेता भी नहीं रहे और न ऐसे लोगों का वर्ग ही रहा जो दिखावटी रूप में भी विद्या और धर्म के नाम पर प्रतिष्ठा प्राप्त करते थे। जिन लोगों को नुकसान हुआ है उनकी खुशहाली दूसरे लोगों की बरबादी के कारण बनी थी; अब उनके पतन की एवज में प्रजाजनों को बढ़ावा मिला है, जो संख्या में अधिक हैं, मेहनत मजदूरी करने वाले हैं और समाज में सबसे अधिक प्राप्त करने लायक हैं। निस्सन्देह, इस वर्ग के लिए हमारा शासन वरदान सिद्ध हुआ है। इस (हमारे शासन) में लूट-पाट और हमले बन्द हो गये हैं, आन्तरिक अव्यवस्था समाप्त हो गई है, लोगों को समान रूप से पक्षपात-रहित न्याय मिलता है और शोषण एवं बलात्कार को सर्वथा नष्ट कर दिया गया है। साबरमती के इस ओर के प्रान्त का, जो बहुत समय से हमारे अधिकार में है, वही दृश्य है जो ऐसी परिस्थितियों में होना चाहिए था। उच्च वर्ग के लोगों की पुरानी समृद्धि उन के घरों की सजधज से जान पड़ती है और प्रजा की खुशहाली उनके सुखद घरों, पोशाक की स्वच्छता और ऊंचे दर्जे की खेती वाड़ी से व्यक्त होती है। खेतों की सुघड़ता और फलद्रूपता की दृष्टि से बंगाल प्रान्त के बहुत से भाग ऐसे हैं जिनकी समता नहीं की जा सकती; परन्तु, पेड़-पौधों की बहुतायत, गांवों की सुन्दर ठोस बनावट तथा लोगों के ऊंचे स्तर एवं खिलते हुए व्यक्तित्व को लेकर मुझे भारत में कहीं भी ऐसा देखने को नहीं मिला जिसका गुजरात के पूर्वी जिलों से मुकाबला किया जा सके।

रैयत अर्थात् किसानों की दशा में जो सुधार हुआ है उसको समझने के लिए पहले हमें यह जान लेना आवश्यक है कि देशी राज्य के समय में उनकी क्या दशा थी? कर्नल वॉकर से हमको जो विवरण प्राप्त हुआ है उसको हम यहाँ पर यह बताने के लिए उद्धृत कर रहे हैं कि जिस दशा का उन्होंने चित्रण किया है, वह आज भी गुजरात के उन भागों में वर्तमान है जो सीधे ब्रिटिश शासन के अधिकार में नहीं है।

कर्नल वॉकर कहते हैं, "(खालसा जमीन के) जमींदारों को रैयत पर जमाबन्दी कायम करने व अपनी इच्छानुसार अधिक से अधिक लाभ लेते हुए जमीन इजारे पर देने का अधिकार है। इस मामले में वे प्रायः यूरोप के जमींदारों जैसे ही अधिकारों का उपयोग करते जान पड़ते हैं, परन्तु उनकी लगानी दर प्रायः सरकारी दर से नीची रहती है। ऐसा तो नहीं है कि सरकार इन मामलों में दखल-अन्दाजी करती हो, परन्तु यह स्पष्ट है कि यदि एक ओर से बलात्कार होता हो या दूसरी ओर से दुर्व्यवहार हो तो उभय पक्ष को शिकायत करने का अधिकार है और यदि रैयत या किसान भूस्वामी के रवैये को नापसन्द करता है तो वह दूसरे परगने में जाकर बस सकता है। सामान्यतया इसी उपाय का अवलम्बन किया जाता है और

पूरा गाँव-का-गाँव या वहाँ के वाशिन्दों में से जो पीड़ित हों और जो निजी भूमि के काश्तकार हों या सरकारी भूमि के, वे दूसरे परगनों में जाकर नई जमीनें प्राप्त कर लेते हैं और वहाँ पर तब तक बने रहते हैं जब तक कि उनकी शिकायतें दूर न हो जावें या उनके जमींदार उनकी शर्तें मंजूर न कर ले। इस प्रकार कृषकों के स्थान-परिवर्तन को रोकने के लिए कभी-कभी कुमाविसदार आपस में ऐसा समझौता कर लेते हैं कि जो किसान अपने जमींदार से झगड़ा करके आता है उसको न अपने इलाके में टिकाव देते हैं न कोई रोजगार; परन्तु, प्राय: ऐसा होता है कि पहले जमींदार के दुर्व्यवहार से लाभ उठाने को वे उन कृषकों को रख कर अपना हित-साधन करने के लिए तैयार रहते हैं। यहाँ पर यह भी कह देना आवश्यक है कि सरकारी जमीन की रैयत या किसान को भी कदीमी हक प्राप्त होता है और जिस जमीन को वह या उसके परिवार वाले बहुत लम्बे समय तक जोतते रहे हैं उससे उनको बेदखल करना मनमानी कार्रवाई, गैर-कानूनी या रिवाज के खिलाफ समझा जाता है, जो सब एक ही तरह के अन्याय माने जाते हैं; इसलिए ऐसी बेदखलियाँ कम ही होतीं हैं।"

रैयत या किसान को अपनी सुरक्षा का भरोसा मुख्यत: इस बात में होता था कि उसकी जाति वाले उसका पक्ष लेंगे और जमींदार उसको नहीं निकाल सकेगा क्योंकि वह कोई ऐसा काम करने की हिम्मत नहीं कर सकता था कि जिससे वे सब-के-सब गाँव छोड़कर चले जावें; यह बात उसी पूर्वी कहावत का उदाहरण है, जो हम पहले उद्धृत कर चुके हैं, अर्थात् 'प्रजा के आधिक्य से ही राजा की प्रतिष्ठा है और प्रजा की कमी में ही उसकी हानि है।' व्रिटिश शासन में प्रजा को केवल बाहरी आक्रमण और आन्तरिक अव्यवस्था से ही राहत नहीं मिली है अपितु किसानों को अपने कब्जे की जमीन पर मालिकी का हक भी प्राप्त हुआ है (जो पहले कभी नहीं मिला था) और अब वह उस जमीन को अपने तथाकथित जमींदार की इजाजत के बिना ही बेच सकता है तथा अगर वह लगान बराबर अदा करता है तो सरकार को भी उसे बेदखल करने का हक नहीं है।

व्रिटिश शासकों का जो दूसरा कानून लागू हुआ उससे कृषक वर्ग को तो कोई अधिक अनुकूलता प्राप्त नहीं हुई, परन्तु जो लोग व्यापार व लेन-देन का धन्धा करते थे उनको बहुत सुभीता हो गया है। समय से पहले ही, यूरोपीय सिद्धान्तों के आधार पर, जो अदालतें यहाँ कायम कर दी गई हैं उनके परिणाम अच्छे नहीं निकले और मिस्टर एल्फिन्स्टन ने भी इसकी बुराई ही की है। इसके चार वर्ष बाद (1825 ई. में) विशप हैबर[10] ने इसका और भी विशद विवेचन किया है और

10. व्रिशप रेनाल्ड हैबर (Bishop Reginald Haber) (1785–1823) को 1823 में कलकत्ता का विशप नियुक्त किया गया था और 1826 ई. मे त्रिचनापल्ली के तरण-ताल में पक्षाघात (Apoplexy) रोग से उसकी →

उसको (उसकी स्थिति देखते हुए) और भी अधिक निष्पक्ष समीक्षक कहा जा सकता है—

हिबर ने कहा, 'इस देश (गुजरात) में, हिन्दुस्तान के अन्य प्रान्तों की तरह, सबसे बुरी बात अदालतों की प्रणाली है, जहाँ का तन्त्र भारी और पेचीदा है, न्याय मिलने में अत्यधिक खर्चा और असह्य देरी होती है और लेन-देन के कानून बहुत कठोर और दुखदायी है। परन्तु, मिस्टर एल्फिंस्टन ने अदालतों में भी एक बहुत आवश्यक सुधार किया है कि कचहरियों में चलने वाली फारसी भाषा को बहिष्कृत करके सब काम गुजरात की भाषा में चालू किया है। फिर भी, बहुत-सी बुराइयाँ हैं; ऐसे देश में जहाँ एक ओर लोगों को गरीबी दूसरी ओर ब्याज-बट्टे की भारी दरें खाए जा रही है, ऐसी बातों के नतीजे हमेशा दुःखप्रद ही निकलते है; और, इन हुक्मनामों, फैसलों, बेदखलियों और दूसरी अदालती कार्रवाइयों से, जो यद्यपि आदमी आदमी के बीच न्याय करने की दृष्टि से ही जारी किए जाते है; असन्तोष बढ़ रहा है, लगातार गाँव के गाँव उजड रहे है, पुराने खानदान बरबाद होते जा रहे है, बहुत से आदमियों के पुश्तैनी और बहुत पुराने घर टूट-टूट कर उनके माथों (सिरों) पर पड़ रहे है; इन कारणों से बहुत से लोगों में

→ मृत्यु हो गयी। "भारत के उत्तरी प्रान्तों में यात्रा का विवरण" (Narrative of a Journey through the Upper Provinces of India) नामक उसकी पुस्तक जिसमें से यहाँ उद्धरण दिया गया है, उसकी मृत्यु के उपरान्त 1828 ई. में प्रकाशित हुई थी। दो पुनर्विचार—न्यायालय, दीवानी मामलों के लिए 'सदर दीवानी अदालत' और फौजदारी मुकदमों के लिए 'सदर निजामत अदालत', की स्थापना वारेन हेस्टिंग्स् के जमाने मे हुई थी। इसके साथ-साथ लार्ड नार्थ (Lord North) के रेग्यूलेटिंग एक्ट (1773 ई.) के तहत एक सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) भी कायम किया गया। 'कम्पनी की सदर अदालतों और दूसरी कचहरियों के न्यायाधीश अंग्रेजी कानून बिल्कुल नही जानते थे और उनको आदेश था कि जब तक कोई हिन्दू नियम या मुस्लिम कानून अथवा रेग्यूलेशन लागू न हो तब तक वे समानता, न्याय और सद्भावना का आधार लेकर ही फैसले करे। सर्वोच्च न्यायालय में दीवानी व फौजदारी दोनों ही तरह के मामलों में अंग्रेजी कानून चलता था और कार्यवाही भी उसी के अनुसार होती थी। इस प्रकार ये दोनों अदालती तरीके परस्पर विरुद्ध थे।' (इम्पीरियल गजेटियर (1907) भाग 4, पृ. 145)

यह गड़बड़ी, अन्तिम रूप से, 'इण्डियन हाईकोर्ट एक्ट 1861 ई०' द्वारा समाप्त कर दी गई और हर एक प्रेसीडेन्सी मे अदालते व सुप्रीम कोर्ट एक कर दी गई। बाद में, स्वयं फार्बस भी बम्बई की अदालत के जज रहे थे; उन्होंने भी पुराने तरीके की बुराइयों का जिक्र किया है।

हाकिमों (जजों) के प्रति भय और घृणा के भाव फैल रहे हैं, जो खानगी कर्जों की वसूली में बहुत सख्ती बरतते हैं – ऐसी सख्ती कि जिसका प्रयोग करने का विचार देशी सूबेदारों ने, जो अन्य बातों में कहीं ज्यादा जुल्मी रहे होंगे, कभी नहीं किया, न ऐसा करने की कभी हिम्मत ही की। इसका एक अच्छा परिणाम भी हुआ है; कर्जे की वसूली में आसानी हो जाने से ब्याज की दर कम हो गई है। परन्तु, इस प्रणाली की बुराइयों को देखते हुए यह प्रतिफल नहीं के बराबर है– क्योंकि न जाने कैसी-कैसी परिस्थितियों में लिए हुए ऋण को चुकाने के लिए जुलाहे को अपने करघे से हाथ धोना पड़ता है, किसान का हल छिन जाता है और सामन्ती ठाकुर के किले की छत उतरवा ली जाती है; और जब किसी गाँव के लोग अकाल-दुकाल में बाहर चले जाते हैं और जिन पर थोड़ा या बहुत कर्जा बाकी होता है तो अच्छे समय में भी उस कर्जे के मारे उनके लिए अपने घरों और भूमि में लौट कर आना असम्भव हो जाता है।

उष्ण कटिबन्ध में रहने वाले लोगों की आदतों व रहन-सहन को एकदम बदल कर कोने में पड़े हुए एल्बियन (Albion)[11] टापू के निवासियों जैसा बना देने का यदि प्रयास किया जाय और जार्ज चतुर्थ[12] के प्रजाजनों के लिए जो कायदे-कानून उपयुक्त थे उनको, अन्तरिम यत्न किए बिना, यदि किसी ऐसे जनसमाज पर लाद दिए जावें जिसकी स्थिति का बहुत कुछ साम्य एल्फ्रेड[13] के राज्यकाल के लोगों की दशा से हो सकता है तो इससे कम भयंकर परिणाम निकलने की आशा नहीं रखनी चाहिए।

————

11. लैटिन भाषा में albus (एल्बस) शब्द का अर्थ है 'सफेद'; रोमन लोगों ने जब पहले पहल डोवर (Dover) की सफेद चट्टाने देखीं तो उन्होने ब्रिटेन के टापू का नाम (Albion) एल्बिआन रक्खा था इसलिए 'एल्बिआन टापू' से यहाँ इंगलैण्ड के द्वीप से तात्पर्य है।
12. जार्ज चतुर्थ ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंण्ड का बादशाह (1820–1830 ई०) था। वह अपने पिता जार्ज तृतीय के समय मे ही राज्य का राजप्रतिनिधि बन गया था। इससे पूर्व वह इस पार्लियामेण्ट में विरोधी-दल के प्रमुख व्हिग सदस्यों मे माना जाता था।
13. एल्फ्रेड (871–901 ई.) इंगलैण्ड का राजा था। वह बहुत प्रसिद्ध था और 'महान्' विरुद का उपभोग करता था।

यहाँ एल्फ्रेड और जार्ज चतुर्थ के समय में एक सहस्राब्दि का अन्तर सूचित करते हुए लेखक ने यह स्थापित करने की चेष्टा की है कि भारत के प्रान्तों में इंगलैण्ड के नए कानून लागू करना एक हजार-वर्ष का लम्बा कदम उठाने के बराबर था।

प्रकरण-छठा

धर्मोपचार—पर्व और त्योहार

हिन्दू-देवालय की सामान्य बनावट का सुगम वर्णन करने के लिए एक बार फिर हम चित्र का ही आश्रय लेंगे। जिस गर्भगृह में उपास्य की मूर्ति विराजती है उस पर घण्टे की सी आकृति वाला 'शिखर' अवश्य होता है; आगे का मण्डप खुला होता है और जिस मन्दिर में शिव की मूर्ति होती है उसके मण्डप में उनके वाहन नन्दी (वृषभ) की प्रतिमा रहती है। वैष्णव मन्दिरों में विशेषतः दो मण्डप होते हैं जिनमें से एक बन्द और दूसरा खुला होता है। इन पर भी जैन-मन्दिरों के समान कभी-कभी तीन शिखर होते हैं जिनमें से बीच का शिखर अन्य दो की अपेक्षा अधिक ऊँचा होता है। देवालय के आसपास धर्मशाला या सेवकों और पुजारियों के रहने के मकान बने होते हैं। आसपास की इमारतें भी, विशेषतः जैन मन्दिरों में, छोटे-छोटे शिखरों वाली देव-कुलिकायें होती हैं, ऐसी दशा में, रहने के मकान उनसे कुछ हट कर बनाए जाते हैं, परन्तु यह समस्त भवन-समूह प्रायः परकोटे से घिरा होता है। एक विशाल देवालय तो, वास्तव में, गाँव जैसा ही लगता है; आसपास की इमारतें साक्षात् आवास-गृहों जैसी जान पड़ती हैं और वे काष्ठ में सुन्दर कोरणी किए हुए काम से सुसज्जित होती हैं। कभी-कभी उनका सम्पूर्ण बाहरी भाग मोटी चित्रकारी से भरा होता है जिसमे विवाह, गृहोत्सव अथवा प्रायः देवताओं के पराक्रम के चित्र बने होते हैं। हिन्दुओं के धर्म-स्थानों के पास छोटे-छोटे पानी के कुण्ड, भंवरिया कुएं, आकर्षक बावड़ियाँ अथवा विशाल जलाशय किसी न किसी रूप में अवश्य बनाये जाते हैं। ईसाइयों के मध्यकालीन गिर्जाघरों की तरह गुजरात के हिन्दू देवालय भी प्रायः बहुत ही सुन्दर प्राकृतिक स्थानों पर निर्मित हुए हैं। गहन अन्धकारपूर्ण कुञ्जों, पर्वतीय उपत्यकाओं के रोमाचक सौन्दर्य, सरिता तट की भव्यता, मेघाच्छन्न गिरि-शिखरों की रमणीयता तथा सागर-वेला की गम्भीर शान्ति—यही ऐसे साधन हैं कि जिनका पूरा लाभ लेने की कला में शिव और आदिनाथ के धर्मोपासक भली भांति निपुण होते हैं।

शिव-मन्दिरों के पुजारी प्रायः गुसाईं होते हैं; विष्णु-मन्दिर में ब्राह्मण अथवा वैरागी पूजा करते हैं; देवी के मन्दिर के पुजारी छोटी जाति के ब्राह्मण (भरड़ा)

या गुसाईं अथवा कभी-कभी मुसलमान[1] भी होते हैं जैसे बहुचराजी के। जैन-मन्दिर का पुजारी किसी भी जाति का हो सकता है, परन्तु यहां एक विचित्र प्रतिबन्ध है कि वह पुजारी श्रावक या सामान्य जैन नहीं होना चाहिए। इनमे प्रायः भोजक ब्राह्मण रखे जाते हैं, जिनका वर्णन पहले कर चुके हैं। गुसाईं मठाम्नाय के अनुयायी और शिवोपासक होते हैं। वे भगवा रंग के वस्त्र पहनते हैं और ललाट पर आड़ा तिलक लगाते हैं।[2] वैरागी वैष्णव साधु होते हैं वे श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और खड़ा तिलक (ऊर्ध्वपुण्ड्र) लगाते हैं। जो देवी के उपासक होते हैं वे तिलक के साथ लाल चांदला (बिन्दी) भी लगाते हैं; यह चांदला लगाने का द्रव्य कुंकुम से तैयार किया जाता है। जैन साधुओं को सामान्यतः 'जती' नाम से अभिहित किया जाता है, परन्तु, इस प्रकार के साधुओं को प्रायः सन्यासी कहते हैं। आजकल इन सन्यासियों में बहुधा ऐसे लोग होते हैं जिनकी सम्पत्ति नष्ट हो गई है, सन्तान जाती रही है अथवा जिन पर और कोई आपत्ति आ पड़ी है जिसको सहन करने का उनमें साहस नहीं है। सन्यास ग्रहण करने वाला पहले कोई 'गुरु' अथवा सन्यासी महन्त तलाश करता है, जो उसको अपनी जमात में शामिल कर ले फिर शुभ मुहूर्त देख कर, यदि वह द्विज होता है तो, यज्ञोपवीत को भग्न कर देता है, सिर मुंडवा लेता है और सन्यासी के वस्त्र धारण करके दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त भिक्षा और भजन करता हुआ जीवनयापन करता है। कभी-कभी लोग छोटी अवस्था में ही सन्यास ले लेते हैं; यदि किसी मनुष्य के सन्तान होने की आशा नहीं होती है तो वह यह प्रण करता है कि उसके दो पुत्र हो जावेंगे तो एक को सन्यासाश्रम के भेंट कर देगा; और, जैनों में जब चेले नहीं मिलते हैं, जैसा कि प्रायः होता है, तो वे दीक्षा देने के बच्चे खरीद लेते हैं।[3]

---

1. बहुचराजी के पुजारी कमलिया मुसलमान नहीं हैं, वे तो केवल वहां के मूल निवासी हैं। पुजारी श्रीमाली या औदिच्य ब्राह्मण हैं। बहुचराजी ने उस स्थान पर अपना प्रभाव प्रकट किया है।
   'कमालिया' शब्द अरबी भाषा के कमाल शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है 'चमत्कार' या मंजिल पर पहुँचा हुआ।
2. "तुम मुर्दों के लिए अपने शरीर में से मांस नहीं तराशोगे और न अपने शरीर पर कोई चिन्ह ही अंकित करोगे। मैं ही सबका स्वामी हूं।"
   —लैविटिकस, अध्याय 19; पद 28 वां।
   विशॉप पैट्रिक ने टिप्पणी की है कि शरीर पर चिन्ह चित्रित करना या नामाक्षर अंकित करना, इस बात का सूचक है कि वह मनुष्य किसी कल्पित देवता का भक्त है।
3. कुछ वर्षों पहले हम गुसांई शम्भु पुरी से मिले थे। उसने अपना वृत्तान्त इस प्रकार बताया— →

'मानसिक पूजा' के विषय में हम पहले लिख चुके हैं, उससे पाठकों को ज्ञात हुआ होगा कि हिन्दुओं की साधारण उपासना की रीति यह है कि वे अपने आराध्य की प्रतिमा के आगे वैसा ही आचरण करते हैं जैसे कोई सेवक या दास अपने स्वामी के सामने करता है। विष्णु के मन्दिर में, बहुत आचार विचार के साथ, दिन में पाँच बार पूजा होती है जिससे हिन्दुओं के पुराने जमाने के गृहस्थ में दैनिक रहन-सहन की एक स्पष्ट-सी रूपरेखा सामने आ जाती है। प्रातः काल जब मनुष्य सो कर उठते है तब देवालय में घण्टे बजते हैं; देव को जगाने के लिए राज-नौबत और शंख बजाए जाते है। मुख्य पुजारी नहा धोकर मन्दिर मे प्रवेश करता है और पाँच या सात बत्तियों से प्रतिमा की आरती करता है। सुबह के आठ या नौ बजे ऋतु के अनुसार देव-प्रतिमा को वस्त्र धारण कराए जाते हैं। सर्दी के दिनों मे रूई का दगला पहनाया जाता है और तापने के लिए सिगड़ी जला कर पास में रख दी जाती है; ग्रीष्म ऋतु मे ठंडक पहुँचाने को ठाकुर जी के चन्दन का लेप लगाया जाता है और बारीक मलमल के वस्त्र धारण कराये जाते हैं

→ "मेरा जन्म बीकानेर में हुआ था और मैं मोरू गाँव के ठाकुर पृथ्वीसिंह शिवसिंह का पुत्र हूं। जब में राजपूत था तब मेरा नाम खेतसिंह था और राठौड़ जाति का था। जब मैं चार या पाँच वर्ष का था तब बीकानेर के राजा सूरतसिंह ने मोरू की जागीर जब्त कर ली और मेरे पिता इसे पुनः प्राप्त करने के लिए बाहर-बाट हो गये। तेरह वर्ष की अवस्था तक मैं भी अपने पिता के साथ बाहरबाट की तरह ही रहा। तब मेरे पिताजी ने मुझे बीकानेर से बारह कोस की दूरी पर 'करणी माता जी' के मन्दिर में रख दिया। जब राजा को यह समाचार मिला तो उसने मुझे दरबार में बुलाया, सिरोपाव दिया और अपने पास रहने की आज्ञा दी; परन्तु मुझे उनके दगा करने का शक हुआ इसलिए मे वहाँ से भाग निकला और मारवाड़ मे पोहकरण के पास होती नामक गांव में चला गया; वहां पर 'महादेव' का एक मन्दिर है जिसके तत्कालीन महन्त का नाम चन्दन पुरी था। मैं उस मन्दिर में दस दिन रहा और उन लोगों का रहन-सहन देख कर मेरे मन में आया कि बाहरबाट बन कर रहने की अपेक्षा वहाँ रहना ही अच्छा था। मेरे केश उतरवा दिए गए और मुझे चेला बना कर गुरु ने दीक्षा दी। इसके बाद दस वर्ष तक मैं उसी मठ में रहा और फिर हिंगलाज की यात्रा करने गया। तब से मैं हिन्दुओं के तीर्थ-स्थानों में घूमता ही रहता हूं; काशी, ज्वालामुखी, हरिद्वार, द्वारका और अन्य अनेक स्थान मैंने देखे है। अब, मेरी अवस्था चालीस वर्ष की है। कोई दस वर्ष पहले मैं अपने घर वालों से मिलने गया था, उस समय मेरे बड़े भाई बीरजी, मेरे काका मानसिंह और उनका पुत्र रघुनाथ जीवित थे परन्तु मेरे पिता का स्वर्गवास हो चुका था। उन लोगों ने मुझे अपने पास रहने के लिए बहुत कहा परन्तु मैं किसी तरह चला आया।"

तथा पुष्पों और मणि-माणिक्य से शृंगार किया जाता है; प्रतिमा को जलकुन्ड में विराजमान करके पुजारी तयार करते हैं। वर्षा ऋतु में देव को लाल वस्त्र और दुशाला पहनाया जाता है। इसी समय (आठ या नौ बजे) 'कलेऊ' अर्पण किया जाता है जिसमें चावल, दूध एवं ऐसे अन्य पदार्थ होते हैं जिनका धनाढ्य लोग उपयोग करते हैं। उस समय 'षोड्शोपचार पूजा सहित थाल अर्पण किया जाता है, जिसका वर्णन हम अभी आगे करेंगे। तीसरी पूजा दोपहर में होती है; देव को फिर चन्दन चढ़ाया जाता है ताजा पुष्पों से उनका शृंगार किया जाता है, दीपक जलाये जाते हैं, धूप खेई जाती है और ऋतु के अनुकूल भोग लगाया जाता है। फिर उनको शयन करा देते हैं। उस समय मन्दिर में बिलकुल शान्ति रखनी पड़ती है। तीन बजे-चौघड़िया (नौबत) बजता है जिससे यह सूचना मिलती है कि देव दोपहर के विश्राम के अनन्तर उठ गए हैं; उस समय सेवक फल-फूल, मिठाई आदि लाते हैं और शतरंज, चौपड़ आदि मनोरंजन की सामग्री जुटाते हैं। सब से महत्व-पूर्ण चौथी पूजा-सन्ध्या समय होती है—इस समय सम्पूर्ण षोडशोपचार पूरे किए जाते हैं। देव का मन्दिर में आह्वान किया जाता है, उनके विराजने के लिए आसन सजाया जाता है. अर्घ्य और पाद्य अर्पण किये जाते हैं और मुखप्रोक्षण के लिए तीन पात्रों में आचमनीय प्रस्तुत किया जाता है। स्नान की सज्जा पूजा का छठा उपचार है; तदनन्तर यज्ञोपवीत और वस्त्र भेंट किए जाते हैं; फिर चन्दन-गन्ध, पुष्पमाला (माल्य) और धूप अर्पण किए जाते हैं। दीपक प्रज्वलित करना पूजा का बारहवां (ग्यारहवाँ) उपचार है; फिर भाँति-भाँति के व्यंजनयुक्त नैवेद्य और तदनन्तर ताम्बूल अर्पण करते हैं और प्रातःकाल की तरह की बहुदीपक-सज्जित आरती उतारी जाती है। आरती के बाद पुजारी प्रतिमा के चारों ओर प्रदक्षिणा-करता है, जैसे रक्षक घूमता है. यह पन्द्रहवां उपचार है और फिर स्तुति के साथ नमस्कार करके पूजा समाप्त हो जाती है।

कुछ लोग एक प्रदक्षिणा करते हैं, कुछ सात बार परिक्रमा लगाते हैं और कोई-कोई एक सौ आठ बार परिक्रमा में घूमते हैं। प्रत्येक प्रदक्षिणा में भक्त निम्न-लिखित मंत्र (श्लोक) का उच्चारण करता रहता है—

पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसंभवः ।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष ! सर्वपापहरो हरिः ॥
यानि कानि च पापानि मेरुमंद्रसमानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणायां पदे पदे ॥

अर्थात्—"मैं पापरूप हूँ, पापकर्म करने वाला हूँ, पापात्मा हूँ, पाप में ही उत्पन्न हुआ हूँ; हे कमल के समान नेत्र वाले भगवन् पुण्डरीकाक्ष ! मेरा उद्धार करो क्योंकि आप सभी पापों के हरने वाले हरि हैं।

मेरे जो कोई मेरु पर्वत के समान भी पाप हों तो वे सब प्रदक्षिणा के पद-पद में नष्ट हो जावें।"[4]

वैष्णव मन्दिरों में प्राय: दो मूर्तियां होती हैं, सीता और राम की अथवा कृष्ण और राधा की; राम के भाई लक्ष्मण की मूर्ति भी बहुधा पाई जाती है। राम-जन्म अथवा कृष्ण-जन्म तथा किसी अन्य उत्सव या पर्व के दिन मूर्तियों को मुकुट धारण कराये जाते हैं और उनका राजसी पोशाक में शृंगार किया जाता है। होली के अवसर पर देव को पीला वागा धारण कराया जाता है, गुलाल और पिचकारी आगे रखी जाती है और ऐसा ध्यान किया जाता है कि वे उत्सव में भाग ले रहे हैं (होली खेल रहे हैं)। एक अन्य अवसर (जल-यात्रा) पर विष्णु की प्रतिमा को किसी नदी या तालाब पर ले जाते हैं, जहां उसको स्नान कराते हैं और यदि जल पुष्कल होता है तो नाव में विराजमान करके नौका-विहार कराया जाता है।

शिव और देवी (शक्ति) के मन्दिरों में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ पूजा ही होती है। जैन लोग अपनी प्रतिमाओं को केवल स्नान कराते हैं, उन्हें पोंछते हैं, चन्दन चर्चित करते हैं और रत्नाभूषणों से अलंकृत करते हैं। वे सन्ध्या समय आरती

---

4. मिलाइये—मिसलेटो (Misletoe) के पत्तों या शाखाओं के बिना कोई पूजा या बलि सम्पन्न नहीं होती थी; पूजा चक्र में प्रवेश करने के पहले वे सूर्य की गति के अनुसार उसकी प्रदक्षिणा करते थे और पूजा या बलि समाप्त होने के बाद भी ऐसा ही करते थे।

'चक्र की प्रदक्षिणा को 'डीयास सोइल' (Deas Soil) कहते हैं; अर्थात् दक्षिण और Soil अर्थात् सूर्य, जिसका अर्थ हुआ, सूर्य के साथ दक्षिण दिशा में।

'विवाह, स्त्री के प्रसव के अनन्तर धर्मोपचार और भूमिदाह के अवसर पर भी ऐसी प्रदक्षिणाएं देखी गई हैं। ड्रूइड (Druid) अर्थात् महन्तों[+] (बड़े पदारियों) में ही नहीं अपितु पालों (Pallas) के अन्तिम संस्कार के अवसर पर भी यह प्रथा पाई जाती है; —Vigil, AE. Lib. XI, 188–190. 'वे चमकते हुए शस्त्रों से सुसज्जित हो कर चिता के चारों ओर दौड़ते हुए तीन बार घूमें; चिता की अग्नि पर सशोक जल छिड़का और फिर दाहक्रिया की।" —Lachlan Shaw's History of Moray

---

+ गाल (Gaul) ब्रिटेन और आयर्लेण्ड के पादरी Druid कहलाते थे; मुख्य की नियुक्ति चुनाव द्वारा होती थी और वह आजीवन उस पद का उपभोग करता था।

भारत में बड़े मठाधीशों और शंकराचार्यों आदि की नियुक्ति की प्रणाली का इससे कहां तक मेल है, यह अध्ययनीय है। (हि. अ.)

उतारते हैं। श्रावक और मुख्यतः धार्मिक स्त्रियाँ जब पूजन करने देवालय में जाती हैं तो एक सुन्दर कोथली (थैली) में चावल भर कर ले जाती हैं। प्रतिमा के पास ही एक सन्दूक रहता है जिसके ढक्कन में एक छिद्र होता है; वे अपना चावल उसमें डाल देती हैं। प्रत्येक आठवें तथा दसवें दिन वह सन्दूक खोला जाता है और जो धान्य उसमें एकत्रित होता है वह कबूतरों को डाल दिया जाता है या अन्य किसी तरह उसका उपयोग कर लिया जाता है; परन्तु किसी भी तरह, उसमें कीड़े पैदा होने से पूर्व उसे बरत लिया जाता है। कितने ही लोग उस पेटी में पैसे डालते हैं; यह पेटी 'भण्डार' या कोष कहलाती है इसलिए जान पड़ता है, शायद पहले पैसे डालने का रिवाज रहा हो।

गुजरात में हिन्दू लोग वर्ष को तीन भागों में बांटते हैं, सियालो अर्थात् शरद ऋतु, उन्हालो अर्थात् ग्रीष्म ऋतु और चौमासो अर्थात् वर्षा ऋतु। प्रथम ऋतु के महीने कार्तिक, मंगसिर, पौष और माघ होते हैं; फाल्गुन, चैत्र, वैशाख और जेठ दूसरी ऋतु के तथा आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आशो (आश्विन), ये तृतीय ऋतु के मास हैं। प्रत्येक मास शुद और वद (पक्षों) में विभक्त होता है जिनमें से प्रथम पक्ष में चांदनी रातें होती हैं।[5]

---

5. देशी महीनों से मिलते हुए अंग्रेजी महीने इस प्रकार हैं—

ऋतु	देशी महीना	अंग्रेजी महीना
सियालो	कार्तिक	नवम्बर
	मार्गशीर्ष	दिसम्बर
	पौष	जनवरी
	माघ	फरवरी (फेब्रुअरी)
उन्हालो	फाल्गुन	मार्च
	चैत्र	अप्रैल
	वैशाख	मई
	जेठ	जून
चौमासो	आषाढ़	जुलाई
	श्रावण	अगस्त
	भाद्रपद	सितम्बर (सैप्टेम्बर)
	आशो (आश्विन)	अक्टूबर

अधिकतर उत्तर भारत में और किसी हद तक दक्षिण में भी पूर्णिमान्त मास माना जाता है अर्थात् महीना उस दिन समाप्त होता है जिस दिन चन्द्रमा का पूर्ण बिम्ब उदित होता है; दक्षिण भारत में और कहीं कहीं उत्तर भारत में अमान्त मास माना जाता है जिसके अनुसार महीना अमावस्या को समाप्त होता है जिस दिन चन्द्रमा बिलकुल दिखाई नहीं देता। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण में प्रयुक्त तिथियों में मास-भेद से कई बार 15 दिन का अन्तर पड़ जाता है।

पहला त्योहार, जिसका हम वर्णन करेंगे, आसोज मास[6] के अन्तिम तीन दिनों में मनाया जाता है। इस मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को 'धनतेरस' कहते है। हिन्दू लोग प्रातः काल स्नानादि से निवृत्त होकर कुछ चांदी के सिक्कों को सावधानी से अच्छी तरह उजालते है; फिर, एक चौकी पर रख कर उनका पूजन करते हैं; रोली, पुष्प, सुगन्धित द्रव्य, धूप और दीप एवं अन्य पूजा सामग्री अर्पण करते हैं। इसी प्रकार गडरिये, ग्वाले और अन्य ऐसा ही धन्धा करने वाले लोग अपने पालतू जानवरों को सजाते है और उनको पूजते हैं। मछली पकड़ने वाले मांझी अपने जाल का पूजन करते हैं।[7] ये सब काम वे व्रत रख कर करते हैं और जब पूरे हो जाते हैं तो

(इस विषय में विस्तार से जानने के लिए बारनेट (Barnett) कृत एन्टीक्विटीज़ आफ इण्डिया' (Antiquities of India) नामक पुस्तक पढ़ना चाहिए)।

शुक्ल पक्ष को शुदी और कृष्णपक्ष को वदी कहते हैं; इसका कारण यह है कि 'शुदि' में शुक्लपक्ष और दिन, इन दोनों शब्दो के आद्य अक्षर लिए गए हैं और 'वदि' मे बहुल अर्थात् कृष्ण और दिन शब्दों के आद्य अक्षर लेकर संक्षिप्त रूप बनाया गया है।

इसी प्रकार किसी लेख के अन्त मे 'मिति' लिख कर आगे तिथि, वार, संवत् आदि लिखते है;, इसका कारण यह है संस्कृत में कोई लेख लिख कर अन्त मे 'शुभम् इति' लिखते है, इनकी सधि करके 'शुभंमिति' हुआ। इसी को लेकर बाद मे किसी भी लिखावट को समाप्त करके शुभ मिति या मिती लिखने का रिवाज चल गया और 'मिति' शब्द तिथि का वाचक बन गया।

एक और रोचक बात का यहाँ उल्लेख करते है। बहुत पहले नही तो बीच के समय में राजा, ठाकुर या बड़े मन्त्री आदि बहुत कम लिखते थे। जब उनके लेखक कोई मजमून लिख कर उनके सामने प्रस्तुत करते तो उसको स्वीकृत करने के लिए अन्त मे वे 'मिति' अपने हाथ से लिख देते थे अर्थात पूरा विषय और अन्त मे 'शुभ' तक तो लेखक लिखता और आगे 'मिति' और कभी-कभी तिथि लिख कर विराम वे बड़े आदमी लगा दिया करते थे। इस प्रकार 'मिति' करने के उपरान्त वह लेख प्रामाणिक माना जाता था।

लेखों, पट्टों-परवानों, सन्धियो आदि पर 'श्रीरामजी' 'राम-राम' 'सही' या कटार का निशान भी राजा या ठाकुर आदि अंकित करते थे। इनका अनुसन्धान करना भी रोचक होगा। (हि. अ.)

6. पूर्णिमान्त मास मानने वालों के हिसाब से दीपावली कार्तिक कृष्णा अमावस्या को मनायी जाती है। (हि. अ.)

7. 'इसीलिए वे अपने जालों के बलि चढ़ाते हैं और उनके आगे धूप जलाते हैं

सायंकाल प्रत्येक गृहस्थ अपने घर में गोठ (सहभोज) करता है। शाम के वक्त, सब गांव-वाले दरवाजे के बाहर एकत्रित होते है और जब ग्वाले खेतों से ढोरों को लाते है तो उन्हें खूब दौड़ाते हैं; यही, दृश्य वे लोग देखते हैं। गांव में लौट कर वे अपने-अपने घरों में रोशनी करते हैं। दूसरा दिन 'काली चौदस' कहलाता है और उस दिन हनुमान का पूजन होता है; रात्रि का समय मन्त्र-साधन के लिए अच्छा समझा जाता है। इस रात्रि में भी खूब दीपक जलाये जाते हैं, परन्तु दूसरे दिन रात के समय बहुत अधिक संख्या में दीपक प्रज्वलित किए जाते हैं और इन दीपकों की पंक्ति के कारण ही यह त्योहार 'दीपावली'[8] कहलाता है।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को नववर्ष का प्रथम दिन होता है; उस दिन हिन्दू अपने देवताओं के आगे अन्नकूट अर्थात् सब प्रकार के अन्नों से निर्मित भोजन-सामग्री का समूह सजाते हैं। प्राचीन काल में इस दिन इन्द्र की पूजा होती थी परन्तु जब कृष्णावतार हुआ तो श्रीकृष्ण ने स्वर्ग के राजा के बदले गोवर्द्धन पर्वत की पूजा

क्योंकि उन्हीं के कारण उनको अधिक भाग प्राप्त होता है और मांस की कमी नहीं रहती।" 'क्रिश्चियन ईयर' "हबक्कुक, 1;15"

इसी बात की ओर Christian Year का लेखक इस प्रकार इंगित करता है—'हम अपने जालों के सामने नमन नहीं करते हैं क्योंकि शाश्वत के छोर पर फरिश्ते हमारे अर्घ्य को तो स्वीकार कर लेते हैं परन्तु हमको सदा के लिए वहिष्कृत कर देते हैं।'

8. 'दीपों' अथवा 'दीवों' अर्थात् दीपकों की 'आली' पंक्ति, अतः दीपावली या दीवाली।

जैन-धर्मावलम्बी दीपावली का आरम्भ इस प्रकार मानते हैं कि 'चौवीसवें तीर्थंकर वीर प्रभु ने हस्तिपाल राजा की नगरी में अन्तिम चौमासा किया। वे राजसभा में 'पीत देशना' देते थे तभी आसोज वदी अमावस को दो घड़ी रात गए शान्ति नक्षत्र में वे मोक्ष को प्राप्त हुए; उस समय सभी देवता उनके समीप आए तो सर्वत्र प्रकाश व्याप्त हो गया। वीर प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया इसलिए जगत् में अन्धकार छा गया, अतः अन्य लोगों ने द्रव्य-दीपक प्रकट किये।

राम ने विजय दशमी के दिन रावण का वध किया और वे जिस दिन लौट कर अयोध्या पहुँचे उस दिन आसोज वदी अमावस थी। राम के आगमन पर प्रजाजनों ने दीपक जलाए थे, तभी से इस त्योहार की महिमा है।

श्री कृष्ण ने ब्रह्मदेश के राजा नरकासुर को मार कर 16,108 राजकुमारियों को मुक्त किया और उनसे विवाह करके वे आसोज वदी अमावस के दिन द्वारका पहुँचे। उसी के उपलक्ष में दीपोत्सव मनाया गया। तभी से यह उत्सव अब तक चालू है।

चालू करवा दी; इसीलिए इस दिन हिन्दू गोवर्द्धन पर्वत की प्रतिमा बनाते हैं, उस पर ध्वजारोहण करते हैं और बहुत-सी वृक्ष की शाखाएँ और फल-फूल चढाकर उसका पूजन करते हैं। व्यापारी वर्ग उस दिन नये वहीखाते बदलते हैं और षोडशोपचार से शारदा या सरस्वती-पूजन करते हैं। उन वहीखातों को केवल स्नान नहीं कराते। वही के प्रथम पृष्ठ पर कुंकुम से स्वस्तिक आदि बनाते हैं, रोली छिड़कते हैं और नीचे लिखे प्रकार से पूजन-सामग्री का अंकन करते हैं; इसको वे शुभ शकुन मानते हैं—

"श्री:,
श्रीगणेशाय नमः।
श्री शारदाजी सत्य छै।
श्री लक्ष्मीजी रो भण्डार भरपूर रहे।
श्री अम्बाजी माता सत्य छै।
श्री बहुचराजी सत्य छै।

विक्रम सवत् 1908 कार्तिक शुदि 1 शनिवारे श्री भावनगर मे श्री विजयसिंह राज्य करै छै त्याना तिलायत कुंअर श्री दाजी राज छै और देशाई सूरजराम प्रधान छै; यो चोपडो शा. मोतीचंद सूरजचद रो छै।

जमा	नाम ....
कुंकु सेर 0।	कुंकु सेर 0।।
साकर (शक्कर) सेर 1	शक्कर सेर 1
सुपारी सेर 0।	सुपारी सेर 0।
जायफल नग 7	जायफल नग 7"

वैशाख शुदी 3 का दिन गुजराती भाषा में 'आखात्रीज' कहलाता है और ऐसा मानते हैं कि उसी दिन समुद्र मे से पानी भरे बादल उठने शुरू होते हैं तथा सागर नौका चलाने योग्य नही रहता। इसी दिन बहुत से शकुन भी देखे जाते हैं। द्वितीया के दिन सायंकाल हिन्दू लोग गाँव के बाहर जाकर अनाज से ग्राम-रचना करते है जिसमे विविध प्रकार के अन्न की छोटी-छोटी ढेरियाँ लगाते है; राजा का प्रतीक तावे का एक पैसा और प्रधान के रूप मे सुपारी रखते है; थोड़ी-सी रुई, शक्कर और अन्य पदार्थ भी रखे जाते है। तृतीया के दिन प्रात.काल वे ग्रामवासी उन सब की परीक्षा करते है। यदि रात्रि के समय चीटियाँ आकर किसी अन्न की ढेरी का नुकसान करती है तो वे लोग यह अनुमान लगाते है कि आने वाले वर्ष में वह धान्य कम उपजेगा। जिस दिशा मे रुई सरक जाती है तो उनके अनुमान से उसी दिशा मे रुई की अधिक माँग होगी; इसी प्रकार पैसे और सुपारी का हिलना-डुलना देख कर वे राजा और मन्त्री की स्थिरता, वृद्धि अथवा आपत्ति आदि का

विचार करते हैं। यह प्रथा, अब भी, गुजरात की अपेक्षा मारवाड़ में अधिक प्रचलित है। कृष्ण जी कवि कृत 'रत्नमाला' में हमें शकुनों के विषय में पूरा विवरण मिलता है। रणक्षेत्र में जाते समय एक सेना की निम्नलिखित अपशकुनो के कारण हार हुई—

'प्रथम प्रयाण करते ही सम्मुख छींक हुई और कुत्ते रोने लगे, यह शकुन ठीक नहीं हुआ। दाहिनी ओर बिल्ली उतरी; गधे रेंकने लगे और गिद्धों ने भयंकर शब्द किया। सामने ही विधवा, सन्यासी और तिलकहीन ब्राह्मण व उदासी साधु मिले; बरतन में आटा लिए हुए कोई मिला और बिखरे हुए केशों वाली स्त्री सामने आई।'[9]

दूसरी बार उसी सेना को सद्भाग्य से लगातार शुभ शकुन हुए—"सामने ही उनको एक विद्वान् ब्राह्मण मिला जिसके हाथ में पुस्तक थी; सधवा पनिहारी मिली जिसके साथ बच्चा भी था; शस्त्रधारी क्षत्रिय घुड़सवार मिला; पुष्पहार लिए हुए माली मिला; बछड़े सहित पूजिता गाय मिली जिसके सींग लाल रँगे हुए थे और गले में माला पड़ी हुई थी।"[10+]

---

9. चौपाई—प्रथम चलत सम्मुख भई छींका।
रोवत श्वान शकुन नहि नीका॥
उतरत दच्छिन भाग मंजारा।
बोलत रासभ गिद्ध भयकारा॥
मिल सनमुख विधवा सन्यासी।
तिलकहीन द्विज कोउ उदासी॥
पिष्ट पात्र धर बिखरित केशा।
मिल ऐसे शंकित नहि लेशा॥

10. चौपाई—मिल्यो द्विज पण्डित पुस्तकधार।
मिली सधवा ससुता पनिहार॥
मिल्यो अश्वार छत्री सहथ्यार।
मिल्यो फूल पात्र ग्रही त्तककार॥
मिली सुरभी सवछा अरचीत।
विलोकी भइ नृप की बहु प्रीत॥

+ ब्राण्ड (Brand) ने 'पापुलर एण्टीक्विटीज़' (Popular Antiquities) नामक पुस्तक में लिखा है "छींक बहुत प्राचीन काल से ही अशुभ मानी जाती है।" युस्टाथिअस (Eustathius) ने होमर (Homer) के विषय में टिप्पणी करते हुए बहुत पहले लिखा है कि बाएँ हाथ की छींक अशुभ होती है परन्तु दाहिने हाथ की शुभ फल देने वाली होती है। ईसाइयों में छींकने वाले मनुष्य को आशीर्वाद देने का→

एक आधुनिक गुजराती ग्रन्थकार ने लिखा है—'एक गाँव में, आखातीज के दिन, पाँच आदमी सुबह-सुबह दरवाजे के बाहर शकुन देखने गए। गीदड़ों और दूसरे जानवरों का शोर सुन कर वे वापस घर की ओर लौटे। जाते-जाते उनमें से एक आदमी रुक कर बैठ गया और बाकी चारों उसकी इन्तजारी में खड़े रहे। उस समय उन्होंने एक कृषक की स्त्री को अपने पति से यह पूछते हुए सुना कि इस वर्ष वे एक बैल खरीद सकेंगे या नहीं। कृषक ने कहा "जो चारों खड़े हैं उनसे तो मुझे कोई भय नहीं है परन्तु जो खड़ा नहीं रह सकता है उसके विषय में आशंका है; वह इस साल में अवश्य मर जायगा।" जो आदमी बैठ गया था उसने यह बात सुन कर अपने मन में पक्की धारणा जमा ली कि वह उस वर्ष में नहीं बचेगा। बाद में, मेरे भी सुनने में आया कि वह इतना भयभीत हो गया था कि उस निर्धारित समय में ही मर गया।'

"एक वृद्धा कुणबी स्त्री के छप्पर पर एक कमेड़ी (ring dove) बैठती थी। वह उस पक्षी की कूकाहट सुन कर रोने और छाती कूटने लगी। उसी समय एक ब्राह्मण वहाँ आया तो वह वृद्धा कहने लगी, "ओ महाराज! यह कमबख्त कमेड़ी फिर मेरे पीछे पड़ी है। यह मेरे पति, दो पुत्रों और एक बेटी को तो ले गई और अब यह मुझे लेने आई है; रोज मेरे छप्पर बैठ कर बोलती है।" ब्राह्मण ने कुछ पत्थर के कांकरे मंत्रित करके बुढ़िया को दिए जो उसने सात दिन तक जब-जब वह कमेड़ी आई तब-तब उसकी ओर फेंक कर मारे। इसके बाद वह फिर कभी नहीं आई। तब से वह वृद्धा उस ब्राह्मण को परमात्मा के समान मानने लगी।

"गुजरात में यदि कोई कमेड़ी या उल्लू किसी की छत पर रोज-रोज बैठने लगे तो लोग कहते हैं कि उस घर में रहने वालों में से कोई अवश्य मरने वाला है। इसी तरह अगर किसी मनुष्य पर कौआ[11] बैठ जाय या मकड़ी गिर पड़े तो वे समझ

रिवाज सामान्यतया प्रचलित है; निस्सन्देह, यह रिवाज उसी समय से चला आ रहा है, जब ये लोग मूर्तिपूजक थे।

उसी ग्रन्थकर्ता ने आगे चलकर लिखा है कि यदि रात्रि के समय कुत्ता रोता हो तो वह पड़ौस में किसी बीमार आदमी की मृत्यु का सूचक है; अनजान बिल्लियों के आने-जाने से भी ऐसे ही अपशकुन का सूचन होता है। संक्षेप में, गुजरात में जो शकुन प्रथाएँ हैं वे उन देशों की प्रथाओं के समानान्तर ही हैं; जो इंगलैण्ड तथा अन्य उन देशों में अब भी प्रचलित हैं अथवा रही हैं जो अपनी बढ़ी-चढ़ी सभ्यता का दम भरते हैं।

11. ब्राण्ड (Brand) की पुस्तक 'Popular Antiquities' में लिखा है कि उल्लू और कौआ हमेशा ही अपशकुनकारक पक्षी माने जाते हैं। इसी पुस्तक में अन्य उदाहरणों के साथ निम्न उदाहरण भी दिए गए हैं—

लेते हैं कि उसकी आयु कम हो गई है। इस संकट से उबरने के लिए वह मनुष्य उस समय जो कपड़े पहने होता है उन्हें उतार कर ब्राह्मण को दे देता है और [illegible] या

'यदि मकान की चिमनी पर बैठे हुए उल्लू की आवाज सुनेंगे तो अवश्य ही आपको कोई अशुभ समाचार मिलेगा।'

—Read's Old Plays; VI; 257

'भविष्य सूचन करने वाला कौआ झोंपड़े पर बैठा, और अपनी कर्कश आवाज करके हमें अपने दुर्भाग्य की सूचना देने लगा।'

—Gay's Pastorals.

'तुम्हारे जन्म के समय उल्लू बोला था, यह अपशकुन था; रात का पक्षी भी बोल कर भाग्यहीनता सूचित कर रहा था; कुत्ते भौंक रहे थे और भयंकर तूफान ने वृक्षों को हिला दिया था, धुआँकश पर बैठा कौआ बेसुरी आवाज में खेद भरी चींचीं कर रहा था।

—Third Part of Henry VI; Act V; Sc. 6

सिन्धु नदी के नाविक कौए को अपनी नाव पर नहीं बैठने देते क्योंकि वे इसे भयंकर अपशकुन मानते है। स्वीडन में टोड-काक (Mag-pie) को भी दूसरे काक जातीय पक्षियों के समान गुह्यार्थ सूचक और हड़हड़ाती डाकिन का पक्षी मानते है और यह समझते है कि यह पक्षी भी पिशाचों और रात्रि की भेद भरी शक्तियों से सम्बद्ध है। जब वालपुर्गा (Walpurga)[0] की रात्रि को डाकिनियाँ अपने वाहनों पर सवार होकर ब्लोकुल्ले (Blokulle) घाटी में जाती हैं तो वे टोडकाक का रूप धारण कर लेती है। जब गर्मियों में इन पक्षियों के पर झड़ते है तब इनकी गर्दन के बाल झड़ जाते हैं तो गाँव के लोग कहते हैं कि ये ब्लोकुल्ले (Blokulle) हो आए हैं; इन्होंने शैतान को घास ढोने में मदद की थी इसलिए उसके जूड़े से रगड कर इनकी गर्दन के बाल घिस गए हैं। डेनमार्क में भी कौए को शकुन का पक्षी मानते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह अपशकुन ही सूचित करता हो। ओलाफ[00] ट्राइग्वासन (Olaf Tryggvason) यद्यपि क्रिश्चियन था परन्तु वह यह देख कर भले और बुरे

....

0. Walpurga (वाल्पुरगा) एक अंग्रेज साध्वी थी। वह एक दक्षिणी सैक्सन राजा की पुत्री थी। 754 ई. में वह साध्वी होकर जर्मनी चली गई। 780 ई. मे उसकी मृत्यु हो गई और उसके अवशेष एक गुफा मे रख दिए गए जिसकी चट्टानों मे से रिसने वाले तेल से कई तरह की बीमारियाँ मिट जाती थीं। वहीं एक गिर्जाघर बना दिया गया था और वह एक यात्रा-स्थल बन गया जहाँ प्रत्येक 1 मई को मेला भरता था। लोगों का विश्वास था कि उस रात वहाँ पर डाकिनियाँ एकत्रित होती थी।

00. ओलाफ़ नार्वे (Norway) का राजा था (जन्म 995 ई.-मृत्यु 10[illegible]0 ई.)

तालाब पर) स्नान करने चला जाता है। यदि ऐसी घटना राजा पर घट जाय तो वह हवन कराता है। जब कभी आकाश से बहुत-से तारे झड़ जावें, भूकम्प हो जाय, जंगली जानवर गाँव में घुस आवें या ऐसा ही कोई और अपशकुन हो जाय तो लोग सामवेद की उस शाखा का आश्रय लेते हैं जिसमें ऐसे अवसरों पर राजा द्वारा करने योग्य कृत्यों का विवरण है। यदि राजा अपना कर्त्तव्य पूरा करने में प्रमाद करता है तो लोग समझ लेते हैं कि उसके राज्य में कोई महान् हानि होने वाली है। परन्तु, कोई उपाय करो या मत करो, जो होनहार है वह तो हो कर रहता है।"

'ओखा हरण' गुजराती भाषा का एक लोकप्रिय काव्य है। उसमें लिखा है कि बाणासुर और उसकी रानी एक दिन प्रातः-काल शोणितपुर में अपने समुद्र तट स्थित महल के झरोखे में बैठे थे। उसी समय एक मेहतर सड़क झाड़ने आया और उनको देख कर अपशकुन टालने के लिए उसने अपना मुँह फेर लिया। राजा और रानी ने उसको बुला कर मुँह फेरने का कारण पूछा तब पहले तो उसने कहा 'मैं नीच जाति का हूँ और सवेरे-सवेरे अपना मुँह दिखाने के कारण आप कहीं मेरा सर न कटवा दें इसलिए मैंने मुँह फेर लिया; परन्तु, जब उसे सच-सच कहने को मजबूर किया गया और अपराध के लिए अभय दे दिया गया तो उसने कहा, 'आप सन्तानहीन हैं और प्रातः काल में किसी सन्तानहीन का मुख देखना अशुभ होता है इसलिए मैंने इसे टालने को मुँह दूसरी ओर कर लिया।" यह सुन कर रानी को बड़ा दुख हुआ और वह फूट-फूट कर रोने लगी। उसने अपने पति से कहा 'यह राजमहल बालक के पालने के बिना गुसाँई के मठ जैसा लगता है या श्मशान के समान है, इसलिए हे नाथ! आप सन्तान के लिए शिवजी से वरदान प्राप्त करें।' तब बाणासुर कैलास चला गया और वहाँ उसने ऐसी उग्र तपस्या की कि अन्त में शिवजी को पार्वती से सलाह लेनी पड़ी कि इस आग्रही तपस्वी को कैसे सन्तुष्ट किया जाय? स्वयं भवानी के दो ही सन्तानें थीं गणेश और ओखा, सो उसने उनमें से एक को भी देना स्वीकार नहीं किया। अन्त में, शिवजी ने बहुत कुछ समझा बुझा कर पार्वती को राजी कर लिया और 'ओखा' को ले जाकर तपस्वी राजा को दे दिया तथा उसका पुत्री के समान पालन पोषण करने का आदेश दिया।

कुछ समय बाद बाणासुर शिवजी कृपा से इतना पराक्रमी हो गया कि अभिमान में भर कर उसने अपने इष्ट देव को ही युद्ध के लिए ललकारा। उसकी

शकुन बताया करता था कि कौआ दाएं पैर के सहारे खड़ा है या बाएं पैर के बल पर; इसी कारण उसके शत्रु उसको क्राबीन (Krakabien) अर्थात् 'काकपद' कहने लग गए थे। उत्तर जर्मनी में लोग ऐसा मानते हैं कि यदि किसी मकान पर से कौए बहुत जोर-जोर से बोलते हुए उड़ें तो उस घर में अवश्य ही किसी की मृत्यु होगी।

इस कृत्यता पर शिवजी ने उसको शाप दिया कि 'ओखा के भावी पति का पितामह तेरे वंश का नाश करेगा।' अब उस राजा ने ओखा को ही मार देने का विचार किया परन्तु बाद में अपने किसी प्रधान के परामर्श से उसने उस लड़की को कुंआरी ही रखने का निश्चय किया। उसने समुद्र के किनारे एक बुर्ज बनवायी जिसमें अन्दर जाने का कोई रास्ता नहीं रखा। ओखा और उसकी दासी को उस बुर्ज में रखा गया। चारों ओर रक्षक नियुक्त करके यह आदेश दिया गया कि उन दोनों के खाने लायक भोजन-सामग्री एक कटोरे में रख दी जावे और वहें वे रस्से से ऊपर खींच लेंगी। ओखा ने कारागृह में ही अपनी माता पार्वती या गौरी को वर के लिए प्रार्थना की। उसने तीन बार प्रार्थना की इसलिए गौरी ने कहा कि तुझे तीन वर वरेंगे। ओखा ने पुनः प्रार्थना की 'मुझे दो बार विधवा होने का कष्ट नहीं होना चाहिए।' तब गौरी ने कहा, 'एक बार तेरा स्वप्न में विवाह होगा, दूसरी बार गुप्त रीति से और तीसरी बार प्रत्यक्ष रीति से, परन्तु तीनों बार में पति एक ही होगा।' तदनुसार श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के कुमार अनिरुद्ध के साथ उसका विवाह हुआ और श्री कृष्ण ने ही (यद्यपि उनकी ओर से शिवजी ने युद्ध किया था) बाणासुर का बल क्षीण कर दिया।[12]

इसी के आधार पर "गौरी पूजन पर्व" का प्रारम्भ हुआ जो वर्षा ऋतु के प्रथम मास आषाढ़ शुक्ला द्वादशी से आरम्भ होता है। इस त्यौहार की तैयारी में पांच से दस वर्ष तक की अवस्था वाली बालिकाएं मिट्टी की गौरी-प्रतिमाएं बनाती हैं और उनको वस्त्र धारण कराती हैं। प्रतिमा के आजू-बाजू वे दो पात्र रखती हैं जिनमें गेहूं और ज्वार के 'जवारे' बोती हैं। द्वादशी के दिन प्रातःकाल में उठते ही वे नदी तट पर स्नान करने जाती हैं। वहाँ से लौट कर वे किसी उस स्थान पर जाती हैं जहाँ समस्त गांव की अथवा मुहल्ले की लड़कियां एकत्रित होती हैं; वहां से वे सब श्रीकृष्ण अथवा अपने गांव के स्वामी के गीत गाती हुई उस ब्राह्मण के घर जाती हैं जिसके यहां गौरी की मूर्ति स्थापित की होती है। वहां (नाना का) षोडशोपचार पूजन करके चढ़ावा चढ़ाती हैं जो उस ब्राह्मण को मिलता है। उस समय बालिका की माता या बड़ी बहन उसे 'गौरी मां से योग्य वर मिलने का' वरदान मांगने को कहती है। ब्राह्मण के घर से लौटते समय वे मार्ग में पीपल के वृक्ष, गाय, कूप और अन्त में अपने पिता के घर की देहरी का पूजन करती हैं। गौरी का व्रत करने वाली दिन में केवल एक बार ही भोजन करती है। परन्तु यह व्रत नाममात्र का ही होता है। तीसरे पहर तक सब बालिकाएं फिर एकत्रित होती हैं और अपने-अपने पिता की सामर्थ्य के अनुसार अच्छे-से-अच्छे कपड़े और गहने आदि पहन कर शृंगार करती हैं। फिर, वे बारी-बारी से सब देवताओं का पूजन करती हैं। इस उत्सव में भाग

12. कहते हैं बाणासुर के हाथ काट दिये गये थे। रत्नमाला के गुजराती अनुवादक श्री रणछोड़ भाई उदयराम ने गुजराती भाषा में 'बाणासुर मद-मर्दन' नामक नाटक की भी रचना की है। (हि. अ.)

लेने वाली सभी बालिकायें और स्त्रियाँ गाँव के सरोवर के निकट दिन बिताती हैं और रात्रि को शयन वेला तक वहीं घूमती रहती हैं। इस समय उनका एक विनोद यह होता है कि वे सब मिलकर छाती कूट-कूट कर 'हाय-ढेड़ा' 'हाय-हाय' कहती हैं जैसे किसी की मृत्यु हो जाने पर स्त्रियाँ रुदन करती हैं। कभी-कभी घृणित ढेड़ा की एवज अपने ठाकुर के किसी शत्रु अथवा अन्य अवांछित मनुष्य का नाम लेती हैं।

जिन लड़कियों की सगाई हो जाती है उनके लिए गौरी-पूजा-पर्व पर ससुराल से कपड़े और गहने आदि आते हैं।

गुजराती स्त्रियों में एक दूहा प्रचलित है जिसका तात्पर्य यह है कि यदि श्रावण मास के प्रथम पाँच दिनों में वर्षा नहीं हुई तो उस वर्ष अकाल पड़ेगा—

श्रावण सुदि पंचम सुधी, जो नव वरसे मेह।
कंथ पधारो मालवे, अमे जाइशुं पिहेर॥

जब अधिक दिनों तक मेह नहीं बरसता है तो हिन्दू समझते हैं कि इन्द्र उनके गाँव या कस्बे को ऊजड़ करना चाहता है इसलिए वे सामूहिक रूप में एक दिन के लिए अपने गाँव को ऊजड़ कर देते हैं और कहीं बाहर जा कर भोजन बनाते हैं। इसको 'ऊजाणी' कहते हैं। देशी राजाओं के इलाके में ऊजाणी से पहले दिन डौंडी पीट कर सूचना दे दी जाती है कि अगले दिन जो कोई अपने घर में चूल्हा जलावेगा उस पर जुर्माना किया जायगा।

वर्षा बुलाने का दूसरा उपाय यह करते हैं कि प्रत्येक गाँव वाले अपने-अपने 'भूवे' (भोपे) को बुलाते हैं। भोपे में गाँव की देवी माता की छाया बरतती है। वह मनुष्य आकर पहले तो थोड़ी देर नाचता-कूदता है, जन्त्र-मन्त्र करता है और फिर अपने शरीर में माता की छाया प्रकट होने के चिन्ह प्रदर्शित करता है। तब हिन्दू लोग उसे माता कहकर सम्बोधित करते हैं और पूछते हैं "माताजी! मेह क्यों नहीं बरसता है?" भोपा अपने अंगों को घुमाता है और आँखें तरेर कर कहता है "मेह कैसे बरसेगा? तुम नैवेद्य तो चढ़ाते नहीं।" तब गाँव वाले कहते हैं, "भूल हुई, माता जी! हम आपके बच्चे हैं; आप कहें तब ही हम नैवेद्य अर्पण करने को तैयार हैं।" जब दुबारा माता का दिन आवे तब अमुक-अमुक भोजन-सामग्री अर्पित करने को भोपा उन्हें आदेश देता है। योगिनियों को खप्पर में भोजन करना प्रिय है इसलिए वे नैवेद्य को खप्पर जैसे मिट्टी के ठीकरों में रख कर गाँव के पूर्वी द्वार के बाहर ले जाते हैं और पहले से छिड़की हुई भूमि पर उन ठीकरों को मण्डलाकार में रख देते हैं। प्रत्येक गृहस्थ को नैवेद्य चढ़ाना पड़ता है इसलिए कभी-कभी पात्रों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। कुत्ते और ढेड़[13] उन

13. ढेड़ जाति का विवरण देखिए—बम्बई गजेटियर, जि. 9, भा. 1, पृ 338.

भोजन को खाते हैं और यदि वर्षा आ जाती है तो वह देवी की भेजी हुई ही समझी जाती है।

मेह बरसाने की एक और भी रीति है। शिवजी की जलाधारी में से पानी निकलने का छिद्र बन्द कर दिया जाता है और उसमें इतना पानी भर देते हैं कि शिवलिंग उसमें डूब जाय। यह विधि आठ दिन तक चलती है; बीच में वर्षा हो जाय तो बहुत अच्छी बात है।

कुणबी और भील स्त्रियां इकट्ठी होकर वर्षा के देवता के लिए यह गीत गलियों-गलियों में गाती फिरती हैं—

खेडूते हल् छोड़ी दीधुं, ओ मेहुला !
तेनी दया नें माटे तूं वरस, ओ मेहुला !
भलाए भली ने घर मोकली, ओ मेहुला !
तेनां बालक तेनांथी विखूटां पड्या, ओ मेहुला !
नदी मां नदीनां नीर खूटिया, ओ मेहुला !

गीत गाने वाली स्त्रियों के साथ में एक छोकरा रहता है जिसके सिर पर एक टोकरे में मिट्टी की मूर्ति धरी होती है और उसमें नीम की तीन डालियाँ भी खोंस दी जाती हैं। जब यह मण्डली किसी हिन्दू गृहस्थ के घर पहुँचती है तो स्त्रियाँ बाहर निकल कर नीम की टहनियों पर पानी डालती हैं जिससे वह लड़का भीग कर तरान्तर हो जाता है; इसके साथ ही वे जलूस की स्त्रियों को अन्न भी भेंट करती हैं।

श्रावण मास के दूसरे पखवाड़े की पंचमी तिथि को गुजरात के लोग अपने घरों में दीवार के एक भाग को सफेदी से पोत कर उस पर पृथ्वी को धारण करने वाले शेष नाग की एक भोंडी सी आकृति काले रंग से चित्रित करते हैं। वे विधि-पूर्वक इस चित्र का पूजन करके प्रार्थना करते हैं—"हे स्वामी ! मुझ पर कृपा करना।" यह प्रार्थना आगामी वर्ष में सुरक्षा के लिए की जाती है। हिन्दू प्रणाली के अनुसार इसी दिन राज्य का कर चुकाना चाहिए। इस त्योहार का नाम 'नाग पंचमी' है।

इसके दूसरे ही दिन 'रांधण छट्ठ' या विविध प्रकार के पक्वान्न बनाने की छठ आती है। इस दिन सप्तमी को 'शीतला माता' के लिए नैवेद्य तैयार किया जाता है।[14] शीतला चेचक रोग की देवी है। ऐसा कहते हैं कि उस दिन शीतला

14. राजस्थान में, मुख्यतः जयपुर में, यह त्योहार चैत्र कृष्णा 8 को मनाया जाता है। वह शीतला अष्टमी कहलाती है। इससे पहले दिन 'रांधा पोवा' होता है। अष्टमी के दिन कोई चूल्हा नहीं जलता। जयपुर से दक्षिण पूर्व में कोई 17-18 मील पर शीतला की डूंगरी है, जहां मेला भरता है। (हि. अ.)

माता घर-घर में तवों पर पैर रखती हुई घूमती है इसलिए कहीं भी आग नही जलनी चाहिए अन्यथा माता अप्रसन्न होगी। जिस आधुनिक गुजराती लेख से हमने ऊपर उद्धरण दिए है उसी के अनुसार शीतला माता का वृत्तान्त लिखते हैं—

"मेरे एक पड़ोसी की चार वर्ष की कन्या के इसी वर्ष माता निकली। जब रोग प्रकट हुआ तो वे दोनों स्त्री-पुरुष बहुत चिन्तित हुए क्योंकि उनकी वृद्धावस्था थी, दो लड़कों के बीच मे एक ही पुत्री थी और इसलिए माँ बाप का उससे बहुत लगाव था। उन्होंने उसकी खाट घर के भीतरी भाग में बिछा दी और कपड़े का पर्दा दरवाजे पर लटका दिया; कुछ नीम की टहनियाँ भी उसके साथ ही टांग दी, गधे की लीद, गौ-मूत्र और नीम के पत्ते मिला कर उन्होंने एक मिट्टी के पात्र मे रख दिए और उनमे से जो कोई बाहर से आता तो अपने दाएं पैर का अगूठा उस पात्र में भिगोकर गीला कर लेता। कोई पड़ौसी या मिलने वाला आता तो उसे भी यही विधि पूरी करनी पड़ती। इसका कारण यह है कि जो कोई 'माता' के बीमार की सेवा-टहल करता है उसके शरीर पर किसी अन्य की छाया नहीं पड़नी चाहिए और यदि पड़ जाय तो उक्त विधि से उसका असर दूर हो जाता है। रजस्वला और पति-गमन करके आई हुई स्त्री का आना भी हानिकारक माना जाता है। इसी प्रकार तुरन्त स्नान करके आए हुए पुरुष का प्रवेश भी निषिद्ध है। स्नान करके आने वाले से क्या हानि हो सकती है, यह मेरी समझ में नही आया। उस घर में रहने वाला प्रत्येक मनुष्य अपने हाथ मे नीम का 'झौंरा' रखता था कि जिससे किसी अपवित्र आदमी की 'छूत' न लगे और लगे भी तो कोई प्रभाव न हो। मेरे पड़ौसियों ने ये सभी यत्न पूरी सावधानी से किये थे। जैसे-जैसे दिन बीतते गये रोग भी बढ़ता गया। फिर, एक विद्वान पण्डित को बुला कर 'शीतला स्तोत्र' का पाठ कराया गया; यह स्तोत्र 'रुद्रयामल'[15] ग्रन्थ में है। इस स्तोत्र मे 'शीतला माता' की

---

15. 'यामल' तन्त्र के ग्रन्थ हैं। इनमें किसी विशेष देवता और उसकी शक्ति के संवाद रूप मे निम्नलिखित विषयों का विवेचन होता है—

"सृष्टिश्च ज्योतिषाख्यानं नित्यकृत्यप्रदीपनम्।
क्रमसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च॥
युगधर्मश्च सृष्ट्यन्तो यामलस्याष्टलक्षणम्॥

—वाराहीतन्त्र

अर्थात्—यामल ग्रन्थ मे सृष्टि, ज्योतिषाख्यान, नित्यकर्म, क्रमसूत्र, वर्णभेद, जातिभेद, युगधर्म और सृष्टि के अन्त या प्रलय, इन आठ विषयो का वर्णन होता है।

मुख्यतः छः यामल प्रसिद्ध है–1. आदियामल, 2. ब्रह्मयामल, 3. विष्णुयामल 4. रुद्रयामल, 5. गणेशयामल और 6. आदित्ययामल।

प्रार्थना की गई है जो कुछ इस प्रकार है—"माता नग्नवेश में गधे पर सवार है, उसके माथे पर टूटा हुआ सूप (छाजला) है, उसके एक हाथ में ईण्डूणी है और दूसरे में बुहारी है और जाति से वह चाण्डालिनी है।" ऐसा स्वरूप या ध्यान वर्णन करने के बाद पुस्तक में लिखा है—

'हे महादेवि ! तुम जगत् की माता हो; ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र आदि सभी देवता निरन्तर तुम्हारी सेवा करते हैं; मैं भी इस बालिका को स्वस्थ करने के लिए प्रार्थना करता हूँ।' शीतला को प्रसन्न करने के लिए वे नित्य इस स्तोत्र का पाठ कराते थे और गधे को घास व गेहूं की रोटियाँ खिलाते थे। यह सब कुछ करते हुए भी बीमारी नित्य बढ़ती जाती थी। अब उन्होंने मनौतियों का सहारा लिया और प्रण किया कि बच्ची अच्छी हो जावेगी तो उसके बराबर तौल कर गुड़ ब्राह्मण को देंगे और खजूर की तुला भी करेंगे। घड़ी-घड़ी में वे नये-नये प्रण करते थे, जैसे—बहुचराजी की जात (यात्रा) दिलावेंगे, देवी के मन्दिर में पचीस ब्राह्मणों को भोजन करावेंगे और वहीं बालिका का जडूला उतरावेंगे। लड़की की माता ने प्रण लिया कि अपनी बच्ची को वलिया देवी की जात दिलाए बिना काँचली नहीं पहनेगी और स्वयं उस स्थान तक माथे पर जलती हुई सिगड़ी धरे और विष्ठा भरी हुई जूती मुहँ में लेकर पैदल जावेगी। उसने रुपा (चाँदी) के नेत्रों का जोड़ा, चरक, दो रुपये की शक्कर और दाख आदि शीतल वस्तुएं चढ़ाने की भी मनौती की। ठण्डे जल का घड़ा दान में देने की भी बोलारी बोली। पिता ने पुत्री द्वारा बलीया देवी का पूजन करने के समय तक पगड़ी न पहनने व चार खेतों के फासले से देवी के मन्दिर तक साष्टांग दण्डवत प्रणाम करते हुए जाने का प्रण लिया। तब उसकी स्त्री ने कहा, "तुम्हारा शरीर ठीक नहीं है, इसलिए दो ही खेतों तक लोटते हुए जाने का प्रण करो।" परन्तु पिता पुत्री को किसी तरह जीवित रखने के लिए सभी प्रकार का कष्ट सहन करने को तैयार था। इस प्रकार वे दिन भर एक-एक करके सभी देवी देवताओं को मानते रहे परन्तु बच्ची ठीक नहीं हुई। तब वे माता पिता रोने लगे; आने-जाने वाले उनको ढाढ़सा बँधाते थे और बालीया देवी में श्रद्धा रखने को कहते थे। वह स्त्री कहने लगी, 'मरी, पीटी बलीया, मेरे पिछले जनम की वैरिन है, हत्यारी मेरी बच्ची की जान लेने आई है।' पास में खड़े लोग बोले, 'बाई ! ऐसा मत कहो, जिस प्रकार राजा अपने मंत्रियों के पास से लूट का धन निकलवाने

यामलों की गणना आगम शास्त्रों के अन्तर्गत होती है। यह शास्त्र शिवजी के मुखों से आगत होकर गिरिजा के मुख में गत होता है और उन्हीं के हृदय-कमल में मग्न हो जाता है—इसीलिए आगम कहलाता है—

"आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजामुखे।
मग्नस्तस्य हृदम्भोजे आगमः स प्रकीर्त्यते॥

कुन प्रतिष्ठादिक विधि को तन्त्र कहते हैं। (हि. श्र.)

को भय दिखाता है इसी प्रकार बलीया माता भी तुमको डरा रही है कि जिससे तुम उसकी अधिक भक्ति करो। डरो नहीं, तुम्हारे घर में जाने अनजाने में कोई बालक बलीया का अपराध कर बैठा है; तुम क्षमा मांगो।' यह कह कर उन्होंने को क्षमा मांगने की विधि बताई उसे यहाँ लिखते हुए भी मुझे लज्जा आती है। वह इस प्रकार है—'हे बलीया देवी ! यदि कभी जान में या अनजान में मुझ से कोई तुम्हारा अपराध बन पड़ा है तो मुझे क्षमा करो, मेरी भूल हुई, मैंने विष्ठा खाई है, दया करो, मेरी लड़की के प्राण बचाओ।' उस स्त्री के इतना कहने पर भी लड़की मर ही गई। तब वह छाती कूट-कूट कर रोने लगी और बलीया देवी को गालियाँ देने लगी—'हे हत्यारी, पापिनी' इत्यादि। वह अन्य स्त्रियों के साथ रोती थी और इसी तरह बलीया को कोसती थी। एक महीने के बाद उसी स्त्री के लड़के को चेचक निकला और फिर वह उसी तरह की मनौतियाँ मनाने लगी। उसका पुत्र ठीक हो गया और उसने अपने सभी प्रण पूरे किए।"

'शीतला सप्तमी' के बाद ही जन्माष्टमी[16] आती है; इसी दिन श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। यह व्रत का दिन होता है ऐसा मानते हैं कि अष्टमी को मध्यरात्रि में देव का जन्म हुआ था; और जहाँ-जहाँ कृष्ण का मन्दिर होता है वहाँ-वहाँ वे सभी उत्सव और विधियां सम्पन्न की जाती हैं जो किसी राजकुमार के जन्म पर आवश्यक होती हैं। बालकृष्ण की प्रतिमा पालने में झुलाई जाती है, बाजे बजते हैं और बड़ी उदरता से दान दक्षिणा दी जाती है। जन्म के समय मन्दिर में भारी भीड़ होती है।

श्रावण मास की पूर्णिमा, बलेव अर्थात् बलि राजा का दिन कहलाती है। इस दिन बलि नामक राजा और वामन अवतारधारी विष्णु के विवाद हुआ था। इस पर्व में ब्राह्मण लोग नदी-किनारे जाकर विष्णु-प्रतीक शालग्राम-शिला का पूजन करते हैं। यह पूजन 'देहशुद्धि-प्रायश्चित्त' कहलाता है, जिसका वर्णन आगे करेंगे। वर्ष भर में जो कुछ पाप बन पड़े हों अथवा शूद्र आदि अपवित्र लोगों से स्पर्श हो गया हो, उसी की शुद्धि के लिए यह विधि पूरी की जाती है। फिर ब्राह्मणों के पूर्वज सप्तर्षियों और अरुन्धती की आठ मूर्तियाँ कुशा गूंथ कर बनाते हैं और उनका पूजन करते हैं। इसी अवसर पर वे पुराना यज्ञोपवीत बदल कर नया धारण करते हैं। यह नया यज्ञोपवीत पिछले एक-दो महीनों में उन्हीं के द्वारा तैयार किया होता है अथवा किसी अन्य ब्राह्मण द्वारा बनाया हुआ होता है और इसमें (मन्त्रों द्वारा) शक्ति निहित करने की बहुत सावधानी बरती जाती है। कुछ ब्राह्मण, जो कट्टर कर्मकाण्डी होते हैं, यज्ञोपवीत के लिए अपने घर में ही गमलों में कपास उगाते हैं। नये यज्ञोपवीत को कुश-निर्मित मूर्तियों का स्पर्श करा कर धारण किया जाता है

16. जन्माष्टमी भाद्रपद कृष्णा 8 को आती है। (हि. अ.)

और पुराने यज्ञोपवीत को भंग करके नदी में विसर्जित कर दिया जाता है। नई जनेऊ और कुश हाथ में लेकर अर्घ्य देते हैं और फिर ऋषियों की वंशावली का उच्चारण करके उनको जल में पधरा देते हैं या अपने घर ले जाते हैं और वर्ष-पर्यन्त उनका पूजन करते है। इस समय ऋषियों को वर्षा के नए नदीजल से अर्घ्य दिया जाता है और ऐसी मान्यता है कि उनके द्वारा वह अर्घ्य देवताओं को पहुँच जाता है।

फिर, ब्राह्मण गुरु अपने यजमानों के राखी बांधता है। वह राखी रेशम या सूत की बनी होती है और उसमें कच्चे मोती भी लगे होते है। कहते हैं कि पुराने जमाने में इस ऋतु में एक प्रकार का रोग चल जाता था और उससे बचने के लिए ही राखी बांधी जाती थी।[17] गांव में लौट कर सभी ब्राह्मण अपने यजमानों और सगे-सम्बन्धियों के राखी बांधते हैं।

भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को 'गणेश चौथ' कहते हैं क्योंकि उस दिन गणेश का जन्म हुआ था। मृत्तिका से गणेश की मूर्ति बनाकर उसे बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण

---

17. ऐसी कथा है कि विष्णु ने वामन अवतार लेकर राजा बलि से त्रिलोकी ग्रहण कर ली; बाद में उसको सात पातालों में से तीसरे पाताल 'सुतल' का राज्य देकर वहां भेज दिया और स्वयं उसका पहरा देने लगे। सात पातालों के नाम ये हैं—

    1. अतल, 2. वितल, 3. सुतल, 4. तलातल, 5. रसातल, 6. महातल और 7. पाताल।

जब भगवान् विष्णु के दर्शन होना बन्द हो गया तो देवता लक्ष्मी को साथ लेकर श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन बलि के यहाँ गए और लक्ष्मी ने बलि की बहन के रूप में याचना करके यह वचन लिया कि चातुर्मास के चार महीनों तक तो विष्णु पाताल (सुतल) मे रहेंगे और आठ मास तक अपने स्थान में रहेंगे।

एक कथा इस प्रकार है कि एक बार इन्द्र अपने शत्रुओं से परास्त होकर घिर गया। न तो असुरों के घेरे से बाहर ही निकला जा सकता था और न अपने स्थान पर ही रहा जा सकता था। तब उसने मरणान्त युद्ध करने का विचार किया। यह देख कर देवगुरु बृहस्पति ने कहा, 'देवता इस समय बलहीन हैं इसलिए युद्ध करना उचित नहीं, उपाय से ही काम लेना चाहिए। आज श्रावण की चतुर्दशी है, कल प्रातःकाल मैं रक्षा-विधान करूंगा।' तब बृहस्पति ने इस मन्त्र से रक्षा-विधान किया—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन मन्त्रेण बध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥

कुछ लोगों का कहना है कि जब अभिमन्यु चक्रव्यूह का भेद करने को चला था तब उसकी दादी कुन्ती ने रक्षा-बन्धन किया था, तभी से यह प्रथा चली है।

गणेश चतुर्थी के दूसरे दिन 'ऋषि पंचमी' आती है। उस दिन गुजरात में लोग, उन ऋषियों की स्मृति में जो विना वोया हुआ अन्न खाते थे, ऐसे धान्य से भोजन वनाते हैं जो अपने आप उत्पन्न होता है।

चौमासे में अन्य ऋतुओं की अपेक्षा अधिक जीव-जन्तु उत्पन्न होते हैं, ऐसा विचार करके जैनों में वहुत-से लोग दो मास तक उपवास करते हैं जो 'पजूसण'[19] कहलाते हैं। यदि विधिपूर्वक किया जाय तो यह व्रत एक प्रकार का महान् तप है। इस व्रत की अवधि मे श्रावक स्नान नहीं करते, धोने-झकोलने आदि स्वच्छता के कार्यों से विरत रहते हैं और जीवनरक्षा के लिए उवाल कर ठण्डे किए हुए पानी के सिवाय कोई चीज नहीं खाते-पीते। वहुत से जैन कुछ दिनों तक ही उपवास रखते हैं और कम से कम 'पजूसण' के अन्तिम दिन तो, जो ऋषि पंचमी को पड़ता है, सभी श्रावक व्रत रखते हैं। 'पजूसण' के अन्त में श्रावक लोग अपने-अपने मित्रों और वान्धवों से मिलने जाते हैं; वे ऐसा कहते हैं कि यह प्रथा इसलिए चालू हुई है कि कठोर व्रत की साधना के अनन्तर यह जानना आवश्यक होता है कि उसके परिणाम-स्वरूप कितने व्यक्ति चल वसे और कितने वच गए।[20] प्रत्येक श्रावक जव अपने सगे सम्वन्धियों के घर जाता है तो वे दोनों हाथों से उसे पकड़ कर स्वागत करते हैं और फिर इस प्रकार वोलते हैं—

"वारह मास, चौवीस पखवाड़े, बावन अठवाड़े (सप्ताह), इतने समय

मन उस मणि पर था इसलिए उन्होंने ही प्रसेनजित् को मार कर मणि चुरा ली। अपना कलंक मिटाने के लिए श्री कृष्ण तलाश में निकले और जाम्ववान् के खोजों' (पद-चिन्हों) का सहारा लेते हुए उसके घर जा पहुँचे। वहाँ 21 दिन तक उसके साथ श्रीकृष्ण का युद्ध हुआ। अन्त में, हार कर उसने स्यमन्तक मणि उनको लौटा दी और अपनी पुत्री जाम्ववन्ती का विवाह भी उनके साथ कर दिया। श्री कृष्ण ने मणि लाकर सव के सामने प्रस्तुत कर दी। इस प्रकार उन पर लगा हुआ कलंक दूर हुआ। इसी का सार-सूचक यह श्लोक है जिसका स्मरण करने से चतुर्थी-चन्द्र-दर्शन का कुफल टल जाता है—

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्ववता हतः।
सुकुमारक ! मा रोदीस्तव एषः स्यमन्तकः॥

19. पर्युपण अर्थात् सेवन; इससे मागधी में 'पज्जुसण' हुआ और वही आगे चलकर 'पचुसण' या 'पजूसण' शब्द वन गया। (गु. अ.)

20. दीपवाली के वाद कार्तिक शुक्ला 1 को जैसे हिन्दू लोग अपने-अपने मित्रों और वन्धु-वान्धवों से मिल कर 'रामा-श्यामा' करते हैं उसी प्रकार पर्युपण पर्व की समाप्ति के दूसरे दिन जैन भी आपस में मिलते हैं और वर्ष भर में किए हुए अपराधों के लिये क्षमा माँगते हैं। इसको 'खमत खमणा' या 'खमावणी' कहते है।

कह्या है:—जहां "कमलेन लोचनमुपमिनोमि" इसरीतिसैं उपमानउपमेयभाव होवै तिसीस्थानमैं **उपमान प्रमाण** होवै है. वैधर्म्यज्ञान होवै तहां उपमान-उपमेयभाव होवै नहीं; यातैं उपमान प्रमाण संभवै नहीं. ताकूं यह पूछना चाहिये:—वैधर्म्यज्ञानजन्य उपमितिके जो उदाहरण कहे तिनमैं उपमितिके विषयका ज्ञान उपमानप्रमाणसैं होवै नहीं तौ किस प्रमाणतैं तिनका ज्ञान होवैहै ? जा प्रमाणतैं तिनका ज्ञान कहै तिसी प्रमाणतैं सादृश्यज्ञानजन्य उपमितिके विषयकाभी ज्ञान होय जावैगा. उपमानप्रमाणका प्रयोजनके अभावतैं अनंगीकार चाहिये. जो ऐसे कहै गवयके प्रत्यक्षमैं गोका सादृश्य तौ प्रत्यक्ष है, परंतु गोमैं गवयका सादृश्य प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं ? धर्मीके साथ इंद्रियका संयोग होवै तौ इंद्रियसंयुक्त तादात्म्यसंबंधसैं सादृश्यधर्मका प्रत्यक्ष होवै. गोरूपधर्मीके साथ इंद्रियसंयोगके अभावतैं गोमैं गवयका सादृश्य प्रत्यक्षका विषय नहीं; यातैं गोमैं गवयके सादृश्यज्ञानका हेतु गवयमैं गोका सादृश्यज्ञानरूप उपमान प्रमाण चाहिये तो तैसैंही खड्गमृगमैं उष्ट्रके वैधर्म्यका तौ प्रत्यक्ष ज्ञान है. उष्ट्रके साथ इंद्रियसंयोगके अभावतैं उष्ट्रमैं खड्गमृगके वैधर्म्यका ज्ञान प्रत्यक्षरूप संभवै नहीं; ताका हेतु खड्गमृगमैं उष्ट्रका वैधर्म्यज्ञानरूप उपमानही प्रमाण मानना योग्य है. और जो वेदांत परिभाषाकी टीकामैं लिख्या है:—जा ज्ञानतैं उत्तर 'उपमिनोमि' ऐसी प्रतीति ज्ञाताकूं होवै सो ज्ञान उपमिति है औ वैधर्म्यज्ञानजन्य वैधर्म्यज्ञानसैं उत्तर 'उपमिनोमि' ऐसी प्रतीति होवै नहीं, यातैं उपमिति नहीं. सोभी अशुद्ध है:—काहेतैं ? मुखमैं चंद्रके सादृश्यप्रत्यक्षसैं उत्तर "मुखं चंद्रेण उपमिनोमि" ऐसी प्रतीति होवै है औ मुखमैं चंद्रके सादृश्यका प्रत्यक्ष ज्ञान है उपमिति नहीं; यातैं 'उपमिनोमि' इस व्यवहारका विषय उपमालंकार है; जहां उपमानउपमेयकी समान शोभा होवै तहां **उपमाअलंकार** कहिये है. अलंकारका **सामान्यलक्षण** औ उपमादिकनके विशेष **लक्षण अलंकार-चंद्रिकादिकनमैं** प्रसिद्ध हैं. कठिन औ अनुपयोगी जानिकै इहां लिखे नहीं; यातैं जहां 'उपमिनोमि' ऐसी प्रतीति होवै ताका विषय

उपमितिज्ञान नहीं, किंतु सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान औ वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञानमैं उपमिति शब्द पारिभाषिक है. शास्त्रके संकेतकूं **परिभाषा** कहैं हैं. परिभाषातैं बोधक शब्दकूं **पारिभाषिक** कहैं हैं. जैसैं **छंदोग्रन्थनमैं** पंच षट् सप्तमैं बाण रस मुनि शब्द पारिभाषिक हैं, तैसैं उपमिति शब्दभी न्यायशास्त्र औ अद्वैतशास्त्रमैं भिन्न भिन्न अर्थमैं पारिभाषिक है; यातैं अद्वैतशास्त्रमैं सादृश्यज्ञानजन्यज्ञानकी नाईं वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञानभी **उपमिति शब्दका अर्थ** है भेद सहित समानधर्मकूं **सादृश्य** कहैं हैं. जैसैं गवयमैं गोके भेदसहित समान अवयव है, सोई गोका सादृश्य है, गोके समान धर्म गोमैं हैं भेद नहीं. गोका भेद अश्वमैं है समानधर्म नहीं, यातैं सादृश्य नहीं चन्द्रके भेद सहित आह्लादजनकतारूप समानधर्म मुखमैं है सोई मुखमैं चन्द्रका सादृश्य है. इस रीतिसैं उपमानउपमेयका भेदसहित समान धर्महीं **सादृश्यपदका अर्थ** है. और कोई ऐसैं कहैं हैं:—सादृश्य नाम कोई भिन्नपदार्थ है उपमान उपमेय वृत्ति है, उपमान उपमेयके निर्णीत धर्मनसैं भिन्न है, सो समीचीन नहीं. काहेतैं? जहां दो पदार्थनमैं अल्पसमानधर्म होवै तहां **अपकृष्टसादृश्य** कहिये है, समानधर्म अधिक होवै तहां **उत्कृष्टसादृश्य** कहिये है, इस रीतिसैं समानधर्मकी न्यूनता अधिकतासैं सादृश्यमैं अपकर्ष उत्कर्ष होवै है. निर्णीत धर्मनसैं अतिरिक्त सादृश्य होवै तौ ब्राह्मणत्वादिक जातिकी नाईं अखण्ड होवैगा, तामैं अपकर्ष उत्कर्ष बनै नहीं; यातैं समानधर्मरूप सादृश्य है. यह **उदयनाचार्यका** मत सिद्धांतमैं अंगीकरणीय है.

कारणके लक्षणका निर्णय ॥ ६ ॥

उपमितिशब्दकी परिभाषाका न्यायमतमैं औ अद्वैतमतमैं भेद है परंतु उपमानशब्दका अर्थ यद्यपि दोनो मतमैं भिन्न नहीं, काहेतैं ? उपमितिका करण **उपमान** कहिये है सो न्यायमतमैं गवयपदकी वाच्यताज्ञान उपमितिपदका पारिभाषिकअर्थहै, ताका करण वाक्यार्थानुभव वा सादृश्यविशिष्ट पिंड प्रत्यक्ष है. औ अद्वैतमतमैं सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान औ वैधर्म्यज्ञान-

जन्य ज्ञान उपमितिशब्दका पारिभाषिक अर्थ है;ताका करण सादृश्यज्ञान औ वैधर्म्यज्ञान है. इस रीतिसैं उपमितिशब्दका परिभाषामैं भेद है. ताके भेदतैं उपमानका भेद सिद्ध होवैहै. उपमानपद पारिभाषिक नहीं; किंतु यौगिक है. व्याकरणकी रीतिसैं जो पद अवयवअर्थकूं त्यागै नहीं सो यौगिक पद कहियेहै. इहां व्याकरणकी रीतिसैं उपमितिका कारण उपमानपदके अवयवनका अर्थ है. उपमानसैं उपमितिकी उत्पत्तिमैं व्यापार नहीं है; यातैं व्यापारवत्कारणही करण होवैहै, यह नियम नहीं है;किंतु निर्व्यापार कारणभी करण होवै है. यद्यपि न्यायमत निरूपणके प्रसंगमैं व्यापारवाले असाधारण कारणकूं ही करणता कही है; यातैं निर्व्यापार-कारणमैं करणता संभवै नहीं; तथापि सिद्धांतमतमैं व्यापारसैं भिन्न असाधारण कारणकूं करणता कही चाहिये. व्यापारवाले असाधारण-कारणकूंही करणता नहीं. जैसैं व्यापारवत् कहनेसैं व्यापारमैं करणलक्षण जावै नहीं तैसैं व्यापारभिन्न कहनेतैंभी व्यापारमैं करणलक्षण जावै नहीं. काहेतैं ? जैसैं व्यापारमैं व्यापारवत्ता नहीं है; तैसैं व्यापारसैं भिन्नताभी व्यापारमैं नहीं है;इस रीतिसैं व्यापारभिन्न असाधारण कारण करण कहिये है. सो निर्व्यापार होवै अथवा सव्यापार होवै प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीनि तौ प्रत्यक्षप्रमा अनुमितिप्रमा शाब्दी प्रमाके व्यापारवाले कारण हैं, औ उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धि ये तीनूं उपमिति आदिक प्रमाके निर्व्यापारकारण हैं; यातैं सिद्धांतकी रीतिसैं करणलक्षणमैं व्यापारवत् पदके स्थानमैं व्यापारभिन्न कह्या चाहिये. औ न्यायमतमैं तौ करणलक्षणकी व्यापारमैं अतिव्याप्तिका परिहारके अर्थ व्यापारवत् पदका निवेश होवै अथवा व्यापारभिन्नपदका निवेश होवै दोनूं प्रकारसैं करणलक्षण संभवै है. काहेतैं ? न्यायमतमैं उपमितिप्रमाके करण उपमानप्रमाणमैं वाक्यार्थ स्मृति व्यापार है. यह न्यायानुसारी उपमानके निरूपणमैं पूर्व कह्या है, यातैं उपमितिके करण उपमानमैं व्यापारवत् कहनेसे भी

करणलक्षणकी अव्याप्ति नहीं. औ अर्थापत्तिका अनुमानमैं अन्तर्भाव नैयायिक मानैं हैं, यातैं अर्थापत्तिमे प्रमा करणतारूप प्रमाणताके अनंगीकारतैं तामैं करणताव्यवहारकी अपेक्षा नहीं. तैसैं अभावकी प्रमामैं अनुपलब्धिकूं सहकारी कारणही मानैं हैं औ प्रमाकरणतारूप प्रमाणता अनुपलब्धिकूं नैयायिक मानैं नहीं; किंतु अभावप्रमामैं अनुपलब्धि सहकृत इंद्रियादिकनकूं प्रमाणता मानैं हैं. यातै अनुपलब्धिमैं भी प्रमा करणतारूप प्रमाणताके अनंगीकारतैं कारणताव्यवहारकी अपेक्षा नहीं. या स्थानमैं यह निष्कर्ष हैः—अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिमैं करणता व्यवहार इष्ट होवै औ करणका लक्षण नहीं होवै तौ करणलक्षणमैं अव्याप्ति दोष होवै. अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिमैं प्रमाणता होवै तौ करणताकी अवश्य अपेक्षा होवै. काहेतैं ? प्रमाके करणकूं प्रमाण कहैं हैं; यातैं प्रमाणतामैं करणताका प्रवेश होनेतैं करणताविना प्रमाणता संभवै नहीं. तिस प्रमाणताका न्यायमतमैं अर्थापत्ति अनुपलब्धिमैं अनंगीकार होनेतैं दोनूंमैं करणता व्यवहार अपेक्षित नहीं. इसरीतिसैं करणतारहित अर्थापत्ति अनुपलब्धिमैं करणलक्षणके नहीं होनेतैं अव्याप्ति दोष होवै नहीं. इसरीतिसैं न्यायमतमैं व्यापारवत् असाधारण कारणकूं करणता कहे भी अव्याप्ति नहीं औ सिद्धान्तमैं तौ व्यापारवत् कहैं उपमानादिक तीनि प्रमाणोंमें करण लक्षणकी अव्याप्ति होवै है. काहेतैं? सिद्धान्तमतमैं इंद्रियसंबंधि गवयमैं गोका प्रत्यक्षरूपसादृश्यज्ञान उपमानप्रमाण है; औ व्यवहित गोमैं गवयका सादृश्यज्ञान उपमिति प्रमा है, तैसैं इंद्रियसंबंधि पशुमैं व्यवहित पशुका वैधर्म्यज्ञान तौ उपमान प्रमाण है औ व्यवहित पशुमैं इंद्रियसंबंधि पशुका वैधर्म्यज्ञान उपमिति प्रमा है; इसप्रकारसैं उपमानतैं उपमितिकी उत्पत्तिमैं कोई व्यापार संभवै नहीं औ उपमिति प्रमाके करणकूं उपमानप्रमाण कहैं हैं; यातैं उपमानप्रमाणमैं करणता व्यवहार इष्ट है. तैसैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिमैंभी प्रमाणता कहैंगे यातैं करणता व्यवहार इष्ट है औ व्यापारका संभव नहीं; यातैं उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धिमैं करणलक्षणकी अव्याप्ति

होवैगी, यातैं करणके लक्षणमैं सिद्धांतरीतिसैं व्यापारवत् पदकूं त्यागिकै व्यापारभिन्न कह्या चाहिये वेदांतपरिभाषा ग्रंथमैं धर्मराजने " व्यापारवत् असाधारणं कारणम् कारणं " यह कारणलक्षण कह्या है. औ "प्रमाकरणं प्रमाणम् " यह **प्रमाणका** लक्षण कह्या है. औ धर्मराजके पुत्रनैं वेदांत-परिभाषाकी टीकामैं यह कह्या हैः–उपमितिका असाधारणकारण **उपमान** है, सो व्यापारहीन है तैसैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिभी व्यापारहीन **कारण** है; यातैं उपमानादिक तीनिके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं उपमिति प्रमाका व्यापारवत् असाधारण कारण उपमान है. उपपादककी प्रमाका व्यापारवत् असाधारण कारण अर्थापत्तिप्रमाण है, अभावप्रमाका व्यापारवत् असाधारणकारण अनुपलब्धि प्रमाण है; इस रीतिसैं उपमानादिक तीनूंके व्यापारवत् पदघटित लक्षण करै तौ तीनूंकूं व्यापारवत्त्वके अभावतैं उपमानादिकनके विशेष लक्षणोंका असंभव होवैगा; यातैं व्यापारवत् पदरहित विशेष लक्षण है, उपमिति प्रमाका असाधारणकारण **उपमान** **प्रमाण** कहिये है. इसरीतिसैं अर्थापत्ति औ अनुपलब्धिके लक्षणमैंभी व्यापारवत् नहीं कहना, यातैं असंभव नहीं. इस रीतिसैं धर्मराजके पुत्रनैं उपमान प्रमाणादिकनके विशेष लक्षण तौ यथासंभव कह्या औ करणका लक्षण तथा प्रमाणका सामान्य लक्षण जो मूलकारका पूर्व कह्या है तासैं कछु विलक्षणता कही नहीं, यातैं तिसके पुत्रकी उक्तिमैं न्यूनता है. काहेतैं ? कारणके लक्षणमैं विशेष कहे विना व्यापारवत्ताके अभावतैं उप-मितिका करण **उपमान** है; औ अर्थापत्ति प्रमाका करण **अर्थापत्ति** है, अभावप्रमाका करण **अनुपलब्धि** है, ऐसा व्यवहार नहीं हुया चाहिये. तैसैं करणताके अभावतैं उपमानादिकनमैं प्रमाणता व्यवहारभी नहीं हुया चाहिये. यातैं मूलकारके करणलक्षणमैं व्यापारवत् पदका व्यापारभिन्न व्याख्यान करनेमें सर्व इष्टकी सिद्धि होवैहै, यातैं मूलकारके करणलक्षणमैं

व्यापारवत् पदका विलक्षण अर्थ नहीं करनेतैं पुत्रकी उक्तिमैं न्यूनता है औ हमारी रीतिसैं तौ व्यापाररहित उपमानादिकनमैंभी उपमिति आदिक प्रमाकी करणता संभवै है; इसरीतिसैं प्रपंचमैं ब्रह्मकी विधर्मताका ज्ञान उपमान है औ प्रपंचतैं बिधर्म ब्रह्म है यह उपमानप्रमाणका फल उपमिति ज्ञान है.

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे उपमान-
निरूपणं नाम चतुर्थः प्रकाशः ॥ ४ ॥

अथार्थापत्तिप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमप्रकाशप्रारम्भः ।

न्यायमतमैं अर्थापत्तिका अनंगीकार त्रिधा अनुमानका वर्णन ॥१॥

नैयायिकमतमैं पूर्वउक्त च्यारिही प्रमाण हैं व्यतिरेकि अनुमानमैं अर्थापत्तिप्रमाणका अन्तर्भाव है. औ सिद्धान्तमै केवल व्यतिरेकि अनुमानका अंगीकार नहीं;यातैं अर्थापत्ति भिन्न प्रमाण है, केवल व्यतिरेकि अनुमानका प्रयोजन अर्थापत्तिसैं सिद्ध होवै है.जहां अन्वयव्याप्तिका उदाहरण मिलै नहीं औ साध्याभावमैं हेतुके अभावकी व्याप्तिका उदाहरण मिलै सो केवल व्यतिरेकी अनुमान कहिये है. जैसैं "पृथिवी इतरभेदवती गंधवत्त्वात्" या स्थानमैं"यत्र गंधवत्त्वं तत्रेतरभेदः"या अन्वयव्याप्तिका उदाहरण मिलै नहीं. काहेतैं ? पक्षसैं भिन्न दृष्टांत होवै है. इहां सकल पृथिवी पक्ष है तासैं भिन्न जलादिकनमैं इतर भेद औ गंध रहै नहीं यातैं यह केवलव्यतिरेकी अनुमान है. "यत्र इतरभेदाभावस्तत्र गंधाभावः, यथा जले"इस रीतिसैं साध्याभावमैं हेतुके अभावकी व्याप्तिज्ञानको . हेतु जो सहचार ज्ञान सो जलादिकनमैं होवै है, यातैं जलादिक उदाहरण हैं. व्याप्तिज्ञानका हेतु

सहचारज्ञान जहां होवै सो उदाहरण कहिये है, अन्वयि अनुमानमैं जैसा व्याप्यव्यापक भाव होवै तासैं विपरीत व्यतिरेकिम होवै हैं. अन्वयिमैं हेतु व्याप्य होवै है औ साध्य व्यापक होवै है.. व्यतिरेकिमैं साध्याभाव व्याप्य होवै है, औ हेतुअभाव व्यापक होवै हैं; परंतु या स्थानमैं नैयायिकनके दो मत हैं. साध्याभावमैं हेतुके अभावका सहचारदर्शन होवै है,यातैं हेतुके अभावकी व्याप्तिका ज्ञानभी साध्याभावमैं होवै है.या पक्षमैं कोई नैयायिक यह दोष कहैं हैं:–जा पदार्थमैं जिसकी व्याप्तिका ज्ञान होवै ता हेतुसैं तिस साध्यकी अनुमिति होवै है. जिनपदार्थनका परस्पर व्याप्यव्यापकभाव जान्या नहीं तिनका परस्पर हेतु साध्यभाव बनैं नहीं. व्याप्यव्यापकभाव तौ इतरभेदाभाव गंधाभावका औ गंध इतर भेदका हेतु साध्यभाव कहना आश्चर्यजनक है.यातैं साध्याभाव हेत्वभावके सहचारदर्शनतैंभी हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवैहै. अन्वयि व्यतिरेकि अनुमानका इतना ही भेद है:–जहां हेतु साध्यके सहचारज्ञानतैं हेतुमैं व्याप्तिका ज्ञान होवैहै. सो अन्वयि अनुमान कहिये है. जहां साध्याभावमैं हेत्वभावके सहचारदर्शनतैं हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवै सो व्यतिरेकि अनुमान कहिये है. साध्यभावमैं हेत्वभावकी व्याप्तिका ज्ञान कहूंभी होवै नहीं औ जहां साध्याभावमैं हेतुके अभावकी व्याप्तिका ज्ञान होय जावै तहां साध्याभावतैं हेत्वभावकी अनुमिति ही होवै है. हेतुसैं साध्यकी अनुमिति होवै नहीं काहेतैं?व्याप्यज्ञानसैं व्यापक अनुमिति होवै हैं. यह नियम है आदिपक्ष प्राचीनका है, द्वितीय पक्ष नवीनका है, अनुमानप्रकरणमैं न्यायग्रंथनके अध्ययनविना बुद्धिका प्रवेश होवै नहीं, यातैं कोई अर्थ अनुमानका हमनैं विस्तारस लिख्या नहीं. इसरीतिसैं केवल व्यतिरेकि अनुमानके उदाहरण हैं. औ जहां साध्याभाव हेत्वभावके सहचारका उदाहरण मिलै नहीं सो केवलान्वयि अनुमान कहिये है. जैसैं "घटः पदशक्तिमान् ज्ञेयत्वात् पटवत्" इहां साध्याभाव हेत्वभावका सहचार कहूं मिलै नहीं. न्यायमतमैं ज्ञयता औ पदशक्ति सर्वमैं है. यातैं अभावनके सहचारका उदाहरण मिलै

नहीं.जहां दोनूंके उदाहरण मिलै सो अन्वयव्यतिरेकि अनुमान कहिये है, ऐसा प्रसिद्ध अनुमान है; 'पर्वतो वह्निमान्'याकूं प्रसिद्धानुमान कहैं हैं. इहां अन्वयके सहचारका उदाहरण महानस है औ व्यतिरेकके सहचारका उदाहरण महाह्रद है; इसरीतिसैं तीनि प्रकारका अनुमान नैयायिक कहैं हैं.

वेदांतरीतिसैं एक अन्वयि (अन्वयव्यतिरेकि) अनुमान औ अर्थापत्तिका स्वीकार ॥ २ ॥

वेदांतमतमैं केवल व्यतिरेकिका प्रयोजन अर्थापत्तिसैं होवै है, इतर भेदविना गंधवत्ता संभवै नहीं यातैं गंधवत्ताकी अनुपपत्ति इतर भेदकी कल्पना करै है औ इसरीतिसैं अर्थापत्ति प्रमाणतैं केवल व्यतिरेक गतार्थहै, औ केवलान्वयि अनुमान कोई है नहीं. काहेतैं ? सर्व पदार्थनका ब्रह्ममैं अभाव है यातैं व्यतिरेकसहचारका उदाहरण ब्रह्म मिले है. यद्यपि वृत्तिज्ञानकी विषयतारूप ज्ञेयता ब्रह्मविषै है. ताका अभाव ब्रह्मविषै बनै नहीं, तथापि ज्ञेयतादिक मिथ्या हैं. मिथ्यापदार्थ औ ताका अभाव एक अधिष्ठानमैं रहैहैं. यातैं जिसकूं नैयायिक अन्वयव्यतिरेकि कहैं हैं सोई अन्वयि नाम एकप्रकारका अनुमान है; यह वेदांतका मत है या मतमैं केवल व्यतिरेकि अनुमानका अंगीकार नहीं; अर्थापत्ति प्रमाणका अंगीकार है औ विचारदृष्टि करै तौ दोनूं मानने चाहिये. काहेतैं ? जहां एक पदार्थके ज्ञानके अनुव्यवसाय भिन्न होवै; तहां तिसपदार्थके ज्ञानोंके प्रमाण भिन्न होवैं हैं व्यवसायज्ञानका जनक प्रमाणभेदविना अनुव्यवसायका भेद होवै नहीं. एक वह्निका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तब "वह्निं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, अनुमानजन्य ज्ञान होवै तब "वह्निमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, जहां शब्दतैं वह्निका ज्ञान होवै तहां "वह्निं शाब्दयामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. औ जहां सूर्यमैं वह्निके सादृश्यज्ञानरूप उपमान प्रमाणतैं सूर्यसदृश वह्निका ज्ञान होवै तहां "सूर्येण वह्निमुपमिनोमि"

ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. ज्ञानके ज्ञानकूं **अनुव्यवसाय** कहैं हैं अनुव्यवसायका विषय जो ज्ञान होवै सो **व्यवसाय** कहिये है; इस रीतिसैं व्यवसाय ज्ञानका जनक प्रमाणके भेदतैं अनुव्यवसायका भेद होवै है. कदाचित "गंधेन इतरभेदं पृथिव्यामनुमिनोमि" ऐसा **अनुव्यवसाय** होवै है औ "गंधानुपपत्त्या इतरभेदं पृथिव्यां कल्पयामि" कदाचित् ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. जहां अनुव्यवसायका विषय व्यवसायअनुमान प्रमाणजन्य है, तहां प्रथम अनुव्यवसाय होवै है जहां अनुव्यवसायका विषय व्यवसाय अर्थापत्ति प्रमाणजन्य है, तहां द्वितीय अनुव्यवसाय होवै हैं, इसरीतिसैं अनुव्यवसायके भेदतैं व्यवसायके भेदतैं व्यवसायज्ञानके जनक अनुमान अर्थापत्ति दोनूं हैं. एककूं मानिकै दूसरेका निषेध बनैं नहीं. और **शब्दशक्तिप्रकाशिकादि ग्रंथनमैं** अनुमानप्रमाणतैं शब्दप्रमाणका भेद अनुव्यवसायके भेदसैं ही सिद्ध कह्या है.यातैं प्रमाणके भेदकी सिद्धिमैं अनुव्यवसायका भेद प्रबल हेतु है. इसरीतिसैं अर्थापत्ति औ केवलव्यतिरेकि अनुमान दोनं मानने चाहिये. जहां विषयका प्रकाश एक प्रमाणतैं सिद्ध होवै तहां अपरप्रमाणका निषेध होवै नहीं, केवलव्यतिरेकिका स्वरूप संक्षेपतैं दिखाया है.

अर्थापत्तिप्रमाण औ प्रमाका स्वरूपभेद अरु उदाहरण ॥ २ ॥

अर्थापत्तिका यह स्वरूप है:–जैसैं प्रमाण औ प्रमाका बोधक प्रत्यक्ष शब्द है तैसैं अर्थापत्ति शब्दभी प्रमाण औ प्रमा दोनूंका बोधक है. उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्य ज्ञानकूं **अर्थापत्ति प्रमाण** कहैं हैं. उपपादक ज्ञानकूं **अर्थापत्ति प्रमा** कहैं हैं;उपपादक संपादक पर्यायशब्द हैं, उपपाद्य संपाद्य पर्याय हैं; यातैं विचारसागरमैं संपादक ज्ञानकूं **अर्थापत्ति** कह्या है, तैसैं विरोध नहीं. जिसविना जो संभवै नहीं तिसका सो **उपपाद्य** कहिये है.जैसैं रात्रिभोजनविना दिवाअभोजी पुरुषमैं स्थूलता संभवै नहीं, यातैं रात्रिभोजनका स्थूलता उपपाद्य है.जिसके अभावसैं जाका अभाव होवै

सो ताका उपपादक कहिये है. जैसैं रात्रिभोजनके अभावसैं स्थूलताका दिवाअभोजीकूं अभाव होवै है; यातैं रात्रिभोजन स्थूलताका उपपादक है. शंकाः—इसरीतिसैं व्यापककूं उपपादकता औ व्याप्यकूं उपपाद्यता सिद्ध होवैहै. उपपादक ज्ञानका हेतु उपपाद्यज्ञान **अर्थापत्तिप्रमाण** है, या कहनेतैं व्यापकज्ञानका हेतु व्याप्यज्ञान **अर्थापत्तिप्रमाण** है. यह सिद्ध होवै है. ऐसा अनुमान प्रमाण है. अर्थापत्तिप्रमाणका अनुमानप्रमाणसैं भेद प्रतीत होवै नहीं. उत्तर—स्थूलता रात्रिभोजनका व्याप्य है औ स्थूलतावाला देवदत्त है ऐसैं दो ज्ञान होयकै जहां रात्रिभोजनकाज्ञान होवै तहां अनुमितिज्ञान है औ दिवाअभोजीपुरुषमैं रात्रिभोजन बिना स्थूलताकी अनुपपत्तिहै ऐसा ज्ञानतैं उत्तर रात्रिभोजनका ज्ञान **अर्थापत्तिप्रमा** है;इसी कारणतैं प्रथमरीतिसैं रात्रिभोजनके ज्ञानतैं उत्तर "स्थौल्येन रात्रिभोजनमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है.द्वितीयरीतिसैं रात्रिभोजनके ज्ञानतैं उत्तर "स्थूलतानुपपत्त्या रात्रिभोजनं कल्पयामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है इसरीतिसैं उपपाद्य अनुपपत्ति ज्ञानतैं उपपादक कल्पना **अर्थापत्तिप्रमा** कहिये है. उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान **अर्थापत्तिप्रपाण** कहिये है अर्थ कहिये उपपादक वस्तु ताकी आपत्ति कहिये कल्पना या अर्थसैं अर्थापत्ति शब्द प्रमाका बोधक है तहां "अर्थस्य आपत्तिः" ऐसा षष्ठीतत्पुरुष समास है औ "अर्थस्य आपत्तिर्यस्मात्" इस बहुव्रीहिसमासतैं अर्थकी कल्पना जिसतैं होवै सो उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञानरूप प्रमाण **अर्थापतिशब्दका अर्थ है. अर्थापति दो प्रकारकी है**, एक दृष्टार्थापत्ति है; दूसरी श्रुतार्थापत्ति है. जहां दृष्ट उपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै तहां **दृष्टार्थापत्ति** कहिये है. जैसैं दिवाअभोजी स्थूलमैं रात्रिभोजनका ज्ञान **दृष्टार्थापत्ति** है. काहेतैं ? उपपाद्य स्थूलता दृष्ट है औ जहां श्रुत उपपाद्यकी अनुपपत्तिकी ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै तहां **श्रुतार्थापत्ति** कहिये है जैसैं "गृहेऽसन् देवदत्तो जीवति"

या वाक्यकूं सुनिकै गृहस बाह्य देशमैं देवदत्तकी सत्ताविना गृहमैं असत् देवदत्तका जीवन बनैं नहीं; यातैं गृहमैं असत् देवदत्तके जीवनकी अनुपपत्तिसैं देवदत्तकी गृहतैं बाह्यसत्ता कल्पना करिये है, तहां गृहमैं असत् देवदत्तका जीवन दृष्ट नहीं किंतु श्रुत है. श्रुतअर्थकी अनुपपत्तिसैं उपपादककी कल्पना **श्रुतार्थापत्तिप्रमाण** कहिये है, ताका हेतु श्रुत अर्थकी अनुपपत्तिका ज्ञान **श्रुतार्थापत्तिप्रमा** कहिये है. या स्थानमैं गृहमैं असत् देवदत्तका जीवन उपपाद्य है; गृहतैं बाह्यसत्ता उपपादक है. अभिधानानुपपत्ति औ अभिहितानुपपत्ति भेदतैं **श्रुतार्थापत्ति दो प्रकारकी है.** "द्वारम्" अथवा "पिधेहि" इत्यादिस्थानमैं जहां वाक्यका एकदेश उच्चारित होवै एक देश उच्चारित नहीं होवै, तहां श्रुतपदके अर्थके अन्वययोग्य अर्थका अध्याहार होवै है. अथवा अन्वययोग्य अर्थका बोधक जो पद ताका अध्याहार होवैहै. इनहीकूं क्रमतैं **अर्थाध्याहारवाद औ शब्दाध्याहारवाद** ग्रंथनमैं कहैं हैं; परंतु अर्थके अध्याहारका ज्ञान वा पदके अध्याहारका ज्ञान अन्यप्रमाणतैं संभवै नहीं. अर्थापत्ति प्रमाणतैं होवैहै, इहां **अभिधानानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति** है. काहेतें ? अन्वयबोधफलवाले शब्दप्रयोगकूं **अभिधान** कहैंहैं 'द्वारम्' इत्यादिक शब्दप्रयोगरूप अभिधानकी पिधानरूप अर्थके वा 'पिधेहि' पदके अध्याहार विना अनुपपत्ति है. अथवा या स्थानमैं एकपदार्थका दृष्टपदार्थांतरमैं अन्वयबोधमैं वक्ताका तात्पर्य अभिधानशब्दका अर्थ है. 'द्वारम्' इतना कहै तहां द्वारकर्मताका निरूपकता संबंधसैं **पिधानान्वयिबोध** श्रोताकूं होवै ऐसा वक्ताका तात्पर्यरूप **अभिधान** है.औ 'पिधेहि' इतना कहै तहांभी पूर्वोक्त वक्ताका तात्पर्यरूप **अभिधान** है. वक्ताके तात्पर्यरूप अभिधानकी अध्याहारविना अनुपपत्ति है; यातैं **अभिधानानुपपत्ति** कहिये है,इहां अर्थका अध्याहार अथवा शब्दका अध्याहार उपपादक है, बोधफलक शब्दप्रयोग उपपाद्य है, अथवा पूर्वउक्त तात्पर्य उपपाद्य है,बोधफलक शब्दप्रयोगरूप उपपाद्यकी अनुपपत्तिस अथवा तात्पर्यरूप उपपाद्यकी अनुपपत्तिसैं अर्थ

अथवा शब्दरूप उपपादककी कल्पनाहै यातैं अध्याहृत अर्थका वा शब्दका अभिमानानुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणतैं बोध होवै है. जहां सारे वाक्यका अर्थ अन्य अर्थ कल्पनविना अनुपपन्न होवै तहां **अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति** है. जैसे "स्वर्गकामो यजेत" या वाक्यका अर्थ अपूर्वकल्पन-विना अनुपपन्न है; यातैं अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति है; इहां यागकूं स्वर्गसाधनता उपपाद्य है. ताकी अनुपपत्तिसैं उपपादक अपूर्वकी कल्पना है औ स्वर्गसाधनता दृष्ट नहीं किंतु श्रुत है, यातैं **श्रुतार्थापत्ति** है.

अर्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदहारण ॥ ४ ॥

श्रुतार्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण "तरति शोकमात्मवित्" यह है. इहां ज्ञानतैं शोककी निवृत्ति श्रुत है. ताकी शोकमिथ्यात्वविना अनुपपत्ति है, यातैं ज्ञानतैं शोककी निवृत्तिका अनुपपत्तिसैं बंधमिथ्यात्वकी कल्पना होवै है. बंधमिथ्यात्व उपपादक है; ज्ञानतैं शोकनिवृत्ति उपपाद्य है, सो दृष्ट नहीं; किंतु श्रुत है; यातैं **श्रुतार्थापत्ति** है. तैसैं महावाक्यनमैं जीवब्रह्मका अभेद श्रवण होवै है सो औपाधिक भेद होवै तौ संभवै, स्वरूपसैं जीवब्रह्मका भेद होवै तौ संभवै नहीं; यातैं जीवब्रह्मके अभेदकी अनुपपत्तिसैं भेदका औपाधिकत्वज्ञान अर्थापत्तिप्रमाणजन्य है. इहां जीवब्रह्मका अभेद उपपाद्य है भेदसैं औपाधिकता उपपादक है, सारे उपपाद्य ज्ञान प्रमाण है उपपादक ज्ञान प्रमा है, इहां जीवब्रह्मका अभेद विद्वानकूं दृष्ट है, अन्यकूं श्रुत है; यातैं दृष्टार्थापत्ति औ श्रुतार्थापत्ति दोनूंका उदाहरण है. जहां वाक्यमैं पदका वा अर्थका अध्याहार नहीं होवै औ अन्यअर्थकी कल्पनाविना वाक्यार्थकी अनुपपत्ति होवै तहां **अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति** होवै है; यातैं 'द्वारम्' इस एक उदाहरण विना अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्तिके उदाहरण हैं तैसैं रजतके अधिकरण शुक्तिमैं रजतका निषेध दृष्ट है, सो रजतके मिथ्यात्वविना संभवै नहीं; यातैं निषेधकी अनुपपत्तिसैं रजतमिथ्यात्वकी कल्पना होवै है, यह **दृष्टार्थापत्तिका उदाहरण** है.

इहां रजतनिषेध उपपाद्य है औ मिथ्यात्व उपपादक है औ मनके विलयसैं अनंतर निर्विकल्पसमाधिकालमैं अद्वितीय ब्रह्ममात्र शेष रहै है. सकल अनात्मवस्तुका अभाव होवै है सो अनात्मवस्तु मानस होवै तौ मनके विलयतैं ताका अभाव संभवै.जो मानस नहीं होवै तौ मनके विलयतैं अभाव होवै नहीं. काहेतैं ? अन्यके विलयतैं अन्यका अभाव होवै नहीं; यातैं मनके विलयतैं सकल द्वैताभावकी अनुपपत्तिसैं सकल द्वैत मनोमात्र है यह कल्पना होवै है. या स्थानमैं मनके विलयतैं सकल द्वैतका विलय उपपाद्य है, ताका ज्ञान **अर्थापत्तिप्रमाण** है. सकल द्वैतकूं मानसता उपपादक है; ताका ज्ञान **अर्थापत्तिप्रमा** है. या स्थानमैं उपपादक प्रमाका असाधारण कारण **अर्थापत्तिप्रमाण** है, निर्व्यापार है, तौ भी तामैं उपपादक प्रमाकी करणता संभवै है,यह,उपमाननिरूपणमैं कह्या है.

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे अर्थापत्तिप्रमाण-निरूपणं नाम पंचमः प्रकाशः ॥ ५ ॥

अथानुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम षष्ठप्रकाशप्रारंभः ।

अभावका सामान्य लक्षण औ भेद ॥ १ ॥

अनुपलब्धिप्रमाणतैं अभावकी प्रमा होवै है, यातैं अभावकी प्रमाके असाधारण कारणकूं **अनुपलब्धिप्रमाण** कहैं हैं. न्यायवेदांतके संस्कारहीन अभावके स्वरूपकूं जानैं नहीं, यातैं प्रथम **अभावका स्वरूप** कहैं हैं निषेधमुख प्रतीतिका विषय होवै अथवा प्रतियोगी सापेक्ष प्रतीतिका विषय होवै सो **अभाव** कहिये है. प्राचीनमतसैं प्रथमलक्षण है. नवीन मतमैं ध्वंस औ प्रागभाव नशब्दजन्य प्रतीतिके विषय नहीं; यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा, यातैं दूसरा लक्षण कह्या है. प्रतियोगीकूं त्यागिकै अभावकी प्रतीति होवै नहीं यातैं प्रतियोगिसापेक्ष प्रतीतिके विषय सकल अभाव हैं.

यद्यपि अभावकी नाईं संबंध औ सादृश्य भी प्रतियोगिनिरपेक्ष प्रतीतिके विषय नहीं किंतु प्रतियोगिसापेक्ष प्रतीतिके विषय हैं तिनमैं अभावलक्षण जावैहै तथापि संबंध औ सादृश्यकी प्रतियोगितासैं अभावकी प्रतियोगिता विलक्षण है सो न्यायग्रन्थनमैं अभावाभावरूपता अभावकी प्रतियोगिताका स्वरूप आचार्यनैं लिख्या है. ऐसी प्रतियोगिता संबंधकी औ सादृश्यकी है नहीं; यातैं संबंधकी औ सादृश्यकी प्रतियोगितासैं विलक्षण प्रतियोगितावाला जाका प्रतियोगी होवै सो अभाव कहियेहै. स्थूल रीति यह है:—संबंध सादृश्यतैं भिन्न होवै औ प्रतियोगिसापेक्षप्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहिये है. सो अभाव दो प्रकारका है.एक संसर्गाभाव है. दूसरा अन्योन्याभाव है तिनमैं अन्योयाभाव तो एकविधही है. संसर्गाभावके च्यारि भेद हैं. प्रागभाव १ प्रध्वंसाभाव २ सामयिकाभाव ३ औ अत्यंताभाव ४ है इस रीतिसैं च्यारिप्रकारका संसर्गाभाव औ अन्योन्याभाव मिलिक पांचप्रकारका अभाव है. कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटका अभाव है. औ कच्चे कपालमैं रक्तरूपकी उत्पत्तिसैं पूर्व रक्तरूपका अभाव है सो प्रागभाव है. घटकी उत्पत्तिसैं उत्तर मुद्गरादिकतैं कपालमैं घटका अभाव है सो प्रध्वंसाभाव है. औ पक्क कपालमैं श्यामरूपका अभाव होवैहै सो श्यामरूपका प्रध्वंसाभाव है. नैयायिकमतमैं प्रध्वंसाभाव सादि है औ अनंत है. काहेतैं ? घटके ध्वंसकी उत्पत्ति तौ मुद्गरादिकनतैं होवे है यह अनुभवसिद्ध है औ ध्वंसका ध्वंस संभवै नहीं,काहेतैं?प्रागभाव प्रतियोगि औ ध्वंस इन तीनूंमैं एकका अधिकरणकाल अवश्य होवै है प्रागभावध्वंसका अनाधार कालप्रतियोगीका आधार होवै है यह नियम है. जैसैं घटकी उत्पत्ति हुये नाशतैं पूर्व घटके प्रागभावऔरध्वंसका अनाधार काल है.काहेतैं?प्रागभावकानाशहोगया औ घटका ध्वंस हुया नहीं यातैं घटध्वंसका अनाधार काल है सो घटका आधार काल है. जो घटके ध्वंसका ध्वंस मानैं तौ घटध्वंसके ध्वंसका अ-

धिकरण काल घटप्रागभावका औ घटध्वंसका अनाधार होनेतैं घटका आधार हुया चाहिये इस रीतिसैं ध्वंसका ध्वंस मानैं तौ प्रतियोगीका उन्मज्जन हुया चाहिये. इसीवास्तै प्रागभावकूं आनादि मानैं हैं. जो सादि मानैं तौ प्रागभावकी उत्पत्तिसैं प्रथमकाल प्रागभाव औ ध्वंसका अनाधार होनेतैं प्रतियोगिका आधार हुया चाहिये; यातैं प्रागभाव अनादि सांत है, ध्वंस अनन्त सादि है, भूतलादिकनमैं जहां कदाचित् घट होवै तहां घटशून्य कालमैं घटका सामयिकाभाव है. किसी समयमैं होवै सो सामयिकाभाव कहिये है; वायुमैं रूप कदाचित् भी होवै नहीं यातैं वायुमैं रूपका अत्यंताभाव है, घटसैं इतर पदार्थनमैं जो घटका भेद सो घटका अन्योन्याभाव है, सामयिकाभाव तौ सादि सांत है. अत्यंताभाव, अन्योन्याभाव दोनूं अनादि अनंत हैं, इस रीतिसैं पांच प्रकारका अभाव है.

प्राचीन न्यायमतमैं अभावके परस्पर विलक्षणताकी साधक प्रतीति ॥ २ ॥

तिनकी परस्पर विलक्षणताकी साधक विलक्षण प्रतीति कहैं हैः—कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व "कपाले घटो नास्ति" एसी प्रतीति होवै है. ताका विषय घटका प्रागभाव है, काहेतैं ? प्रतियोगिके उपादानकारणमैं सामयिकाभाव औ अत्यन्ताभाव तौ रहै नहीं यह अर्थ आगे कहैंगे. किंतु अपने प्रतियोगिके उपादानकूं त्यागिकै अन्य स्थानमैं दोनूं अभाव रहैं हैं यातैं "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिके विषय सामयिकाभाव अत्यंताभाव नहीं औ घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व ध्वंसका संभव नहीं. काहेतैं ? ध्वंसका प्रतियोगि निमित्तकारण होवै है; कारणतै पूर्व कार्य संभवै नहीं. यातैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय घटध्वंसभी नहीं. औ घटका अन्योन्याभाव यद्यपि कपालमैं सर्वदा है तथापि "कपालो न घटः" ऐसी अन्योन्याभावकी प्रतीति होवै है "कपाले न घटः" ऐसी प्रतीति अन्योन्याभावकी होवै नहीं. जो ऐसी प्रतीतिका विषय है

सो **प्रागभाव** कहिये हैं. तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका अदर्शन होवै तब "कपाले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है ताका विषय प्रागभाव नहीं है. काहेतैं ? प्रागभावका नाश प्रतियोगिरूप होवै है. घटकी उत्पत्तिसैं उत्तर प्रागभावका संभव नहीं औ जो तीनि अभाव हैं तिनकाभी पूर्वउक्त प्रकारसैं सम्भव नहीं यातैं मुद्गरादिजन्य घटके अदर्शन कालमैं "कपाले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है; ताका विषय **प्रध्वंसाभाव** है. इस रीतिसैं प्रागभाव औ प्रध्वंसाभावभी नशब्दजन्य प्रतीतिके विषय हैं, यह प्राचीनका मत है.

नवीनन्यायमतमैं अभावके परस्पर विलक्षणताकी साधक प्रतीति ॥ ३ ॥

औ नवीनमतमैं प्रतियोगिके उपादानकारणमैंभी अत्यंताभाव रहै है. काहेतैं ? अत्यन्ताभावका प्रतियोगिसैं विरोध है अन्यतैं नहीं. जहां प्रतियोगी नहीं होवै तहां सारै अत्यंताभाव होवै है, यातैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व औ प्रतियोगिके नाशकालमैं प्रतियोगिका अत्यन्ताभाव होनेतैं "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय **अत्यन्ताभाव** है; ऐसी प्रतीतिसैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावकी सिद्धि होवै नहीं; किंतु "कपाले घटो भविष्यति" ऐसी प्रतीति घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व होवै है. ताका विषय **प्रागभाव** है. और "घटो ध्वस्तः" ऐसी प्रतीतिका विषय ध्वंस है. इसरीतिसैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम कपालमैं घटका अत्यंताभाव औ प्रागभाव दोनूं हैं तिनमैं "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय कपालमैं घटका **अत्यंताभाव** है औ "कपाले घटो भविष्यति" इस प्रतीतिका विषय कपालमैं घटका **प्रागभाव** है. तैसे मुद्गरादिकनतैं कपालमैं घटका अदर्शन होवै तिसकालमैं भी "कपाले घटो नास्ति; कपाले घटो ध्वस्तः" इसरीतिसैं द्विविध प्रतीति होवै है तिनमें आद्यप्रतीतिका विषय घटका **अत्यंताभाव** है. औ द्वितीय प्रतीतिका विषय कपालमैं घटका **प्रध्वंसाभाव** है; इसरीतिसैं नवीनमतमैं प्रागभाव प्रध्वंसा-

भाव नशब्दजन्यप्रतीतिके विषय नहीं; यातैं प्रथम लक्षण प्राचीनमतके अनुसारी है. उभयमतानुसारी द्वितीय लक्षण है यातैं द्वितीय लक्षणही समीचीन है.

अभावका द्वितीयलक्षण औ त्रिलक्षण प्रतीति ॥ ४ ॥

संबंध औ सादृश्यतैं भिन्न जो अन्यसापेक्षप्रतीतिका विषय होवै सो **अभाव** कहिये है;यह द्वितीय लक्षण है. 'भूतले घटो नास्ति' इस प्रतीतिके विषय प्रागभाव औ ध्वंस नहीं. काहेतैं ? प्रतियोगिके उपादानमें दोनूं अभाव रहैं हैं. घटाभावके प्रतियोगी घटका उपादान भूतल नहीं यातैं उक्त प्रतीतिके विषय दोनूं अभाव नहीं. अत्यंताभाव अन्योन्याभाव तौ नित्य हैं औ भूतलमैं घटाभाव अनित्य है; यातैं घटका सामयिकाभाव ही उक्तप्रतीतिका विषय है. "वायौ रूपं नास्ति" इस प्रतीतिका विषय केवल अत्यंताभाव है. अनंत होनेतैं प्रागभाव नहीं, अनादितासैं ध्वंस नहीं सर्वदा होनेतैं सामयिकाभाव नहीं; यातैं उक्तप्रतीतिका विषय अत्यंताभाव है. तैसैं "वायुर्न रूपवान्"इस प्रतीतिका विषय **अन्योन्याभाव** है.उक्त प्रतीतिसैं वायुमैं रूपवत्का भेद भासै है, तैस "घटः पटो न" या प्रतीतिका विषय **अन्योन्याभाव** है. अन्योन्याभावकूं ही **भेद** कहैं हैं.

अन्योन्याभावलक्षण औ तामैं शंका समाधान ॥ ५ ॥

अभेदका निषेधक जो अभाव सो **अन्योन्याभाव** कहिये है. "घटः पटो न" ऐसा कहनेतैं घटमैं पटके अभेदका निषेध होवै है, यातैं घटमैं पटका अन्योन्याभाव है. काहेतैं ? नशब्द विना जामैं जो प्रतीत होवै ताका नशब्दसैं निषेध होवै है. जैसैं न शब्द विना 'घटः पटः' या वाक्यतैं 'नीलो घटः' इत्यादिकनकी नाई पटमैं घटका अभेद वा घटमैं पटका अभेद प्रतीत होवै है. तिस अभेदका निषेध नशब्दसैं होवै है. परंतु इतना भेद हैः—जा पदसैं नशब्दका संबंध होवै ता पदके अर्थके अभेदका निषेध होवै है. जैसैं "घटः पटो न" या वाक्यमैं पटपदसैं नश-

ब्दका संबंध है तहां घटमैं पटपदके अर्थके अभेदका निषेध होवै है; औ "पटो घटो न" या वाक्यमैं नशब्दका संबंध घटपदसैं है. तहां घटपदके अर्थके अभेदका निषेध पटमैं होवै है; इसीवास्ते "घटः पटो न" या वाक्यतैं जो अन्योन्याभाव प्रतीत होवै ताका घट **अनुयोगी** है औ पट **प्रतियोगी** है, तैसैं "पटो घटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुये अन्योन्याभावका पट **अनुयोगी** है, **घट प्रतियोगी** है. जामैं अभाव होवै सो अभावका **अनुयोगी** कहिये है; जाका अभाव होवै सो **प्रतियोगी** कहिये है.

शंकाः—जाका निषेध करिये ताका **अभाव** कहिये, सोई **अभावका प्रतियोगी** कहिये है औ पूर्व यह कह्याः—"घटः पटो न" या वाक्यतैं घटमैं पटके अभेदका निषेध करिये है, और "पटो घटो न" या वाक्यतैं पटमैं घटके अभेदका निषेध करिये है; यातैं "घटः पटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुये अभावका प्रातियोगी पटका अभेद है पट नहीं. तैसैं "पटो घटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुये अभावका प्रतियोगी घटका अभेद है घट नहीं यातैं दोनूं वाक्यनमैं अभेदका निषेध कहैं तौ पटमैं क्रमतैं प्रतियोगिताकथनसैं विरोध होवैगा.

ताका **समाधानः**—अभेद नाम असाधारण धर्मका है. जो अपने आत्मा विना किसीपदार्थमैं नहीं रहै केवल अपनैमैंही रहै सो **अपना असाधारण धर्म** कहिये है. घटका अभेद घटमैं ही रहैहै अन्यमैं नहीं, यातैं घटका अभेद घटका **असाधारण धर्म** है; सो असाधारण धर्मरूप अभेदही सकल पदार्थनका अपनेमैं संबंध है. इसरीति सारे पदार्थनका असाधारण धर्मरूप अभेदसंबंध अपने स्वरूपमैं रहै है. जा पदार्थनका जो संबंध जामैं रहैहै सो पदार्थ ता संबंधसैं तिसमैं रहै है. जैसैं घटका संयोगसंबंध भूतलमैं होवै तहां संयोगसंबंधसैं भूतलमैं घट रहै है, यह व्यवहार होवै है; यातैं घटका भूतलमैं संयोगसंबंधसैं

है औ संयोगसंबंधतैं भूतलमैं घट है या कहनेमैं अर्थका भेद नहीं. तैसैं संयोगसंबंधतैं भूतलमैं घटाभाव है औ भूतलमैं घटसंयोगका अभाव है या कहनेमैं एकही अर्थ है; इस प्रकारतैं पटमैं अभेदसंबंधतैं घटाभाव औ घटके अभेदसंबंधका पटमैं अभाव दोनूं समनियत होनेतैं एकही पदार्थ है. समनियत अभावनका भेद होवै नहीं. जैसैं घटत्वात्यंताभाव औ घटान्योन्याभाव दोनूं घटसैं भिन्न सकल पदार्थनमैं रहैं हैं यातैं समनियत होनेतैं परस्पर भिन्न नहीं; किंतु एकही अभावमैं घटत्वात्यंताभावत्व औ घटान्योन्याभावत्व दो धर्म हैं. औ एकही अभावके घटत्व औ घट दोनूं प्रतियोगी हैं. घटत्वात्यंताभावत्वरूपतैं जिस अभावका घटत्व प्रतियोगी है तिसी अभावका घटान्योन्याभावत्वरूपतैं घटभी प्रतियोगी है. औ जिसरीतिसैं एकही अभावके रूपभेदसैं दो प्रतियोगी हैं. तैसैं रूपभेदसैं एकही अभावके प्रतियोगितावच्छेदक दो संबंध हैं घटत्वात्यंताभावत्वरूपतैं प्रतियोगितावच्छेदक समवाय संबंध है,औ घटान्योन्याभावत्वरूपतैं तिसी अभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवाय संबंध है.इसरीतिसैं पटादिक सकल पदार्थनमैं घटाभेदका अत्यंताभाव औ घटान्योन्यभावभी एक हैं तिस एक अभावमैं घटाभेदात्यंताभावत्व औ घटान्योन्याभावत्व दो धर्म हैं औ घटाभेदात्यंताभावत्वरूपतैं तिस अभावका घटाभेद प्रतियोगी है, प्रतियोगितावच्छेदक स्वरूपसंबंध है औ घटान्योन्याभावत्वरूपतैं तिसी अभावका घट प्रतियोगी है; प्रतियोगितावच्छेदक अभेदसंबंध है तिस अभेद संबंधकूंही तादात्म्य कहैं हैं, तद्व्यक्तित्व कहै हैं. इसरीतिसैं घटके अभेदके निषेधका घट प्रतियोगी है यह कथनभी संभवै है विरुद्ध नहीं.

या स्थानमैं यह निष्कर्ष है:—जिस वाक्यतैं नशब्द विना जा पदार्थमैं जा संबंधसैं जो पदार्थ प्रतीत होवै तिस वाक्यतैं नशब्दसहित ता पदार्थमैं ता संबंधसैं तिस पदार्थका निषेध प्रतीत होवै है. जैसैं "नीलो घटः" या वाक्यतैं घटपदार्थमैं अभेदसंबंधसैं नीलपदार्थ प्रतीत होवै है. काहेतैं ? अभेदसंबंधसैं नीलविशिष्ट घट है, यह वाक्यका अर्थ है. नसहित

"घटो न नीलः" या वाक्यतें अभेदसंबन्धतें नीलका निषेध घटमैं प्रतीत होवै है. तैसैं "घटः पटः" या वाक्यतें भी नशब्द विना पटपदार्थमैं अभेद-संबंधतें घटपदार्थ प्रतीत होवैहै. काहेतें ? जहां दोनूं पदनमैं समानविभक्ति होवैं तहां एक पदार्थमैं अभेदसंबंधसैं अपरपदार्थ प्रतीत होवैहै; **यह नियम** है. "नीलो घटः" या वाक्यकी नाई "घटः पटः" या वाक्यमैं दोनूं पद समान विभक्तिवाले हैं. यातैं नशब्दविना "घटः पटः" या वाक्यतें भी पटपदार्थमैं अभेदसंबंधसैं घटपदार्थ प्रतीत होवै है. यद्यपि अभेदसंबंधसैं पटपदार्थमैं घटपदार्थ संभवै नहीं. तथापि एकपदार्थमैं अभेद संबंधसैं अपरपदार्थकी प्रतीतिकी सामग्री समान विभक्ति है. सो "घटः पटः" या वाक्यमैं भी है. यातैं नशब्द विना "घटः पटः" या वाक्यतें पटपदार्थमैं अभेद संबंधसैं घट प्रतीत होवैहै, परंतु पटपदार्थमैं अभेद संबंधसैं घटपदार्थकी प्रतीति भ्रमरूप होवैगी प्रमा नहीं; यातैं नशब्द विना एक-पदार्थमैं जा संबंधसैं अपर पदार्थकी प्रतीति भ्रमरूप वा प्रमारूप होवै तहां नशब्द मिलै तौ एक पदार्थमैं ता संबंधसैं अपर पदार्थका निषेध होवै है. इस रीतिसैं एक पदार्थमैं अभेद संबंधसैं अपरपदार्थका निषेधक अभाव **अन्योन्याभाव** कहिये हैं.

नवीनरीतिसैं संसर्गाभावके च्यारि भेद औ तिनके लक्षण औ परीक्षा ॥ ६ ॥

तासैं भिन्न जो अभाव ताकूं **संसर्गाभाव** कहैहैं. संसर्गाभाव प्राचीनमतमैं च्यारिप्रकारका है:–अनादि सांत जो अभाव सो **प्रागभाव** कहिये है. अपने प्रतियोगिके उपादानकारणमैं प्रागभाव रहै है जैसैं घटके प्रागभावका प्रतियोगी घट है,ताके उपादानकारण कपालमैं घटका प्रागभाव रहै है. कपालकी उत्पत्तिसैं भी प्रथम कपालके उपादानकारणमैं घटका प्रागभाव रहै है. इसरीतिसैं सृष्टितैं प्रथम घटारंभक परमाणुसमुदायमैं घटका प्रागभाव रहै है. औ परमाणु घटके मध्य जो द्व्यणुकादि कपा-

सांत अवयवी हैं तिन सर्वके प्रागभाव सृष्टितैं प्रथमपरमाणुमैं रहै है. इसरीतिसैं प्रागभाव **अनादि** कहिये उत्पत्तिरहित है, औ **सांत** कहिये अंतवालाहै अन्त नाम ध्वंसका है जाकूं **नाश**कहैं हैं. जो घटकी उत्पत्तिकी सामग्री तासैं घटके प्रागभावका अंत होवै है यातैं घटके प्रागभावका अन्त घटरूपही है. घटके प्रागभावका ध्वंस घटसैं पृथक् नहीं. यद्यपि प्रध्वंसाभाव अनंत है और घट सांत है, घटके प्रागभावका ध्वंस घटरूप होवै तौ प्रध्वंसाभाव सांत होवैगा. प्रध्वंसाभाव अनंत है या नियमका भंग होवैगा. **ध्वंस नाश अंत** ये पर्यायशब्द हैं. सो ध्वंस **दो प्रकारका** होवै है. एक तौ भावपदार्थका नाशरूप ध्वंस होवै है औ दूजा अभावका नाशरूप ध्वंस होवै है. भावपदार्थका नाशरूप ध्वंस तौ अभावरूप होवै है; ताहीकूं **प्रध्वंसाभाव** कहै हैं. जैसैं घटादिक भावपदार्थनका नाश अभावरूप है ताकूं **प्रध्वंसाभाव** कहैं हैं, औ अभाव पदार्थका नाशरूप ध्वंस भावरूप होवैं है ताकूं ध्वंस-प्रध्वंस तौ कहैं हैं औ ध्वंसाभाव प्रध्वंसाभाव कहैं नहीं जैसैं घटका प्रागभाव अभाव पदार्थ है; ताका नाशरूपध्वंस घट है सो भावरूप है, ताकूं प्रध्वंसाभाव नहीं कहैं हैं; किंतु घटके प्रागभावका नाशरूप घटकूं स्वप्रागभावका ध्वंस औ प्रध्वंसही कहैं हैं. इसरीतिसैं **दो प्रकारका ध्वंस** होवै है. तिनमैं भावरूपध्वंस तौ सांत है, परंतु अभावरूप ध्वंस अनंत है; यातैं घटके प्रागभावका ध्वंस घटरूप तौ सांत है तथापि प्रध्वंसाभाव अनंत है; या नियमकी हानि नहीं. इसरीतिसैं अनादि सांत जो अभाव सो **प्रागभाव** कहिये है. अनादि अभाव तौ अत्यंताभावभी है सो सांत नहीं. औ सांत अभाव सामयिकाभावभी है सो अनादि नहीं. औ वेदांतसिद्धान्तमैं अनादि औ सांत माया है सो अभाव नहीं, किंतु जगत्का उपादान कारण माया है जो अभावरूप माया होवै तौ उपादान कारणता संभवै नहीं. काहेतें? घटादिकनके उपादानकारण कपालादिक भावरूपही प्रसिद्ध हैं. अभाव किसीका उपादानकारण नहीं, यातैं माया अभावरूप नहीं किंतु भावरूप है. यद्यपि माया भावअभावसैं

विलक्षण अनिर्वचनीय है तथापि अभावरूप माया नहीं यातैं भावरूपताभी माया विषै संभवै नहीं, यातैं प्रागभावके लक्षणमैं अभावपदके प्रवेशतैं मायामैं प्रागभावका लक्षण जावै नहीं, औ माया भावरूप नहीं या कथनका यह अभिप्राय है:—कालत्रयमैं जाका बाध न होवै सो परमार्थसत् कहिये है औ भाव कहिये है ऐसा ब्रह्म है माया नहीं. काहेतैं? ज्ञानतैं उत्तरकालमैं मायाका बाध होवै है. यातैं सत्स्वरूप परमार्थ भावतौ यद्यपि माया नहीं तथापि विधिमुखप्रतीतिका जो विषय होवै सो भी सत् कहिये हैं और भाव भी कहिये है. निषेधमुखप्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहिये है. निषेधमुखप्रतीतिकी विषयता मायामैं नहीं यातैं मायाभी भावरूप है.

यद्यपि माया प्रकृति अविद्या अज्ञान ये शब्द पर्याय हैं. औ अविद्या अज्ञानशब्दनमैं अकार निषेधका वाचक है यातैं माया भी निषेधमुख प्रतीतिका विषय होनेतैं अभावरूपही कही चाहिये तथापि अकारका केवल निषेध अर्थ नहीं है किंतु विरोधि भेदवान् अल्पभी अकारके अर्थ हैं जैसैं अधर्म शब्दमैं अकारका विरोधी अर्थ है. धर्मविरोधीकूं अधर्म कहैं हैं. औ "अब्राह्मणो नाचार्यः" या स्थानमैं अकारका भेदवान् अर्थ है. ब्राह्मणसैं भिन्न आचार्यताके योग्य नहीं यह वाक्यका अर्थ है. औ "अनुदरा देवदत्तकन्या" या स्थानमैं अकारका अल्प अर्थ है. अल्पउदरवाली देवदत्तकी कन्या यह वाक्यका अर्थ है, जैसैं इतनेस्थानमैं अकारका निषेध अर्थ नहीं तैसैं अविद्याशब्द औ अज्ञानशब्दसैं भी अकारका निषेध अर्थ नहीं किंतु विरोधी अर्थ है. मायाका ज्ञानसैं वध्यघातकभाव विरोध है; यातैं अज्ञान कहैं हैं. माया वध्य है औ ज्ञान घातक है. वेदांतवाक्यजन्य ब्रह्माकार वृत्तिकूं विद्या कहैं हैं, सो मायाकी विरोधिनी है यातैं अविद्या कहैं हैं. अज्ञानशब्द औ अविद्याशब्दका वाच्यभी माया है तौभी अकारका विरोधी अर्थ होनेतैं माया भावरूप है भावरूपभी ब्रह्मकी नाईं परमार्थसत् रूप नहीं; किंतु विधिमुखप्रतीतिका विषय होनेतैं व्यावहारिक सत्‌रूप है.

प्रागभावके लक्षणमैं अभावपद नहीं होता तौ मायामैं लक्षणकी अतिव्याप्ति होती. काहेतैं? माया अनादि है औ सांत है यातैं अनादि सांत जो अभाव सो **प्रागभाव** कहिये है, सादि अनंत जो अभाव सो **प्रध्वंसाभाव** कहिये है, घटादिकनका ध्वंस मुद्गरादिकनतैं होवै है यातैं सादि है औ अनंतताभी युक्तिपूर्वक ही है. अनंत अभावकूं **प्रध्वंसाभाव** कहैं तौ अत्यंताभावमैं अतिव्याप्ति होवैगी; यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमैं सादि कह्या चाहिये अत्यंताभाव सादि नहीं; किंतु अनादि है औ सादि अभावकूं प्रध्वंसाभाव कहैं तौ सादि अभाव सामयिकाभावभी है तहां अतिव्याप्ति होवैगी; सामयिकाभाव अनंत नहीं किंतु सांत है. सादि अनंतकूं **प्रध्वंसाभाव** कहैं तौ मोक्षमैं अतिव्याप्ति होवैगी. काहेतैं ? मोक्ष होवै है यातैं सादि है औ मुक्तकूं फेरि संसार होवै नहीं यातैं **अनन्त** है, परंतु मोक्ष भावरूप है अभावरूप नहीं. यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमैं अभाव कह्या चाहिये. यद्यपि अज्ञान औ तिसके कार्यकी निवृत्तिकूं **मोक्ष** कहैं हैं. औ **निवृत्ति** नाम ध्वंसका है यातैं मोक्षभी अभावरूप है; यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमैं अभावपद नहीं गेरैं तौभी मोक्षमैं अतिव्याप्तिरूप दोष नहीं. काहेतैं ? अलक्ष्यमैं लक्षण जावै ताकूं अतिव्याप्ति कहैं हैं. अज्ञान औ ताके कार्यके ध्वंस मोक्षकूं लक्ष्यता स्पष्टही है. सकलनाश ध्वंसाभावके लक्षणके लक्ष्य हैं; सकल नाशनके अंतर्भूतही कार्यसहित अज्ञानका नाशरूप मोक्ष है. तथापि कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है. अज्ञान औ ताका कार्य कल्पित है, यातैं तिनकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूप है; यातैं अभावरूप मोक्ष नहीं; किंतु ब्रह्मरूप होनेतैं भावरूप है. तामैं ध्वंसका लक्षण जावै तौ अतिव्याप्ति होवैगी यातैं सादि अनंत जो अभाव सो **प्रध्वंसाभाव** कहिये है. उत्पत्ति औ नाशवाला जो अभाव सो **सामयिकाभाव** कहिये है. जहां किसी कालमैं पदार्थ होवै औ किसी कालमैं न होवै तहां पदार्थशून्यकालमैं तिस पदार्थका **सामयिकाभाव** होवैहै. जैसैं भूतलादिकनमैं घटादिक किसी कालमैं होवैहैं किसी

कालमैं नहीं होवै हैं. तहां घटशून्यकालसंबंधी भूतलादिकनमैं घटादिकनका सामयिकाभाव है. समयविशेषमैं उपजै औ समयविशेषमैं नष्ट होवै सो **सामयिकाभाव** कहिये हैं; भूतलसैं घटकूं अन्य देशमैं लेजावै तब घटका अभाव भूतलमैं उपजैहै औ तिसी भूतलमैं घटकूं ले आवै तब घटका अभाव भूतलमैं नष्ट होवै है; इसरीतिसैं सामयिकाभाव उत्पत्तिनाशवाला है. उत्पत्तिवाला अभाव प्रध्वंसाभावभी है तहां अतिव्याप्तिपरिहारवास्तै सामयिकाभावके लक्षणमैं नाश पद कह्या है प्रध्वंसाभाव यद्यपि उत्पत्तिवाला अभाव है तथापि नाशवाला नहीं यातैं नाश पद कहै तौ अतिव्याप्ति दोष नहीं; नाशवालेअभावकूं **सामयिकाभाव** कहैं तौ प्रागभावमैं अतिव्याप्ति होवैगी, यातैं सामयिकाभावके लक्षणमैं उत्पत्ति पद कह्या है. लक्षणमैं उत्पत्ति पदके प्रवेशतैं प्रागभावमैं अतिव्याप्ति नहीं. काहेतैं ? प्रागभावका नाश तो होवै है परंतु अनादि होनेतैं उत्पत्ति होवै नहीं; औ सामयिकाभावके लक्षणमैं अभाव पद नहीं गेरैं किंतु उत्पत्तिनाशवालेकूं **सामयिकाभाव** कहैं तौ घटादिकनमैं अतिव्याप्ति होवैगी. काहेतैं ? घटादिकभी भूत भौतिक अनंत पदार्थ उत्पत्ति औ नाशवाले हैं औ अभावपदके प्रवेशतैं घटादिकनकूं भावरूपता होनेतैं तिनमैं सामयिकाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं इसरीतिसैं भूतलादिकनमैं घटादिकनका उत्पत्ति औ नाशवाला अभाव **सामयिकाभाव** है. अन्योन्याभावसैं भिन्न जो उत्पत्तिशून्य औ नाशशून्य अभाव सो **अत्यंताभाव** कहिये है. जहां किसी कालमैं जो पदार्थ न होवै तहां तिसपदार्थका **अत्यंताभाव** कहिये है. जैसैं वायुमैं रूप किसी कालमैं नहीं होवै है तहां रूपका **अत्यंताभाव** है. तैसैं गंधभी वायुमैं सर्वदा नहीं होवैहै, यातैं गंधका वायुमैं अत्यंताभाव है. स्नेहगुण केवल जलमैंही रहै है अन्यमैं कदी रहै नहीं यातैं जलविना अन्यपदार्थमैं स्नेहका **अत्यंताभाव** है. आत्मामैं रूप रस गंध स्पर्श शब्द कदीभी रहै नहीं. यातैं रूपादिकनका अत्यंताभाव आत्मामैं रहैहैं. पृथिवी औ जलमैं रसरहैहै अन्यमैं कदी रहै नहीं यातैं पृथिवीजलभिन्नपदार्थनमैं रसका **अत्यंताभाव** है पृथिवीत्व जातिकेवल

पृथिवीमैं रहैहै जलादिकनमैं कदी रहै नहीं; यातैं जलादिकनमैं पृथिवी-त्वका अत्यंताभाव है. ब्राह्मणभिन्न क्षत्रियादिकनमैं ब्राह्मणत्व कदी रहै नहीं, यातैं क्षत्रियादिकनमैं ब्राह्मणत्वका अत्यंताभाव है. आकाश काल दिशा आत्मा व्यापक हैं तिनमैं कदीभी क्रिया होवै नहीं; यातैं आकाशादिकनमैं क्रियाका अत्यंताभाव है. पृथिवी जल तेज पवन मनमैं क्रिया होवै है औ कदाचित् क्रियाका अभाव होवै है यातैं पृथिवी आदिक निष्क्रिय होवैं तब पृथिवी जल तेज पवन मनमैं क्रियाका अत्यंताभाव नहीं. तैसैं सामयिकाभावभी नहीं. काहेतैं ? सामयिकाभाव केवल द्रव्यका होवै है. क्रियाका सामयिकाभाव सम्भवै नहीं यह वार्ता आगै कहैंगे, यातैं सामयिकाभावभी नहीं. किन्तु पृथिवी आदिक पांचमैं क्रियाका प्रागभाव औ ध्वंसाभाव है.

च्यारिसंसर्गाभावका प्रतियोगीसैं विरोध औ अन्योन्याभावका अविरोध ॥ ७ ॥

इसरीतिसैं भूतलादिकनमैं जहां कदाचित् घटादिक होवै कदाचित् नहीं होवै तहां सारै सामयिकाभाव है अत्यंताभाव नहीं. काहेतैं ? अभावका प्रतियोगीसैं विरोध है जहां प्रतियोगी होवै तहां अभाव होवै नहीं; किंतु अभावका अभाव होवै है. और जहां भूतलादिकनमैं कदाचित् घटादिक होवैं औ कदाचित् नहीं तहां अत्यन्ताभाव मानैं तौ अत्यन्ताभाव नित्य है यातैं घटकालमैं भी घटका अत्यन्ताभाव होनेतैं अत्यन्ताभावका अपने प्रतियोगिसैं विरोध नहीं होवैगा; यातै भूतलादिकनमैं घटादिकनका अत्यंताभाव सम्भवै नहीं. जैसैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम कपालमैं घटका प्रागभाव होवैहै. घटरूप प्रतियोगिके उपजे कपालमैं घटका प्रागभाव रहै नहीं ताका नाश होय जावै है; यातैं प्रागभावका प्रतियोगिसैं विरोध है. तैसैं कपालमैं घटका प्रध्वंसाभाव होवै तब घट रहै नहीं और घट रहे है। जितने काल कपालमैं घटका प्रध्वंसाभाव होवै नहीं; यातैं प्रध्वंसाभावकाभी प्रतियोगीसैं विरोध

स्पष्ट है तैसैं भूतलादिकनमैं संयोगसंबंधसैं घटादिक रहैं. जितनैं भूतलादिकनमैं घटादिकनके सामयिकाभाव रहै नहीं; किंतु जितनेकाल घटादिक प्रतियोगि भूतलादिकनमैं न होवैं उतनेकाल सामयिकाभाव रहै है औ घटादिक प्रतियोगि आय जावैं तब सामयिकाभावका नाश होवै है. आये घटकूं उठाय लेवैं तब सामयिकाभाव और उपजै है; इसीवास्तैं सामयिकाभावके उत्पत्ति औ नाश मानैं हैं इसीरीतिसैं सामयिकाभावकी भी प्रतियोगिसैं विरोध स्पष्ट है, जैसैं प्रागभावादिकनका प्रतियोगीसैं विरोध है तैसैं अत्यंताभावकाभी प्रतियोगीसैं विरोध कह्या चाहिये. यद्यपि सकल अभावनका प्रतियोगीसैं विरोध होवै तौ जिसकालमैं भूतलमैं घट धर्‌या होयै तिसकालमैं घटका अन्योन्याभाव भूतलमैं नहीं हुया चाहिये; औ घटवाले भूतलमैं घटका अन्योन्याभाव रहैहै. काहेतैं? भेदकूं **अन्योन्याभाव** कहैं हैं. जाकूं अपनेसैं **अतिरिक्तता** कहैहैं, **भिन्नता** कहैं हैं, जुदापना कहैहैं, घटवाला भूतलभी घटस्वरूप नहीं; किंतु घटसैं अतिरिक्त कहिये है, घटसैं भिन्न कहिये है, घटसैं जुदा कहिये है. इसरीतिसैं घटवाले भूतलमैं घटका अन्योन्याभाव है; यातैं घटके अन्योन्याभावका घटरूप प्रतियोगीसैं विरोध नहीं, तैसैं पटादिकनके अन्योन्याभावका पटादिकनमैं विरोध नहीं यातैं सकल अभावनका प्रतियोगिसैं विरोध कहना संभव नहीं; किंतु किसी अभावका प्रतियोगिसैं विरोध है किसीका विरोध नहीं है.

प्रागभावादिक दृष्टांतसै अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं विरोध साधै तब अन्योन्याभावदृष्टांतसैं अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं अविरोधभी सिद्ध होवैगा यातैं घटके अन्योन्याभावकी नांई घटका अत्यंताभावभी घटके अधिकरणमैं सम्भवै है.

तथापि घटके अधिकरणमैं घटका अत्यंताभाव सम्भवै नहीं. काहेतैं? **अभावके दो भेद** हैं:—एक अन्योन्याभाव है १ दूसरा संसर्गाभाव है २ संसर्गाभाव च्यारि प्रकारका है. इसीरीतिसैं **पंचविध अभाव** है. तिनमैं अभावत्व धर्म सर्वमैं समान है औ निषेधमुखप्रतीतिकी विषयताभी सर्वअभा-

वनमैं समान है तथापि अन्योन्याभावसैं चतुर्विध संसर्गाभावमैं विलक्षणता अनेकविध है. जिसवाक्यमैं प्रतियोगि अनुयोगि बोधक भिन्न विभक्तिवाले पद होवैं तिस वाक्यसैं संसार्गाभावकी प्रतीति होवै है. जैसैं उत्पत्तिसैं पूर्व "कपाले घटो नास्ति" इस वाक्यमैं अनुयोगिबोधक कपालपद सप्तम्यंतहै औ प्रतियोगिबोधक घटपद प्रथमांत है, तहां प्रागभावकी प्रतीति होवै है. तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका अदर्शन होवै, तब तिसी वाक्यतैं घटध्वंसकी प्रतीति होवैहै. "वायौ रूपं नास्ति" इस वाक्यतैं वायुमैं रूपात्यंताभावकी प्रतीति होवैहै, तहांभी अनुयोगिबोधक वायुपद सप्तम्यंत है औ प्रतियोगिबोधक रूपपद प्रथमांत है; तैसैं "भुतले घटो नास्ति" इसवाक्यजन्य प्रतीतिका विषय सामयिका भाव है; तहांभी अनुयोगिबोधक भूतलपद सप्तम्यंत है प्रतियोगि-बोधक घटपद प्रथमांत है औ "भूतलं न घटः" इसवाक्यसैं घटका अन्योन्याभाव प्रतीति होवै है; तहां अनुयोगिकबोधक भूतलपद औ प्रतियोगि-बोधक घटपद दोनूं प्रथमांत हैं. इसरीतिसैं भिन्नविभक्त्यंतपदघटित वाक्य-जन्य प्रतीतिकी विषयता संसर्गाभावमैं है अन्योन्याभावमैं नहीं, औ समानविभक्त्यंतपदघटितवाक्यजन्य प्रतीतिकी विषयता अन्योन्याभावमैं है संसर्गाभावमैं नहीं. इसरीतिसैं अन्योन्याभावतैं विलक्षण स्वभाववाला चतुर्विध संसर्गाभाव है; यातैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावके दृष्टांतसैं अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं विरोधही सिद्ध होवै है, विलक्षणस्वभाववाले अन्योन्याभावके दृष्टांतसैं प्रतियोगितैं अविरोध सिद्ध होवै नहीं. संसर्गाभावकी अन्योन्याभावतैं औरभी विलक्षणता है.

चतुर्विधसंसर्गाभावका परस्परविरोध औ अन्योन्याभावका तिनसैं अविरोध ॥ ८ ॥

चतुर्विध संसर्गाभावका परस्पर विरोध है. एक संसर्गाभावके अधिकरणमैं अपर संसर्गाभाव रहै नाहिं. जैसैं कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटका प्रागभाव है तहां घटका ध्वंस वा अत्यंताभाव वा

सामयिकाभाव रहै नहीं. तैसें कपालमैं घटका ध्वंस होवै तब प्रागभावा दिक तीनूं संसर्गाभाव रहैं नहीं. औ घटका अन्योन्याभाव कपालमैं सदा रहैहै. तैसें भूतलमैं घटका सामयिकाभाव रहै तहांभी घटका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अत्यंताभाव तीनूं रहैं नहीं; औ घटका अन्योन्याभाव तहांभी रहैहै. तैसें वायुमैं रूपका अत्यंताभाव रहैहै; तामैं रूपका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव सामयिकाभाव तीनं रहैं नहीं, औ रूपका अन्योन्याभाव वायुमैं रहैहै. इसरीतिसैं चतुर्विध संसर्गाभावका परस्पर विरोध है; अन्योन्याभावका तिनसैं अविरोध है. जैसें अन्योन्याभावका अन्यअभावनतैं अविरोध होतेभी प्रागभावादिकनके परस्पर अविरोधकी सिद्धि होवै नहीं. तैसें अन्योन्याभावका प्रतियोगीतैं अविरोध देखिकै किसी संसर्गाभावका प्रतियोगीसैं अविरोध सिद्ध होवै नहीं.

प्राचीनमतमैं अभावनके परस्पर औ प्रतियोगिसैं विरोधाविरोधका विस्तारसैं प्रतिपादन ॥ ९ ॥

अब अभावनका परस्पर औ प्रतियोगिसैं विरोधाविरोधका विस्तारसैं प्रतिपादन करैं हैं—यद्यपि प्रतियोगिके उपादन कारणमैं प्रागभाव प्रध्वंसाभाव दोनूं रहैहैं. जैसें घटके उपादान कारण कपालमैं घटप्रागभाव घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम रहैहै. मुद्गरादिकनतैं घटकूं तोडै तब घटका प्रध्वंसाभाव तिसी कपालमैं रहैहै; यातैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावका परस्परविरोध कहना संभवै नहीं, तथापि एककालमैं दोनूं रहैं नहीं किंतु भिन्नकालसैं रहैहैं यातैं एकदा सहानवस्थानरूपविरोध प्रागभाव प्रध्वंसाभावका परस्पर है. तैसैं अत्यंताभावकाभी तिनसैं विरोध मानना चाहिये. यद्यपि अन्योन्याभावका किसी अभावसैं विरोध नहीं है. काहेतैं ? कपालमैं घटका प्रागभाव है तहां घटका अन्योन्याभावभी है. औ जब कपालमैं घटका प्रध्वंसाभाव होवै तब भी घटका अन्योन्याभाव है. औ तंतुमैं घटका अत्यंताभाव है तहां भी घटका अन्योन्याभाव है, भूतलमैं घटका सामयिकाभाव है तहां भी घटका

अन्योन्याभाव है, इसरीतिसैं अन्योन्याभावका किसी अभावसैं विरोध नहीं तथापि संसर्गाभावका यह स्वभाव है:-चतुर्विध संसर्गाभावमैं एक संसर्गाभाव एककालमैं रहैहै दूसरा रहै नहीं जैसें कपालमैं उत्पत्तिसैं प्रथम घटका प्रागभाव रहैहै तिस कालमैं घटका प्रध्वंसाभाव रहै नहीं.प्रध्वंसाभाव घटका होवै तब प्रागभाव रहै नहीं औ सामयिकाभाव अत्यंताभाव कपालमैं घटके कभीभी रहै नहीं. यद्यपि कपालमैं घटके प्रागभावप्रध्वंसाभाव होवैं तब पटका अत्यंताभावभी रहैहै, तथापि एक प्रतियोगिके दो संसर्गाभाव रहैं नहीं यह नियम है.अपर प्रतियोगिका दूसरा संसर्गाभाव रहनेका विरोध नहीं तैसें भूतलादिकनमैं घटका सामयिकाभाव रहैहै, तहां घटका अत्यंताभाव अथवा प्रागभाव तथा ध्वंसाभाव रहैं नहीं: औ वायुमैं रूपात्यंताभाव है तहां रूपके प्रागभावादिक रहैं नहीं.

यद्यपि संयोगसंबंधतैं कदाचित् भूतलादिकनमैं घट रहैहै समवायसंबंधतैं कपालविना अन्यपदार्थमैं घट कहीभी रहै नहीं, यातैं समवायसंबंधतैं घटका अत्यंताभाव भूतलादिकनमैं है औ संयोगसंबंधतैं घटका सामयिकाभाव है यातैं सामयिकाभाव औ अत्यंताभावका परस्पर विरोध संभवै नहीं, तथापि घटके संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावका घटके संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावसैं विरोध है. समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावसैं विरोध नहीं. यातैं यह नियम सिद्ध हुया:-जिस अधिकरणमैं जा कालमैं जिस पदार्थका जा संबंधसैं एक संसर्गाभाव होवै तिस अधिकरणमैं ता कालमैं तिस पदार्थका ता संबंधसैं अपरसंसर्गाभाव होवै नहीं. अन्यसंबंधसैं होवै है; जा संबंधसैं जो पदार्थ जहां न होवै तहां तिस पदार्थका तत्संबंधावच्छिन्नाभाव कहिये है. भूतलमैं संयोगसंबंधतैं कदाचित् घट होवैहै यातैं संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव घटका भूतलमैं कदीभी नहीं; किंतु भूतलत्व जातिमैं औ भूतलके रूपादिक गुणनमैं संयोग संबंधतैं घट कदाचित् भी रहै नहीं. काहेतैं ? दो द्रव्यका संयोग होवै है, द्रव्यका औ जातिका, तैसैं द्रव्यका औ गुणका संयोग होवै

नहीं; यातैं भूतलत्वमैं औ भूतलके रूपादिगुणनमैं घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है; औ भूतलत्वमैं तैसैं रूपादिक गुणनमैं समवायसंबंधसैंभी घट कदाचित् भी रहै नहीं. काहेतें ?

कार्य द्रव्यका अपने उपादान कारणमैं समवायसंबंध होवै है अन्यमैं नहीं. गुणका समवाय गुणीमैं होवै है, जातिका समवाय व्यक्तिमैं होवै है, क्रियाका समवाय क्रियावालेमैं होवैं है. अन्यस्थानमैं कहूं समवायसंबंध होवै नहीं यद्यपि परमाणुआदिक नित्यद्रव्यनमैं भी विशेषपदार्थका समवाय नैयायिक मानैं हैं तथापि विशेषपदार्थ अप्रसिद्ध है ताकी कल्पना निष्प्रयोजन है, यह अद्वैतग्रन्थनमैं स्पष्ट है. औ **दीधितिकारशिरोमणिभट्टाचार्यनैंभी** विशेषपदार्थका खंडनही कह्या है. यातैं उपादानकारण गुणी व्यक्ति क्रियावानमैंही कार्य द्रव्य गुण जाति क्रियाका क्रमतैं समवायसंबंध है औ किसीका किसीमैं समवायसंबन्ध नहीं. इसरीतिस भूतलत्वमैं औ भूतलके रूपादिक गुणनमैं घटका समवायसंबंध कदीभी होवै नहीं; किंतु कपालमैंही घटका समवाय होवै है, यातैं घटके उपादानकारण कपालकूं त्यागिकै औ स्थानमैं सारै घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है, औ घटका अन्यसंसर्गाभाव तिस अत्यंताभावके साथि रहै नहीं. काहेतें ? घटका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव तौ कपालविना अन्यस्थानमैं रहै नहीं औ सामयिकाभाव तहां होवैहै, जहां किसी कालमैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै तहां तिसी संबंधसैं जा कालमैं प्रतियोगी न होवै ता कालमैं तत्संबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव होवै है; जहां किसी कालमैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै नहीं, तहां तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही होवैहै. कपालविना अन्यपदार्थनमैं समवायसंबंधतैं घट कदाचित् रहै नहीं यातैं घटके समवायसंबंधावच्छिन्नअत्यंताभावके अधिकरणमैं घटका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव रहै नहीं.

औ विचार करै तौ द्रव्यका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावही द्रव्यका प्रसिद्ध है.

काहेतैं ? नित्यद्रव्य तौ समवायसंबंधतैं किसीमैं रहै नहीं; यातैं नित्यद्रव्यका तौ समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावभी है. समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नित्यद्रव्यका कहूं नहीं; औ कार्य द्रव्यका अपने उपादानकारणमैं तौ प्रागभाव अथवा प्रध्वंसाभाव होवै है तहां समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अथवा समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव रहै नहीं. औ अपने उपादानकारणकूं त्यागिकै अन्यपदार्थमैं समवायसंबंधतैं कार्यद्रव्य कदाचित् रहता होवै कदाचित् नहीं रहता होवै तौ समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव होवै है. औ उपादानसैं भिन्नमैं कार्यद्रव्य कदाचित्भी रहै नहीं; यातैं उपादानसैं भिन्नपदार्थनमैं कार्यद्रव्यका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव संभवै नहीं; किंतु तहांभी समवायसंबंधावच्छिन्नअत्यंताभावही कार्य द्रव्यका है. इसरीतिसैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव द्रव्यका अप्रसिद्ध है.

औ गुण क्रियाभी समवायसम्बंधतैं जा द्रव्यमैं उपजिकै नष्ट होय जावै ता द्रव्यमैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नहीं किन्तु प्रथम प्रागभाव है.पश्चात् प्रध्वंसाभाव है, औ घटके गुणक्रिया समवायसंबंधसैं अन्यद्रव्य मैं कदीभी रहै नहीं; तहांभी तिनका समवायसंबन्धावच्छिन्नअत्यंताभाव है सामयिकाभाव नहीं; इसरीतिसैं गुण क्रियाकाभी समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है, तैसैं संयोगसम्बंधावच्छिन्न सामयिकाभावभीगुण क्रियाका अप्रसिद्ध है. काहेतैं ? संयोगसम्बंधतैं गुणक्रिया कदाचित् रहते होवै कदाचित् नहीं रहते होवै तौ संयोगसम्बंधावच्छिन्न सामयिकाभाव गुणक्रियाका होवै, औ संयोग सम्बंधतैं गुणक्रिया किसीमैं कदाचित् रहै नहीं यातैं गुणक्रियाका संयोग सम्बंधावच्छिन्न अत्यन्ताभाव ही है. सो अत्यंताभाव सकलपदार्थनमैं है काहेतैं ? संयोगसम्बंधतैं गुणक्रिया किसी पदार्थसैं रहते होवैं तौ तिस पदार्थमैं संयोगसम्बंधावच्छिन्न अत्यंताभाव गुणक्रियाका नहीं होवै.सो संयोगसम्बंधतैं गुणक्रियाका आधार कोई है नहीं;यातैं गुणक्रियाका संयोगसम्बंधावच्छिन्न अत्यंताभाव केवलान्वयी है. जाका अभाव कहूं न

होवै सो केवलान्वयी कहिये है. उक्त अत्यंताभाव सारै है तिस अत्यंताभावका अभाव कहूं नहीं, यातैं केवलान्वयी कहिये है. इस रीतिसैं समवायसम्बंधावच्छिन्न सामयिकाभाव औ संयोगसम्बंधावच्छिन्न सामयिकाभाव गुणका औ क्रियाका अप्रसिद्ध है.

तैसैं जातिकाभी सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. काहेतैं ? संयोगसम्बंधसैं तौ जाति किसी पदार्थसैं कदाचित्‌भी रहै नहीं यातैं सकलपदार्थनमैं जातिका संयोगसम्बंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है. सामयिकाभाव नहीं, तैसैं अपना आश्रय जो व्यक्ति तामैं समवायसम्बंधसैं जाति सदा रहैहै ता व्यक्तिमैं जातिका समवायसम्बंधतैं कोई अभाव रहे नहीं. जैसैं घटत्व जाति घटव्यक्तिमैं समवायसम्बंधतैं रहैहै तहां घटत्वका अत्यंताभाव वा सामयिकाभाव अथवा प्रागभाव तथा ध्वंसाभाव रहै नहीं.काहेतैं ? प्रागभाव प्रध्वंसाभाव तौ अनित्यके होवै है.घटत्व नित्य है ताके प्रागभाव प्रध्वंसाभाव संभवै नहीं औ जहां प्रतियोगी कदाचितभी होवै नहीं तहां अत्यंताभाव होवै है. औ जहां प्रतियोगी कदाचित् होवै कदाचित नहीं होवै तहां सामयिकाभाव होवै है, घटमैं घटत्व सदा समवायसंबंधतैं रहै; यातैं घटमैं घटत्वका समवायसंबंधावच्छिन्नात्यंताभाव औ समवायसम्बंधावच्छिन्न सामयिकाभाव संभवै नहीं तैसैं घटसैं भिन्न जो घटत्वके अनाधार सकल पटादिक हैं तिनमैं घटत्व जाति समवायसंबंधतैं कदीभी रहै नहीं, यातैं तिनमैं भी घटत्वजातिका समवायसम्बंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नहीं; किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है.इसरीतिसैं द्रव्यसैं भिन्नपदार्थका सामयिकाभावअप्रसिद्ध है. औ द्रव्यभी नित्य अनित्य भेदसैं दो प्रकारके हैं, पृथिवी जल तेज वायु द्व्यणुकादिरूप अनित्य हैं, आकाश काल दिशा आत्मा मन औ परमाणुरूप पृथिवी जल तेज वायु ये नित्य द्रव्य हैं, सो नित्यद्रव्य समवायसंबन्धतैं कदाचित् किसी पदार्थमैं रहै नहीं; यातैं तिनका तो समवायसम्बंधावच्छिन्न सामयिकाभाव कहूं नहीं; किंतु समवायसम्बंधावच्छिन्न अत्यंताभावही सारै है, तैसैं अनित्य द्व्यणुकादिद्रव्य समवायसम्बंधतैं अपने

अवयव परमाणु आदिकमैं रहैं हैं अवयव विना अन्यपदार्थमैं अनित्यद्रव्य समवायसम्बन्धसैं कदीभी रहै नहीं. अवयवनमैं अवयवीका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव होवैहै, यातैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अवयवमैं कार्यद्रव्यका नहीं होवै है अवयवसैं भिन्न पदार्थनमैं समवायसंबंधतैं अवयवी कदीभी रहै नहीं; यातैं समवाय संबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव तहां नहीं किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यन्ताभाव है, इसरीतिसे द्रव्यकाभी समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है; केवल संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव द्रव्यका प्रसिद्ध है सोभी कार्यद्रव्यका है. नित्यद्रव्यका तौ संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही सारै है, सामयिकाभाव कहूंकी नित्यद्रव्यका नहीं. काहेतैं ? नित्यद्रव्यका अवृत्तिस्वभाव है; यातैं संयोगसंबंधतैं नित्यद्रव्य किसी पदार्थमैं कदाचित् भी रहै नहीं. यद्यपि नित्यद्रव्यकाभी अपर द्रव्यसैं संयोग होवै है औ जाका संयोग जामैं होवै सो तामैं संयोगसंबंधसैं रहैहै तथापि नित्यद्रव्यका संयोगवृत्ति नियामक नहीं. जैसे कुंडबदरका संयोग बदरकी वृत्तिका नियामक है कुंडकी वृत्तिका नियामक नहीं, तैसैं नित्यद्रव्यका कार्यद्रव्यसैं संयोगभी कार्यद्रव्यकी वृत्तिका नियामक है; नित्यद्रव्यकी वृत्तिका नियामक नहीं. इसकारणतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावनित्यद्रव्यका अप्रसिद्ध है संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं जो पदार्थ किसीमैं रहै नहीं सो **अवृत्ति**कहियेहै. नित्यद्रव्यमैं तौ संयोगसंबंधतैं औ समवायसंबंधतैं अन्य पदार्थ रहैहै अन्यपदार्थनमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं नित्यद्रव्य रहै नहीं, यातैं नित्यद्रव्यनकूं **अवृत्ति** कहैहैं. इसरीतिसैं संसर्गाभाव अन्योन्याभावके भेदतैं **अभाव दोप्रकारका** है; तिनमैं संसर्गाभावके च्यारि भेद हैं तिन च्यारुंका परस्पर विरोध है औ तिन च्यारिकाही अपने प्रतियोगिसैं विरोध है प्रतियोगिसैं विरोध इस भांति है:—जो प्रतियोगी जा संबंधसैं जहां होवै ताका तत्संबंधावच्छिन्नाभाव होवै नहीं औ एक संबंधसैं प्रतियोगी होवै अन्यसंबंधतैं ताका अभावभी होवैहै. जैसैं संयोगसंबंधतैं भूतलमैं घट होवै

तब समवायसंबन्धतैं घट है नहीं, यातैं संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमभी घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यन्ताभाव है; यातैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै तत्संबंधावच्छिन्न संसर्गाभावका प्रतियोगीसैं विरोध है संसर्गाभावका परस्पर विरोधभी समानसंबंधसैं है, औ एक संबंधावच्छिन्न एक संसर्गाभाव जहां होवै तहां भी अन्य संबंधावच्छिन्न अपरसंसर्गाभाव होवैहै. जैसैं घटशून्य भूतलमैं घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव है औ तिसी घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तिसी भूतलमैं रहैहै; इसरीतिसैं प्रतियोगितैं संसर्गाभावका एक संबंधतैं विरोध है औ समानसंबंधतैं ही परस्पर संसर्गाभावनका विरोध है, औ अन्योन्याभावका तौ जैसैं प्रागभावादिकनतैं विरोध नहीं तैसैं स्वप्रतियोगिसैंभी विरोध नहा औ विचार करैं तौ अन्योन्याभावका अन्यभावनतैं यद्यपि विरोध नहा तथापि अपने प्रतियोगितैं अन्योन्याभावकाही विरोध है. औ बहुत ग्रंथनमैं यह लिख्या है:—संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोध है औ अन्योन्याभावका प्रतियोगिसैं विरोध नहीं किन्तु प्रतियोगितावच्छेदक धर्मसैं विरोध है जसैं भूतलमैं घट होवै तिस कालमैं भी घटका अन्योन्याभाव है. काहेतैं ? भेदकूं अन्योन्याभाव कहैहैं. घटवाला भूतलभी घटरूप नहीं किन्तु घटसैं भिन्न है. घटसैं भिन्न कहिये घटकै भेदवाला भूतल है. भेदवाला औ अन्योन्याभाववाला कहनेमैं एकही अर्थ है. घटविना और सारे पदार्थ घट भिन्न हैं. घटमैं घटत्व रहैहै तहां घटका भेदरूप घटान्योन्याभाव रहै नहीं घटविना और किसी पदार्थनमैंघटत्वरहै नहीं तहां सारे घटका अन्योन्याभाव है; इसरीतिसैं घटान्योन्याभावका घटसैं विरोध नहीं किन्तु घटत्वसैं विरोध है; तहां घटान्योन्याभावका प्रतियोगी घट है औ प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है. जाका अभाव होवै सो प्रतियोगी कहिये है,औ प्रतियोगीमैं जो धर्म रहै सो प्रतियोगितावच्छेदककहिये है. यद्यपि प्रतियोगीमैं रहनेवाले धर्म बहुत हैं, जैसैं घटमैं घटत्व है,औ पृथिवीत्व द्रव्यत्व पदार्थत्वादिक भी घटमैं रहैहैं तिनमैं पृथ्वीत्वादिकभी घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक हुये चाहिये,

औ पृथ्वीत्वादिक घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक नहीं हैं.पृथिवी अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक पृथ्वीत्व है, द्रव्यान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्व है, घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक पृथिवीत्वद्रव्यत्वादिक नहीं हैं. औ घटरूप प्रतियोगिमैं तौ रहैंहैं,यातैं घटत्वकी नाई घटान्योन्याभावके पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिक प्रतियोगितावच्छेदक कहे चाहियें तथापि अभावबोधकपदके साथि प्रतियोगिबोधक पदके उच्चारण करें जिस धर्मकी प्रतीति होवै है सो प्रतियोगितावच्छेदक कहिये है.घटान्योन्याभाव कहनेमैं प्रतियोगिबोधक घटपद है, तैसैं " पटो घटो न " इसरीतिसैंभी प्रतियोगिबोधक घटपद है, ताके उच्चारण करें घटत्वकी प्रतीति होवै है पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिकनकी प्रतीति होवै नहीं; यातैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है पृथिवीत्वादिक नहीं, औ " जलं पृथिवी न " इसरीतिसैं कहैं औ पृथिवी अन्योन्याभाव कहैं तब प्रतियोगिबोधक पृथिवीपद है ताके उच्चारण करे तौ पृथिवीत्वकी प्रतीति होवैहै तहां प्रतियोगितावच्छेदक पृथिवीत्व है. "गुणो द्रव्यं न " इसरीतिसैं कहै औ द्रव्यान्योन्याभाव कहैं तब प्रतियोगिबोधक द्रव्यपद है ताके उच्चारण करें द्रव्यत्वकी प्रतीति होवै है, तहां प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्व है;घटपदके उच्चारण करै घटत्वकी प्रतीति होवै है पृथिवीत्वादिकनकी नहीं. यामैं यह हेतु है:—घटपदकी घटत्व विशिष्टमैं शक्ति है. जिस धर्मविशिष्टमैं जा पदकी शक्ति होवै तिस धर्मकी ता पदसैं प्रतीति होवै है; इसरीतिसैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है सो घटमैं रहै है घटान्योन्याभाव घटमैं रहै नहीं.घटसैं भिन्न सकल पदार्थनमैं घटका अन्योन्याभाव रहैहै तहां घटत्व रहै नहीं; यातैं घटत्वरूप प्रतियोगितावच्छेदकसैं घटान्योन्याभावका विरोध है औ घटरूपप्रतियोगिसैं विरोध नहीं औ संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोध है, इसरीतिसैं बहुत ग्रंथकारोंनैं लिख्या है. औ संसर्गाभाव अन्योन्याभावके लक्षणभी इसी अर्थके अनुसारी करे हैं. प्रतियोगिविरोधी जो अभाव सो संसर्गाभाव कहिये है; औ प्रतियोगि

तावच्छेदक विरोधीअभाव **अन्योन्याभाव** कहिये हैं. इस रीतिके लक्षण कहनेतैंभी अन्योन्याभावका प्रतियोगिसैं अविरोधही सिद्ध होवै है; औ चतुर्विध संसर्गाभावका प्रतियोगिसैंही विरोध सिद्ध होवै है; परन्तु ग्रंथकारनका यह समग्र लेख स्थूलदृष्टिसैं है विवेकदृष्टिसैं नहीं.काहेतैं ? अत्यंताभावका जिसरीतिसैं प्रतियोगितैं विरोध है तिसरीतिसैं अन्योन्याभावकाभी प्रतियोगितैं विरोध है. जा भूतलमैं संयोगसंबंधतैं घट होवै तिसी भूतलमैं समवायसंबंधावच्छिन्न घटका अत्यन्ताभावकाभी प्रतियोगिसैं सर्वथा विरोध नहीं, किंतु जिस संबंधसैं प्रतियोगि होवै तत्संबधावच्छिन्न अत्यंताभाव होवै नहीं, यातैं अभावका प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्टप्रतियोगिसैं विरोध है. प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धतैं अन्यसंबंधविशिष्टप्रतियोगिसैं किसी अभावका विरोध नहीं; जिस संबंधसैं पदार्थका अभाव कहिये सो **प्रतियोगितावच्छेदक** सम्बन्ध कहिये है. अत्यंताभावके प्रतियोगितावच्छेदक संबंध अनेक हैं. काहेतैं ? जिस अधिकरणमैं एकसम्बंधसैं जो पदार्थ होवै तिसी अधिकरणमैं अपर संबंधावच्छिन्न अत्यन्ताभाव तिस पदार्थका होवैहै. जैसे पृथिवीमैं समवायसंबंधतैं गन्ध होवै हैं,संयोगसंबंधतै कदीभी होवै नहीं;यातैं पृथिवीमैं गन्धका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है.तहां प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंध है. जलमैं संयोगसंबंधतैं वा समवाय संबंधतैं गंध नहीं; किंतु कालिकसंबंधतैं जलमैं भी गन्ध है, यातैं जलमैं गन्धका संयोगसंबधावच्छिन्न अत्यंताभाव है औ समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव हैं; तहां प्रथम अभावका प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंध है; द्वितीय अभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवायसंबंध है; औ कालिकसंबंधसैं एक एक जन्यमैं सारे पदार्थ रहैं हैं; यातैं द्व्यणुकादिरूप जलमैं गन्ध होनेतैं जलवृत्ति गन्धाभावका प्रतियोगितावच्छेदक कालिक सम्बंध नहीं; औ नित्यपदार्थमैं कालिक संबंधसैं कोई पदार्थ रहै नहीं; यातैं परमाणुरूप जलसैं गन्धका कालिक संबधावच्छिन्न अत्यंताभावभी है; यातैं परमाणुवृत्ति गन्धाभावका प्रतियोगितावच्छेदक कालिक संबंध है. इसरीतिसैं

अत्यंताभावके प्रतियोगितावच्छेदक संबंध अनेक हैं. अन्यअभावनका प्रतियोगितावच्छेदक संबंध एक एक है. जैसैं कपालमैं घटका प्रागभाव है अन्यमैं कहूं घटका प्रागभाव नहीं सो कपालमैं घटके प्रागभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवायसंबंध है. प्रागभावका प्रतियोगितावच्छेदक अन्य-संबंध नहीं. यत्संबंधावच्छिन्नप्रागभाव जाका जामैं होवै तासंबंधसैं ताकी उत्पत्ति तिसमैं होवैहै यह नियम है. कपालमैं घटकी उत्पत्ति समवाय संबंधतैं होवैहै अन्यसंबंधसैं नहीं होवैहै; यातैं कपालमैं घट । समवाय-संबंधावच्छिन्नप्रागभाव है. ताका प्रतियोगितावच्छेदक एक समवाय-संबंध है. तैसैं "कपाले समवायेन घटो नष्टः" ऐसी प्रतीति ध्वंसाभावकी होवै है यातैं ध्वंसका प्रतियोगितावच्छेदकभी एक समवायसंबंध है, तैसैं सामयिकाभावभी जन्यद्रव्यकाही होवै है, औ जन्यद्रव्यका भी संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावही होवै है. समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है, यह पूर्व कही है; यातैं सामयिकाभावकाभी प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंध है, तैसैंअन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक एक अभेदसंबंध है; तिस अभेदकूं ही नैयायिक तादात्म्यसंबंध कहैंहैं अभेदसंबंधावच्छिन्नाभावकूंही अन्योन्याभाव कहै हैं; अन्यसंबंधावच्छिन्नाभावकूं संसर्गाभाव कहैंहैं. अन्योन्याभाव कहैं नहीं. इसरीतिसैं अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेकसंबंध एक तादात्म्यनामा अभेदहै; और कोई संबंध अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक नहीं. औ प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगीका अभावसैं विरोध है; अन्य संबंधविशिष्टप्रतियोगीका तौ अत्यंताभावसभी विरोध नहीं यह निर्णीतही है. अन्योन्याभावका जो प्रतियोगितावच्छेदक अभेदसंबंधहै ता अभेदसंबंधसैं अपने आत्मामैं ही घट रहैहै भूतलकपालादिकनमैं अभेदसंबंधसैं घट कहींभी रहै नहीं, जहांअभेदसंबंधसैं घट नहीं रहै तहां घटका अन्योन्याभावहै. औ अपने स्वरूपमैं अभेदसंबंधसैं घट रहै है. तहां घटका अन्योन्याभाव नहीं. इस रीतिसैं प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगीका जैसैं अत्यंताभावसैं

विरोध है; तैसैं अन्योन्याभावसैंभी प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगीका विरोध स्पष्ट है. प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्टप्रतियोगिसैं अत्यंताभावकी नाईं अन्योन्याभावका विरोध स्पष्ट होनेतैं प्रतियोगिसैं अविरोध कथन सकल ग्रंथकारोंनैं विवेकनेत्रनिमीलनसैं कह्या है; यातैं सकल अभावनका प्रतियोगिसैं विरोध है. प्रथम प्रसंग यह है:—जहां भूतलादिकनमैं कदाचित् घट होवै कदाचित् नहीं होवै तहां घटका सामयिकाभाव है अत्यंताभाव नहीं. काहेतैं ? अभावका प्रतियोगिसैं विरोध होवैहै सो विरोध पूर्वउक्त रीतिमैं निर्णीतहै; तातैं भूतलमैं संयोगसंबंधतैं घट होवै तब घटका संयोगसंबन्धावच्छिन्न अत्यंताभाव नहीं; औ घटकूं उठायलेवै तब घटका संयोगसंबन्धावच्छिन्न अत्यंताभावहै ऐसा मानना होवैगा. यातैं भूतलमैं घटके अत्यंताभावके उत्पत्तिनाश माननै होवैंगे. उत्पत्तिनाश माने विना कदाचित् है कदाचित् नहीं यह कहना अत्यंताभावमैं संभव नहीं. उत्पत्तिनाश घटात्यंताभावके संभवै नहीं. काहेतैं ? जहां संयोगसम्बंधतैं घट नहीं तहां सो घटका संयोगसम्बन्धावछिन्नअत्यंताभाव है,सो घटका अत्यंताभाव सारे पदार्थनमैं एक है नाना नहीं. काहेतैं? प्रतियोगिभेदसैं अभावका भेद होवैहै. अधिकरणभेदसैं अभावका भेद होवै नहीं यह तार्किकसिद्धांत है.जैसैं घटाभाव पटाभावके प्रतियोगी भिन्न हैं सो अभाव भिन्न हैं; औ भूतलमैं संयोगसम्बंधतैं घटात्यंताभाव है तैसैं भूतलत्वमैंभी सयोगसम्बन्धतैं घट नहीं है; तैसैं घटत्वजातिमैंभी संयोगसम्बन्धतैं घट नहीं,यातैं संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभावहै तैसैं पटत्वादिकनमैंभी सयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभाव है. इसरीतिसैं अनंतअधिकरणमैं संयोगसम्बंधावच्छिन्न घटात्यंताभावहै तिसके अधिकरण यद्यपि अनंत हैं तथापि प्रतियोगि एक घट है; यातैं संयोगसम्बंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव एक है, परंतु भूतलत्व घटत्वादिक जातिसैं तौ घटका संयोगसम्बन्ध कदीभी होवै नहीं; यातैं भूतलत्व घटत्वादिक जातिमैं घटका संयोगसम्बन्धावच्छिन्न अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित नित्य है, औ भूतलादिकनमैं संयोगसम्बन्धतैं कदाचित् घट होवै है कदाचित् नहीं होवै

है; यातैं घटकालमैं भूतलवृत्ति घटात्यंताभाव नष्ट होवै है. औ घटके अपसरणकालमैं घटात्यंताभाव उपजै है; इसरीतिसैं घटत्वादिजातिमैं घटात्यंताभाव नित्य कहना सोई घटात्यंताभाव भूतलादिकनमैं उत्पत्ति-नाशवाला अनित्य है, यह कहना असंगत है; यातैं जहां संयोगसम्बन्धतैं कदाचित् घट होवै तहां घटशून्य कालमैं घटका संयोगसम्बन्धाव-च्छिन्नाभाव कोई अनित्यअभाव मान्या चाहिये सोई सामयिकाभाव कहिये है. औ तिसी भूतलमैं समवायसम्बन्धतैं कदाचित्भी घट होवै नहीं यातैं घटका समवायसम्बंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है. तैसैं घटत्व भूतलत्वादिकनमैं संयोगसम्बन्धतैं कदाचित्भी घट होवै नहीं औ समवायसम्बन्धतैंभी कपालविना अन्यपदार्थमैं घट होवै नहीं; यातैं घट-त्वादिकनमैं संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभाव है. औ समवायसबन्धा-वच्छिन्न घटात्यंताभाव है सो अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित नित्य है; यातैं यह निष्कर्ष सिद्ध हुआः—जहां कदाचित् संयोगसंबंधतैं प्रतियोगी होवै कदाचित् नहीं होवै तहां सयोगसंबंधावच्छिन्नसामयिकाभाव कहिये है. घटके सामयिकाभाव उत्पत्तिनाशवाले हैं; यातैं प्रतियोगिभेदविनाभी एक घटके सामयिकाभाव अनंत हैं औ जा संबंधसैं जहां घटरूप प्रतियोगी कदीभी रहै नहीं तहां घटका तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव कहियेहै. सो अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित है यातैं नित्य है; औ घटका संयोगसंबंधा-वच्छिन्न अत्यंताभाव अनंत अधिकरणमैं एक है. तैसैं समवायसंबंधाव-च्छिन्न घटात्यंताभावभी अनंत अधिकरणमैं एक है. किसी अधिकरणका नाशभी होय जावै तौभी सोई अत्यंताभाव अन्यअधिकरणमैं रहैहै यातैं अत्यंताभावका नाश होवै नहीं. जैसैं घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यं-ताभाव तंतुमैंहै तंतुत्वजातिमैं है घटत्वमैं है पटत्वमैं है कपालत्वमैं है एक कपा-लकूं त्यागिकै सारे पदार्थनमैं है, तिनमैं सारै समवायसंबंधावच्छिन्न घटा-त्यंताभाव एक है; तंतुआदिक अनित्यपदार्थनका नाश हुयेभी तंतुत्वादिक नित्यपदार्थनमैं सोई अत्यंताभाव रहै है, यातैं अत्यंताभाव नित्य है औ

प्रतियोगिभेदसैं अत्यंताभावका भेद होवै है. जैसैं घटात्यंताभावसैं पटात्यंताभाव भिन्न है औ प्रतियोगितावच्छेदकसंबंधके भेदसैं प्रतियोगिभेदविनाभी अत्यंताभावका भेद होवै है. समवायसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यंताभावका औ संयोगसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यंताभावका प्रतियोगी तौ एक गन्ध है; परतु प्रतियोगितावच्छेदक संबंध दो होनेतें दो अभाव हैं. जो दो नहीं होवै एक ही मानैं तौ पृथ्वीमैं समवायसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यन्ताभावके नहीं होनेतें सयोगसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यंताभावभी नहीं होवैगा जो ऐसैं कहैं पृथ्वीम संयोगसम्बंधावच्छिन्न अत्यन्ताभावभी नहीं है तौ "पृथिव्यां संयोगेन गन्धो नास्ति" ऐसी प्रतीति नहीं हुई चाहिये; यातैं पृथिवीमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यंताभाव है औ समवायसंबंधावच्छिन्न गन्धात्यंताभाव नहीं है, यातें प्रतियोगीभेदतें जैसें अत्यंताभावका भेद होवै है तैसैं प्रतियोगितावच्छेदक संबंधभेदतैंभी अत्यंताभावका भेद होवै है औ सामयिकाभावका प्रतियोगितावच्छेदक संबंधके भेदविनाभी समयभेदसैं भेद होवै है. जैसैं भूतलमैं घटका सयोग जितनैं होवै नहीं तब घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव है औ भूतलमैं घटका सयोग होवै तब घटके प्रथमसामयिकाभावका नाश होय जावै है. जब भूतलमैं घटकूं उठाय लेवैं तब घटका सयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव और उपजै है. तिसी घटकूं भूतलमैं फेरि ल्यावै तब दूसरा सामयिकाभाव नष्ट होवै है; फेरि तिस घटकूं उठाय लेवै तब तिसी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव और तृतीय उपजै है, इस रीतिसैं प्रतियोगिभेदविना औ प्रतियोगितावच्छेदक संबंधभेदविनाभी कालभेदसैं सामयिकाभावका भेद होव है यह सामयिकाभाव औ अत्यंताभावकी विलक्षणता स्पष्ट है; इसरीतिसैं न्यायसंप्रदायमैं पांच प्रकारका अभाव है.

नवीन तार्किककरि सामयिकाभावके स्थानमैं अनित्यअत्यंताभावका अंगीकार औ तामैं शंकासमाधान ॥ १० ॥

औ नवीन तार्किक सामयिकाभावकूं नहीं मानैं हैं. भूतलादिकनमैं

घटादिकनका जहां सामयिकाभाव कह्या है तहांभी सारे घटादिकनका अत्यंताभाव है और जो भूतलादिकनमैं घटादिकनका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव माननेमैं दोष कह्याहै; जाति गणादिकनमैं घटका सयोगसम्बंधावच्छिन्न अत्यंताभाव नित्य है; औ जो भूतलादिकनमैं तिसी घटका संयोगसम्बंधावच्छिन्न अभाव अनित्य है सो नित्य अनित्य परस्पर भिन्न हैं एक नहीं. जातिगुणादिकनमैं औ भूतलादिकनमैं संयोगसम्बंधावच्छिन्न घटाभावका भेद नहीं मानैं तौ नित्यता औ अनित्यतारूप जो विरोधी धर्म तिनका संकर होवैगा ? **ताका समाधान** इसरीतिसैं गंगेशोपाध्यायादिकनवीन करैं हैः—भूतलादिकनमैंभी घटका संयोगसम्बंधावच्छिन्न अभाव अनित्य नहीं. किंतु नित्य है, जब भूतलमैं घटका संयोग होवै तिस कालमैंभी घटका सयोगसम्बंधावच्छिन्न अत्यंताभाव रहैहै ताका नाश होवै नहीं, यातैं अत्यंताभाव **केवलान्वयी** है. जाका अभाव कहूं न होवै किंतु सकल पदार्थनमैं सर्वदा रहै सो **केवलान्वयी** कहिये है,

और जो यह **शंका** होवैः—संयोगसम्बंधतैं घटके होनेतैं संयोगसम्बंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव मानोगे तौ संयोगसम्बंधतैं घटवाले भूतलमैं "संयोगेन घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये.

ताका यह **समाधान** करैं हैंः—यद्यपि सयोगसम्बंधतैं घटवाले भूतलमैंभी निर्घट भूतलकी नाईं संयोगसम्बंधावच्छिन्न अत्यंताभाव घटका है तथापि निर्घटभूतलमैं तौ " सयोगेन भूतले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है. औ सघट भूतलमैं उक्त प्रतीति होवै नहीं. काहेतैं ? उक्त प्रतीतिका विषय केवल घटका अत्यंताभाव नहीं है किंतु भूतलसम्बंधी घटके आधारकालतैं अतिरिक्त काल औ संयोगसम्बंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव ये दोनूं जहां होवैं तहां "संयोगेन घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है. भूतलमैं संयोगसम्बंधतैं घट नहीं होवै तब भूतलसम्बंधीघटाधार काल नहीं है किंतु भतलअसम्बंधी जो घट ताका अनाधारकाल है; यातैं भूतलसम्बंधी घटके आधारकालसैं अतिरिक्त काल

है. औ संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटात्यंताभाव है, यातैं "संयोगेन घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है, औ जहां भूतलमैं संयोगसम्बंधतैं घट है तहांभी अत्यंताभावकूं नित्यता होनेतैं संयोगसम्बंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव तौ है परंतु भूतलसम्बंधी जो घट ताका आधार काल है, यातैं भूतलसम्बंधी घटाधारकालसैं अतिरिक्त काल नहीं है; यातैं संयोगसम्बंधतैं घट होनेतैं "संयोगेन भूतले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै नहीं. इसरीतिसैं अत्यंताभाव तौ सारे देशमैं प्रतियोगीके होनेतैं औ नहीं होनेतैं सर्वदा रहै है, परंतु अभावका घटादिक प्रतियोगिका सम्बंधि जो भूतलादिक अनुयोगी ताका आधारकाल प्रतियोगीके होनेतैं होवै है. प्रतियोगिसम्बंधी अनुयोगीके आधारकालसैं अतिरिक्त काल होवै है नहीं, यातैं प्रतियोगी 'नास्ति' ऐसी प्रतीति प्रतियोगीके होनेतैं होवै नहीं औ प्रतियोगी नहीं होवै तब प्रतियोगिसम्बंधी अनुयोगीके आधारकालसैं अतिरिक्तकाल औ अत्यंताभाव दोनूं हैं; यातैं "भूतले संयोगेन घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है इसरीतिसैं जहां प्राचीन सामयिकाभाव मानैं हैं तहांभी सारै अत्यंताभाव है औ अत्यंताभावकूं अनित्यता होवै नहीं. औ उक्तकालके अभावते प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभावकी प्रतीति होवै नहीं.

नवीनतार्किकके उक्तमतका खंडन ॥ ११ ॥

यह नवग्रंथकारोंका मत है सो समीचीन नहीं. प्राचीनमतही समीचीन है:— काहेतैं ? प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभाव माने तौ प्रतियोगी अभावका परस्पर विरोध है या कथाका उच्छेद हुया चाहिये. औ जो नवीन ऐसैं कहैं विरोध दो प्रकारका होवै है:—एक तौ सहानवस्थारूप होवै है औ दूजा सहाप्रतीतिरूप विरोध होवै है. एक अधिकरणमैं एक कालमैं नहीं रहै तिनका सहानवस्थानरूप विरोध कहिये है. जैसैं आतप शीतताका है. ऐसा विरोध अभाव प्रतियोगीका नहीं है. काहेतैं ? प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभाव रहै है; किंतु अभाव प्रतियोगीका सहाप्रतीतिरूप विरोध है. एक कालमैं एक अधिकरणमैं जिनकी प्रतीति न होवै तिनका सहाप्रतीतिरूप विरोध

कहिये है. प्रतियोगिके होनेतैं अत्यंताभावकी प्रतीति होवै नहीं, यातैं प्रतियोगी अभावका सहाप्रतीतिरूप विरोध है. सहानवस्थानरूप विरोध नहीं, इसरीतिसैं नवीनका समाधान सर्व लोकशास्त्रतैं विरुद्ध है. काहेतैं? अभावका अभाव **प्रतियोगी** कहिये है. जहां अभाव न होवै तहां अभावका अभाव होवै है. जैसैं घटवाले देशमैं घटका अभाव नहीं है किन्तु घटाभावका अभाव है सोई घट है औ घटाभावका प्रतियोगी है, इस रीतिसैं अभावके अभावकूं सर्व शास्त्रनमैं **प्रतियोगी** कहै हैं, नवीन रीतिसैं सो कथन असंगत होवैगा. काहेतैं? नवीन मतमैं घटवाले देशमैं घटका अभावभी है यातैं घटाभावका अभाव कहना बनैं नहीं. यद्यपि वक्ष्यमाण रीतिसैं घटतैं भिन्नही घटभावाभाव है घटरूप नहीं तथापि घटके समनियत घटाभावाभाव है; यह वार्ता निर्विवाद है. औ नवीन रीतिसैं घटवाले देशमैं घटाभाव है यातैं घटाभावका अभाव नहीं होनेतैं दोनूंकी समनियतता सम्भवै नहीं यातैं नवीनमत शास्त्रविरुद्ध है औ प्रतियोगी अभाव समानाधिकरण होवै नहीं यह सर्व लोकमैं प्रसिद्ध है; ता लोकप्रसिद्ध अर्थका नवीन कल्पनासैं बाध होवैगा औ घटके अधिकरणमैं घटका अत्यंताभाव मानना प्रमाणशून्य है, किसी प्रमाणसैं सिद्ध होवै नहीं. जहां घट नहीं है तहां 'घटो नास्ति' इस प्रतीतिसैं अत्यंताभाव सिद्ध होवै है. घटवाले देशमैं 'घटो नास्ति' ऐसी प्रतीति होवै नहीं औ कोई प्रतीति घटवाले देशमैं अत्यंताभावकी साधक है नहीं यातैं प्रतियोगिदेशमैं अत्यंताभावका अंगीकार प्रमाणसिद्ध नहीं उलटा घटवाले देशमैं "घटात्यंताभावो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है. ता प्रतीतिसैं विरुद्ध अत्यंताभावका अंगीकार है, औ घटवाले देशमैं जो घटात्यंताभावकूं मानैं ताकूं **वृद्धिवांछाकरिके चले पुरुषका मूलभी नष्ट होगया इस न्यायकी** प्राप्ति होवैगी. काहेतैं? अत्यंताभावकूं केवलान्वयी साधनेवास्तै औ नित्यता साधनेवास्तै घटवाले देशमैं घटात्यंताभाव मान्या है. परंतु घटवालेदेशमैं घटात्यंताभाव मानैं सो अत्यंताभावही निष्फल औ निष्प्रमाण होय जावैगा. तथाहि सर्व

पदार्थनका फलव्यवहार सिद्ध है.'घटो नास्ति' इसव्यवहारकी सिद्धिविना और तौ घटात्यंताभावका फल सम्भवै नहीं. उक्तव्यवहारकी सिद्धिही फल है, औ 'घटो नास्ति' या प्रतीतिसैंही घटात्यंताभाव सिद्ध होवै है उक्त प्रतीतिविना घटात्यंताभावके होनेमैं कोई प्रमाण नहीं. नवीन मतमैं घटात्यन्ताभावसैं 'घटो नास्ति' इस व्यवहारकी सिद्धि होवै नहीं;किंतुघटसम्बंधी भूतलाधिकरणकालतैं अतिरिक्त कालसैं उक्तव्यवहारकी सिद्धि होवै है. काहेतैं ? घटसम्बंधी भूतलाधिकरणकालतैं अतिरिक्तकाल होवै तब 'घटो नास्ति' यह प्रतीति होवै है. घटसम्बन्धी भूतलाधिकरण काल होवै तब "घटो नास्ति" एसी प्रतीति होवै नहीं, इस रीतिसैं 'घटो नास्ति' या प्रतीतिसैं घटसम्बंधी भतलाधिकरण कालतैं अतिरिक्त कालकी सिद्धि होवै है, घटात्यंताभावकी सिद्धि होवै नहीं. प्रतीतिकी नाई 'घटो नास्ति' इस व्यवहारकी सिद्धि नवीनमतमैं घटात्यंताभावसैं होवै नहीं; किंतु उक्तकालसैं 'घटो नास्ति' यह व्यवहार होवै है;यातैं घटात्यन्ताभाव नवीनमतमैं निष्फल औ निष्प्रमाण है. शब्दप्रयोगकूं व्यवहार कहैहैं, ज्ञानकूं प्रतीति कहै हैं इसरीतिसैं नवीनमतसैं अत्यंताभावकूं नित्यता माननेवास्तै प्रतियोगीवाले देशमैं अत्यंताभाव मानैं तौ मूलतैं अत्यंताभावकी हानि होवगी, यातैं घटवाले देशमैं घटात्यन्ताभाव संभवै नहीं. औ जहां भूतलमैं कदाचित् घट होवै तहां अत्यंताभाव होवै तौ अत्यंताभाव यह संज्ञाभी निरर्थक होवगी. जहां अत्यंताभाव होवै तीनि कालमैं प्रतियोगी न होवै सो अत्यंताभाव संज्ञाकी रीतिसैं सिद्धि होवै है. यातैं जहां कदाचित् प्रतियोगी होवै कदाचित् न होवै तहां त्रिकालमैं प्रतियोगीका अभाव नहीं यातैं अत्यंताभाव नहीं तासैं भिन्न कोई अभाव है ताकं सामयिकाभाव कहैं हैं.

न्यायसंप्रदायमैं घटके प्रध्वंसके प्रागभावकी घट औ घटप्रागभावरूपता ॥ १२ ॥

इस रीतिसैं च्यारिप्रकारका संसर्गाभाव औ अन्योन्याभाव मिलिकै पांच प्रकारका अभाव है; सो अभाव एक एक दो प्रकारका है:-एक

भावप्रतियोगिक होवै है दूसरा अभावप्रतियोगिक होवै है. भावका अभाव
भावप्रतियोगिक अभाव कहिये है, अभावका अभाव **अभावप्रतियो-**
गिक अभाव कहिये है, जैसें **प्रागभाव दो प्रकारका** है. घटादिकनका
कपालादिकनमैं **प्रागभाव भावप्रतियोगिक** है, जैसें भावपदार्थका प्राग-
भाव है तैसें अभावकाभी **प्रागभाव** होवै है, परंतु सादिपदार्थनका प्रागभाव
होवै है अनादिका प्रागभाव होवै नहीं. अत्यंताभाव अन्योन्याभाव प्रागभाव
तौ अनादि हैं; यातें तिनका तौ प्रागभाव संभवै नहीं प्रध्वंसाभाव अनंत तौ
है परंतु सादिहै यातें प्रध्वंसाभावका प्रागभाव होवै है; सो प्रध्वंसाभावका
प्रागभाव प्रतियोगिरूप औ प्रतियोगीका प्रागभावरूप होवै है. जैसें मुद्गरा-
कनतैं घटका नाश होवै ताकूं घटका प्रध्वंसाभाव कहैं हैं; सो प्रध्वंसाभाव
मुद्गरादिजन्य है. मुद्गरादिकनके व्यापारतें पूर्व घटकालमैं औ घटके प्राग-
भाव कालमैं नहीं होनेतें सादि है, यातें मुद्गरादिव्यापारतें पूर्व घटध्वंसका
प्रागभाव है सो ध्वंसका प्रागभाव घटकालमैं है औ घटकी उत्पत्तिसें पूर्वघट-
के प्रागभाव कालमैं है; यातें घटध्वंसका प्रागभाव घटकालमैं तौ घटरूप है
औ घटकी उत्पत्तिसें पूर्व घटका प्रागभावरूप है; इसरीतिसें घटध्वंसका
प्रागभाव घट औ घटके प्रागभावके अंतर्भूत है; तिनमैं न्यारा नहीं, यह
सांप्रदायिक मत है.

उस मतका खण्डन औ घटप्रध्वंसके अभाव-प्रतियोगिक प्रागभावकी सिद्धि ॥ १३ ॥

परंतु यह मत युक्तिविरुद्ध है:—काहेतें ? घट तौ भावरूप है औ सादि
है घटका प्रागभाव अभावरूप है औ अनादि है. एकही घटध्वंसप्रागभावकूं
कदाचित्भावरूपता कदाचिदभावरूपता कहना विरुद्ध है, तैसें कदा-
चित् सादिरूपता औ कदाचिदनादिरूपता कहनाभी विरुद्ध है औ घटकालमैं
"कपाले समवायेन घटोऽस्ति, घटप्रध्वंसो नास्ति" इस रीतिसें विधिरूप औ
निषेधरूप दो प्रतीति विलक्षण होवैंहैं तिनके विषय परस्पर विलक्षण दो

पदार्थ मानने चाहियें. तैसैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वभी "कपाले घटो नास्ति, घटध्वंसो नास्ति" इसरीतिसैं दो प्रतीति होवै है. यद्यपि सो दोनूं प्रतीति निषेधमुख हैं तथापि विलक्षण हैं. काहेतें ? प्रथम प्रतीतिमैं तौ नास्ति कहनेसैं प्रतीति जो होवैहै अभाव ताका प्रतियोगी घट प्रतीत होवैहै. औ दूसरे प्रतीतिमैं नास्ति कहनेसैं प्रतीति हुये अभावका घटध्वंस प्रतियोगी प्रतीत होवैहै; यातैं प्रतीयोगिका भेद होनेतें घटप्रागभावका घटप्रध्वंसका प्रागभाव न्यारा मानना योग्य है अनुभवसिद्ध पदार्थका लाघवबलसैं लोप संभवै नहीं, यातैं सांप्रदायिक रीतिसैं घटप्रध्वंसप्रागभावका घट औ ताके प्रागभावमैं अंतर्भाव मानैं तौ लाघवभी अकिंचित्कर है. इसरीतिसैं प्रध्वंसाभावका प्रागभाव अभावप्रतियोगिक प्रागभाव अभाव है.

सामयिकाभावके प्रागभावकी अभावप्रतियोगिता ॥ १४ ॥

तैसैं सामयिकाभाव भी सादि होवै है; ताका प्रागभावभी **अभावप्रतियोगिक प्रागभाव** होवै है.

प्राचीनप्रागभावके प्रध्वंसकी प्रतियोगिप्रतियोगी औ प्रतियोगिप्रतियोगीके ध्वंसमैं अंतर्भावका नवीनकरि खण्डन औ ताकी अभावप्रतियोगिता ॥ १५ ॥

औ प्रध्वंसाभावभी अत्यंताभाव अन्योन्याभावका तौ होवै नहीं. काहेतैं ? दोनूं अभाव अनादि अनंत हैं तैसैं प्रध्वंसाभावभी अनंत है. ताकाभी प्रध्वंस संभवै नहीं, परंतु प्रागभाव औ सामयिकाभावका प्रध्वंस होवै है. सांप्रदायिक रीतिसैं प्रागभावध्वंसभी प्रतियोगिप्रतियोगी औ प्रतियोगिप्रतियोगीके ध्वंसके अंतर्भूत है तिनतैं पृथक् नहीं.जैसैं घटके प्रागभावका ध्वंस होवै है. सो घटकालमैं औ घटक ध्वंसकालमैं है. घटकालमैं तौ घटप्रागभावकाध्वंस प्रतियोगिस्वरूपहै. काहेतैं ? घटप्रागभावकेध्वंसका प्रतियोगी घट-

प्रागभावका है औ घटप्रागभावका प्रतियोगी घट है. यातैं घटकालमैं घटप्रागभावका ध्वंसप्रतियोगिका प्रतियोगिस्वरूप है, औ मुद्गरादिकनतैं घटका नाश होवै तिसकालमैं भी घटप्रागभावका ध्वंस है औ घट है नहीं यातैं तिसकालमैं घटप्रागभावका ध्वंसप्रतियोगी प्रतियोगीका ध्वंसरूप है. काहेतैं ? घटप्रागभावध्वंसका प्रतियोगी जो घटप्रागभाव ताका प्रतियोगी घट है; ता घटका ध्वंसही घट प्रागभावका ध्वंस है. घटध्वंसतैं पृथक् घटप्रागभाव ध्वंस नहीं. इसरीतिसैं प्रागभावका ध्वंस कदाचित् अपने प्रतियोगीका प्रतियोगीरूप हैं औ कदाचित् अपने प्रतियोगीके प्रतियोगीका ध्वंसरूप है प्रागभावध्वंस पृथक् नहीं.

यह सांप्रदायिक रीतिभी युक्तिविरुद्ध है. काहेतैं ? घट तौ सांत हैं. औ भावरूप हैं. औ घटध्वंस अनंत है अभावरूप है. एकही घटप्रागभावध्वंसकूं सांत औ अनंतसैं अभेदकथन तैसैं भाव औ अभावसैं अभेद कथन विरुद्ध है औ घटकी उत्पत्ति होवै तब 'घटो जातः औ घटप्रागभावो नष्टः' इसरीतिसैं दो विलक्षणप्रतीति होवैहैं; तिनमैं 'घटो जातः' या प्रतीतिका विषय उत्पन्न घट है औ 'घटप्रागभावो नष्टः' या प्रतीतिका विषय घटप्रागभावका ध्वंस है. तिनका अभेदकथन संभवै नहीं. तैसैं मुद्गरादिकनसैं घटका ध्वंस होनेसैं ही ऐसी प्रतीतिहोवैहै "इदानीं घटध्वंसो जातः, घटप्रागभावध्वंसः पूर्वं घटोत्पत्तिकाले जातः" तहां वर्तमानकालमैं घटध्वंसकी उत्पत्ति औ 'अतीतकालमैं घटप्रागभावध्वंसकी उत्पत्ति सिद्ध होवै है. वर्तमानकालमैं उत्पत्तिवालेसैं अतीतकालकी उत्पत्तिवालेका अभेद संभवै नहीं, यातैं घटप्रागभावका ध्वंस घट औ घटके ध्वंसतैं पृथक् है. यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक अद्वैत ग्रंथनमैं भी ध्वंसप्रागभाव और प्रागभावका ध्वंस पृथक् नहीं लिखे किंतु पूर्वोक्तन्यायसंप्रदायकी रीतिसैं अंतर्भावही लिख्या है, तथापि श्रुति सूत्र भाष्य तौ इसनिरूपणमैं उदासीन है, यातैं जैसा अर्थ युक्ति अनुभवके अनुसार होवै सो मानना चाहिये. युक्ति अनु-

भवसैं विरुद्ध आधुनिक ग्रंथकारलेख प्रमाण नहीं, यातैं पूर्व उक्त अर्थ-प्रमाणविरुद्ध नहीं; उलटा पृथक् माननाही युक्ति अनुभवके अनुसार है इस रीतिसैं प्रागभावका ध्वंस **अभावप्रतियोगिकप्रध्वंसाभाव** है.

घटान्योन्याभावके अत्यंताभावकी घटत्वरूपता औ तामैं दोष ॥ १६ ॥

सामयिकाभाव केवल द्रव्यकाही होवै है यह पूर्व प्रतिपादन किया है यातैं अभावप्रतियोगिक सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. **अभावप्रतियोगिक-अत्यंताभावके** तौ अनेक उदाहरण हैं. कपालमैं घटका प्रागभाव औ प्रध्वंसाभाव है तंतुमैं नहीं; यातैं तंतुमैं **घटप्रागभावका अत्यंताभाव** है औ **घटप्रध्वंसाभावका अत्यंताभाव** है तैसैं कपालमैं घटका सामयिकाभाव औ घटका अत्यंताभाव नहीं यातैं कपालमैं घटके **सामयिकाभावका अत्यंताभाव** हैं औ **घटात्यंभावका अत्यंताभाव** है, तैसैं कपालमैं कपालका अन्योन्याभाव नहीं. तहां **कपालान्योन्याभावका अत्यंताभाव** है, तैसैं घटमैं घटका अन्योन्याभाव नहीं तहाँ **घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव** है, परंतु अन्योन्याभावका अत्यंताभाव पृथक् नहीं, किंतु अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्मरूप है. जैसैं घटान्योन्याभावका **प्रतियोगित्तावच्छेदक धर्म** घटत्व है सो केवल घटमैंही रहैहै औ घटान्योन्याभावका अत्यंताभावभी घटमैंही रहै है घटसैं भिन्न सकलपदार्थनमैं घटान्योन्याभाव रहै है, यातैं घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव घटसैं भिन्नपदार्थनमैं रहै नहीं. इसरीतिसैं घटत्वके समनियत-घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव होनेतैं घटत्वरूपही घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव है.

इस रीतिका प्राचीन लेखभी श्रद्धायोग नहीं. काहेतैं ? 'घटे समवायेन घटत्वम्" या प्रतीतिका विषय घटत्व है औ "घटे घटान्योन्याभावो

नास्ति" या प्रतीतिका विषय घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव है यातैं अन्योन्याभाव अत्यंताभाव अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्मरूप नहीं तासैं पृथक् ही अभावरूप है.

अत्यंताभावके अत्यंताभावकी प्रथमात्यंताभावकी प्रतियोगिरूपताका प्रतिपादन औ खंडन ॥ १७ ॥

तैसैं अत्यंताभावके अत्यंताभावकूं भी प्रथम अभावका प्रतियोगिरूप प्राचीन मानैं हैं ताका खंडन तौ नवीन न्यायग्रंथनमैं स्पष्ट है. तथाहि:-जहां घट कदीभी न होवै तहां घटका अत्यंताभाव है, जहां घट होवै वहां घटात्यंताभाव नहीं है, यातैं ताका अत्यंताभाव है. इसरीतिसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभाव प्रथमात्यंताभावका प्रतियोगी जो घट ताके समनियत होनेतैं घटस्वरूप है तासैं पृथक् नहीं; औ घटात्यंताभावका अत्यंताभाव घटरूप नहीं मानैं, पृथक् मानैं, तौ **अत्यंताभावनकी अनवस्था** होवैगी. जैसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभाव पृथक् है तैसैं द्वितीय अत्यंताभावका तृतीय अत्यंताभाव, तृतीयका चतुर्थ अत्यंताभाव, ताका पंचम, इसरीतिसैं अत्यंताभावनकी कहूं समाप्ति न होवै ऐसी अनन्तधारा होवैंगी. औ द्वितीय अत्यंताभावकूं प्रथम अत्यंताभावका प्रतियोगिस्वरूप मानैं तब अनवस्था दोष नहीं. काहेतैं ? घटात्यंताभावका अत्यंताभाव घटरूप मानैं द्वितीयात्यन्ताभावका अत्यंताभावभी घटात्यंताभावही है. काहेतैं ? द्वितीय अत्यंताभाव घटरूप है; यातैं ताका अत्यंताभाव घटकाही अत्यंता भाव है. तैसैं तृतीय अत्यंताभाव चतुर्थ अत्यंताभाव फेरि घटरूप है, चतुर्थ अत्यंताभावका पंचम अत्यंताभाव घटात्यंताभावरूप है. इस रीतिसैं प्रतियोगी और एक अत्यंताभावके अंतर्भूत सारै अत्यंताभाव होवै हैं अनवस्था दोष होवै नहीं; यातैं अत्यंताभावका अत्यंताभाव प्रथमात्यंताभावका प्रतियोगीस्वरूप प्राचीनोंनैं मान्या है.

तहां नवीन ग्रंथकारोंनैं यह दोष लिख्या है:-जहां भूतलमैं घट होवै

तहां "भूतले घटोऽस्ति, भूतले घटात्यंताभावो नास्ति" इसरीतिसैं विलक्षण प्रतीति होवै है. विधिमुख प्रतीति औ निषेधमुख प्रतीतिका एक विषय संभवै नहीं, यातैं विधिमुख प्रतीतिका विषय घट है और निषेधमुख प्रतीतिका विषय घटात्यंताभावका अत्यंताभाव है सो घटरूप नहीं; किंतु अभावरूप है यातैं घटसैं पृथक् है.

औ द्वितीय अत्यंताभावकूं पृथक् मानैं तौ अनवस्था दोष कह्या है. ताका यह समाधान है:—द्वितीय अत्यंताभाव प्रथम अत्यंताभावके प्रतियोगीके समनियत है और तृतीयाभाव प्रथमाभावके समनियत है औ प्रतियोगीके समान देशमैं जो द्वितीयाभाव वाके समनियत चतुर्थाभाव है. प्रथम तृतीयके **समनियम पंचम अभाव** है; इसरीतिसैं युग्मसंख्याके सारे अभाव द्वितीयाभावके समनियत हैं; औ विषम संख्याके सारे अभाव प्रथमाभावके समनियत हैं तहां द्वितीयाभाव यद्यपि प्रथमाभावके प्रतियोगीके समनियत है, तथापि भाव अभावकी एकता बनैं नहीं; यातैं घटक समनियतभी घटात्यंताभाव घटसैं पृथक् है. औ प्रथमाभावके समनियत तृतीयाभाव तौ प्रथमाभावस्वरूप पृथक् नहीं. काहेतैं ? 'घटो नास्ति' ऐसी निषेधमुख प्रतीतिका विषय प्रथमाभाव है, औ 'घटात्यंताभावाभावो नास्ति' ऐसी निषेधमुख प्रतीतिकाही विषय तृतीयाभाव है, यातैं तृतीयाभाव प्रथमाभावरूप है. तैसैं 'घटात्यंताभावो नास्ति' ऐसी निषेधमुख प्रतीतिका विषय द्वितीयाभाव है औ 'तृतीयाभावो नास्ति' इसरीतिसैं चतुर्थाभावभी निषेधमुख प्रतीतिका विषय है; यातैं द्वितीयाभावके समनियत चतुर्थाभाव द्वितीयाभावरूप है; परन्तु घटके समनियतभी द्वितीयाभावाभावरूप घटसैं पृथक् अभावरूप है; इसरीतिसैं प्रथमाभाव औ द्वितीयाभावके अंतर्भूत सारी अभावमाला होवै है अनवस्था दोष नहीं.

यद्यपि प्राचीन रीतिसैं प्रतियोगी औ अभावके अंतर्भूत सारे अभाव होवैहै यातैं एकही अभाव मानना होवैहै. नवीन रीतिसैं दो अभाव मानना होवैहै; यातैं नवीनमतमें गौरव है तथापि भावाभावकी एकता बनैं नहीं.

यातैं प्राचीनमत प्रमाणविरुद्ध है, औ नवीनमत अनुभवानुसारी है; यातैं प्रमाणसिद्ध गौरव दोषकर नहीं; इसरीतिसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभावभी अभावप्रतियोगिक अभाव है; इसरीतिसैं अभावप्रतियोगिक संसर्गाभावके उदाहरण कहे.

अभावप्रतियोगिक अन्योन्याभावके उदाहरण औ उक्तार्थका अनुवाद ॥ १८ ॥

औ अभावप्रतियोगिक अन्योन्याभावके उदाहरण अति स्पष्ट हैं. जैसैं प्रागभावका अन्योन्याभाव प्रागभावमैं नहीं औ सकल पदार्थनमैं हैं, काहेतैं ? भेदकूं अन्योन्याभाव कहैं हैं, स्वरूपमैं भेद रहै नहीं. स्वरूपातिरिक्त सर्वमैं सर्वका भेद रहै है;यातैं प्रागभावभिन्नपदार्थनमैं प्रागभावका अन्योन्याभाव है प्रध्वंसाभावतैं भिन्नमैं प्रध्वंसाभावका अन्योन्याभाव है, अत्यंताभावसैं भिन्नमैं अत्यन्ताभावका अन्योन्याभाव है, अन्योन्याभावसैं भिन्नमैं अन्योन्याभावका अन्योन्याभाव है, अन्योन्याभावसैं भिन्न च्यारि प्रकारका संसर्गाभाव औ सारे भावपदार्थ हैं. काहेतैं ? संसर्गाभाव औ भावपदार्थ अन्योन्याभावरूप नहीं, यातैं अन्योन्याभावसैं भिन्न हैं. जो जासैं भिन्न होवै तासैं तिसका अन्योन्याभाव होवै है. यातैं संसर्गाभावमैं और सकल भाव पदार्थनमैं अन्योन्याभावका अन्योन्याभाव है.

इसीरीतिसैं पंचविध अभावमैं सामयिकाभाव तौ केवल द्रव्यकाही होवे है यातैं अभावप्रतियोगिक है नहीं. च्यारि अभावनके अभाव प्रतियोगिकके उदाहरण कहे. अभावप्रतियोगिक अभावकूं कितनी जगहमैं प्राचीनभावरूप मानैं हैं जैसैं घटप्रागभावके ध्वंसकूं घटरूप मानैं हैं, घटध्वंसके प्रागभावकूं घट मानैं हैं, घटान्योन्याभावके अत्यंताभावकूं घटत्व मानैं हैं घटात्यंताभावके अत्यंताभावकूं घट मानैं हैं, ताका खंडन कर्या; यातैं अभावप्रतियोगिकभी अभाव है औ भावप्रतियोगिक अभाव तौ अतिप्रसिद्ध है. इसरीतिसैं अभावका निरूपण न्यायशास्त्रकी रीतिसैं किया औ कहूं प्राचीन मतमैं वा नवीनमतमैं दोष कहे सोभी न्यायकी मर्यादा लेकै दोष कहे हैं.

उक्तन्यायमतमैं वेदांतसैं विरुद्ध अशंकाप्रदर्शन औ अनादिप्रागभावका खण्डन ॥ १९ ॥

औ उक्त प्रकारसैं अभावका निरूपण वेदांतशास्त्रसेभी विरुद्ध नहीं, औ जितना अंश वेदांतविरुद्ध हैं सो दिखावैं हैं. कपालमैं घटके प्रागभावकूं अनादि कहैं हैं सो प्रमाणविरुद्ध है, यातैं वेदांतके अनुसारी नहीं. काहेतैं? घटप्रागभावका अधिकरण कपाल सादि औ प्रतियोगी घटभी सादि प्रागभावकूं अनादिता किसरीतिसैं होवै औ मायामैं सकल कार्यके प्रागभावकूं अनादिता कहैं तौ संभवै है काहेतैं? माया अनादि है, परंतु मायामैं कार्यका प्रागभाव मानना व्यर्थ हैं, औ सिद्धांतमैं इष्टभी नहीं. काहेतैं? घटकी उत्पत्ति कपालमैं होवै है अन्यमैं नहीं; तैसैं पटकी उत्पत्ति तंतुमैं होवै है कपालमैं नहीं. यातैं घटका प्रागभाव कपालमैं है तंतुमैं नहीं. पटका प्रागभाव तन्तुमैं है कपालमैं नहीं. जाका जिसमैं प्रागभाव है ताकी तिसमैं उत्पत्ति होवै है, अन्यमैं होवै नहीं. सर्वसैं सर्व कार्यकी उत्पत्ति मत होवैं इस वासतै प्रागभावका अंगीकार है.

और प्रयोजन प्रागभावका नैयायिक यह कहैं हैः—कपाल तंतुआदिकनके घटपटादिक परिणाम तौ हैं नहीं; किंतु कपालमैं घटका आरम्भ होवै है तन्तुमैं पटका आरम्भ होवै है औ घटपटादिक होवैं तब पूर्वकी नाईं कपाल तंतुभी विद्यमान रहैं हैं जो परिणामवाद होवै तौ घटाकारकूं प्राप्तहुयां पाछै स्वरूपसैं कपाल रहै नहीं. तैसैं पटाकारकूं प्राप्त हुयां पाछै तन्तु रहै नहीं. सो परिणामवाद तौ है नहीं, आरंभवाद है. कपाल ज्यूं का त्यूं रहै है औ अपनेमैं घटकी उत्पत्ति करै है. जब घट उत्पन्न होयलेवै तबभी घटकी सामग्री पूर्वकी नाईं बनी रहै है. परिणामवादमैं तौ कार्यकी उत्पत्ति हुयां उपादानकारण रहै नहीं. काहेतैं? परिणामवादमैं उपादानकारणही कार्यरूपकूं प्राप्त होवै है; यातैं घटरूपकूं प्राप्त हुयां कपाल घटकी सामग्री नहीं औ आरम्भवादमैं उपादानकारण अपनें स्वरूपकूं त्यागै नहीं; उपादानसैं भि-

न्न कार्यकी उत्पत्ति होवै है; अपने स्वरूपसैं उपादानकारण बन्या रहै है,
यातैं घटकी उत्पत्ति हुयांभी ज्यूंकी त्यूं सामग्री होनेतैं फेरि घटकी उत्पत्ति
चाहिये यद्यपि एक घटकी उत्पत्ति हुयां अन्यघटकी उत्पत्तिमैं तौ प्रथम
घट प्रतिबंधक है घटसैं निरुद्ध कपालमैं अन्यघटकी उत्पत्ति होवै नहीं
तथापि प्रथम उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति हुयी चाहिये. जो प्रथम उत्प-
त्तिकी फेरि उत्पत्ति मानैं तौ जैसैं उत्पत्तिकालमैं " घट उत्पद्यते "
यह व्यवहार होवै है, तैसैं उत्पत्तिकालसैं उत्तरकालमैंभी "घट उत्पद्यते"
यह व्यवहार हुया चाहिये. सिद्ध घटका जो आधारकाल सो घटकी
उत्पत्तिकालसैं उत्तरकाल है. सिद्ध घटके आधारकालमैं " उत्पन्नो घटः"
यह व्यवहार होवै है औ " उत्पद्यते घटः " ऐसा व्यवहार एक उत्पत्ति
क्षणमैं होवै है घटके अधार द्वितीयादि क्षणमैं ' उत्पद्यते ' ऐसा व्यवहार
होवै नहीं. काहेतैं ? वर्तमान उत्पत्तिवाला घट है यह अर्थ " घट उत्प-
द्यते " या कहनेसैं प्रतीत होवै है. 'उत्पन्नो घटः' यह कहनेसैं अतीत
उत्पत्तिवाला घट है यह अर्थ प्रतीत होवै है उत्पन्नकी उत्पत्ति मानैं तौ
घटकी सिद्ध दशामैंभी कोई उत्पत्ति वर्तमान रहैगी; यातैं उत्पन्न घटमैं
भी ' उत्पद्यते घटः' ऐसा व्यवहार चाहिये; यातैं उत्पन्न घटकी फेरि
उत्पत्ति नहीं देखनेतैं घटकी उत्पत्तिकी सामग्री रहै है, ऐसा मानना चाहिये
तहां और सामग्री कपालादिक तौ हैं तिस घटका प्रागभाव नहीं रहै है.
घटके प्रागभावका घट उत्पत्ति क्षणमैं ध्वंस होवै है; सो घटका प्रागभाव
घटकी उत्पत्तिमैं कारण है, ताके अभावतैं उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति
होवै नहीं; यह **प्रागभावका मुख्य प्रयोजन** है.

सो मायासैं घटादिकनके प्रागभावका प्रथमप्रयोजन तौ संभवै नहीं.
काहेतैं ? घटादिकनका साक्षात् उपादान माया नहीं; किंतु कपालादिक
हैं औ मायाकूं सर्व पदार्थनकी साक्षात् उपादानता सिद्धांतपक्षमैं मानी है
तौभी कार्यकी उत्पत्तिमैं दूसरे कारणकी अपेक्षा करै नहीं. अद्भुतशक्ति
मायामैं है, यातैं प्रागभावादिरूप अन्यकारणकी अपेक्षा नहीं, यातैं

मायामैं किसीका प्रागभाव नहीं औ कपालमैं घटकी उत्पत्ति होवै है पटकी नहीं. यामैं प्रागभाव हेतु कह्या सोभी बनै नहीं. कपालमैं घटकी कारणता है पटकी नहीं. काहेतें ? अन्वयव्यतिरेकसैं कारणताका ज्ञान होवै है; औ कपालके अन्वय कहिये सत्ता होवै तौ घटका अन्वय होवैहै. कपालके व्यतिरेक कहिये अभावतैं घटका व्यतिरेक होवैहै. इसरीतिसैं कपालके अन्वयव्यतिरेकतैं घटका अन्वयव्यतिरेक देखियेहै पटका नहीं, यातैं कपालमैं घटकी कारणता है पटकी नहीं; इसवास्तै कपालसैं घटही होवै है पटादिक होवैं नहीं. पटादिकनकी व्यावृत्तिवासतै घटका प्रागभाव कपालमैं संभवै नहीं; औ जो मुख्य प्रयोजन प्रागभावका कह्या कपालमैं घटकी उत्पत्तिसैं अनंतर उत्पत्ति हुई चाहिये. सोभी परिणामवादमैं दोष नहीं. काहेतें ? स्वरूपसैं स्थित कपाल घटकी उत्पत्ति करैहै. कार्यरूपकूं प्राप्तहुए कपालमैं घटकी उत्पत्ति होवै नहीं; यातैं परिणामवादमैं प्रागभाव निष्फल है.

औ विचार करैं तौ आरंभवादमैंभी प्रागभाव निष्फल है. काहेतें ? घटकी उत्पत्ति हुयां फेरि उत्पत्ति हुई चाहिये. जो ऐसैं कहैं ताकूं यह पूछना चाहियेः—घटांतरकी उत्पत्ति हुई चाहिये अथवा जो घट जिस कपालमैं उपज्या है तिसकी उत्पत्ति हुई चाहिये । जो ऐसैं कहै अन्य घटकी उत्पत्ति हुई चाहिये सो तौ संभवै नहीं. काहेतें ? जिस कपालसैं जो घट होवैहै तिस कपालसैं तिसी घटकी कारणता है; घटांतरकी कारणता कपालांतरमैं हैं, यातैं अन्य घटकी उत्पत्तिकी प्राप्ति नहीं औ जो ऐसैं कहैं जो घट पूर्व उपज्या है तिसीकी उत्पत्ति होवैगी सोभी संभवै नहीं. काहेतें ? जहां कपालसैं घटकी उत्पत्ति होवै तहां प्रथम उत्पत्ति अन्य उत्पत्तिकी प्रतिबंधक है, यातैं फेरि उत्पत्तिकी प्रतीति नहीं प्रागभाव निष्फल है.

औ उत्पत्तिके स्वरूपका सूक्ष्मविचार करैं तौ फेरि उत्पत्ति हुई चाहिये यह कथनही विरुद्ध है. काहेतें ? आद्यक्षणसैं संबंधकूं उत्पत्ति कहैं हैं घटका आद्यक्षणसैं सम्बन्ध घटकी उत्पत्ति कहिये है. घटाधिकरणक्षणके

ध्वंसका अनधिकरण जो क्षण सो घटका आद्यक्षण कहिये है. घटके अधिकरण अनंतक्षण हैं; तिनमैं घटके अधिकरण जो द्वितीयादि क्षण तिनमैं घटाधिकरण प्रथम क्षणका ध्वंस रहै है. औ प्रथम क्षणमें घटाधिकरणक्षणका ध्वंस है नहीं, यातैं घटाधिकरणक्षणके ध्वंसका अनधिकरण घटका प्रथमक्षण है ताक्षणसैं संबंधही घटकी उत्पत्ति कहिये है, द्वितीयादिक्षणमैं प्रथमक्षणसैं संबंध होवै नहीं यातैं प्रथमक्षणमैंही 'उत्पद्यते' ऐसा व्यवहार होवै है द्वितीयादिक्षणमैं नहीं. इसरीतिसैं प्रथमक्षणसंबंधरूप उत्पत्ति फेरि हुई चाहिये; ऐसा कहना "मम जननी वंध्या" इस वाक्यतुल्य है, काहेतैं ? घटकी उत्पत्तिसैं उत्तरक्षण घटाधिकक्षणके ध्वंसका अधिकरणही होवैगा; यातैं घटाधिकरणक्षणके ध्वंसका अनधिकरण फेरि संभवै नहीं; यातैं उत्पन्नकी उत्पत्ति हुई चाहिये यह कहना विरुद्ध है. इसरीतिसे प्रागभाव निष्फल है. " कपाले समवायेन घटो नास्ति" या प्रतीतिका विषय सामयिकाभावही संभवै है औ " कपाले घटो भविष्यति " या प्रतीतिका विषयभी घटका भविष्यत्‌काल है, प्रागभाव असिद्ध है.

औ अपने शास्त्रके संस्कारसैं नैयायिक प्रागभावकूं मानैं तौभी सादि मानना चाहिये, अनादि संभवै नहीं. काहेतैं ? अन्यमतमैं तौ सारे अभावनका अधिकरणभेदसैं भेद होवै है. औ नैयायिकमतमैं अधिकरणभेदसैं अभावका भेद नहीं; किंतु प्रतियोगिभेदसैं अभावका भेद होवै है. यातैं एक प्रतियोगिक अभाव नाना अधिकरणमैं एकही होवै है, परंतु प्रागभाव तौ नैयायिक मतमैं भी अधिकरण भेदसैं भिन्नही होवै है. काहेतैं ! घटका प्रागभाव घटके उपादान कारण कपालमैं ही रहै है. तिनमैं भी जो घट तिस कपालमैं होवै ता घटका प्रागभाव तिस कपालमैं है, अन्यघटका प्रागभाव अन्य कपालमैं है इसरीतिसैं एक प्रागभाव एकही अधिकरणमैं रहै है. सो कपालादिक प्रागभावके अधिकरण सादि हैं, तिनमैं रहनेवाला प्रागभाव किसी रीतिसैं अनादि संभवै नहीं. जो अनादि अधिकरणमैं औ सादिमें एक

प्रागभाव रहता होवै तौ अनादि कहना भी संभवै सो नाना अधिकरणमैं प्राग-भाव संभवै नहीं, यातैं कपालमात्रवृत्ति घटप्रागभावकूं अनादिता संभवै नहीं.

औ जो ऐसैं कहैं कपालकी उत्पत्तिसैं पूर्व कपालके अवयवनमैं घटका प्रागभाव रहै है, तिसतैं पूर्व अवयवके अवयवनमैं रहै है; इसरीतिसैं अनादि परमाणुमैं घटका प्रागभाव अनादि है.

सो संभवै नहीं:—काहेतैं ? अपने प्रतियोगीके उपादानकारणमैं प्राग-भाव रहै है अन्यमैं नहीं; यह **नैयायिकनका नियम** है. कपालके अव-यव कपालके उपादानकारण हैं घटके नहीं, यातैं कपालावयवमैं कपाल-काही प्रागभाव संभवै है घटका प्रागभाव कपालमैं ही है, कपालावयवमैं संभवै नहीं इस रीतिसैं परमाणु केवल द्व्यणुकका उपादानकारण है, यातैं द्व्यणुकका प्रागभावही परमाणुमैंही रहै है. द्व्यणुकसैं आगे त्र्यणुकादिक घटपर्यंतके प्रागभाव परमाणुमैं संभवै नहीं औ परमाणुमैं द्व्यणुक भिन्नपदा-र्थनकाभी प्रागभाव मानैं तौ परमाणुसैंभी घटकी उत्पत्ति हुई चाहिये.

औ परिणामवादमैं तौ कार्यकारणका अभेद है. यातैं द्व्यणुकसैं लेकै अंत्यावयवी पटपर्यंत कार्यकारणधाराका भेद नहीं. तिस मतमैं तौ परमा-णुमैं द्व्यणुकका प्रागभावही घटपर्यंत कार्यधाराका प्रागभाव है; यातैं पर-माणुमैं घटादिकनके प्रागभाव कहना संभवै, सो आरंभवादमैं कार्यकारणका अभेद तौ है नहीं; किंतु कार्यकारणका परस्पर अत्यंतभेद है, यातैं कपा-लावयवमैं घटका प्रागभाव नहीं. तैसैं परमाणुमैं द्व्यणुकके कार्यका प्राग-भाव संभवै नहीं; इसरीतिसैं सादिकपालादिकनमैं घटादिकनके प्रागभा-वकूं अनादिताकथन असंगत है.

अनंतप्रध्वंसाभावका खंडन ॥ २० ॥

तैसैं नैयायिकमतमैं प्रध्वंसाभावभी अपने प्रतियोगीके उपादानमैं ही रहै है यात घटका ध्वंस कपालमात्रवृत्ति है सो अनंत है यह कथन असंगत है. घटध्वंसका अधिकरण जो कपाल ताके नाशतैं घटध्वंसका नाश होवै है.

औ घटध्वंसका नाश माननेमैं नयायिक यह दोष कहैहैं:—घटध्वंसका ध्वंस होवै तौ घटका उज्जीवन हुया चाहिये. काहेतैं? प्रागभावप्रध्वंसाभावका अनाधारकाल प्रतियोगीका आधार होवै है यह नियम है. जा कालमैं घटध्वंसका ध्वंस होवै सो काल घटध्वंसका अनाधार होवैगा औ प्रागभावका अनाधार होवैगा. यातैं घटका आधार होवैगा, इसरीतिसैं ध्वंस का ध्वंस मानै तौ घटादिकप्रतियोगीका उज्जीवन होवैगा, यह दोषभी नहीं. काहेतैं? प्रागभावकूं अनादिता औ ध्वंसकूं अनंतता मानै तौ उक्त नियमकी सिद्धि होवै औ उक्त नियम मानै तौ प्रागभावकूं अनादिताकी औ ध्वंसकूं अनंतताकी सिद्धि होवै. औ सिद्धांतपक्षमैं प्रागभाव सादि हैं; यातैं प्रागभावकी उत्पत्तिसैं पूर्वकाल घटके प्रागभावका औ घटके ध्वंसका अनाधार है, घटका आधार नहीं. अथवा **मुख्यसिद्धांत** मैं सर्वथा प्रागभावका अंगीकार नहीं यातैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वकाल घटके प्रागभावका अनाधार है, औ घटके ध्वंसका अनाधार है, घटरूप प्रतियोगीका अनाधार है; घटरूप प्रतियोगीका आधार नहीं यातैं प्रागभावध्वंसका अनाधारकाल प्रतियोगीका आधार होवै है यह नियम संभवै नहीं, यातैं घटध्वंसकाभी ध्वंस होवै है औ उक्त नियमकी असिद्धिस घटका उज्जीवन होवै नहीं.

अन्योन्याभावकी सादि सांतता और अनादिताका अंगीकार ॥ २१ ॥

तैसैं अन्योन्याभावभी सादि सांत अधिकरणसैं सादि सांत है, जैसैं घटमैं पटका अन्योन्याभाव है, ताका अधिकरण घट है सो सादि है और सांत है, यातैं घटवृत्ति पटान्योन्याभावभी सादि सांत है. अनादि अधिकरणमैं अन्योन्याभाव अनादि है, परन्तु अनादिभी सांत है अनंत नहीं. जसैं ब्रह्ममैं जीवका भेद है सो जीवका अन्योन्याभाव है; ताका अधिकरण ब्रह्म है सो अनादि है यातैं ब्रह्मसैं जीवका भेदरूप अन्योन्याभाव अनादि

हैं; औ ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा भेदका अंत होवै है यातैं सांत है.

अनादिपदार्थकीभी ज्ञानसैं निवृत्ति अद्वैतवादमैं इष्ट हैं, इसीवासतै शुद्धचेतन १ जीव २ ईश्वर ३ अविद्या ४ अविद्याचेतनका संबंध ५ अनादिका परस्पर भेद६ ये षट् पदार्थ अद्वैतमतमैं स्वरूपसैं अनादि कहे हैं; औ शुद्धचेतनविना पांचकी ज्ञानसैं निवृत्ति मानैं हैं.

यामैं यह शंका होवै हैः—जीव ईश्वरकूं अद्वैतवादमैं मायिक कहैं हैं; मायाका कार्य मायिक कहिये है, जीव ईश मायाके कार्य हैं औ अनादि हैं यह कहना विरुद्ध है.

ता शंकाका यह समाधान हैः—जीव ईश मायाके कार्य हैं यह मायिक पदका अर्थ नहीं है, किंतु मायाकी स्थितिके अधीन जीव ईशकी स्थिति हैं. मायाकी स्थितिविना जीव ईशकी स्थिति होवै नहीं, यातैं मायिक हैं. औ मायाकी नाईं अनादि हैं; इसरीतिसैं अनादि अन्योन्याभावभी सांत है अन्योन्याभाव अनंत नहीं. तैसैं अत्यंताभावभी आकाशादिकनकी नाईं अविद्याका कार्य है औ विनाशी है इसरीतिसैं अद्वैतवादमैं सारे अभाव विनाशी हैं, कोई अभाव नित्य नहीं. औ अद्वैतवादमैं अनात्म पदार्थ सारे मायाका कार्य हैं यातैं आत्मभिन्नकूं नित्यता संभवै नहीं. जैसैं घटादिक भावपदार्थ मायाके कार्य हैं तैसैं अभावभी मायाके कार्य हैं.

यद्यपि अद्वैतवादमैं मायाकूं भावरूप कहैं हैं, यातैं अभाव पदार्थकी उपादानता मायाकूं संभवै नहीं. कार्यके सजातीय उपादान होवै है, अभावके सजातीय माया नहीं, किंतु माया औ अभावभावत्व अभावत्वसैं विजातीय हैं मायामैं भावत्व है औ अभावमैं अभावत्व है; तथापि सकल अभावनका उपादान मायाही है. काहेतैं ? अनिर्वचनीयत्व मिथ्यात्व ज्ञाननिवर्त्यत्व अनात्मत्वादिक धर्मनतैं माया औ अभाव सजातीय हैं. औ सकल धर्मनसैं उपादान औ कार्यकी सजातीयता कहैं तो घटकपालमैंभी घटत्व कपालत्व विजातीय धर्म होनेतैं घटका उपादान कपाल नहीं होवैगा जैसैं मृन्मयत्वादिक

धर्मनसैं घट कपाल सजातीय तैसैं अनिर्वचनीयत्वादिक धर्मनसैं अभाव मायाभी सजातीय हैं. यातैं सकल अभाव मायाके कार्य हैं यातैं मिथ्या हैं

औ कोई ग्रंथकार अद्वैतवादी एक अत्यंताभावकूं मानैं हैं औ अभाव-नकूं अलीक कहैंहैं:—जैसैं घटका प्रागभाव कपालमैं कहैंहैं सो अलीक है. काहेतैं? घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वकालसम्बन्ध कपाल ही "घटो भविष्यति" या प्रतीतिका विषय है. घटका प्रागभाव अप्रसिद्ध है तैसैं मुद्गरादिकनसैं चूर्णीकृत कपाल अथवा विभक्त कपालसैं पृथक् घटध्वंसभी अप्रसिद्ध है. तैसैं घटसंबंधी भूतलही घटका सामयिकाभाव है. घट होवै तब घटका संबंधी भूतल है, यातैं घटासंबंधी भूतल नहीं. इसरीतिसैं सामयिकाभाव अधिकरणसैं पृथक् नहीं तैसैं घटमैं पटके भेदकूं घटवृत्ति पटान्योन्याभाव कहैं हैं सो दोनूंके अभेदका अत्यंताभावरूप है. दो पदार्थनके अभेदात्यंताभावसैं पृथक अन्योन्याभाव अप्रसिद्ध है इस रीतिसैं एक अत्यंताभावही; और कोई अभाव नहीं इसरीतिसैं अभावके निरूपणमैं बहुत विचार है, ग्रंथ-वृद्धिके भयतैं रीतिमात्र जनाई है.

अभावकी प्रमाके हेतुप्रमाणका निरूपण औ अभावज्ञानके भेदपूर्वकन्यायमतमैं भ्रमप्रत्यक्षमैं विषयानपेक्षा ॥ २२ ॥

अभावका स्वरूपनिरूपण किया तामैं **प्रमाणनिरूपण** करिये हैं:— **अभावज्ञान दो प्रकारका** है. एक भ्रमरूप है दूसरा प्रमारूप है. **भ्रमज्ञानभी प्रमाकी नाईं प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं दोप्रकारका** है. घटवाले भूतलमैं इंद्रियका संयोग हुये भी किसीप्रकारतैं घटकी उपलब्धि न होवै तहां घटाभावका **प्रत्यक्षभ्रम** होवै है, परन्तु विषयविना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं. **अन्यथाख्यातिवादीके मतमैं** तौ भ्रमप्रत्यक्षमैं विषयकी उपेक्षा नहीं, किंतु अन्यपदाथका अन्यरूपतैं ज्ञानकूं **अन्यथाख्याति** कहैं हैं, यातैं जा पदार्थका अन्यरूपतैं ज्ञान होवै तिसकी तौ अपेक्षा है जैसैं रज्जुका सर्पत्वरूपतैं ज्ञान होवैहै तामैं रज्जुकी अपेक्षाहै तथापि जिस विषयका

ज्ञानमैं आकार प्रतीति होवै तिसकी अपेक्षा अन्यथाख्यातिवादीके मतमैं नहीं. जैसैं सर्पका आकार भ्रममैं भासै है ताकी अपेक्षा नहीं.

सिद्धांतमैं परोक्षभ्रममैं विषयकी अनपेक्षा औ अपरोक्षभ्रममैं अपेक्षा ॥ २३ ॥

तथापि सिद्धांतमैं अनिर्वचनीय ख्याति है. जहां प्रत्यक्षभ्रम होवै तहां भ्रमज्ञानकी नाईं अनिर्वचनीय विषयकी भी उत्पत्ति होवै है. यातैं व्यावहारिक घटवाले भूतलमैं प्रातिभासिक घटाभाव अनिर्वचनीय उपजै है. व्यावहारिक घटका व्यावहारिक घटाभावतैं विरोध है; प्राति-भासिक घटाभावतैं व्यावहारिक घटका विरोध नहीं, यातैं व्यावहारिक घटवाले भूतलमैं अनिर्वचनीय घटाभाव औ ताका अनिर्वचनीय ज्ञान दोनूं उपजैं हैं, तहां घटाभावका **प्रत्यक्षभ्रम** कहियेहै. जहां अंधकूं विप्रलंभक वचनतैं घटवाले भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै सो अभावका **परोक्षभ्रम** है, परोक्षज्ञानमैं विषयकी अपेक्षा नहीं. काहेतैं ? अतीतका औ अनागत काभी परोक्षज्ञान होवैहै, यातैं अभावका जहां परोक्षभ्रम होवै तहां प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति होवै नहीं, केवल अभावाकारवृत्तिरूप ज्ञानकीही उत्पत्ति होवै है.

सिद्धांतमैं अभावभ्रमआदि स्थानमैं अन्यथाख्या-तिका अंगीकार ॥ २४ ॥

अथवा परोक्षभ्रमकी नाईं जहां अभावका प्रत्यक्ष भ्रम होवै तहांभी प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति होवै नहीं, किंतु अभावका भ्रम अन्यथा ख्यातिरूपहै. काहेतैं ? रज्जु आदिकनमैं सर्पादिभ्रमकूं अन्यथाख्यातिरूप मानैं तौ यह दोष है:-रज्जुमैं सर्पत्वधर्मकी प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहैं हैं सो संभवै नहीं. काहेतैं ? इन्द्रियका सम्बन्ध रज्जुसैं औ रज्जुत्वसैं है सर्प-त्वसैं इन्द्रियका सम्बन्ध नहीं औ विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्यज्ञान होवै नहीं. यातैं रज्जुका सर्पत्वधर्मसैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभवै नहीं.

इसरीतिसैं प्रत्यक्षभ्रमस्थलमैं अन्यथाख्यातिका निषेध करिके अनिर्वच-नीय ख्याति मानीहै, ताकी रीति पूर्व कही है.

परंतु जहां अधिष्ठान औ आरोप्य दोनूं इन्द्रियसंबंधी होवै तहां उक्त-दोष संभवै नहीं; यातैं सिद्धांतग्रन्थनमैं भी तहां अन्यथाख्यातिही लिखी है. जैसैं पुष्पके उपरि धरे स्फटिकमैं रक्तताका प्रत्यक्षभ्रम होवै है तहां पुष्पकी रक्ततासैं भी नेत्रका संयुक्तसमवाय अथवा संयुक्ततादात्म्य-संबंध है. औ स्फटिकसैं नेत्रका संयोगसम्बन्ध है तहां रक्तका आरोप्य है. औ स्फटिक अधिष्ठान है.तहां पुष्पकी व्यावहारिक रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवै है, स्फटिकमैं अनिर्वचनीय रक्तताकी उत्पत्ति होवै नहीं काहेतें? जो रक्ततासैं सर्पत्वकी नाई नेत्रका सम्बन्ध नहीं होता तौ विषयतैं सम्बन्धविना इन्द्रियजन्यज्ञान होवै नहीं; यह दोष होता. नेत्रसैं रक्तताका सम्बन्ध होनेतैं उक्त दोष सम्भवै नहीं;यातैं आरोप्यके सन्निधानस्थलमैं अन्य-थाख्यातिही सम्भवै है.

तैसैं घटवाले भूतलमैं घटाभावभ्रम होवै तहांआरोप्यअधिष्ठानका सन्नि-धान होनेतैं आरोप्यसैं भी अधिष्ठानकी नाई इन्द्रियका सम्बन्ध है. काहेतें? अधिष्ठान भूतल है औ आरोप्य घटाभाव भूतलमैं तौ नहीं है, परन्तु भूतलवृत्ति भूतलत्वमैं घटाभाव है. औ भूतलवृत्ति जो रूपस्पर्शादि गुण हैं तिनमैं घटाभाव है भूतलमैं औ भूतलके रूपादिक गुणनसैं घटका संयोग कदीभी होवै नहीं. काहेतें? दो द्रव्यनका संयोग होवै है. घट तौ द्रव्य है भूतलत्व द्रव्य नहीं किंतु जाति है, तासैं घटका संयोग सम्भवै नहीं भूतलके रूपस्पर्शादिकभी द्रव्य नहीं किंतु गुण हैं, तिनमैंभी घटका संयोग सम्भवै नहीं. औ जामैं जाका संयोगसम्बन्ध नहीं होवै तौ तिसमैं तिसपदार्थका संयोगसंबन्धावच्छिन्नअत्यन्ताभाव होवै है; इसरीतिसैं भूतलमैं संयोगसम्बन्धतैं घट होतेभी भूतलत्वमैं औ भूतलके गुणनमैं संयोग-सम्बंधतैं घट नहीं होनेतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव है; तहां

अधिष्ठान भूतल है औ आरोप्य घटात्यंताभाव है, ताका भूतलसैं स्वाधिकरण समवायसंबंध है स्वकहिये घटात्यंताभाव ताका अधिकरण भूतलत्व औ भूतलके रूपादि गुण तिनका समवाय भूतलमैं है औ भूतलका घटात्यंताभावसैं स्वसमवेतवृत्तित्वसम्बंध है। स्वकहिये भूतल तामैं समवेत कहिये समवायसम्बंधसैं रहनेवाले भूतलत्व औ गुण तिनमैं वृत्तित्व कहिये आधेयता अत्यंताभावकी है. इसरीतिसैं आरोप्य अधिष्ठानके परस्परसंबंध होनेतैं सन्निधान है. यातैं भूतलत्ववृत्ति औ रूपस्पर्शादिवृत्ति जो व्यावहारिक घटात्यंताभाव ताकी भूतलमैं प्रतीति होनेतैं अभावका भ्रम अन्यथाख्यातिरूप है. प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति निष्प्रयोजन है. इसरीतिसैं प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं अभावभ्रम दो प्रकारका है.

प्रत्यक्षपरोक्षयथार्थभ्रमरूप अभावप्रमाकी इन्द्रिय औ अनुपलंभादि सामग्रीका कथन ॥ २९ ॥

तैसैं अभावकी प्रमाभी प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं दो प्रकारकी है:— नैयायिकमतमैं तौ इंद्रियजन्यज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहैं हैं तासैं भिन्न ज्ञानकूं परोक्षज्ञान कहैं हैं, औ अभावसैंभी इंद्रियका विशेषणता अथवा स्वसम्बंधविशेषणतासम्बंध जहां होवै तहां अभावकी प्रत्यक्षप्रमा औ परोक्षप्रमा कहिये है. जैसैं श्रोत्रसैं शब्दाभावका विशेषणतासंबंध है तहां शब्दाभावकी श्रोत्रजन्य प्रत्यक्ष प्रमा है, तैसैं भूतलमैं घटाभाव होवै तहां नेत्रसंबंध भूतलमैं विशेषणतासंबंध अभावका होनेतैं नेत्रजन्यप्रत्यक्षप्रमा घटाभावकी होवै है, परन्तु पुरुषशून्यभूतलमैं जहां स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवै है तहां पुरुषाभाव है औ पुरुषाभावतैं नेत्रका स्वसंबंधविशेषणतासंबन्धभी है तथापि पुरुषाभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं; यातैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रियकरण है प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी है. जहां स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवै तहां प्रतियोगीका अनुपलंभ नहीं है किंतु पुरुषरूप प्रतियोगीका उपलंभ कहिये ज्ञान है. जैसैं घटादिक द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं नेत्र करण है औ अन्धकारमैं

घटका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं, यातैं नेत्रजन्य चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग सहकारी है; यातैं अन्धकारस्थ घट होवै तहां नेत्र इंद्रिय है औ नेत्रइंद्रियका घटसैं संयोगभी है. तथापि घटका आलोकसैं संयोगरूप सहकारी नहीं यातैं अन्धकारस्थ घटका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं. चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोक संयोग सहकारी है. तहां इंद्रियसैं आलोकका संयोग हेतु नहीं किंतु विषयसैं आलोकसंयोग हेतु है, यातैं प्रकाशमैं स्थितपुरुषकूं अन्धकारस्थ घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं तहां इंद्रियसैं तौ आलोकसंग है विषय जो घट तासैं आलोकसंयोग नहीं औ अन्धकारस्थपुरुषकूं प्रकाशस्थ घटका प्रत्यक्ष होवै है. तहां इंद्रियसैं तौ आलोकका संयोग नहीं है; विषयतैं अलोकका संयोग है; यातैं विषय औ आलोकसंयोग नेत्रजन्यज्ञानमैं सहकारी हैं. तथापि घटके पूर्वदेशमैं आलोकका संयोग होवै, पश्चिमदेशमैं नेत्रका संयोग होवै, तहां घटका चाक्षुप प्रत्यक्ष होवै नहीं, हुया चाहिये. काहेतैं ? विषयतैं आलोकका संयोगरूप सहकारी है औ संयोगरूप व्यापारवाला नेत्र इंद्रिय करणभी है यातैं जिस घटके देशमैं नेत्रका संयोग होवै तिसीदेशमैं आलोकसंयोग सहकारी है. यह मानना चाहिये. दीपसूर्यादिकन प्रभाकूं आलोक कहैं हैं. जैसैं द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग सहकारी है, तैसैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रिय करण है औ प्रतियोगिका अनुपलंभ सहकारी है; यातैं स्थाणुमैं पुरुषभ्रम होवै है तहां पुरुषाभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं; तैसैं जहां भूतलमैं घट नहीं होवै औ घटके सदृश अन्य पदार्थ धर्‍या होवै तामैं घटभ्रम होय जावे ता भूतलमैं घटाभाव है औ घटाभावसैं इंद्रियका स्वसम्बद्ध विशेषणता संबंधभी है. काहेतैं ? घटका तौ भ्रम हुया है औ घट है नहीं किंतु घटाभाव ताका भूतलमैं विशेषणता है, तिस भूतलसैं इंद्रियका संयोग है यातैं इन्द्रियसंबद्ध कहिये इंद्रियसैं संबद्धवाले भूतलमैं अभावका विशेषणतासंबंध है, यातैं संबंधरूपव्यापारवाला इंद्रियकरण तौ है, प्रतियोगीका अनुपलम्भसहकारी नहीं. काहेतैं ? ज्ञानकूं उपालंभ कहैं हैं सो ज्ञान भ्रम होवै अथवा प्रमा होवै यामैं विशेष नहीं जहां घटका भ्रम होवै तहां घटा-

भावका प्रतियोगी जो घट ताका अनुपलंभ नहीं; किंतु भ्रमरूप उपलंभ कहिये ज्ञान है, इसरीतिसैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रिय करण है औ प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी है. केवल प्रतियोगीके अनुपलम्भकूं सहकारी कहैं तौभी निर्वाह होवै नहीं. काहेतैं? स्तंभमैं पिशाचका भेद तौ प्रत्यक्ष है औ स्तम्भमैं पिशाचका अत्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं. यह स्तंभ पिशाच नहीं ऐसा अनुभव सर्व लोकनकूं होवै है औ स्तंभमैं पिशाच नहीं ऐसा निश्चय होवै नहीं. तहां प्रथम अनुभवका विषय स्तंभवृत्तिपिशाचान्योन्याभाव है, औ द्वितीय अनुभवका विषय पिशाचात्यंताभाव है. दोनूं अभावनका प्रतियोगी पिशाच है ताका अनुपलंभ हैं औ इंद्रियसंबद्ध स्तंभ है; तामैं पिशाचान्योन्याभाव औ पिशाचात्यंताभाव दोनूं विशेषणतासंबंधसैं रहैहैं; यातैं पिशाचान्योन्याभावकी नाईं पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. तैसैं आत्मामैं सुखाभावदुःखाभाव प्रत्यक्ष होवैहै औ धर्माभावअधर्माभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. यह वार्ता सबके अनुभवसिद्ध है "इदानीं मयि सुखं नास्ति, इदानीं मयि दुःखं नास्ति" इसरीतिका अनुभव सर्वकूं होवैहै. सो अनुभव न्याय मतमैं मानस प्रत्यक्षरूप है. मनका सुखाभावतैं औ दुःखाभावतैं स्वसंयुक्त कहिये संयोगवाला आत्मा तामैं विशेषणतासंबंधसैं सुखाभाव दुःखाभाव रहैहैं, तैसैं धर्माभावअधर्माभावसैं भी मनका स्वसंयुक्त विशेषणतासंबंध है, तथापि प्रत्यक्ष होवै नहीं. "मयि धर्मो नास्ति, मयि अधर्मो नास्ति" ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव किसीकुं होवै नहीं औ सुखाभावदुःखाभावके प्रतियोगी सुखःदुख हैं तिनका जैसैं अनुपलंभ अभावकालमैं होवैहै, तैसे धर्माभावअधर्माभावके प्रतियोगी जो धर्म अधर्म तिनकाभी अनुपलंभ होवैहै, यातैं प्रतियोगीका अनुपलंभरूप सहकारीसहित मनसैं सुखाभावदुःखाभावका प्रत्यक्ष होवैहै; तैसैं धर्माधर्मरूप प्रतियोगीका अनुपलंभरूप सहकारीसहित मनसैं धर्माधर्मके अभावकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. तैसैं वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्ष है औ गुरुत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं है. रूपाभावका प्रतियोगी रूप है, गुरुत्वा-

भावका प्रतियोगी गुरुत्व है तिन दोनूंका वायुमैं अनुपलंभ है औ नेत्रका वायुसैं संयोगसंबंध होवैहै, नेत्रसंयुक्तवायुमैं रूपाभाव गुरुत्वाभाव विशेषणतासंबंधसैं रहैहैं यातैं स्वसंबद्धविशेषणतासंबंधसैं जैसैं वायुमैं रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै, तैस स्वसंबद्ध विशेषणतासंबंध गुरुत्वाभावसैं भी नेत्रका है; यातैं "वायौ रूपं नास्ति" इस चाक्षुषप्रतीतिकी नाई "वायौ गुरुत्वं नास्ति" ऐसी चाक्षुषप्रतीति भी हुई चाहिये. यातैं इंद्रियजन्य अभावके प्रत्यक्षमैं केवल अनुपलंभ सहकारी नहीं है. किंतु योग्यानुपलंभ सहकारीहै वायुमैं अनुपलंभ जैसैं रूपका है तैसैं गुरुत्वकाभी अनुपलंभ है. परंतु योग्यानुपलंभ रूपका है गुरुत्वका योग्यानुपलंभ नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्षयोग्यकी अप्रतीतिकूं योग्यानुपलंभ कहै हैं. रूप तौ प्रत्यक्षयोग्य है औ गुरुत्व प्रत्यक्ष योग्य नहीं. काहेतैं ? तराजूके ऊर्ध्वादिभावसैं गुरुत्वकी अनुमिति होवैहै, किसी इंद्रियसैं गुरुत्वका ज्ञान होवै नहीं; यातैं प्रत्यक्षयोग्य गुरुत्व नहीं होनेतैं ताका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ नहीं, तैसैं आत्मामैं सुखाभाव दुःखाभावका मानसप्रत्यक्ष होवैहै; तहांभी प्रत्यक्षयोग्य सुखका अनुपलंभ और प्रत्यक्षयोग्य दुःखका अनुपलंभ होनेतैं योग्यानुपलंभ सहकारीका संभवै है; औ धर्माभाव अधर्माभावका आत्मामैं मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं, तहांभी धर्माधर्मरूप प्रतियोगीका अनुपलंभ तौ है परंतु धर्माधर्म केवल शास्त्रवेद्य है प्रत्यक्षयोग्य नहीं; यातैं धर्माधर्मका योग्यानुपलंभ नहीं ताके अभावतैं धर्माभाव अधर्माभावका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं.

स्तंभमैं पिशाचके दृष्टांतसैं शंकासमाधानपूर्वक अनुपलंभका निर्णय ॥ २६ ॥

तैसैं स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं, तहांभी पिशाचरूप प्रतियोगीका अनुपलंभ तौ है परंतु प्रत्यक्षयोग्य पिशाच नहीं; यातैं योग्यानुपलंभ नहीं. प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगीके अनुपलंभकूं योग्यानुपलंभ कहैं हैं पिशाच्यात्यंताभावका प्रतियोगी जो पिशाच सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं पिशाचका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ नहीं.

यामैं यह शंका रहै हैः—स्तंभमैं पिशाचका भेदभी प्रत्यक्ष नहीं चाहिये काहेतैं ? पिशाचान्योन्याभावकूं पिशाच भेद कहैं हैं, ताका प्रतियोगीभी पिशाच है, सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं यातैं योग्यानुपलंभके अभावतैं पिशाचात्यंताभावकी नाईं पिशाचान्योन्याभावभी अप्रत्यक्ष हुया चाहिये जो सिद्धांती ऐसैं कहैः—उक्तरूप योग्यानुपलंभ नहीं है किंतु प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीकेअनुपलंभकूं योग्यानुपलंभ कहैं हैं प्रतियोगी चाहै प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अप्रत्यक्ष होवै. अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य चाहिये; तामैं प्रतियोगीका अनुपलंभ चाहिये. स्तंभमैं जो पिशाचान्योन्याभाव ताका प्रतियोगी पिशाच है सो तौ प्रत्यक्षयोग्य नहीं है औ तामैं प्रत्यक्षयोग्यताकी अपेक्षाभी नहीं तथापि पिशाचान्योन्याभावका अधिकरण स्तंभ है सो प्रत्यक्षयोग्य होनेतैं योग्यानुपलंभका सद्भाव है; यातैं पिशाचका अन्योन्याभाव स्तंभमैं प्रत्यक्ष संभवै है. सिद्धांतीका यह समाधान संभवै नहीं. काहेतैं ? उक्त रीतिसैं यह सिद्ध होवै हैः—अभावका प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा प्रत्यक्षके अयोग्य होवै, जहां अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य होवै तामैं प्रतियोगीका अनुपलंभ होवै औ सो योग्यानुपलंभ अभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी है ऐसा अर्थ मानैं तौ स्तंभमैं पिशाचात्यंभावभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. तैसैं आत्मामैं धर्माभाव अधर्माभावभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. काहेतैं ? स्तंभवृत्तिपिशाचात्यंताभावका अधिकर स्तंभ है; सो प्रत्यक्षयोग्य है. आत्मवृत्ति धर्माभावअधर्माभावका अधिकरण आत्मा प्रत्यक्षयोग्य है, परंतु इतना भेद है स्तंभ तौ बाह्यइंद्रियजन्यप्रत्यक्षयोग्य है यातैं स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावका बाह्यइंद्रियजन्य प्रत्यक्ष हुया चाहिये, औ आत्मा मानसप्रत्यक्ष योग्य है यातैं आत्मामैं धर्माभाव अधर्माभावका मानसप्रत्यक्ष हुया चाहिये. जो वायुकूं प्रत्यक्षयोग्यता मानैं तौ वायुवृत्ति-गुरुत्वाभावका प्रत्यक्ष हुया चाहिये जो वायुकूं प्रत्यक्षयोग्यता नहीं मानैं तौ वायुवृत्तिरूपाभावकाभी प्रत्यक्ष नहीं हुया

चाहिये औ वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्ष है यह सिद्धांत है. औ अनुभव-
सिद्ध है. यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा. औ जो सिद्धांती इसरीतिसैं समा-
धान करै:—योग्यानुपलंभ दो प्रकारका है एक तौ प्रत्यक्षयोग्यप्रति-
योगीका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ है औ दूसरा प्रत्यक्षयोग्य अधिकर-
णमैं प्रतियोगीका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ है. अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं
प्रथम योग्यानुपलंभ सहकारी है. यातैं अधिकरण तौ प्रत्यक्षयोग्य होवै
अथवा अयोग्य होवै जिस अत्यन्ताभावका प्रतियोगी प्रत्यक्ष योग्य होवै
ताका अनुपलंभ अत्यन्ताभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी है. औ अन्योन्याभावके
प्रत्यक्षमैं द्वितीय योग्यानुपलंभ सहकारी है. यातैं अन्योन्याभावका
प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अयोग्य होवै. प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं
प्रतियोगीका अनुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी है. यातैं कछुभी
दोष नहीं. स्तंभमैं पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी पिशाच प्रत्यक्ष योग्य
नहीं. यातैं स्तंभविषै पिशाचात्यंताभाव अप्रत्यक्ष है: औ स्तंभविषै
पिशाचान्योन्याभावका अधिकरण स्तंभ है सो प्रत्यक्ष है. यातैं स्तंभमैं
पिशाचान्योन्याभाव प्रत्यक्ष है. आत्मविषै सुखात्यंताभाव दुःखात्यंताभा-
वके प्रतियोगी सुखदुःख मानसप्रत्यक्षयोग्य हैं: तिनके अत्यंताभावका
मानसप्रत्यक्ष होवै है. धर्माधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं; यातैं तिनके अत्यंता-
भावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. रूपगुण तौ प्रत्यक्षयोग्य है यातैं वायुमैं रूपा-
त्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै है. गुरुत्व गुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं वायुमैं
गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं: इसरीतिसैं यह अर्थ सिद्ध हुवा:—अधिकरणमैं
प्रत्यक्षयोग्यता औ प्रतियोगीका अनुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं सह-
कारी है. औ प्रतियोगीमैं प्रत्यक्षयोग्यता औ प्रतियोगीका अनुपलंभ अत्यं-
ताभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी है. ऐसा नियम सिद्धांती कहै तौभी संभवै नहीं.
काहेतैं ? अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं अधिकरणकी योग्यताहेतु होवै तौ
वायुमैं रूपवद्भेदका प्रत्यक्ष होवै है, सो नहीं हुया चाहिये. "वायु रूप-

वान्" ऐसा प्रत्यक्ष सर्वकूं होवै है औ वक्ष्यमाण रीतिसैं ऐसा प्रत्यक्ष संभवै है. तहां अन्योन्याभावका अधिकरण वायु है सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं औ वायुकूं आग्रहसैं प्रत्यक्षयोग्यता मानैं तौ वायुमैं गुरुत्ववद्भेदकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये औ "वायुर्गुरुत्ववान्" ऐसा प्रत्यक्ष किसीकूं होवै नहीं वक्ष्यमाण रीतिसैं संभवै नहीं, औ स्तंभमैं पिशाचवद्भेद अप्रत्यक्ष है अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं अधिकरणकी योग्यता हेतु होवै तौ पिशाचवद्भेदका अधिकरण स्तंभ है. ताकूं प्रत्यक्षयोग्य होनेतैं पिशाचवदन्योन्याभावरूप पिशाचवद्भेद प्रत्यक्ष हुया चाहिये औ "स्तंभः पिशाचवान्" ऐसा प्रत्यक्ष होवै नहीं यातैं प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमैं प्रतियोगीका अनुपलंभरूप योग्यानुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं सहकारी है यह नियम संभवै नहीं. तैसैं अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं प्रतियोगीकी योग्यताकूं सहकारी मानैं तौ जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वात्यंताभावका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. काहेतैं ? जलपरमाणुवृत्ति पृथिवीत्वके अत्यंताभावका प्रतियोगी पृथिवीत्व है. ताका घटादिकनमैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है; यातैं प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगी है औ ताका जलपरमाणुमैं उपलंभ कहिये प्रतीति होवै नहीं यातैं अनुपलंभ है. औ जलपरमाणुसैं नेत्रका संयोग होवै यातैं जलपरमाणुवृत्ति पृथिवीत्वात्यन्ताभावसैं नेत्रका स्वसंयुक्त विशेषणतासंबंधभी है औ जो ऐसैं कहैं परमाणु निरवयव है तासैं नेत्रका संयोग संभवै नहीं. काहेतैं ? पदार्थके एकदेशमैं संयोग होवै है, अवयवकूं देश कहैं हैं, परमाणुके अवयवरूप देश संभवै नहीं. सकल परमाणुमैं संयोग कहैं तौ अव्याप्यवृत्ति संयोगका स्वभाव नहीं होवैगा. एकदेशमैं होवै एकदेशमैं नहीं होवैहै सो अव्याप्यवृत्ति कहियेहै. यातैं परमाणुसैं नेत्रका संयोग होवै नहीं सो संभवै नहीं:—काहेतैं? परमाणुका संयोग नहीं होवै तौ द्व्यणुक नहीं होवैगा औ परमाणुमैं महत्त्वात्यंताभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै सो नहीं होवैगा. परमाणुमैं महत्त्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै यह आगे स्पष्ट होवैगा यातैं नेत्रसंयुक्त

विशेषणतासंबंधसैं जैसें परमाणुमैं महत्त्वाभावका प्रत्यक्ष होवैहै, तैसें नेत्रसंयुक्तविशेषणतासंबंधसैं पृथ्वीत्वाभावकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. नेत्रसंयुक्त परमाणुमैं महत्त्वाभावकी नांई पृथिवीत्वाभावका विशेषणतासंबंध है परमाणुका संयोग व्याप्यवृत्ति होवैहै यह मंजूषाकी टीकामैं लिख्याहैः—यातैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वात्यंताभावके प्रत्यक्षकी सामग्री होनेतैं ताकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये; औ वक्ष्यमाण रीतिसैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. इस रीतिसैं सकल अभावनके प्रत्यक्षमैं एकरूप योग्यानुपलंभ संभवै नहीं, औ अन्योन्याभाव अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं भिन्न भिन्न रूपवाला योग्यानुपलंभ सहकारी कहना भी संभवै नहीं.

या शंकाका यह **समाधान** हैः—"योग्ये अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" ऐसा सप्तमीसमास करै तौ अधिकरणमैं प्रत्यक्षयोग्यता होवै तहां योग्यानुपलंभ सिद्ध होवैहै. औ "योग्यस्य अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" ऐसा षष्ठीसमास करैं तौ प्रतियोगिमैं प्रत्यक्ष योग्यता होवै तहां योग्यानुपलंभ सिद्ध होवै है. तहां एक एक प्रकारके योग्यानुपलंभ माननेमैं दोष कह्या, तैसें अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमैं अधिकरणयोग्यताका साधक सप्तमीसमासवाला योग्यानुपलंभ मानैं औ अत्यंताभावके प्रत्यक्षमैं प्रतियोगीका योग्यतासाधक षष्ठीसमासवाला योग्यानुपलंभ सहकारी मानैं तौ अभावभेदसैं दोनूंका अंगीकार होवै तामैंभी दोष कह्या; यातैं अन्य प्रकारका योग्यानुपलंभ सहकारी है औ योग्यानुपलंभ शब्दमैं सप्तमीसमास औ षष्ठीसमास नहीं किंतु "नीलो घटः" या शब्दकी नांई प्रथमासमास है सो इसरीतिसैं हैः—जैसें "नीलश्चासौघटो नील घटः" या शब्दमैं प्रथमासमास है, ताकूं व्याकरणमैं **कर्मधारय** कहैहैं. जहां कर्मधारयसमास होवै तहां पूर्व पदार्थका उत्तरपदार्थसैं अभेद प्रतीत होवै है. जैसें "नीलघटः" या शब्दमैं कर्मधारयसमास करैं तब नीलपदार्थका घटपदार्थसैं अभेद प्रतीत होवै है तैसें " योग्यश्चासौ अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" इसरीतिसैं कर्मधारय

समास करैं तौ योग्यानुपलंभशब्दसैं योग्यपदाथका अनुपलंभ पदार्थसैं अभेद प्रतीत होवैहै, यातैं अभावके प्रतियोगी औ अधिकरण चाहै जैसैं होवैं तिनकी योग्यतासैं प्रयोजन नहीं.अनुपलंभमैं योग्यता चाहिये.जहां प्रतियोगीका अनुपलंभ योग्य होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवैहै;जहां प्रतियोगीका अनुपलंभ अयोग्य होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. अनुपलंभमैं योग्यता अयोग्यता इस प्रकारकी हैः—उपालंभाभावकूं **अनुपलंभ** कहैहैं प्रतीति ज्ञान उपलंभ ये पर्याय शब्द हैं. प्रतियोगीकी प्रतीतिका अभाव अनुपलंभशब्दका अर्थ है, यातैं इंद्रियसैं घटभावके प्रत्यक्षमैं घटकी प्रतीतिका अभाव सहकारी है. तहां घटाभावका ज्ञान प्रमाणरूप फल है औ घटज्ञानका अभाव घटाभावप्रमाका सहकारी कारण है. सो घटज्ञानका अभाव योग्य चाहिये, घटज्ञानाभावकूंही घटानुपलंभ कहैं हैं, तिस अभावरूप अनुपलंभमैं अन्यप्रकारकी तौ योग्यता संभवै नहीं किंतु जा अनुपलंभका उपलंभरूप प्रतियोगी योग्य होवै सो **अनुपलंभयोग्य** कहिये है. अनुपलम्भका प्रतियोगी उपलम्भ अयोग्य होवै सो **अनुपलंभ अयोग्य** कहिये है यातैं यह सिद्ध हुआः—योग्य उपलंभका अभावरूप योग्यानुपलंभ सहकारी है;इसरीतिसैं अनुपलभकी योग्यता कहनेका उपलंभकी योग्यतामैं पर्यवसान होवै है, यातैं उपलंभमैं योग्यता चाहिये. योग्य उपलंभका अभाव **योग्यानुपलंभ** कहिये हैं उपलम्भकी योग्यताका अनुपलंभमैं व्यवहार होवैहै.यद्यपि प्रथमही योग्य उपलंभके अभावकूं योग्यानुपलंभ कहैं तौ लाघव है;उपलंभरूपप्रतियोगीद्वारा अनुपलंभकूं योग्य कहना निष्फल हैं; तथापि व्याकरणकी मर्यादासैं योग्यानुपलंभ शब्दका अथ करैं तब अनुपलभम योग्यता प्रतीत होवै है;यातैं उपलंभवृत्ति मुख्ययोग्यताका अनुपलम्भसैं आरोप कह्या है; यातैं यह सिद्ध अर्थ है जहां प्रतियोगीके योग्य उपलंभका अभाव होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवै है. जहां प्रतियोगीकी सत्तासैं नियमकरिकै प्रयियोगीके उपलंभकी सत्ता होवै सो **उपलंभयोग्य**

है ताका अभाव अनुपलंभभी योग्य कहिये है. जहां प्रतियोगी हुयेभी नियम करिकै प्रतियोगीका उपलंभ न होवै सो उपलंभ अयोग्य है. ताका अभाव अनुपलंभ भी अयोग्य कहिये है. जैसैं आलोकमैं घटकी सत्ता होवै तब नियमकरिकै घटका उपलंभ होवै है. तहां घटका उपलंभ योग्य है ताका अनुपलंभभी योग्य कहिये है, तैस संयोगसंबंधसैं जहां पिशाच होवै तहां पिशाचसत्तासैं नियमकरिकै पिशाचका उपलंभ होवै नहीं यातैं पिशाचका उपलंभ अयोग्य है; ताका अभाव पिशाचानुपलंभभी अयोग्य कहिये है. इसरीतिस घटानुपलंभ योग्य है सो घटाभावके प्रत्यक्षमैं हेतु है औ पिशाचानपलंभ योग्य नहीं, यात पिशाचानुपलभतैं पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. यद्यपि घटाभावाधिकरणमैं घटकी सत्ता औ घटोपलंभकी सत्ता संभवै नहीं तथापि घटका औ घटोपलंभका ऐसा आरोप होवै है. "यदि भूतले घटः स्यात् । तदा घटोपलंभः स्यात्" यातैं घटाभावाधिकरणमैं भी आरोपित घटकी सत्ता औ घटानपलंभ होतैं भी आरोपित घटोपलंभकी सत्ता संभवै है. यातैं यह निष्कृष्ट अथ है:—जिस अभावके अधिकरणमैं प्रतियोगीका आरोप करें प्रतियोगीके उपलंभका नियमतैं आरोप होवै सो उपलम्भ योग्य है; तिसका अनुपलंभभी योग्य कहिये औ तिस अधिकरणम सो अभाव प्रत्यक्ष है; जिस अभावके अधिकरणमैं जिस अभावके प्रतियोगीका आरोप कर तिस प्रतियोगीके उपलंभका आरोप होवै नहीं, सो अभाव अप्रत्यक्ष है जैसैं अंधकारमैं घटाभाव प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं ? अंधकारमैं "यदि अत्र घटः स्यात तदा तस्योपलंभः स्यात्"इस रीतिसे घटके आरोपतैं घटके उपलंभका नियमतैं आरोप संभवै नहीं; यातैं अंधकारमैं घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं. स्तंभमैं पिशाचका भेद प्रत्यक्ष है, काहेतैं ? "यदि तादात्म्येन पिशाचः स्तंभे स्यात्तदा उपलभ्येत" इस रीतिसैं स्तंभवृत्ति तादात्म्यसंबन्धसैं पिशाचके आरोपतैं पिशाचके उपलंभका आरोप नियमसैं होवै है. काहेतैं ? स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभ

है ताका नियमतैं उपलंभ होवै है; तैसैं पिशाचभी तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभमैं होवै तौ स्तंभकी नाईं ताकाभी नियमतैं उपलंभ होवै. ता उपलंभके अभावतैं स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच नहीं; यातैं पिशाचका स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधावच्छिन्नाभाव है. तादात्म्यसंबंधावच्छिन्नाभावकूं ही अयोन्याभाव कहैं हैं. औ स्तंभमैं संयोगसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव तथा समवायसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं. काहेतें ? "स्तंभे यदि संयोगेन पिशाचः स्यात् समवायेन वा पिशाचः स्यात् तदा तस्योपलंभः स्यात्"इसरीतिसैं संयोगसंबंधतैं अथवा समवाय संबंधतैं पिशाचका स्तंभमैं आरोप करें पिशाचका उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतें ? जहां श्मशानके वृक्षादिकनमैं संयोगसंबन्धसैं पिशाच रहै है औ अपने अवयवनमैं समवायसंबंधसैं पिशाच रहै है, तहांभी पिशाचका उपलंभ होवै नहीं, औ जो स्तंभमैं संयोगसंबंधसैं अथवा समवायसंबंधसैं होवै तिन सर्वका उपलंभ होवै तौ स्तंभमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं पिशाचके आरोपतैं पिशाचके उपलंभका आरोप होवै; औ स्तंभमैं ही द्व्यणुकादिकनका संयोग है. औ वायुका संयोग है, यातैं द्व्यणुक वायु संयोगसंबंधसैं स्तंभवृत्ति है उपलंभ होवै नहीं, औ समवाय संबंधसैं गुरुत्वादिक अप्रत्यक्ष गुण रहै हैं तिनका स्तंभमैं उपलंभ होवै नहीं. यातैं स्तंभमैं संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं पिशाचके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप होवै नहीं; यातैं स्तंभमैं सयोगसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव औ समवायसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव अप्रत्यक्ष है. यद्यपि जहां तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच होवै तहां पिशाचका नियमतैं उपलंभ होवै नहीं, काहेतें ? तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचमैं पिशाच है औ उपलंभ होवै नहीं; यातैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचके आरोपतैंभी नियमतैं पिशाचोपलंभका आरोप संभवै नहीं, अत्यंताभावकी रीतिही अन्योन्याभावमैं है, तथापि अन्य प्रकारसैं भेद है. स्तंभमैं जो तादात्म्यसम्बंधसैं होवै ताका नियमतैं उपलंभ होवै है।

स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभ है अन्य नहीं. औ स्तंभका नियमतैं उपलंभ होवैहै. जो और कोई पदार्थ स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं रहै तौ स्तंभकी नाईं ताकाभी उपलंभ चाहिये, यातैं तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभमैं पिशाचके आरोपतैं ताके उपलंभका नियमतैं आरोप होवैहै."यदि तादात्म्येन पिशाचःस्तंभःस्यात्तदा तस्य स्तंभस्यैव उपलंभःस्यात्"इसरीतिसैं स्तंभमैं तादात्म्यसैं पिशाचके आरोपतैं पिशाचोपलम्भका आरोप होवैहै, यातैं स्तंभमैं पिशाचभेद प्रत्यक्ष होवैहै, तिसीस्तंभमैं पिशाचवत्का भेद अप्रत्यक्ष है. काहेतैं ? " यदि तादात्म्येन स्तंभः पिशाचवत् स्यात्तदा पिशाचवत्त्वेन स्तंभस्योपलंभः स्यात्" इस रीतिसैं स्तंभमैं तादात्म्यसैं पिशाचवत्के आरोपतैं पिशाचवत्के उपलंभका आरोप संभवै नहीं.काहेतैं ? पिशाचवत् वृक्षादिकनमैं पिशाचवत्ताका उपलंभ होवै नहीं,यातैं स्तंभमैं पिशाचवत्ताका भेद अप्रत्यक्ष है.पिशाचके भेदकी नाईं प्रत्यक्ष नहीं. इस प्रकारसैं बुद्धिमान् अनुभवसैं देखिलेवै. प्रतियोगीके उपलंभका आरोप जहां संभवै सो **अभावप्रत्यक्ष** होवै है.

उपलंभके आरोप औ अनारोप करिकै अभावकी प्रत्यक्षता औ अप्रत्यक्षतामैं उदाहरण ॥ २७ ॥

तैसैं "आत्मनि यदि सुखं दुःखं वा स्यात्तदा सुखस्य च दुःखस्य च उपलंभः स्यात्" इसरीतिसैं आत्मामैं सुखदुःखके आरोपतैं तिनके उपलंभका नियमतैं आरोप होवैहै. काहेतैं ? कदीभी अज्ञात सुख दुःख होवैं नहीं ज्ञातही होवैं हैं; यातैं सुखदुःखका आरोप हुये तिनका उपलंभका नियमतैं आरोप होवै है, यातैं आत्मवृत्ति सुखाभाव दुःखाभाव प्रत्यक्ष है. औ " आत्मनि धर्मो यदि स्यात् अधर्मो वा स्यात्तदा तस्य उपलंभः स्यात्" इसरीतिसैं धर्माधर्मके आरोपतैं तिनके उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्ष ज्ञानकूं **उपलंभ** कहैं हैं. यद्यपि ज्ञान प्रतीति उपलंभ ये शब्द पर्याय हैं, यातैं ज्ञानमात्रका नाम उपलंभ है,तथापि इस प्रसंगमैं जा इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै ता इंद्रियजन्य ज्ञानका उपलंभशब्दसैं ग्रहण

जानना. जैसैं सुखाभावका मनसैं प्रत्यक्ष होवै तहां सुखके आरोपतैं सुखके उपलंभका आरोप कहिये मानसप्रत्यक्षका आरोप होवैहै, तैसैं वायुमैं रूपाभावका चाक्षुपप्रत्यक्ष होवै है. तहां रूपके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप कहिये चाक्षुषप्रत्यक्षका आरोप होवैहै. इसरीतिसैं अन्यइंद्रियतैं जहां अभावका प्रत्यक्ष होवै तहां अन्यइंद्रियजन्य प्रत्यक्षही **उपलंभ** शब्दका अर्थ जानना। औ धर्म अधर्म केवल शास्त्रवेद्य हैं, तिनका उपलंभ इंद्रियजन्य ज्ञान कदीभी होवै नहा, यातैं धर्म अधर्मके आरोपतैं तिनके उपलंभका आरोप होवै नहीं. यात धर्माभाव अधर्माभाव प्रत्यक्ष नहीं. तैसैं वायुमैं गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं, औ वायुमैं रूपात्यंताभाव प्रत्यक्ष है. काहेतैं ? वायुमैं जो गुरुत्व होता तौ ताका उपलंभ होता. इसरीतिसैं गुरुत्वके आरोपतैं गुरुत्वके उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं ? जहां पृथिवी जलमैं गुरुत्व है तहांभी गुरुत्वका प्रत्यक्षरूप उपलंभ होवै नहीं; किंतु अनुमितिज्ञान गुरुत्वका होवैहै, यातैं गुरुत्वके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै नहीं इस कारणतैं वायुमैं गुरुत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं औ जो वायुमैं रूप होता तौ घटरूपकी नाईं वायुरूपका उपलंभ होता; केवलरूपकाही उपलंभ नहीं होता वायुकाभी उपलंभ होता. काहेतैं ? जा द्रव्यमैं महत्त्व गुण होवै औ उद्भूतरूप होवै सो द्रव्य प्रत्यक्ष होवै है. औ जा द्रव्यमैं महत्त्व होवै ताका रूप प्रत्यक्ष होवै है. परमाणु द्व्यणुकमैं महत्त्व नहीं तिनका रूप प्रत्यक्ष नहीं, यातैं त्र्यणुकादिरूप वायुमैं महत्त्व है तामैं रूप होता तौ त्र्यणुकादिरूप वायुका प्रत्यक्ष होता औ ताके रूपकाभी प्रत्यक्ष होता. इसरीतिसैं परमाणु द्व्यणुकरूप वायुकूं त्यागिकै त्र्यणुकादि वायुमैं रूपके आरोपतैं रूपके उपलंभका आरोप होवै है, यातैं त्र्यणुकादिरूप वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्ष है, परमाणु द्व्यणुकरूप वायुमैं रूपका आरोपहुयेभी महत्त्वके नहीं होनेतैं रूपके उपलंभके आरोपके नहीं होनेतैं परमाणु द्व्यणुक वायुमैं रूपाभाव प्रत्यक्ष नहीं, तैसैं जलपरमाणुमैं पृथिवीत्वाभाव

प्रत्यक्ष नहीं.काहेतैं ? जलपरमाणमैं पृथिवीत्व होवै तौ ताका उपलंभ होवै; इसरीतिसैं पृथिवीत्वके आरोपतैं पृथिवीत्वके उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं?आश्रय प्रत्यक्ष होवै तौ जातिका प्रत्यक्ष होवै; यातैं जलपरमाणुमैं जलत्व है. जैसैं जलत्वका प्रत्यक्ष नहीं तैसैं आरोपितपृथिवीत्वके उपलंभका आरोप संभवै नहीं; यातैं जलपरमाणमैं पृथिवीत्वका अभाव प्रत्यक्ष नहीं, औ परमाणुमैं महत्त्वका अभाव प्रत्यक्ष है.काहेतैं ? परमाणुमें चाक्षुषप्रत्यक्षकी सामग्री उद्भूतरूप है औ त्वाचप्रत्यक्षकी सामग्री उद्भूत स्पर्शभी है, परंतु महत्त्व नहीं है; यातैं परमाणुका प्रत्यक्ष होवै नहीं औ परमाणुके प्रत्यक्षयोग्य रूपादिक गुणनकाभी महत्त्वाभावतैं प्रत्यक्ष होवै नहीं. महत्त्ववाले द्रव्यके रूपादिकगुण प्रत्यक्ष होवैहैं जो परमाणुमैं महत्त्व होता तौ परमाणुका प्रत्यक्ष होता औ परमाणुके प्रत्यक्षयोग्य गुणनकाभी प्रत्यक्ष होता. घटादिकनका महत्त्व प्रत्यक्ष है,यातैं रूपादिकनकी नाईं महत्त्वगुणभी प्रत्यक्ष योग्य है. आकाशादिकनमैं महत्त्व तौ है परंतु उद्भूतरूप समानाधिकरण महत्त्वका प्रत्यक्ष होवैहै. आकाशादिकनमैं उद्भूतरूप है नहीं यातैं तिनके महत्त्वका प्रत्यक्ष होवै नहीं, तथापि महत्त्वगुण प्रत्यक्षयोग्य है. इस रीतिसैं परमाणुमैं महत्त्वविना अन्य सामग्री प्रत्यक्षकी है.जो महत्त्व होता तौ परमाणु औ ताके गुणनका प्रत्यक्ष होता, यातैं परमाणुमैं महत्त्वके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप संभवै है. महत्त्वके आरोपतैं केवल महत्त्वके उपलंभका आरोप नहीं होवैहै, किंतु परमाणुके उपलम्भका औ परमाणुमें समवेत प्रत्यक्षयोग्य गुणादिकनके उपलम्भका आरोप होवैहै. जो परमाणुमैं महत्त्व होवै तौ परमाणुका उपलम्भ होवै औ परमाणुमैं समवेत प्रत्यक्षयोग्य गुणनकाभी उपलंभ होवै औ प्रत्यक्षयोग्य जातिका तथा क्रियाकाभी उपलंभ होवै सो परमाणु आदिकनका उपलंभ नहीं,यातैं परमाणुमैं महत्त्व नहीं. इसरीतिसैं परमाणुमैं महत्त्वाभाव प्रत्यक्ष है,इस रीतिसैं जिस अधिकरणमैं जा अभावके प्रतियोगीके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै तिस अधिकरणमैं सो अभाव प्रत्यक्ष है.

जिस इन्द्रियतैं उपलंभका आरोप तिस इन्द्रियतैं उपलंभके आरोपतैं अभावका प्रत्यक्ष ॥ २८ ॥

परंतु जिस इंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै तिस इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवैहै.जैसैं भूतलमैं घट होवै तौ नेत्रसैं घटका उपलंभ हुया चाहिये उपलंभ होवै नहीं; यातैं घट नहीं. इस रीतिसैं जहां नेत्रजन्य उपलम्भका आरोप होवै तहां घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है. औ भूतलमैं घट होवै तौ त्वक्‌इंद्रियतैं घटका उपलंभ हुया चाहिये. इस रीतिसैं अंधकूं अथवा अंधकारमैं त्वक्‌इंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै तहां घटाभावका त्वाच-प्रत्यक्ष होवैहै इस रीतिसैं जिस इंद्रियके उपलंभका आरोप होवै तिसी इंद्रि-यतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै है. वायुमैं रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवैहै त्वाच प्रत्यक्ष होवै नहीं. काहेतैं ? वायुमैं रूप होता तौ रूपका नेत्रइंद्रिय-जन्य उपलंभ होता औ उपलम्भ होवै नहीं, यातैं वायुमैं रूप नहीं. इसरी-तिसैं नेत्रइंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोप होवै है औ वायुमैं रूप होता तौ त्वक्‌सैं ताका उपलंभ होता. इस रीतिसैं त्वक्‌इंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं ? रूपसाक्षात्कारका हेतु केवल नेत्र है त्वक् नहीं, तैसैं रसनादिइंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोपभी होवै नहीं; यातैं रूपाभावका चाक्षुष प्रत्यक्षही होवैहै. तैसैं मधुरद्रव्यमैं तिक्तरसाभावका रासनप्रत्यक्षही होवैहै, काहेतैं ? सितामैं तिक्तरस होता तौ ताका रसन-इंद्रियतैं उपलंभ होता औ उपलंभ होवै नहीं, यातैं सितामैं तिक्त रस नहीं. इस रीतिसैं सितामैं तिक्त रसके आरोपतैं रस-नाजन्य तिक्तरसोपलंभका आरोप होवै है अन्यइंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै नहीं; यातैं रसनेंद्रियजन्यही रसभावका प्रत्यक्ष होवै है, तैसैं स्पर्शाभावका प्रत्यक्ष त्वक्‌जन्यही होवै है. काहेतैं ? अग्निमैं शीतस्पर्श होता तौ ताका त्वक्‌इंद्रियतैं उपलंभ होता औ अग्निमैं शीतस्पर्शका त्वक्‌सैं उपलंभ होवै नहीं, इसरीतिसैं अग्निमैं शीतस्पर्शके आरोपतैं त्वक्‌जन्य

उपलंभका आरोप होवै है, यातैं स्पर्शाभावका प्रत्यक्ष केवल त्वक्‌जन्य होवै है तैसैं परमाणुमैं महत्त्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्षही होवै है, काहेतैं ? परमाणुका भेद महत्त्व है औ परिमाणगुणका ज्ञान चक्षु औ त्वचा दोनूंस होवै है यह अनुभवसिद्ध है. घटका छोटापना बडापना नेत्रसैं औ त्वचासैं जानिये है; यातैं दोनूं इंद्रियका विषय महत्त्व है, तथापि अपकृष्टतममहत्त्वका त्वचासैं ज्ञान होवै तौ त्र्यणुकके महत्त्वका त्वचासैं ज्ञान हुया चाहिये यातैं अपकृष्टतममहत्त्वका केवल नेत्रसैं ज्ञान होवै है औ परमाणुमैंभी अपकृष्टतममहत्त्वका ही आरोप होवैगा. ता अपकृष्टतममहत्त्वका त्वाचप्रत्यक्ष तौ होवै नहीं चाक्षुषत्यक्ष होवै है, यातैं परमाणुमैं महत्त्वके आरोपनतैं नेत्रजन्य उपलंभकाही आरोप होनेतैं परमाणुमैं महत्त्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है. त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं. जो परमाणमैं महत्त्व होता तौ त्र्यणुक महत्त्वकी नाईं नेत्रसैं ताका उपलंभ होता. इसरीतिसैं चाक्षुष उपलंभका आरोप होवै है त्वाच उपलंभका नहीं. आत्मामैं सुखाभावादिकनका मानस प्रत्यक्षही होवै है. काहेतैं ? आत्मामैं सुख होता तौ मनसैं सुखका उपलंभ होता. इसकालमैं सुखका उपलंभ होवै नहीं यातैं इसकालमैं मेरेविषै सुख नहीं. इसरीतिसैं आत्मामैं सुखके आरोपतैं ताके मानस उपलंभका आरोप होवै है यातैं सुखाभावका मानसप्रत्यक्ष होवै है; तैसैं दुःखाभाव इच्छाभाव द्वेषाभावकाभी मानसप्रत्यक्ष होवै है; परंतु अपने सुखादिकनके अभाव प्रत्यक्ष हैं पर सुखादिकनके अभाव प्रत्यक्ष नहीं; किंतु शब्दादिकनसैं तिनका परोक्षज्ञान होवै है. काहेतैं ? अन्यकूं सुखादिक हुयेभी तिनका उपलंभ दूसरेकूं होवै नहीं यातैं अन्यमैं सुख होता तौ मेरेकूं उपलंभ होता. इसरीतिसैं अन्यवृत्तिसुखादिकनका आपकूं उपलंभका आरोप होवै नहीं, यातैं अन्यवृत्तिसुखादिकका अभाव प्रत्यक्ष नहीं इस रीतिसैं प्रतियोगिके आरोपतैं जहां उपलंभका आरोप होवै सो अभाव प्रत्यक्ष है. ऐसैं उपलंभका अभावरूप अनुपलंभकूं योग्यानुपलंभ कहैं हैं, यातैं प्रतियोगिके आरोपतैं जिस उपलंभका

आरोप होवै सो उपलंभ जाका. प्रतियोगी होवै ताकूं योग्यानुपलंभ कहैं हैं. या अर्थमैं कोई दोश नहीं. इसरीतिसैं जा अधिकरणमैं जिसपदार्थका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै तिस अधिकरणमैं ताका अभाव प्रत्यक्ष है, एकही पिशाचका भेद स्तंभमैं प्रत्यक्ष है औ परमाणुमैं अप्रत्यक्ष है. यातैं जिस अधिकरणमैं कह्या जिस पदार्थका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै तिसके अभावकूं प्रत्यक्ष कहते तौ पिशाचका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभभी स्तंभमैं होवै है; परमाणुमैं भी पिशाचका भेद प्रत्यक्ष होवैगा; यातैं अधिकरणका नाम लेकै कह्या है. स्तंभादिकरणमैं उपलंभका आरोप तौ होवै है स्तंभमैं ही पिशाचभेद प्रत्यक्ष है औ परमाणुमैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच हुयाभी परमाणुकी नाई ताका उपलम्भ संभवै नहीं, यातैं परमाणुमैं पिशाचभेद प्रत्यक्ष नहीं. औ जिसपदार्थका एसा कहनेतैं वायुमैं रूपात्यन्ताभावकी नाई गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष होवै नहीं. जो जिस अधिकरणमैं इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै तिस अधिकरणमैं अभावप्रत्यक्ष है इतनाही कहैं तौ वायुअधिकरणमैं रूपका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै है. गुरुत्वाभावभी प्रत्यक्ष होवैगा, यातैं जिसपदार्थका उपलंभ संभवै ताका अभाव प्रत्यक्ष कह्या, यातैं रूपके आरोपित उपलम्भसैं वायुमैं गुरुत्वका अभाव प्रत्यक्ष होवै नहीं. इसरीतिसे जहां प्रतियोगीका जा इंद्रियजन्य आरोपित उपलम्भ होवै, तिस इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै है. औ जहां उक्त रीतिसे उपलम्भ नहीं संभवै तहां अभावका परोक्षज्ञान होवै है यह नैयायिकमत है.

उक्तरीतिसैं न्यायमतमैं अभावके प्रत्यक्षमैं इंद्रिय करण है, इंद्रियमैं विशेषणता औ इंद्रियसंबंधयैं विशेषणता अभावमैं इंद्रियका संबंध है सो व्यापार है, अभावकी प्रत्यक्षप्रमा फल है, औ योग्यानुपलंभ इंद्रियका सहकारी कारण है करण नहीं.

न्यायमतमैं सामग्रीसहित अभावप्रमाका कथन ॥ २९ ॥

जैसैं घटादिकनके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग सहकारी कारण है औ नेत्र इंद्रिय करण है तैसैं अभावके प्रत्यक्षमैं भी योग्यानुपलंभ सहकारी है औ अभावके चाक्षुष प्रत्यक्षमैं कभी आलोकसंयोग सहकारी नहीं; यद्यपि अंधकारमैं घटाभावका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं, आलोकमैं घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है; यातैं अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं अन्वयव्यतिरेकतैं आलोकसंयोग सहकारी कह्या चाहिये; तथापि घटमैं कुलालपिताकी नाईं अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं आलोकसंयोग अन्यथासिद्ध है; जैसैं घटके कारण कुलालकी सिद्धि करिकै कुलालका पिता कारणसामग्रीतैं बाह्य रहैहै घटका कारण नहीं कहिये है: किंतु घटके कारणका कारण है; तैसैं अभावके प्रत्यक्षका सहकारी कारण योग्यानुपलंभ है; ताकी सिद्धि करिकै अभाव प्रत्यक्षकी कारणसामग्रीतैं आलोकसंयोग बाह्य रहै है. काहेतैं ? अनुपलंभका प्रतियोगी जो उपलंभ ताका जहां आरोप संभवै सो अनुपलंभयोग्य कहिये है. घटके चाक्षुष उपलंभका आरोप आलोकमैं होवै हैं अंधकारमैं चाक्षुषउपलंभका आरोप होवै नहीं यातैं घटाभावके चाक्षुष प्रत्यक्षका सहकारी कारण जो योग्यानुपलंभ ताका साधक आलोक है. घटाभावके चाक्षुष प्रत्यक्षका साक्षात्कारण नहीं होनेतैं कारणसामग्रीतैं बाह्य है; यातैं कुलालपिताकी नाईं अन्यथासिद्ध है. जैसैं कुलालपिता घटका कारण नहीं तैसैं आलोकसंयोगभी अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षका कारण नहीं किंतु चाक्षुष प्रत्यक्षका कारण जो योग्यानुपलंभ ताका उक्त रीतिसैं साधक है.

औ प्राचीनग्रन्थनमैं तौ योग्यानुपलंभ इसरीतिसैं कह्याहै:—जहां प्रतियोगीविना प्रतियोगीके उपलंभकी सकल सामग्री होवै औ उपलंभ होवै नहीं तहां योग्यानुपलंभ है. जैसैं आलोकमैं घट नहीं तहां योग्यानुपलंभ है. काहेतैं? घटाभावका प्रतियोगी घट नहीं है ता विना आलोकसंयोग द्रष्टाके नेत्ररूप घटके चाक्षुष उपलंभकी सामग्री होनेतैं योग्यानुपलंभ

है. औ अंधकारमैं जहां घट नहीं तहां योग्यानुपलंभ नहीं. काहेतैं? प्रतियोगीके चाक्षुष उपलंभकी सामग्रीमैं आलोकसंयोग है ताका अभाव है; तैसैं स्तंभमैं तादात्म्य संबंधसे जो रहै ताके उपलंभकी सामग्री स्तंभ-वृत्ति उद्भूतरूप महत्त्व है; यातैं स्तंभमैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचका अनु-पलंभ योग्य हैं, औ संयोगसंबंधसैं जो स्तंभवृत्ति होवै ताके उपलंभकी सामग्री स्तंभके उद्भूतरूप औ महत्त्व नहीं हैं; किंतु संयोगसंबंधसैं रहने-वालेमैं उद्भुतरूप महत्त्व चाहिये सो पिशाचमैं है नहीं; यातैं संयोगसंबंधा-वच्छिन्न पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी जो पिशाच ताके उपलंभकी सामग्री पिशाचवृत्ति उद्भूतरूपके अभावतैं संयोगसंबधसैं पिशाचका अनु-पलंभ योग्य नहीं इसरीतिसैं प्रतियोगी विना प्रतियोगीके उपलंभकी सकल सामग्री हुया उपलंभ नहीं होवै सो योग्यानुपलंभ अभावके प्रत्यक्षका सहकारी कारण है; इसरीतिसैं जहां योग्यानुपलंभ होवै औ इन्द्रियका अभावतैं संबंध होवै तहां इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षप्रमा अभावकी होवै है. जहां योग्यानुपलंभ नहीं होवै तहां अभावका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं, किंतु अनुमानादिकनतैं परोक्षज्ञान होवै है. नैयायिकरीतिसैं अभाव प्रत्यक्षमैं योग्यानुपलंभ सहकारी है. इन्द्रिय करण है.

भट्ट औ वेदांतमतमैं न्यायमततैं अभावप्रमाकी सामग्रीविषै विलक्षणता ॥ ३० ॥

औ भट्टमतमैं तथा अद्वैतमतमैं योग्यानुपलंभही करण है. अभावज्ञानमैं इंद्रियकूं करणता नहीं; इसवास्तै **अनुपलब्धि नाम भिन्नप्रमाण भट्टनै मान्या** है, तिसके अनुसारीही अद्वैतग्रन्थनमैं भी अभावप्रत्यक्षका हेतु अनुपलब्धि नाम भिन्नप्रमाणही लिख्या है. **अनुपलंभकूं ही अनुपल-ब्धि** कहैं हैं जैसा योग्यानुपलंभ नैयायिकनै सहकारी मान्या है तैसाही योग्यानुपलंभ भट्टमत अद्वैतमतमैं प्रमाण है. नैयायिकमतमैं अभावप्रत्यक्षके **कारण** इंद्रिय औ योग्यानुपलंभदोनूं हैं; तिनमैं इंद्रिय तौ करण है, यातैं अभाव

प्रमामैं प्रमाण है औ अनुपलम्भकूं अभावप्रमाकी सहकारीकारणता मानैं हैं करणता नहीं मानैं हैं; यातैं अनुपलम्भ प्रमाण नहीं. औ भट्टादिमतमैं अनुपलब्धिही प्रमाण है.

यद्यपि अभावप्रमाकी उत्पत्तिमैं अनुपलब्धिका व्यापार कोई संभवै नहीं औ व्यापारवाला जो प्रमाका कारण सो प्रमाण कहिये है; यातैं अनुपलब्धिकूं प्रमाणता संभवै नहीं. तथापि व्यापारवाला प्रमाके कारणकूंही प्रमाणता होवै है, यह नियमभी नैयायिक मतमैं है. औ भट्टादिकनके मतमैं तौ सकल प्रमाणोंके भिन्न भिन्न लक्षण हैं. किसीके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश है किसी प्रमाणके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं है. जैसैं प्रत्यक्षप्रमाका व्यापारवाला असाधारण कारण **प्रत्यक्षप्रमाण** कहिये है, अनुमितिप्रमाका व्यापारवाला असाधारणकारण **अनुमान** कहिये है; शाब्दीप्रमाका व्यापारवाला असाधारण कारण **शब्दप्रमाण** कहिये है; इसरीतिसैं तीनि प्रमाणोंके लक्षणमैं तौ व्यापारका प्रवेश है औ तिन्ह प्रमाणोंके निरूपणमैं तीनूं स्थानमैं व्यापारका संभव कहि आये. औ उपमान अर्थापत्ति उपलब्धि इनके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं. उपमितिके असाधारण कारणकूं **उपमानप्रमाण** कहैं हैं, उपपादक कल्पनाका असाधारण हेतु उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान **अर्थापत्ति प्रमाण** कहिये है, अभावकी प्रमाका असाधारण कारण **अनुपलब्धिप्रमाण** कहिये है. यद्यपि अभावकी परोक्षज्ञानभी अनुमानादि कहनेतैं होवैहै; यह पूर्वकही है, यातैं अनुपलब्धिके लक्षणकी अभावज्ञानके जनक अनुमानादिकनमैं अतिव्याप्ति होवै है, तथापि अनुमानादिक प्रमाण भावकी प्रमाके औ अभावकी प्रमाके साधारण कारण हैं, अभावकी प्रमाके असाधारण कारण नहीं. औ अनुपलब्धिसैं केवल अभावकाही ज्ञान होवै है यातैं अभावप्रमाका असाधारण अनुपलब्धि प्रमाण है अन्य नहीं इसरीति तीनि प्रमाणोंके लक्षणमैं व्यापारका प्रवेश नहीं यातें व्यापारकी अपेक्षा तीनि प्रमाणोंमैं नहीं; अनुपलब्धिप्रमाणसैं अभावका ज्ञान होवै सो तौ प्रत्यक्ष होवै

है. औ अनुमानसैं तथा शब्दसैं जो अभावका ज्ञान सो परोक्ष होवै है. जितने स्थानोंमैं नैयायिक इंद्रियजन्य अभावका ज्ञान कहैं हैं उतनैं ज्ञानही अनुपलब्धिप्रमाणजन्य हैं. काहेतैं ? नैयायिकमतमैं भी अभावज्ञानका सहकारीकारण अनुपलब्धि है.जैसैं योग्यानुपलब्धिकूं नैयायिक इंद्रियका सहकारी मानैं हैं सोई योग्यानुपलब्धि भट्टादिमतमैं स्वतंत्रप्रमाणतैं विनाही भेद है नैयायिकमतमैं तौ अभावप्रमाका प्रमाण इंद्रिय है. वेदांतमतमैं प्रमाण अनुपलब्धि है औ वेदांतमतमैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञानभी नैयायिकमतकी नाईं प्रत्यक्ष है परोक्ष नहीं.

वेदांतरीतिसैं इन्द्रिय अजन्यप्रत्यक्षके लक्षणका निर्णय ॥२१॥

इहां ऐसी शंका होवैहैः—इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै है अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्यताका निषेध करिकै प्रत्यक्षता कहना बनै नहीं ताका यह समाधान हैः—इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै तौ ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं चाहिये. काहेतैं?न्यायमतमैं तौ ईश्वरका ज्ञान नित्य है यातैं इंद्रियजन्य नहीं औ वेदांतमतमैं ईश्वरका ज्ञान मायाकी वृत्तिरूप है इंद्रियजन्य नहीं और ग्रंथनमैं इंद्रियजन्यज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहनेमैं अनेकदूषण लिखे हैं यातैं इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै यह नियम नहीं है;किंतु प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका अभेद होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष होवैहै जहां विषय सन्मुख होवै तहां कहूं तौ इंद्रियविषयके संबंधतैं इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति घटदेशमैं जावै है, जायकै घटके समानाकार होयकै घटसैं वृत्ति मिले है तहां वृत्त्यवच्छिन्न चेतन प्रमाणचेतन कहिये है; विषयमैं आया चेतन विषयचेतन कहिये है, प्रमाणचेतन औ विषयचेतन स्वरूपसैं तौ सदा एकही है, उपाधिभेदसै चेतनका भेद होवैहै. उपाधिभी भिन्नदेशमैं होवै तौ उपहितका भेद होवैहै, एकदेशमैं होय तौ उपहितका भेद होवै नहीं, जैसैं घटका रूप औ घट एकदेशमैं होवैहैं तहां घटरूपोपहित आकाश औ घटोपहित आकाश एकही है, औ मठके अन्तर घट होवै तहां घटोप-

हित आकाश मठाकाशतैं भिन्न नहीं. यद्यपि मठाकाश तौ घटाकाशतै भिन्नभी है. काहेतैं ? घटशून्यदेशमैं भी मठ है, तथापि मठशून्यदेशमैं घट नहीं, यातैं मठाकाशतैं घटाकाश भिन्न नहीं. इसरीतिसैं वृत्ति औ विषय भिन्न देशमैं रहैं इतने तौ वृत्त्युपहित चेतन औ विषयोपहित चेतन भिन्न होवैं हैं. औ वृत्तिविषय देशमैं होवै तब विषयचेतनभी वृत्तिचेतन होवै है, यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं भेद रहै नहीं; किंतु अभेद होवैहै. यद्यपि विषयदेशमैं वृत्ति जावै तब द्रष्टाके शरीरके अंतर अंतःकरणसैं लेके विषय-पर्यंत वृत्तिका आकार होवैहै; यातैं विषयदेशतैं बाह्यभी वृत्तिका स्वरूप होनेतैं विषय चेतनसैं भिन्नभी वृत्तिचेतन है, तथापि तिस कालमैं वृत्तिसैं भिन्नदेशमैं विषय नहीं, यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद कहैं हैं. औ जो दोनूंका परस्पर अभेद कहूं लिख्या होवै तौ ताका अभिप्राय यहहैः—जितना वृत्तिभाग घटदेशमैं है उतना वृत्तिभागसे उपहित चेतन घटचेतनसैं पृथक् नहीं; इसरीतिसैं जहां विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहियेहै ।

प्रत्यभिज्ञा औ अभिज्ञा प्रत्यक्षज्ञान औ स्मृतिआदिपरोक्षज्ञानोंका सामग्रीसहित निर्णय ॥ ३२ ॥

जहां विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद नहीं होवै सो ज्ञान परोक्ष कहियेहै संस्कारजन्य स्मरणरूप अंतःकरणकी वृत्ति शरीरके अंतरही होवैहै; ताका विषय देशांतरमैं होवैहै. अथवा नष्ट हो जावै है. यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद नहीं होनेतैं स्मृतिज्ञान परोक्ष है औ जिसपदार्थके पूर्वअनुभवके संस्कार होवैं औ इंद्रियका संयोग होवै तहां "सोयम्" ऐसा ज्ञान होवैहै, ताकूं प्रत्यभिज्ञा ज्ञान कहैहैं. तहांभी इंद्रियजन्य वृत्ति विषय देशमैं जावैहै; यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद होनेतैं प्रत्यभिज्ञाज्ञानभी प्रत्यक्षही होवैहै. केवल इंद्रियजन्यवृत्ति होवै तहां "अयम्" ऐसा प्रत्यक्ष होवैहै ताकूं अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहैं हैं औ मुख्य सिद्धांतमैं तौ पूर्व अनुभूतका सोऽयम् यह ज्ञानभी "तत्ता" अंशमैं स्मृतिरूप होनेतैं परोक्ष है "अयम्" अंशमैं प्रत्यक्ष

है, यातैं "सोयम्" इस ज्ञानमैं केवल प्रत्यक्षत्व नहीं किंतु अंशभेदसैं परोक्षत्व औ प्रत्यक्षत्व दो धर्म हैं.

केवल संस्कारजन्यवृत्ति होवै ताका "सः" ऐसा आकार होवै है, ताकूं स्मृति कहैं हैं. जा पदार्थका पूर्व इंद्रियतैं अथवा अनुमानादिकनतैं ज्ञान हुया होवै ताकी स्मृति होवै है; यातैं स्मृतिज्ञानमैं पूर्व अनुभव करण है औ अनुभवजन्य संस्कार व्यापार है. काहेतैं ? जिस पदार्थका पुर्वज्ञान होवै ताकी वर्षके अंतरायसैंभी स्मृति होवै है; तहां स्मृतिके अव्यवहित पूर्वकालमैं अनुभव तौ है नहीं औ अव्यवहित पूर्वकालमैं होवै सो हेतु होवैहै यातैं पूर्व अनुभव स्मृतिका साक्षात् कारण संभवै नहीं, किसी द्वारा कारण कह्या चाहिये, यातैं ऐसा मानना योग्य है. जा पदार्थका पूर्वअनुभव नहीं हुया ताकी तौ स्मृति होवै नहीं, जो पूर्व अनुभव स्मृतिका कारण नहीं होवै तौ जाका अनुभव नहीं हुआ ताकी भी स्मृति हुई चाहिये औ होवै नहीं इसरीतिसैं पूर्वअनुभवसैं स्मृतिका अन्वयव्यतिरेक है. पूर्वअनुभव हुये स्मृति होवै है यह अन्वय है, पूर्वानुभव नहीं होवै तौ स्मृति होवै नहीं यह व्यतिरेक है. एकके होनेसैं अपरका होना अन्वय कहियेहै. एकके नहीं होनेतैं अपरका नहीं होना व्यतिरेक कहियेहै. अन्वयव्यतिरेकसैं कारण-कार्यभाव जानिये है, पूर्वअनुभव स्मृतिके अन्वयव्यतिरेक देखनेतैं तिनका कारणकार्यभाव तौ अवश्य है. परंतु अव्यवहित पूर्वकालमैं पूर्वअनुभव मिलै नहीं, यातैं स्मृतिकी उत्पत्तिमैं पूर्व अनुभवका कोई व्यापार मानना चाहिये. जहां प्रमाणबलतैं कारणताका निश्चय होवै औ अव्यवहित पूर्वकालमैं कारणकी सत्ता संभवै नहीं तहां व्यापारकी कल्पना होवै है. जैसैं शास्त्ररूपी प्रमाणतैं स्वर्गकी साधनताका यागमैं निश्चय होवै है औ अन्त्य आहुतिकूं याग कहैं हैं तिस यागके नाश हुये बहुत कालके अंतरायतैं स्वर्ग होवै है, सुखविशेषकूं स्वर्ग कहैं हैं. स्वर्गके अव्य-वहित पूर्वकालमैं यागके अभावतैं कारणता यागकूं संभवै नहीं. यातैं शास्त्रसैं

निर्णीतकारणताके निर्वाहवासतैं यागका व्यापार अपूर्व मानैं हैं. जब अपूर्व अंगीकार किया तब दोष नहीं. काहेतैं ? कार्यके अव्यवहित पूर्वकालमैं कारण अथवा व्यापार एक चाहिये कहूं दोनूंभी होवैं हैं; परन्तु एक अवश्य चाहिये जिसकूं धर्म कहैं हैं सो यागजन्य अपूर्व है यागसैं अपूर्व उत्पन्न होवै है औ यागजन्य जो स्वर्ग ताका जनक है यातैं व्यापार है. जैसैं यागकूं स्वर्गसाधनताके निर्वाहवासतैं अपूर्व व्यापार मानिये है सो अपूर्व सदा परोक्ष है तैसैं अन्वयव्यतिरेकके बलतैं सिद्ध जो पूर्व अनुभवकूं स्मृतिकी कारणता ताके निर्वाहवासतैं संस्कार मानियेहै. सो संस्कार सदा परोक्ष है, जा अन्तःकरणमैं पूर्व अनुभव होवैहै औ स्मृति होवैगी ता अन्तःकरणका धर्म संस्कार है. नैयायिकमतमैं अनुभव संस्कारस्मृति आत्माके धर्म हैं. अनुभवजन्य संस्कारकूं नैयायिक **भावना** कहैं हैं. सो-संस्कार पूर्व अनुभवजन्य है औ पूर्वअनुभवजन्य जो स्मृति ताका जनक है यातैं व्यापार कहियेहै. इस रीतिसैं पूर्व अनुभव स्मृतिका कारण है, संस्कार व्यापार है, स्मृतिकी उत्पत्तिसैं अव्यवहित पूर्वकालमैं पूर्वअनुभवका तौ नाश होनेतैं अभाव है; तथापि ताका व्यापार संस्कार है; यातैं पूर्व अनुभवके नाश हुयां भी स्मृति उपजै है. सो संस्कार प्रत्यक्ष तौ है नहीं, अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं संस्कारकी सिद्धि होवैहै, यातैं जितनैं पूर्व अनुभूतकी स्मृति होवै उतनेकाल संस्कार रहैहै. जा स्मृतिसैं उत्तरस्मृति न होवै सो चरमस्मृति कहियेहै. चरमस्मृतिसैं संस्कारका नाश होवै है, यातैं फेरि तिस पदार्थकी स्मृति होवै नहीं. इसरीतिसैं पूर्वअनुभवजन्य संस्कारसैं अनेक स्मृति होवैहैं. जितने चरमस्मृति होवै इतने एक ही संस्कार रहै है. स्मृतिमैं चरमता कार्यसैं जानी जावै है; जा स्मृतिके हुयां फेरि सजातीय स्मृति न होवै ता स्मृतिमैं चरमताका अनुमानसैं ज्ञान होवैहै. अंत्यकूं **चरम** कहैं हैं. औ कोई ऐसैं कहैं हैंः-पूर्वअनुभवजन्यसंस्कारसैं प्रथम स्मृति होवैहै औ प्रथम स्मृतिकी उत्पत्तिस पहले संस्कारका

नाश होवैहै स्मृतिसैं और संस्कार उपजै है. तासैं फेरि सजातीय स्मृति उपजैहै ता स्मृतिसैं स्वजनकसंस्कारका नाश होवै है, अन्यसंस्कार उपजै है, तासैं तृतीय स्मृति होवै है. इसरीतिसैं स्मृतिसैं भी संस्कारकी उत्पत्ति होवैहै. जा स्मृतिसैं उत्तर सजातीय स्मृति न होवै सो स्मृति संस्कारकी हेतु नहीं. या मतमैं संस्कारद्वारा स्मृतिज्ञानभी उत्तरस्मृतिका करण है, औ प्रथम स्मृतिका करण अनुभव है,दोनूं स्थानमैं संस्कार व्यापार है; औ पहले मतमैं स्मृतिज्ञानका कारण स्मृति नहीं किंतु पूर्वानुभवसैं संस्कार होवै है सो एकही संस्कार चरमस्मृतिपर्यंत रहै है यातैं पूर्वानुभवही स्मृतिका कारण है;और पूर्वानुभवजन्य संस्कारही सकल सजातीय स्मृतिमैं व्यापार है. दोनूं पक्षनमैं स्मृतिज्ञान प्रमा नहीं. काहेतैं ? प्रथम पक्षमैं तौ स्मृतिज्ञानका करण पूर्वानुभव है सो षट्प्रमाणसैं न्यारा है. प्रमाण-जन्यज्ञानकूं प्रमा कहैं हैं.पूर्वानुभव प्रमाण नहीं द्वितीयपक्षमैं प्रथमस्मृतिका करणतौ पूर्वानुभव है औ द्वितीयादि स्मृतिका कारण स्मृति है सो स्मृतिभी षट्प्रमाणमैं नहीं, यातैं स्मृतिकूं प्रमा नहीं कहैं हैं; तथापि यथार्थ अयथार्थ भेदसैं स्मृति दो प्रकारकी है. भ्रमरूप अनुभवके संस्कारनसैं उपजै सो अयथार्थ है. प्रमारूप अनुभवके संस्कारनसैं उपजै सो यथार्थ है, इसरीतिसैं दोपक्ष ग्रन्थनमैं लिखेहैं; तिनमैं दूषण भूषण अनेक हैं ग्रन्थ-विस्तारभयतैं उपराम होयके प्रसंग लिखैंहैं. जैसैं पूर्वअनुभवजन्य स्मृतिज्ञान परोक्ष है, तैसैं अनुमानादिप्रमाणजन्य ज्ञानभी परोक्ष है. काहेतैं? जैसैं स्मृतिका विषय वृत्तिसैं व्यवहित होवैहै तैसैं अनुमानादिजन्य ज्ञानका विषयभी वृत्तिदेशमैं होवै नहीं; किंतु व्यवहित पर्वतादिदेशमैं होवैहै औ अतीत अनागत पदार्थकाभी अनुमानादिकनतैं अनुमितिसैं आदि लेकै वर्तमान ज्ञान होवै है. यातैं अनुमानादिजन्य ज्ञानके देशमैं औ कालमैं विषय होवै नहीं किंतु अनुमितिआदिज्ञाननके देश औ कालतैं भिन्नदेश औ भिन्नकालमैं तिनके विषय होवैहैं.

इन्द्रियजन्यताके नियमसैं रहित प्रत्यक्षज्ञानका अनुसंधान ॥ ३२ ॥

इन्द्रियजन्यज्ञानके विषय ज्ञानके देशकालसे भिन्न देश भिन्न कालमैं होवै नहीं; किंतु ज्ञानके देशकालमैंही होवै हैं, यातैं इंद्रिजन्यज्ञान सारै प्रत्यक्षही होवैहै. अद्वैतमतमैं अंतःकरणका परिणाम जो वृत्ति ताकूं ज्ञान कहै हैं; यातैं ज्ञानविषय एकदेशमैं होवै अथवा वृत्तिविषय एकदेशमैं होवैं या कहनेमैं एकही अर्थ है. इन्द्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवै यह नियम नहीं. जहां अन्यप्रमाणजन्य वृत्तिदेशमैंभी विषय होवै तहां प्रत्यक्षज्ञानही होवै है जैसैं "दशमस्त्वमसि" या शब्दसैं उत्पन्नहुई वृत्तिके देशमैं विषय है यातैं शब्द-प्रमाणजन्य ज्ञानभी कहूं प्रत्यक्ष होवैहै. महावाक्यजन्य ब्रह्माकारवृत्ति औ ब्रह्मात्मा दोनूं एकदेशमैं होवैहैं; यातैं महावाक्यजन्य ब्रह्मात्मज्ञान प्रत्यक्ष है. तैसैं ईश्वरज्ञानका उपादान कारण मायाके देशमैं सर्व पदार्थ हैं. यातैं इंद्रियजन्य नहीं तौभी ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष है, तैसैं अनुपलब्धि-प्रमाणजन्य अभावका ज्ञानभी प्रत्यक्ष है. काहेतैं ? जहां भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै तहां भूतलसैं नेत्रका संबंध होयके भूतलदेशमैं अंतःकरणकी वृत्ति जावै है. "भूतले घटो नास्ति" ऐसा वृत्तिका आकार है तहां भूतलअंशमैं तौ वृत्ति नेत्रजन्य है औ घटाभाव अंशमैं अनुपलब्धिजन्य है. जैसैं "पर्वतो वह्निमान्" यह वृत्ति पर्वतअंशमैं नेत्रजन्य है वह्निअंशमैं अनुमानजन्य है; तैसैं एकही वृत्ति अंशभेदसैं इंद्रिय औ अनुपलब्धि दो प्रमाणसैं उपजै है; तहां भूतलावच्छिन्न चेतनका वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभेद होवै है औ भूतलाव-च्छिन्न चेतनही घटाभावावच्छिन्न चेतन है. यातैं घटाभावावच्छिन्नचेतनका भी वृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं अभेद होवै है, यातैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य भी घटाभावका ज्ञान प्रत्यक्ष है, परंतु जहां अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य है. अधिकरणके प्रत्यक्षमैं इंद्रियका व्यापार होवैहै तहां उक्तरीतिका संभव है.

औ जहां अधिकरणके प्रत्यक्षमैं इंद्रियका व्यापार नहीं होवै तहां अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं; किंतु परोक्ष है.

जैसैं वायुमैं रूपाभावका योग्यानुपलब्धिसैं निमीलित नयनकूंभी ज्ञान होवै है औ परमाणुमैं योग्यानुपलब्धिसैं नेत्रका उन्मीलनव्यापार विनाही महत्त्वाभावका ज्ञान होवै है, तहां विषयदेशमैं वृत्ति जावै नहीं; यातैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य वायुमैं रूपाभावका ज्ञान तैसैं परमाणुमैं महत्त्वाभावका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष है. इसरीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान कहूं प्रत्यक्ष है, कहूं परोक्ष है, औ वेदांतपरिभाषादिक ग्रन्थनमैं अनुपलब्धि प्रमाणजन्य अभावका प्रत्यक्ष लिख्या है, अनुपलब्धिजन्य परोक्षज्ञानका उदाहरण नहीं लिख्या, सो तिनमैं न्यूनता है; लिख्या चाहिये. जो परोक्षका उदाहरण लिखेविना अनुपलब्धिजन्यज्ञान परोक्ष होवै नहीं ऐसा भ्रम होवै है.

अभावके ज्ञानकी सर्वत्र परोक्षताका निर्णय ॥ २४ ॥

औ सूक्ष्मदृष्टिसैं विचार करैं तौ अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान सर्वत्र परोक्ष है कहूंभी प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं ? प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका अभेद हुयेंभी जो प्रत्यक्षयोग्य विषय नहीं ताका परोक्षही ज्ञान होवै है. जैसैं शब्दादिकप्रमाणतैं धर्माधर्मका ज्ञान होवै तब प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका भेद नहीं. काहेतैं ? अंतःकरणदेशमैं धर्माधर्म रहैं है यातैं अंतःकरण औ धर्माधर्मरूप उपाधि भिन्नदेशमैं नहीं होनेतैं धर्माधर्मावच्छिन्नचेतनप्रमाण चेतनसैं भिन्न नहीं, तथापि धर्माधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं. यातैं शब्दादिजन्य धर्माधर्मका ज्ञान कदीभी प्रत्यक्ष नहीं. अनुभवके अनुसार विषयमैं योग्यता अयोग्यता जाननी. जैसैं धर्माधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं तैसैं अभावपदार्थभी प्रत्यक्षयोग्य नहीं. जो अभावपदार्थ प्रत्यक्ष होवै तौ वादियोंका विवाद नहीं हुया चाहिये. मीमांसक अभावकूं अधिकरणरूप मानैंहैं,नैयायिकादिक अधिकरणसैं भिन्न मानैं हैं;तैसैं नास्तिक अभावकूं तुच्छ औ अलीक मानैंहैं, आस्तिक अभावकूं पदार्थ मानैंहैं, इसरीतिसैं अभावके स्वरूपमैं विवाद है. औ प्रत्यक्षयोग्य जो घटादिक तिनके

स्वरूपमैं अधिकरणसैं भिन्न वा नहीं इत्यादिक विवाद होवै नहीं; यातैं अभावपदार्थ प्रत्यक्षयोग्य नहीं इसकारणतैं जहां भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै तहां प्रमाणचेतनसैं घटभावावच्छिन्न चेतनका अभेद है तौ भी अभावांशमैं यह ज्ञान परोक्ष है, भूतलांशम अपरोक्ष है. जैसैं "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान पर्वतअंशमैं अपरोक्ष है औ वह्निअंशमैं परोक्ष है; इसरीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावके ज्ञानकूं सर्वत्र परोक्ष मानैं तौ भट्टसभी विरोध नहीं. भट्टमतमैं अनुपलब्धि अभावका ज्ञान परोक्षही है.

औ अभावके ज्ञानकूं जो नैयायिक इंद्रियजन्य मानिकै प्रत्यक्ष कहैं हैं सो सर्वथा असंगत हैः–काहेतैं ? वायुमैं रूपाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवैहै औ परमाणुमैं महत्त्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवैहै यह नैयायिकनका सिद्धांत है सो बनैं नही.काहेतैं?वायुमैं रूपाभावके ज्ञानवास्तै कोईभी नेत्रका उन्मीलनव्यापार करै नहीं;किंतु निमीलितनेत्रकूंभी वायुमैं रूपाभावका योग्यानुपलब्धिसैं ज्ञान होवै है तैसैं परमाणुम महत्त्वाभावका ज्ञानभी उन्मीलित नेत्रकी नाईं निमीलितनेत्रकूंभी होवै है औ निमीलितनेत्रकूं घटादिकनका चाक्षुषज्ञान कदीभी होवै नहीं; यातैं वायुमैं रूपाभावका औ परमाणुमैं महत्त्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष बनै नहीं; किंतु योग्यानुपलब्धिसैं तिनका परोक्ष ज्ञान होवै है.

औ जो नैयायिक कहैं हैं अभावज्ञानमैं इंद्रियके अन्वयव्यतिरेक देखनेतैं अभावज्ञानमैं इंद्रिय हेतु है औ याका जो भेदधिक्कारादिक ग्रन्थनमैं समाधान लिख्याहैः–इन्द्रियका अन्वयव्यतिरेक अधिकरणके ज्ञानमैं चरितार्थ है. जैसैं भूतलमैं घटाभावका ज्ञान होवै तहां नेत्रइंद्रियसैं अभावके अधिकरण भूतलका ज्ञान होवैहै; ता नेत्रसैं ज्ञानभूतलमैं घटाभावका योग्यानुपलब्धिसैं ज्ञान होवैहै;इसरीतिमैं घटाभावका अधिकर जो भूतल ताके ज्ञानमैं इंद्रिय चारितार्थ कहिये सफल है. सो शंका औ समाधान दोनूं असंगत हैंः–काहेतैं ? वायुमैं रूपाभावका औ परमाणुमैं महत्त्वाभावका नेत्र व्यापारसैं विनाभी ज्ञान होवैहै;यातैं किसी अभावज्ञानमैं इंद्रियके अन्वय-

व्यतिरेक हुयें इंद्रियकूं कारणता सिद्ध होवै नहीं, सकल अभावके ज्ञानमैं इंद्रियका अन्वयव्यतिरेक असिद्ध है. इस रीतिस शिथिलमूल शंकाका समाधानकथनभी असंगत है.

औ जो नैयायिक इस रीतिसैं शंका करैः—"घटानुपलब्ध्या इंद्रियेणाभावं निश्चिनोमि" ऐसी प्रतीति होवैहै,यातैं अनुपलब्धि औ इंद्रिय दोनूं घटादिकनके अभावज्ञानके हेतु हैं.या शंकाका उक्त समाधान करैं"घटाभावके अधिकरणका ज्ञान इंद्रियतैं होवैहै औ घटाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवै है" सोभी समाधान संभवै नहींः—काहेतैं?जहां इंद्रिययोग्य अधिकरण है तहां तो उक्त समाधान संभवै है औ जहां अधिकरण इंद्रिययोग्य नहीं तहां उक्त समाधान संभवै नहीं. जैसैं "वायौ रूपानुपलब्ध्या नेत्रेण रूपाभावं निश्चिनोमि" इसरीतिसैं वायुमैं रूपाभावकी अनुपलब्धिजन्य औ नेत्रजन्य प्रतीति भासैहै तहां वायुकी प्रतीति नेत्रजन्य है औ रूपाभावकी प्रतीति अनुपलब्धिजन्य है यह कहना संभवै नहीं. काहेतैं ? वायुमैं रूपके अभावतैं नेत्रकी योग्यता नहीं.

यातैं अभावज्ञानकूं केवल अनुपलब्धिजन्य मानें उभयजन्यताकी प्रतीतिसैं विरोधका **अद्वैतवादीका यह समाधान** हैः—'भूतले अनुपलब्ध्या नेत्रेण घटाभावं निश्चिनोमि" या कहनेका अनुपलब्धिसहित नेत्रतैं भूतलमैं घटाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह अभिप्राय नहीं है,किन्तु भूतलमैं इंद्रियजन्य घटकी उपलब्धिके अभावतैं घटाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य है;अभावके निश्चयका हेतु अनुपलब्धि है औ अनुपलब्धिका प्रतियोगी जो उपलब्धि तामैं इंद्रियजन्यता भासै है, यातैं निषेधनीय उपलब्धिमैं इंद्रियजन्यता प्रतीत होनेतैं इंद्रियजन्य उपलब्धिके अभावतैं घटाभावका निश्चय उपजै है यह सिद्ध हुया. तैसैं" वायौ रूपानुपलब्ध्या नेत्रेण रूपाभावं निश्चिनोमि " या कहनेकाभी रूपकी अनुपलब्धिस

हित नेत्रतैं रूपाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य नहीं है. काहेतैं ? नेत्रके व्यापारविनाभी रूपाभावका निश्चय होवै है किंतु नेत्रजन्य-रूपकी उपलब्धिके अभावतैं वायुमैं रूपाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य है;यातैं जिस उपलब्धिका अभाव रूपाभावके निश्चयका हेतु ता उपलब्धि-मैं नेत्रजन्यता प्रतीति होवै है. इसरीतिसैं सारे अभावनिश्चयका हेतु जो अ-नुपलब्धि ताके प्रतियोगी उपलब्धिमैं इंद्रियजन्यता कहिये है औ विवेकविना अभावनिश्चयमैं इंद्रियजन्य प्रतीति होवै है. नैयायिककी शंकाका यह समाधान सर्वत्र व्यापक है. औ अधिकरणज्ञानकी इंद्रियजन्यता अभावज्ञानमैं भासै है, यह भेदधिक्कार वेदांतपरिभाषादिकनका समाधान सर्वत्र व्यापक नहीं;किंतु जहां प्रत्यक्षयोग्य भूतलादिक अभावके अधिक-रण हैं तहां तौ यह समाधान संभवै है; औ जहां प्रत्यक्षअयोग्य-वायु आदिक अभावके अधिकरण हैं, तहां उक्त समाधान संभवै नहीं, औ "अनुपलब्ध्या रसनेंद्रियेणाम्लरसाभावमाम्रे जानामि" या स्थानमैंभी अधिकरणका ज्ञान रसनेंद्रियजन्य संभवै नहीं. काहेतैं ? अम्लरसके अभा-वका अधिकरण आम्रफल है ताके ज्ञानकी सामर्थ्य रसनेंद्रियमैं नहीं रस-नेंद्रियमैं केवल रसज्ञानकी सामर्थ्य है द्रव्यज्ञानकी सामर्थ्य नहीं, यातैं रसनेंद्रियजन्याम्लरसोपलब्धिके अभावतैं आम्रफलमैं रसके अभावका निश्च-यवाला मैं हूं यह तात्पर्यसैं उक्तव्यवहार होवै है. यद्यपि उक्त वाक्यके अक्षर मर्यादासैं उक्त अर्थ क्लिष्ट है तथापि अन्यगतिके असंभवतैं उक्त अर्थ ही मानना चाहिये, यातैं नैयायिककी शंकाका अस्मदुक्त ही समाधान है. इसरीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणतैं अभावका निश्चय होवै है यह पक्ष निर्दोष है औ जो नैयायिक शंका करैः—अभावप्रमाका पृथक् प्रमाण माननेमैं गौरव है घटादिकनकी प्रत्यक्ष प्रमामैं इंद्रियकी प्रमाणता निर्णीत है, ता निर्णीत प्रमाणसैं अभावप्रमाकी उत्पत्ति मानैं तौ लाघव है.

अनुपलब्धिप्रमाणके अंगीकारमैं नैयायिककी शंका औ सिद्धांतीका समाधान ॥ ३९ ॥

ता शंकाका यह समाधान है:–इंद्रियकूं प्रमाणता कहनेवाले नैयायिकभी अनुपलब्धिकूं कारणता तौ मानैं हैं अनुपलब्धिकूं करणता नहीं कहैं हैं. अद्वैतवादी इंद्रियकूं अभावकी करणता नहीं मानैं हैं. इंद्रियका अभावतैं स्वसंबद्ध विशेषणता औ शुद्ध विशेषणतासंबंध नहीं मानना होवै है नैयायिककूं अप्रसिद्ध संबंधकी कल्पना गौरव है औ अनुपलब्धिमैं सहकारी कारणता तौ नैयायिक भी मानैं हैं, तिसकूं अद्वैतवादी करणतानाम धरिकै प्रमाणता कहैं हैं; यातैं नैयायिकमतमैं ही गौरव है अद्वैतमतमैं नहीं.

और वेदांतपरिभाषाका टीकाकार मूलकारका पुत्र हुया है तिसकूं अद्वैतशास्त्रके संस्कार न्यून हुये हैं औ न्यायशास्त्रके संस्कार अधिक रहेहैं यातैं मूलका व्याख्यान करिकै नैयायिकमतका तिसनैं इसरीतिसैं उज्जीवन लिख्या है:–अनुपलब्धि पृथक् प्रमाण नहीं, अभावका ज्ञान इंद्रियतैं ही होवैहै औ जो कहै अभावके साथ इंद्रियका संबंध नहीं है, विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्यज्ञान होवै नहीं; विशेषणता औ स्वसंबद्ध विशेषणता जो नैयायिक संबंध मानैं हैं सो अप्रसिद्ध है, यातैं अप्रसिद्धकी कल्पना गौरव है सो असंगत है:–काहेतैं ? "घटाभाववद्भूतलम्" यह प्रतीति सर्वकूं संमत है. या प्रतीतिसैं घटाभावमैं आधेयता भासै है औ भूतलमैं अधिकरणता भासै है.परस्पर संबंधविना आधाराधेयभाव होवै नहीं. यातैं भूतलादिक अधिकरणमैं अभावका संबंध सर्वकूं इष्ट है. जो अभावकूं प्रत्यक्ष नहीं मानै तौ तिनकूं भी अभावका अंगीकार है; यातैं अधिकरणसैं अभावका संबंध सर्वकूं इष्ट है. ताका संबंधका व्यवहारवासतैं कोई नाम कह्या चाहिये यातैं अधिकरणमैं अभावके संबंधकूं विशेषणता कहैं हैं. इसरीतिसैं विशेषणतासंबंध अप्रसिद्ध नहीं,यातैं अप्रसिद्ध कल्पनारूपगौरव

नैयायिक मतमैं नहीं; अभावका अधिकरणसैं संबंध सर्वमतसिद्ध होनेतैं स्वसंबद्धविशेषणता दोनूं संबंध अप्रसिद्ध नहीं औ "निर्घटं भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है; यातैं भूतलादिकनमैं अभावका ज्ञान नेत्रादिजन्य है. जहां नेत्रजन्य ज्ञान होवै तहां ही 'पश्यामि' ऐसा अनुव्यवसाय होवै है; यातैं भूतलादिकनमैं अभावका ज्ञान नेत्रादिजन्य है. जहां नेत्रजन्य ज्ञान होवै तहांही 'पश्यामि' ऐसा अनुव्यवसाय होवै है औ अद्वैतमतमैं भूतलका ज्ञान नेत्रजन्य है, घटाभावका ज्ञान अनुपलब्धिजन्य है नेत्रजन्य नहीं, यातैं अनुव्यवसाय ज्ञानमैं अपने विषय व्यवसायकी विलक्षणता भासी चाहिये. जैसैं "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान पर्वत अंशमैं प्रत्यक्ष है, वह्नि अंशमैं अनुमिति है. ताका "पर्वतं पश्यामि वह्निमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, तामैं व्यवसायकी विलक्षणता भासै है सो विलक्षणता इहां नेत्रजन्यत्व औ अनुमानजन्यत्व है तैसैं अभावज्ञानमैं नेत्रजन्यत्व औ अनुपलब्धिजन्यत्वरूप विलक्षणता होवै तौ अनुव्यवसायमैं भासी चाहिये. औ केवल नेत्रजन्यत्वही अनुव्यवसायमैं भासै है, यातैं अभावका ज्ञानभी इंद्रियजन्य है पृथक् प्रमाणजन्य नहीं. औ अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्य नहीं मानैं तौभी अद्वैतवादी अनुपलब्धिजन्य मानिकै प्रत्यक्षरूप कहैं हैं. सोभी असंगत है:–काहेतैं ? जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवै या नियमका बाध होवैगा; यातैं अभावका ज्ञान इंद्रियजन्य है. इसरीतिसैं वेदांतपरिभाषाकी टीकामैं नैयायिकमतका उज्जीवन सकल अद्वैतग्रंथनसैं विरुद्ध लिख्या है:–सो युक्तिसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? प्रथम जो कह्या अभावका अधिकरणसैं संबंध सर्वकूं इष्ट है, यातैं अप्रसिद्ध कल्पना नहीं सो असंगत है. काहेतैं ? अभाव औ अधिकरणका संबंध तो इष्ट है परंतु विशेषणतासंबंधमैं प्रत्यक्षज्ञान कारणता अप्रसिद्ध है. काहेतैं ? जो अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्यता मानैं तिसीके मतमैं विशेषणतासंबंध इंद्रियजन्यज्ञानका कारण मानना होवै है, अन्यमतमैं विशेषणतासंबंधमैं इंद्रियजन्यज्ञानकी कारणता माननी होवै नहीं; यातैं अप्रसिद्ध कल्पनाका

परिहार नैयायिकमतमैं होवै नहीं.औ जो अभावज्ञानकूं पृथक् प्रमाणजन्यता माननेमैं दोष कह्या "निर्घटं भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय नहीं हुया चाहिये सोभी संभवै नहीं:-काहेतैं? घटाभावविशिष्ट भूतलके चाक्षुषज्ञानवाला मैं हूं ऐसा अनुव्यवसाय होवै. उक्त वाक्यकाभी यही अर्थ है या अनुव्यवसायमैं घटाभाव विशेषण है भूतल विशेष्य है; ता विशेष्यभूतलमैं चाक्षुषज्ञानकी विषयता है घटाभाव विशेषणमैं नहींहै तौभी घटाभाव विशिष्ट भूतलमैं प्रतीत होवै है; कहूं विशेषणमात्रका धर्म, कहूं विशेष्यमात्रका धर्म, कहूं विशेषणविशेष्य दोनूंका धर्म, विशिष्टमैं प्रतीत होवै है, जस "दंडीपुरुषः" या ज्ञानमैं दंड विशेषण है औ पुरुष विशेष्य है. जहां दंड नहीं है पुरुषहैतहां "दंडी पुरुषो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है.यातैं दंडरूप विशेषणका अभाव है पुरुषरूपविशेष्यका अभाव नहीं;तथापि विशेषणमात्रवृत्ति अभाव दंडविशिष्ट पुरुषमैं प्रतीत होवैहै. जहां दंड है पुरुष नहीं है तहां विशेष्यमात्रका अभाव है; औ"दंडी पुरुषो नास्ति"इसरीतिसैं दंडविशिष्टपुरुषमैं प्रतीत होवैहै. जहां दंड नहीं औ पुरुष भी नहीं है. तहां विशेषणविशेष्य दोनूंका अभाव विशिष्टमैं प्रतीत होवै है तैंसैं विशेष्यभूतलमैं चाक्षुषज्ञानकी विषयता है औ विशेषण तौ घटाभाव तामैं नहीं है तौ भी घटाभावविशिष्ट भूतलमैं प्रतीत होवैहै जैसैं "वह्निमन्तं पर्वतं पश्यामि"इसरीतिसैं पर्वतके प्रत्यक्षका अनुव्यवसाय होवै है, तहां चाक्षुषज्ञानकी विषयता विशेष्य पर्वतमैं है औ विशेषण जो वह्नि तामैं नहीं है,तथापि वह्निविशिष्टपर्वतमैं चाक्षुषज्ञानकी विषयता प्रतीत होवै है औ जो दोष कह्या घटाभाव औ भूतल विजातीयज्ञानके विषयहोवैं तौ "पर्वतं पश्यामि वह्निमनुमिनोमि" इसरीतिसैं विलक्षण व्यवसायज्ञानकूं विषय करनेवाला अनुव्यवसाय हुया चाहिये. यह कथनभी अद्वैतग्रंथनके शिथिलसंस्कारकरनेवालेका है:-काहेतैं? अभावका ज्ञान अनुपलब्धिप्रमाणजन्य है इस अर्थकूं जो मानैं ताकूं "घटानुपलब्ध्या घटाभावं निश्चिनोमि । नेत्रेण भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय अबाधित होवै है; तासैं व्यवसायज्ञानकी विषयता घटाभावमैं औ भूतलमैं विलक्षण मानैं है; औ जो

दोष कह्याहै:—अनुपलब्धिजन्यता मानिकै अद्वैतवादी अभावज्ञानकूं प्रत्यक्ष मानैहैं औ जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवैहै; यातैं उक्त नियमका अनुपलब्धिवादिके मतमैं बाध होवैगा; सोभी सिद्धांतके अज्ञानतैं है; यातैं असंगत है. काहेतैं ? अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावज्ञान सारै प्रत्यक्ष नहीं है; किंतु कोई ज्ञान प्रत्यक्ष है औ वायुमैं रूपाभावका ज्ञान परमाणुमैं महत्त्वाभावका ज्ञान इत्यादि अनुपलब्धिजन्य हैं तथापि परोक्ष हैं, अथवा अनुपलब्धिप्रमाणजन्यभी अभावका ज्ञान सारै परोक्ष है. यह पूर्व प्रतिपादन करि आये हैं. यातैं अनुपलब्धिवादी अभावज्ञानकं प्रत्यक्ष मानैं यह धर्मराजके पुत्रका कथन सिद्धांतके अज्ञानसैं है. औ वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं जो कहूं अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहीहै सो प्रौढिवादसैं कही है. जो अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता मानिलेवै तौभी वक्ष्यमाण रीतिसैं अभावज्ञानमैं इंद्रियजन्यता सिद्ध होवै नहीं यह ग्रंथकारनका प्रौढिवाद है, प्रतिवादीकी उक्ति मानिकै भी स्वमतमैं दोषका परिहार करै ताकूं प्रौढिवाद कहैहैं. औ अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता मानिकै इंद्रियजन्यता नहीं मानैं तौ प्रत्यक्षज्ञान इंद्रियजन्य होवैहै, या नियमका बाध होवैगा; यह कथनभी असंगत है:—काहेतैं ? ताकूं यह पूछैं हैं:—जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवैहै इंद्रियजन्यसैं भिन्न प्रत्यक्ष होवै नहीं; ऐसा नियम है. अथवा जो इंद्रियजन्यज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष होवैहै. प्रत्यक्षसैं भिन्न इंद्रियजन्य होवै नहीं यह नियम है. तिनमैं प्रथमपक्ष कहैं तौ असंगत है; ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष है इन्द्रियजन्य नहीं है. न्यायमतमैं नित्य है औ सिद्धांतमतमैं मायाजन्य है. ईश्वरके इंद्रियनका अभावहै यातैं ताका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं. औ "दशमस्त्वमसि" या वाक्यतैं उत्पन्न हुया ज्ञान प्रत्यक्ष है इंद्रियजन्य नहीं जो ऐसैं कहै दशमपुरुषकूं अपने शरीरमैं दशमताका ज्ञान होवै है सो शरीर नेत्रके योग्य है, यातैं दशमका ज्ञानभी नेत्रइंद्रियजन्य है, सो संभवै नहीं:—काहेतैं ? निमीलितनयनकूंभी वाक्य सुनिकै दशमका ज्ञान होवैहै. जो नेत्रजन्य होवै तौ नेत्रव्यापार विना नहीं हुया चाहिये; यातैं

दशमका ज्ञान नेत्रजन्य नहीं औ जो ऐसैं कहै दशमका ज्ञान मनोजन्य है यातैं इंद्रियजन्य है, सोभी संभवै नहीं—काहेतैं ? देवदत्तयज्ञदत्तादिक नाम आत्माके नहीं; किंतु न्यायमतमैं शरीरविशिष्ट आत्माके औ वेदांतमतमैं सूक्ष्मविशिष्ट स्थूल शरीरके हैं; तैसैं त्वम् अहम् यह व्यवहारभी सूक्ष्मविशिष्ट स्थूल शरीरमैं होवैहै ता स्थूलशरीरका ज्ञान मनसैं संभवै नहीं. बाह्यपदार्थके ज्ञानका मनमैं सामर्थ्य नहीं, जो ऐसैं कहैः—मनका अवधान होवै तौ वाक्यसैं दशमका ज्ञान होवै, विक्षिप्तमनवालेकूं होवै नहीं; यातैं अन्वयव्यतिरेकतैं दशमज्ञानका हेतु मन होनेतैं दशमका ज्ञान मानस है यातैं इंद्रियजन्य है; सोभी संभवै नहींः—इसरीतिके अन्वयव्यतिरेकतैं सकल ज्ञानोंका हेतु मन है. विक्षिप्तमनवालेकूं किसी प्रमाणतैं ज्ञान होवै नहीं. सावधानमनवालेकूं सकल ज्ञान होवैं हैं, यातैं सारे ज्ञान मानस कहे चाहियें. यातैं सर्व ज्ञानका साधारणकारण मन है इंद्रिय अनुमानादिक सकल प्रमाणका सहकारी हैं. मनसहित नेत्रतैं जो ज्ञान होवै सो चाक्षुषज्ञान कहिये है, मनसहित अनुमानप्रमाणतैं होवै सो अनुमितिज्ञान कहियेहै, मनसहित शब्दप्रमाणतैं होवै सो शाब्दज्ञान कहियेहै, अन्यप्रमाण विना केवल मनतैं जो ज्ञान होवै सो मानसज्ञान कहियेहै, सो केवल मनतैं आंतरपदार्थ सुखादिकनका ज्ञान होवै; यातैं आंतरपदार्थका ज्ञानही मानस होवैहै. बाह्यपदार्थका इंद्रियानुमानादिक विना केवल मनतैं ज्ञान होवै नहीं यातैं दशमका ज्ञान मानस है यह कहना संभवै नहीं, आंतर पदार्थका ज्ञान मानस होवैहै यहभी नैयायिकरीतिसैं कह्या है, सिद्धांतमैं तौ कोई ज्ञान मानस नहीं. काहेतैं ? शुद्ध आत्मा तौ स्वयंप्रकाश है, ताके प्रकाशमैं किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं यातैं आत्माका ज्ञान मानस नहीं औ सुखादिक साक्षीभास्य हैं. जिस कालमैं इष्ट पदार्थके संबन्धतैं सुखाकार अन्तःकरणका परिणाम होवै अनिष्टपदार्थके सम्बंधतैं दुःखाकार अन्तःकरणका परिणाम होवै तिसीसमय सुखदुःखकूं विषय करनेवाला अंतःकरणके सत्त्वगुणका परिणामवृत्ति होवै है.

तावृत्तिमैं आरूढसाक्षी सुखदुःखकूं प्रकाशै है, सुखदुःखकी उत्पत्तिमैं इष्टसंबंध औ अनिष्टसंबंध निमित्त है,तिसी निमित्तसैं सुख औ दुःखकूं विषय करनेवाली अंतःकरणकी वृत्ति होवै है. ताकी उत्पत्तिमैं किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं; यातैं सुखदुःख साक्षीभास्य हैं; यद्यपि घटादिकनका प्रकाशभी केवल वृत्तिसैं होवै नहीं किंतु वृत्तिमैं आरूढचेतनसैंही सर्वका प्रकाश होवै है. यातैं सारे पदार्थ साक्षीभास्य कहे चाहियें, तथापि घटादिकनका ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्ति उपजै तामैं इंद्रिय अनुमानादिक प्रमाणकी अपेक्षा है. औ सुखादिकनके ज्ञानरूपवृत्तिकी उत्पत्तिमैं किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं इतना भेद है. जा वृत्तिमैं आरूढ साक्षी विषयकूं प्रकाशै सो वृत्ति जहां इंद्रिय अनुमानादिक प्रमाणसैं होवैं तहां विषयकूं साक्षीभास्य नहीं कहैहैं; किंतु प्रमाणजन्यज्ञानका विषय कहैं हैं. जहां प्रमाणके व्यापारविना वृत्तिकी उत्पत्ति होवै तावृत्तिम आरूढसाक्षी जिसकूं प्रकाशै सो साक्षीभास्य कहियेहै. घटादिगोचर अंतःकरणकी वृत्ति इंद्रिय अनुमानादिक प्रमाणतैं होवैहै; ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी प्रकाशै है,तथापि घटादिक प्रमाणगोचर कहियेहै साक्षीभास्य नहीं. औ सुखादिगोचरवृत्ति प्रमाणजन्य नहीं किंतु सुखादिक धर्मादिजन्य है; यातैं सुखादिक साक्षीभास्य हैं इस रीतिसैं सुखादिक औ तिनके ज्ञान समान सामग्रीसैं होवैहै, यातैं अज्ञात सुखादिक होवैं नहीं किंतु ज्ञातही होवैं हैं औ सुखादिकनके प्रत्यक्षके हेतु सुखादिक नहीं जो पूर्वकालमैं सुखादिक होवै तौ स्वज्ञानके हेतु होवैं हैं, सुखादिक औ तिनका ज्ञान समानकालमैं समान सामग्रीतैं होवैं हैं, यातैं परस्पर कार्यकारणभाव तौ नहीं औ घटादिकनके प्रत्यक्षज्ञानमैं घटादिक हेतु हैं. काहेतैं ? प्रत्यक्ष ज्ञानतैं प्रथम घटादिक उपजै हैं, यातैं स्वगोचर प्रत्यक्षके घटादिक हेतु हैं. घटादिकनके जहां अनुमिति आदि ज्ञान होवैं तिनके हेतु घटादिक नहीं अनुमिति ज्ञानमैं तैसैं शाब्दज्ञानमैं जो विषयभी कारण होवै तौ अतीत अनागत पदार्थके अनुमितिआदिक

ज्ञान नहीं हुये चाहियें; यातें अनुमिति ज्ञान शाब्दज्ञानादिकनमें विषय कारण नहीं. तैसें सुखादिकभी स्वगोचरज्ञानके कारण नहीं, पूर्व प्रसंग यह हैः—सुखादिकनका ज्ञान मानस नहीं किंतु सुखादिक साक्षी-भास्य हैं यातें मनका असाधारण विषय मिले नहीं. इसकारणतें सर्वज्ञानोंका उपादानरूप अंतःकरण तौ है औ ज्ञानका स्वतंत्रकरणरूप इंद्रिय जो मनकूं नैयायिक कहैं हैं सो असंगत है; यातें दशमका ज्ञान मानस नहीं किंतु वाक्यजन्य है औ प्रत्यक्ष है इसरीतिसें जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवै यह नियम संभवै नहीं. औ जो ऐसे कहैंः—जो इंद्रियजन्यज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष होवै; इंद्रियजन्यज्ञान कोई अप्रत्यक्ष नहीं होवैहै या नियमसें सिद्धांतकी हानि नहीं. काहेतें ? इंद्रियजन्यज्ञानकूं अप्रत्यक्षता हमभी नहीं कहैं हैं; इंद्रियजन्यज्ञान तौ सारै प्रत्यक्ष है; कहूं शब्दादिकनतैंभी प्रत्यक्ष होवैहै यह सिद्धांत है; यातें उक्त नियमका विरोध नहीं. इसरीतिसें नैयायिकानुसारी धर्मराजके पुत्रकी उक्ति असंगत है.

यातें अभावज्ञान इंद्रियजन्य नहीं; किंतु योग्यानुपलब्धिनामपृथक्प्रमाणजन्य है. जहां "प्रतियोगी होता तौ ताका उपलंभ होता" इसरीतिसें प्रतियोगीके आरोपतें उपलंभका आरोप होवै तहां तौ अभावका ज्ञान योग्यानुपलब्धिप्रमाणजन्य है औ अंधकारमें घटाभावका ज्ञान अनुमानादिजन्य है काहेतें ? "अंधकारमें घट होता तौ ताका उपलंभ होता" इसरीतिसें घटरूप प्रतियोगिकेआरोपतें घटके उपलंभका आरोप संभवै नहीं इसरीतिसें अन्यमतमें जितने अभावनके ज्ञान इंद्रियजन्य हैं उतनेही ज्ञान वेदांतमतमें केवल अनुपलब्धिजन्य हैं. नैयायिकमतमें इंद्रिय कारण है. अनुपलब्धि सहकारी कारण है, यातें इंद्रियमें प्रमाणता है अनुपलब्धिमें प्रमाणता नहीं है, वेदांतमतमें अनुपलब्धिमें प्रमाणता अधिक माननी होवै है. अनुपलब्धिस्वरूपसें दोनूं मतमें सिद्ध है तैसें न्यायमतसें विशेषणतासंबंधकूं ज्ञानकी करणता अधिक माननी होवै है

औ विशेषणता संबंध स्वरूपसैं अधिकरण अभावका दोनूं मतमैं सिद्ध है इसरीतिसैं वेदांतीकूं अनुपलब्धिमैं प्रमाणता अधिक माननी औ नैयायिक कूं विशेषणतासंबंधमैं ज्ञानकी कारणता अधिक माननी; यातैं लाघव गौरव किसीकूं नहीं, दोनूंकी समानकल्पना है, तथापि अभावज्ञानकी करणता इंद्रियमैं नैयायिक अधिक कहैं हैं, यह तिनके मतमैं गौरव है औ वायुमैं रूपाभावका ज्ञान नेत्रव्यापारसैं विना होवै है. औ ताकूं नैयायिक चाक्षुष-ज्ञान कहैहैं. तैसैं परमाणुमैं महत्त्वाभावका ज्ञानभी नेत्रव्यापारसैं विना होवै है, ताकूं नैयायिकचाक्षुषज्ञान कहैहैं, इसरीतिसैं अनेक स्थानमैं जिस इंद्रियके व्यापार विना जो अभावका ज्ञान होवै ताकूं तिस इंद्रियजन्य कहैहैं. सो अनुभवविरुद्ध है. जिस इंद्रियव्यापारतैं जो ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्य सो ज्ञान होवै है, जिस इंद्रियके व्यापारविना जो ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्यता ज्ञानकूं मानैं तौ सकलज्ञान सकल इंद्रियजन्य हुये चाहियें; यातैं अभावका ज्ञान इंद्रियजन्य है यह नैयायिकमत समीचीन नहीं. इसरीतिसैं अभावका ज्ञान अनुपलब्धिप्रमाणजन्य है. परन्तु अभाव ज्ञानकी उत्पत्तिमैं व्यापारहीन असाधारणकारण अनुपलब्धि है; यातैं अभावज्ञानकी असाधारणकारणता अनुपलब्धिप्रमाणका लक्षण है।

अनुपलब्धिप्रमाणके निरूपणका जिज्ञासुकूं उपयोग ॥ ३६ ॥

अनुपलब्धि निरूपणका जिज्ञासुकूं यह उपयोग है:—"नेह नानास्ति किंचन" इत्यादिक श्रुतिप्रपंचका त्रैकालिक अभाव कहैं हैं. अनुभवसिद्ध प्रपंचका त्रैकालिक निषेध बनैं नहीं; यातैं प्रपंचका स्वरूपसैं निषेध नहीं करैं हैं किंतु प्रपंच पारमार्थिक नहीं; यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंचका त्रैकालिक अभाव श्रुति कहैं हैं. इसरीतिसैं पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंचका अभाव श्रुतिसिद्ध है औ अनुपलब्धिप्रमाणसेभी सिद्ध है जो पारमार्थिकत्व-विशिष्ट प्रपंच होता तौ जैसैं प्रपंचकी स्वरूपसैं उपलब्धि होवै है तैसैं पार-मार्थिक प्रपंचकीभी उपलब्धि होती औ स्वरूपसैं तौ प्रपंचकी उपलब्धि

होवै है पारमार्थिकरूपतैं प्रपंचकी उपलब्धि होवै नहीं; यातैं पारमार्थिकत्व विशिष्ट प्रपंचका अभाव है. इसरीतिसैं प्रपंचाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवै है, औरभी अनेक अभावनका ज्ञान जिज्ञासुकूं इष्ट है ताका हेतु अनुपलब्धिप्रमाण है.

इति श्रीमन्निश्चलदाससाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे अनुपलब्धि-
प्रमाणनिरूपणं नाम षष्ठः प्रकाशः समाप्तः ॥ ६ ॥

वृत्तिभेद अनिर्वचनीयख्यातिमंडन ख्यातिखंडन औ स्वतःप्रमात्वप्रमाणनिरूपण नाम सप्तमप्रकाशप्रारम्भ ।

उपादान (समवायि) असमवायि निमित्तकारण अरु संयोगका लक्षण ॥ १ ॥

ग्रंथके आरंभमैं वृत्ति किसकूं कहैं हैं या वचनतैं वृत्तिके लक्षण औ भेदका प्रश्न है. वृत्तिका कारण कौन है यह वृत्तिकी सामग्रीका प्रश्न है. तीसरा प्रश्न वृत्तिके प्रयोजनका है; तिनमैं वृत्तिके प्रयोजनका निरूपण अष्टम प्रकाशमैं करैंगे. औ कारण समुदायकूं सामग्री कहैं हैं. कारण दोप्रकारका होवै है; एक उपादान कारण होवै है औ द्वितीय निमित्तकारण होवै है.जाके स्वरूपमैं कार्यकी स्थिति होवै तिस कारणकूं उपादानकारण कहैं हैं. उपादानकारणकूंही समवायिकारण कहैं हैं. जैसैं घटका उपादानकारण कपाल है. औ कार्यसैं तटस्थ हुआ कार्यका जनक होवै सो निमित्तकारण कहिये है. जैसैं घटके निमित्तकारण कुलालचक्रदंडादिक हैं औ न्यायवैशेषिकमतमैं समवायी असमवायी निमित्तभेदसैं कारण

तीनप्रकारका कहैं हैं.कार्यके समवायिकारणसैं संबंधी जो कार्यका जनक ताकूं असमवायिकारण कहैं हैं. जैसैं घटका असमवायिकारण कपालसंयोगहै पटका असमवायिकारण तंतुसंयोग है;घटका समवायिकारण कपालसैं संबंधी औ घटका जनक कपालसंयोग है, तैसैं पटके समवायिकारण तंतुसैं संबंधी औ पटका जनक तंतुसंयोग है.जो समवायिकारणके संयोगकूं कार्यका जनक नहीं मानैं तौ वियुक्त कपालनतें घटकी औ वियुक्त तंतुओंतें पटकी उत्पत्ति हुई चाहिये. इसरीतिसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमैं अवयवनका संयोग कारण है; सो अवयवसंयोगमैं कार्यकी स्थिति नहीं किंतु अवयवनमैं कार्यद्रव्यकी स्थिति होवै है. यातैं अवयवसंयोगमैं समवायिकारणता संभवै नहीं औ कार्यसैं तटस्थ रहै नहीं; किंतु अवयवसंयोग औ कार्यद्रव्य अवयवनमैं समानाधिकरण होवै है यातैं निमित्तकारणताभी अवयव संयोगमैं सम्भवै नहीं. यातैं समवायिकारण औ निमित्तकारणसैं विलक्षण असमवायिकारण होनेतैं कारण तीनि प्रकारका होवैहै. जैसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमैं अवयवसंयोग असमवायिकारण है तैसैं गुणकी उत्पत्तिमैं कहूं तौ गुण असमवायिकारण है, कहूं क्रिया असमवायिकारण है.तथाहि;नील तंतुसैं नीलपटकी उत्पत्ति होवैहै पीतकी नहीं. यातैं पटके नीलरूपमैं तंतुका नीलरूप कारण है. तिस पटके नीलरूपका समवायिकारण पट है तंतुका नीलरूपताका समवायिकारण नहीं. तैसैं तंतुका नीलरूप पटके नीलरूपसैं तटस्थ नहीं किंतु तंतुका नीलरूप तंतुमैं रहैहै. औ पटका नीलरूपभी तंतुमैं रहैहै यातैं दोनूं समानाधिकरण होनेतैं संबंधी हैं औ असंबंधीकूं तटस्थ कहैं हैं. यद्यपि पटका नीलरूप समवायसंबंधतैं पटमैं रहैहै. तथापि स्वसमवायि समवायसंबंधसैं पटका नीलरूप तंतुमैंही रहैहै. स्व कहिये पटका नीलरूपताका समवायी जो पट ताका समवाय तंतुमैं है; इसरीतिसैं पटके नीलरूपसैं तंतुका नीलरूप समानाधिकरण है. तंतुका नीलरूप साक्षात्संबंधतैं तंतुमैं ही है तिसमैं पटद्वारा पर-

परासंबंधसैं पटका नीलरूप है; यातैं पटके नीलरूपतैं तंतुका नीलरूप तटस्थ नहीं होनेतैं निमित्तकारण संभवै नहीं; किंतु पटके नीलरूपका समवायिकारण जो पट ताका संबंधी तंतुका नीलरूप है औ पटके नीलरूपका जनक होनेतैं ताका असमवायिकारण तंतुका नीलरूप है; तंतुका नीलरूप औ पट दोनूं तंतुमैं समवायसंबंधसैं रहैं हैं, यातैं समानाधिकरणसंबंधसैं तंतुका नीलरूप पटका संबंधी है. जैसैं कार्यके रूपका असमवायिकारण उपादानका रूप है, तैसैं रस गंध स्पर्शमैं भी जानना औ सकल गुणनकी उत्पत्तिमैं जिसरीतिसैं गुणका क्रिया असमवायिकारण है सो न्यायवैशेषिक ग्रंथनमैं स्पष्ट है, अनुपयोगी जानिकै विस्तारभयतैं लिख्या नहीं.

संयोगका प्रसंग अनेक स्थानमैं आवै है, यातैं गुणकी उत्पत्तिमैं क्रिया असमवायिकारणका उदाहरण कहनेकूं संयोगकी उत्पत्ति कहैं हैंः—संयोग दो प्रकार होवै है एक कर्मज संयोग है द्वितीय संयोगज संयोग है. जाकी उत्पत्तिमैं क्रिया असमवायिकारण होवै सो कर्मज संयोग कहिये है. संयोगरूप असमवायिकारणतैं होवै सो संयोगज संयोग कहिये है. कर्मजसंयोगभी अन्यतरकर्मज औ उभयकर्मज भेदतैं दोप्रकारका है. संयोगके आश्रय दो होवै हैं. तिनमैं एककी क्रियासैं जो संयोग होवै सो अन्यतरकर्मजसंयोग कहियेहै. जैसैं पक्षीकी क्रियातैं वृक्षपक्षीका संयोग होवै सो अन्यतरकर्मजसंयोग कहिये है.तहां वृक्ष औ पक्षी समवायिकारण हैं औ संयोगके समवायिकारण पक्षीमैं ताकी क्रियाका समवायसंबंध होनेतैं पक्षीरूप समवायिकारणकी संबंधिनी औ पक्षी वृक्षके संयोगकी जनक पक्षीकी क्रिया है. यातैं पक्षिवृक्षके संयोगकी असवायिकारण पक्षीकी क्रिया है. यह अन्यतरकर्मजसंयोगका उदाहरण है. मेषद्वयकी क्रियातैं जो मेषद्वयका संयोग होवै सो उभयकर्मजसंयोग है. मेषद्वयके संयोगमैं दोनूं मेष समवायिकारण हैं औ तिनकी क्रिया असमवायिकारण है. जहां हस्तकी क्रियातैं हस्ततरुका संयोग होवै तहां हस्ततरु

परस्पर संयुक्त हैं इस व्यवहारकी नाईं काय तरु संयुक्त हैं; ऐसा व्यवहारभी होवैहै. संयुक्त कहिये संयोगवाले हैं; तिस स्थानमैं हस्ततरुके संयोगमैं तौ हस्तकी क्रिया असमवायिकारण है औ काय वा तरुमैं क्रिया होवै तौ काय तरुका सयोगभी क्रियाजन्य संभवै. औ तरुकी नाईं कायमैंभी क्रिया है नहीं. काहेतें ? सकल अवयवनमैं क्रिया होवै जहां अवयवीकी क्रिया होवैहै. हस्तसैं इतर सकल अवयव निश्चल होनेतैं कायमैं क्रियाकथन संभवै नहीं, यातैं कायतरुके संयोगमैं क्रिया असमवायिकारण है यह कथन संभवै नहीं; किंतु अन्यतरकर्मज हस्ततरुसंयोगही कायतरुसंयोगका असमवायिकारण है. काहेतैं ? कायतरुसंयोगका समवायिकारण जो काय तामैं स्वसमवायिसमवेतत्वसंबंधसैं संबंधी हस्ततरुसंयोग है औ कायतरुसंयोगका जनक है. यातैं असमवायिकारण है. स्व कहिये हस्ततरुसंयोग ताका समवायी हस्त है तामैं समवेत जो काय तिसके समवेतत्वधर्मही संबंध हैं इस रीतिके परंपरासंबंधका सामानाधिकरण्य संबंधमैं पर्यवासन होवैहै. एक अधिकरणमैं वर्तनेकूं सामानाधिकरण्य कहैहैं. जिनकी एक अधिकरणमैं वृत्ति होवै तिनकूं समानाधिकरण कहैं हैं इहां हस्ततरुसंयोग समवायसंबंधसैं हस्तमैं रहैहै, औ कायभी समवायसंबंधसैं हस्तमैं रहै है यातैं दोनूं समानाधिकरण हैं तिनका सामानाधिकरण्यसंबंध है; इहां काय औ संयोग हस्तमैं साक्षात् संबंधसैं रहैं हैं; यातैं समानाधिकरण है. तैसैं एक साक्षात् संबंधसैं रहै औ दूजा परंपरासंबंधसैं रहै सोभी समानाधिकरण कहिये है. औ तिनका सामानाधिकरण्य संबंध कहिये है. यह प्रत्यक्ष प्रमाणमैं कह्या है. हस्ततरु संयोगकी प्रतीति होनेसैंही कायतरुसंयोगकी प्रतीति होवैहै औ हस्ततरुके संयोगकूं नहीं देखै तिसकूं कायतरुसंयोगकी प्रतीति होवै नहीं यातैं कायतरुसंयोगका हस्ततरुसंयोग कारण है. यह संयोगजसंयोगका उदाहरण है. इसी संयोगकूं कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्यसंयोग कहैहैं. इहां दो संयोग हैं. एक हस्ततरुका संयोग है सो हेतुसंयोग

है औ कायतरुका संयोग **फलसंयोग** है या स्थानमैं कारणशब्दसैं फलसंयोगके आश्रयके समवायिकारणका ग्रहण है यातैं फलसंयोगके आश्रय काय तरु दो हैं तिनमैं कायका समवायिकारण हस्त है, यातैं कारणशब्दसैं हस्तका ग्रहण है, अकारण शब्दसैं तरुका ग्रहण है. काहेतैं ? कायका वा तरुका समवायिकारण तरु नहीं होनेतैं अकारण है तैसैं हेतुसंयोगके आश्रयतैं जन्यका कार्यशब्दसैं ग्रहण है, हेतुसंयोगके आश्रयतैं अजन्यका अकार्यशब्दसैं ग्रहण है. हेतु संयोगके आश्रय हस्त औ तरु हैं तिनमैं हस्तजन्य जो काय सो **कार्य** है. औ हस्तसैं तथा तरुसैं अजन्य जो तरु सो **अकार्य** है. इस रीतिसैं कारण जो हस्त औ अकारण तरु तिनके संयोगतैं कार्य जो काय औ अकार्य तरु तिनका संयोग उपजै है; यातैं इस संयोगकूं **कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्यसंयोग** कहैंहैं **संयोगजसंयोग** इसी प्रकारका होवै है. अन्यथा कर्मजसंयोगही है. जहां कपालके कर्मतैं कपालद्वयका संयोग होवै औ कपालसंयोगतैं कपालाकाशका संयोग होवै तहांभी **कर्मजही संयोग** है, **संयोगजसंयोग**नहीं. काहेतैं ? जिसकपालके कर्मतैं कपालद्वयका संयोग होवै तिस कपालकर्मतैं ही कपालआकाशका संयोग उपजै है, कपालद्वयका संयोग औ कपाल आकाश संयोग दोनूं एक क्षणमैं होवै हैं तिनका परस्पर कार्यकारणभाव संभवै नहीं, यातैं कपालद्वयके संयोगकी नाईं कपालआकाशसंयोगभी कपालकी क्रियातैंही उपजनेत कर्मजही संयोग है. उक्त प्रकारसैं **कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्यसंयोग** औ **अन्यतरकर्मजसंयोग** तैसैं **उभयकर्मजसंयोग** भेदतैं तीनही प्रकारका **संयोग**है औ कोई ग्रंथकार **सहजसंयोग** भी मानै हैं जस सुवर्णमैं पीतरूप औ गुरुत्वके आश्रय पार्थिवभागका औ अग्निसंयोगसैं जाका नाश होवै नहीं ऐसैं द्रव्यत्वके आश्रयतैं तैजसभागका सहजसंयोगहै. संयोगीके जन्मके साथ उपजै ताकूं **सहजसंयोग** कहै हैं. सुवर्णकूं केवल पार्थिव कहैं तौ जंतु आदि

पार्थिवके द्रव्यत्वका अग्निसंयोगतैं नाश होनेतैं सुवर्णके द्रव्यत्वका अग्नि-संयोगतैं नाश हुया चाहिये. औ केवल तैजस मानैं तौ पीतरूप औ गुरुत्वका अभाव चाहिये. यातैं सुवर्णमैं तैजस पार्थिवभाग संयुक्त है औ मीमांसक नित्य संयोगभी मानैं हैं.

इसरीतिस द्रव्यकी उत्पत्तिमैं **असमवायिकारण** अवयवसंयोग है, औ गुणकी उत्पत्तिमैं कहूं गुण कहूंक्रिया **असमवायिकारण**है. समवायिकारण औ निमित्तकारणके लक्षणतामैं संभवै नहीं, किंतु समवायिकारणमैं संबंधी जो कार्यका जनक सो तीसरा असमवायिकारण होनेतैं समवायी असमवायी निमित्त भेदसे कारण तीन प्रकारका है; यह नैयायिक वैशेषिकके अनुसारी ग्रंथनमैं लिख्या है.

उभयकारणके अंगीकारपूर्वक तीसरे असमवायिकारणका खण्डन ॥३॥

तथापि न्याय वैशेषिकभिन्न मतमैं उपादानकारण औ निमित्तकारण-भेदसैं दो प्रकारकाही कारण मानैं हैं. जाकूं नयायिक असवायिकारण कहैंहैं ताकूं निमित्तकारणही कहैंहैं. औ जो पूर्व कह्या निमित्तकारणका लक्षण असमवायिकारणमैं नहींहै ताका यह समाधानहै;—कार्यस तटस्थ होवै औ कार्यका जनक होवै यह **निमित्तकारणका लक्षण** त्रिविधकारणवादीकी रीतिसैं कह्याहै. द्विविधकारणवादीकी रीतिसैं तौ उपादानकारणतैं भिन्न जो कारण सो **निमित्तकारण** कहियेहै; सो निमित्तकारण अनेकविध है. कोई तौ कार्यके उपादानमैं समवेत है, जैसैं घटका निमित्तकारण कपालसंयोग है सो घटके उपादानकारण कपालमैं समवेत है; औ कोई निमित्तकारणही कार्यके उपादानके उपादानमैं समवेत है; जैसैं रूपका निमित्तकारण तंतुका रूप है सो पटरूपका उपादान जो पट ताके उपादान तंतुमैं समवेत है;तैसैं कोई निमित्तकारण कर्तारूप चेतनहै सो स्वतंत्रहै. जैसैं घटका निमित्तकारण कुलाल है औ कोई निमित्तकारण जड हैं सो कर्ताके

व्यापारके अधीन हैं; जैसे घटके कारण दंडादिक हैं. इसरीतिसे निमित्त कारणके अनेक भेद हैं.किंचित् विलक्षणतासैंअसमवायिकारणता पृथक्मानैं तौ घटके कारण कपालसंयोगमैं औ घटरूपके कारण कपालरूपमैंभी कारणताका भेद मानना चाहिये.काहेतैं?घटका कारण कपालसंयोग तौ कार्यके उपादानमैं समवेत है; इसरीतिसैं विलक्षण कारण है. तौ भी इन दोनूंकूं असमवायिकारण ही नैयायिक कहैं हैं; तिनमैं परस्पर विलक्षण-कारणता मानैं नहीं. तैसैं चेतन जड भेदतैं विलक्षणता हुयेंभी निमित्त-कारणही तिनकूं कहैं हैं; परस्पर विलक्षणकारणता तिनमैंभी मानैं नहीं और भी निमित्तकारणमैं अनेक विलक्षणता है. कोई तौ कार्यकाल-वृत्ति होवै है औ कोई कार्यकालसैं पूर्वकालवृत्ति होवै है. जैसैं जलपात्रके सन्निधानसैं भित्तिमैं सूर्यकी प्रभाका प्रतिबिंब होवैहै; तामैं सन्निहित जल-पात्र निमित्तकारण है; ताके अपसारणतैं प्रतिबिंबका अभाव होनेतैं सन्निहित जलपात्र कार्यकालवृत्ति निमित्तकारण है औ प्रत्यक्षज्ञानमैं विषय निमित्तकारण होवैहै. सोभी कार्यकालवृत्ति होवैहै, औ दंडादिक घटके निमित्तकारण हैं सो कार्यकाळमैं पूर्वकालमैं वृत्ति निमित्तकारण हैं; इसरीतिसैं निमित्तकारणमैं औ असमवायिकारणमैं अवांतर अनेक भेद होनेतैं भी समवायिकारणसैं भिन्नमैं द्विविधकारणताही मानी है. कहूं असमवायिकारणता है, कहूं निमित्तकारणता है, तैसे समवायिकारणसैं भिन्न सकल कारणमैं एकविधकारणताही माननी चाहिये, ता समवायि-कारणसैं भिन्न कारणकूं असमवायिकारण कहो अथवा निमित्तकारण कहो, समवायिकारण संबंधित्व असंबंधित्व अवांतरभेदसैं पृथक् संज्ञाकारण निष्प्रयोजन है; यातैं समवायिकारण निमित्तकारण भेदसैं कारण दो प्रकारका है.

और जो ऐसैं कहैः—जैसे असमवायिकारण निमित्तकारणकी पृथक् संज्ञा

निष्प्रयोजन है तैसैं समवायिकारण औ निमित्तकारणकी परस्पर विलक्षणता
ज्ञानसैंभी पुरुषार्थ प्राप्ति होवै नहीं औ लोकमैंभी कारणतामात्रही प्रसिद्ध
है. समवायिकारणता निमित्तकारणता प्रसिद्ध नहीं, यातैं लोकव्यवहारका
ज्ञानभी द्विविध कारणता निरूपणका प्रयोजन नहीं; किंतु कार्य कारण-
भावका व्यवहार लोकमैं होवै है; यातैं जिसके होनेतैं कार्यकी उत्पत्ति
होवै औ जिसके नहीं होनेतैं कार्यकी उत्पत्ति नहीं होवै ऐसा जो कार्यके
अव्यवहित पूर्वकालवृत्ति सो कारण कहिये है, इसरीतिसैं कारणका
साधारणलक्षणही कह्या चाहिये. ताके भेदद्वयका निरूपणभी निष्प्रयोजनहै

या शंकाका यह समाधान है:—यद्यपि कारणके भेदद्वयनिरूपणसैं
पुरुषार्थसिद्धि वा लोकव्यवहारसिद्धि प्रयोजन नहीं है, तथापि पुरुषार्थका
हेतु अद्वैतज्ञान है ताका उपयोगी द्विविधकारण निरूपण है. तथाहि:—
सर्वजगतका कारण ब्रह्म है औ कारणसैं अभिन्न कार्य होवैहै; यातैं
सकल जगत् ब्रह्म है, तासैं पृथक् नहीं, इसकूं सुनिके जिज्ञासुके ऐसी
शंका होवैहै—कारणसैं पृथक् कार्य नहीं होवै तौ दंडकुलालादिकनतैंभी
घट पृथक् नहीं चाहिये ? ताका यह समाधान है:—उपादान औ निमित्त-
भेदसैं कारण दोप्रकारका होवैहै, तिनमैं उपादानकारणसैं अभिन्न कार्य होवै
है जैसैं मृत्पिंडसैं अभिन्न घट है औ सुवर्णसैं अभिन्न कटककुंडलादिक हैं,
लोहेसैं अभिन्न नखनिकृन्तन क्षुरादिक हैं. औ निमित्तकारणसैं अभिन्न
कार्य होवै नहीं; किंतु भिन्न होवै है. तैसैं ब्रह्मभी जगत्का उपादानकारण
है यातैं सकल जगत् ब्रह्मभी है तासैं भिन्न नहीं; इसरीतिसैं कारणके
भेदद्वयका निरूपण अद्वैतज्ञानका उपयोगी है. अन्यविधकारणकी परस्पर-
विलक्षणता निरूपण अफल है, यातैं तत्त्वज्ञानोपयोगी पदार्थनिरूपणके
ग्रन्थनमैं कारणका तृतीयभेदनिरूपण असंगत है.

न्यायवैशेषिक अनुसारी ग्रंथनमैं तत्त्वज्ञानोपयोगी पदार्थ निरूपणकी
प्रतिज्ञा करिके तत्त्वज्ञानमैं अत्यंत अनुपयोगी पदार्थनका विस्तारसैं निरूप-

णतैं प्रतिज्ञाभंग होवै है जो इसरीतिसैं तार्किक कहैः—तत्त्वज्ञानका हेतु मनन है, "आत्मा इतरपदार्थभिन्नः आत्मवत्त्वात् । यो न इतरभिन्नः किंतु इतरः स नात्मा यथा घटः" इस व्यतिरेकी अनुमानतैं आत्मामैं इतर भेदका अनुमितिज्ञान होवै सो मनन कहिये है, औ इतर पदार्थनके ज्ञानविना आत्मामैं इतरभेदका ज्ञान संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रतियोगीज्ञानविना भेद-ज्ञान होवै नहीं, यातैं आत्मामैं इतर भेदकी अनुमितिरूप मनका उपयोगी इतर पदार्थनका निरूपणभी तत्त्वज्ञानका उपयोगी है, सो संभवै नहीं. काहेतैं ? श्रुत अर्थके निश्चयके अनुकूल प्रमेयसंदेहनिवर्तक युक्तिचिंतनकूं मनन कहै हैं औ भेदज्ञानसैं अनर्थ होवै है"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि-वाक्यनतैं अभेदसैं सकल वेदका तात्पर्य है. " द्वितीयाद्वै भयं भवति । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति"इत्यादिवाक्यनतैं भेदज्ञानकी निंदा करी है, यातैं भेदज्ञानकूं साक्षात् वा तत्त्वज्ञानद्वारा पुरुषार्थजनकता संभवै नहीं औ मननपदसैंभी आत्मासैं इतर भेदकी प्रतीति होवै नहीं. मननपदका चिंतनमात्र अर्थ है, वाक्यांतरके अनुरोधसैं अभेदचिंतनमैं मनन शब्दका पर्यवसान होवैहै; किसी प्रकारसैं आत्मासैं इतर भेद मननशब्दका अथ संभवै नहीं. किंचः—इतरपदार्थनके ज्ञानसैं ही जो पुरु-षार्थसाधन तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होवै तौ सकल पुरुषनकूं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हुई चाहिये, अथवा किसीकूं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं होवैगी तथाहिः—जो इतर पदार्थनका सामान्यज्ञान अपेक्षित होवै तौ सामान्यज्ञान सर्व पुरुषनकूं है, यातैं इतरज्ञानपूर्वक इतरभेदज्ञानतैं सर्वकूं तत्त्वज्ञान हुया चाहिये. औ सर्व पदार्थनका असाधारण धर्मस्वरूप विशेषरूपतैं इतर ज्ञान अपेक्षित होवै तौ सर्वज्ञ ईश्वर विना असाधारण धर्मतैं सकल इतरका किसीकूं ज्ञान संभवै नहीं; यातैं इतरज्ञानके असंभवतैं इतरभेद ज्ञानके अभावतैं तत्त्वज्ञान किसीकूं नहीं होवैगा; यातैं प्रमाणादिक निरूपण विना बहुतपदार्थनका निरूपण निष्प्रयोजन होनेतैं कारणमैं तृतीयभेद निरूपण अनपेक्षित है.

औ जो तार्किक कहैहैं—भावकार्यकी उत्पत्ति त्रिविध कारणसैं होवै है पंचविध अभाव है, तिनमैं प्रागभाव तौ अनादि सांत है, यातैं ताका नाश तौ होवैहै उत्पत्ति होवै नहीं. अन्योन्याभाव अत्यंताभाव अनादि अनंत यातैं तिनकी भी उत्पत्ति होवै नहीं. सामयिकाभाव सादि सांत है, ताके उत्पत्ति नाश दोनूं होवैं हैं, प्रध्वंसाभाव अनन्त आदि है, यातैं ताका नाश तौ होवै नहीं उत्पत्ति होवै है. इसरीतिसैं दो अभावकी उत्पत्ति होवै है, यातैं दोनूं कार्य हैं; तिनके समवायिकारण असमवायिकारण तौ संभवै नहीं, काहेतैं ? जामैं समवायसंबंधसैं कार्य उपजै सो समवायिकारण कहिये है; किसीमैं समवायसंबंधसैं अभाव रहै नहीं, यातैं ताका समवायिकारण संभवै नहीं. औ समवायिकारणमैं संबंधी जो कार्यका जनक सो असमवायिकारण कहिये है, समवायिकारणके अभावतैं तामैं संबंधी जनकके असंभवतैं असमवायिकारणभी अभावका संभवै नहीं; यातैं केवल निमित्तकारणसे सामयिकाभाव औ प्रध्वंसाभाव उपज हैं. भूतलादि देशमैं घटके सामयिकाभावका भूतलादिदेशतैं घटका अपसारण निमित्तकारण है. घटके प्रध्वंसाभावका निमित्तकारण घट है. तैसैं घटसैं मुद्गरादिकनका संयोगभी घटध्वंसका निमित्तकारण है; इसरीतिसैं अभावकार्य तौ निमित्तकारणमात्रजन्य है; तथापि यावत् भावकार्य त्रिविधकारणजन्य है यह नियम है. इस तार्किकवचनका सर्गके आदिकालमैं जो ईश्वरकी चिकीर्षासैं परमाणुमैं क्रिया होवै तामैं व्यभिचार है. काहेतैं ? तिस परमाणुकी क्रियाका परमाण समवायिकारण है औ ईश्वरेच्छादिक निमित्तकारण हैं. परमाणुमैं संबंधी कोई क्रियाका जनक होवै तौ असमवायिकारण होवै सो परमाणुमैं संबंधी तिस क्रियाका जनक कोई है नहीं; यातैं सर्गारंभमैं परमाणुकी क्रिया कारणद्वयजन्य है कारणत्रयजन्य नहीं; यातैं तार्किकका उक्तनियम संभवै नहीं; औ सिद्धांतमतमैं तौ यावत् भावकार्य उपादाननिमित्तकारणजन्य है. यह नियम है ताका कहूंभी

व्यभिचार नहीं. जहां कारणजन्य कार्य कहैं हैं तहांभी तार्किक अभिमत असमवायिकारणभी निमित्तकारणही है; यातैं सकल भावकार्यकूं द्विविधकारणजन्यता है; इसरीतिसैं उपादान औ निमित्तभेदतैं कारण दो प्रकारका होवै है. साधारण असाधारण भेदसैं भी कारणके दो भेद कहैं हैं, ईश्वरादिक नव साधारणकारण हैं. तिनसैं भिन्न घटादिकनके कपालादिक असाधारणकारण हैं, तिनमैं भी कोई निमित्तकारण है कोई उपादानकारण है. उपादानकारण निमित्तकारणसैं भिन्न कारण अलीकहै.

वृत्तिज्ञानका उपादाननिमित्तकारण औ सामान्यलक्षण ॥ ३ ॥

अंतःकरणकी ज्ञानरूपवृत्तिका उपादानकारण अन्तःकरण है औ प्रत्यक्षादिक प्रमाण तथा इंद्रियसंयोगादिक व्यापार निमित्तकारण है; औ ईश्वरके ज्ञानरूपवृत्तिका उपादानकारण माया है; अदृष्टादिक निमित्तकारण हैं; भ्रमवृत्तिका कारण अविद्याहै, निमित्तकारण दोष है; यह वार्ता ख्यातिनिरूपणमैं स्पष्ट होवैगी; इसरीतिसैं वृत्तिके कारण जानने.

वृत्तिका लक्षण ग्रंथके आरंभसैं कह्या है. विषयप्रकारका हेतु अन्तःकरण औ अविद्याका परिणाम वृत्ति कहिये है; यह वृत्तिका लक्षण कह्या है औ कितने ग्रंथनमैं अज्ञान नाशक परिणाम वृत्ति कहैहैं, औ परोक्ष ज्ञानसैंभी असत्त्वापादक अज्ञानांशका नाश होवै है, अथवा विषयचेतनस्थ अज्ञानका नाश तौ अपरोक्षज्ञानविना होवै नहीं. प्रमातृचेतनस्थ अज्ञानका नाश परोक्षज्ञानसैं भी होवै है,यातैं परोक्षवृत्तिमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्ति नहीं तथापि सुखदुःखके ज्ञानरूपवृत्तिमैं औ मायावृत्तिरूप ईश्वरके ज्ञानमैं तथा शुक्तिरजतादिगोचर भ्रमरूप अविद्यावृत्तिमैं उक्त लक्षणकी अव्याप्ति है, काहेतैं? प्रथम अज्ञात सुखादिक उपजैं पाछे तिनका ज्ञान होवै तौ सुखादिकनके अज्ञानका नाश संभवै सो अज्ञात सुखादिक है नहीं;किंतु सुखादिक औ तिनका ज्ञान एक कालमैं उपजैहैं,यातैं अज्ञात सुखादिकनके अभावतैं सुखादिगोचरवृत्तिसैं अज्ञानका नाश संभवै नहीं;तैसैं ईश्वरकूं असाधारण

रूपतैं सकल पदार्थ सदा प्रत्यक्ष प्रतीत होवैं हैं, यातैं अज्ञानके अभावतैं मायाकी वृत्तिरूपज्ञानतैंभी अज्ञानका नाश संभवै नहीं. शुक्ति, रजतादिक मिथ्या पदार्थनकी औ तिनके ज्ञानकीभी एककालमैं उत्पत्ति होवै है, यातैं भ्रमवृत्तिसैंभी अज्ञानका नाश होवै नहीं. तैसैं धारावाहिक वृत्ति होवै तहांभी उक्त लक्षणकी द्वितीयादिवृत्तिमैं अव्याप्ति है. काहेतैं ? ज्ञानधारा होवै तहां प्रथम ज्ञानसैं अज्ञानका नाशहुयें द्वितीयादिक ज्ञानकूं अज्ञानकी नाशकथा संभवै नहीं यातैं प्रकाशक परिणामकूं वृत्ति कहैं हैं. याका भाव यह है:—अस्ति व्यवहारका हेतु जो अविद्या औ अंतःकरणका परिणाम सो वृत्ति कहिये है. प्रकाशकपरिणामकूं वृत्ति कहैं भी अज्ञात-पदार्थगोचरवृत्तिमैं ही प्रकाशकता है औ अनावृतगोचर वृत्तिमैं प्रकाश-कता है नहीं. काहेतैं ? अनावृतचेतनके संबंधसैं ही विषयप्रकाशके संभ-वतैं वृत्तिमैं प्रकाशकताकल्पना अयोग्य हैं, यातैं वृत्तिमैं अज्ञाननाशक-तासैं विना अन्यविध प्रकाशकताके असंभवतैं द्वितीयलक्षणकी भी प्रथम-लक्षणकी नाईं सुखादिगोचर वृत्तिमैं अव्याप्ति होवैगी यातैं अस्तिव्यवहार-रका हेतु अविद्या अंतःकरणका परिणाम वृत्ति कहिये हैं, परोक्षवृत्तिमैंभी अस्तिव्यवहारकी हेतुता स्पष्ट है. घटादिगोचर अंतःकरणकी वृत्तिकूं घटा-दिज्ञान कहैं हैं, यद्यपि अद्वैत सिद्धांतमैं वृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं ज्ञान कहैं हैं, अबाधितवृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं प्रमाज्ञान कहैं हैं, बाधित जो रज्जु सर्पादिक तद्गोचरवृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं अप्रमाज्ञान कहैं हैं, तथापि चेतनमैं ज्ञानशब्दका प्रयोग तथा प्रमाशब्दका औ अप्रमा शब्दका प्रयोग वृत्ति-संबंधतैं होवै है; यातैं वृत्तिकूंभी बहुत स्थानमैं ज्ञान कहैं हैं;इसरीतिसैं प्रमा अप्रमा भेदसैं दोप्रकारकी वृत्ति कही.

प्रत्यक्षके लक्षणसहित प्रमाअप्रमारूप वृत्तिज्ञानका भेद ॥४॥

अप्रमाभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दो प्रकारकी कही. ईश्वरकी ज्ञान सुखादिगोचर ज्ञान **यथार्थअप्रमा** है, शुक्तिरजतादिक भ्रम **अय-थार्थ अप्रमा** है; जो प्रमाणजन्य यथार्थज्ञान होवै **सो प्रमा** होवै है;

ईश्वर ज्ञानादिक प्रमाणजन्य नहीं, यातैं प्रमा नहीं; दोषजन्य नहीं, यातैं भ्रमभी नहीं, औ बहुत ग्रंथनमैं तौ प्रमाका अन्यही लक्षण कह्या है. ताके अनुसार तौ ईश्वर ज्ञानादिकभी यथार्थज्ञान प्रमा हैं, परंतु यथार्थ अयथार्थ भेदसैं स्मृति दोप्रकारकी है, सो दोनूं प्रकारकी प्रमा नहीं है, तिनके मतमैं प्रमाका यह लक्षण है. अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला जो स्मृतिसैं भिन्न ज्ञान सो प्रमा कहिये है;शुक्तिरजतादिज्ञान स्मृतिसैं भिन्न हैं, अबाधित अर्थकूं विषय करैं नहीं; किंतु बाधित अर्थकूं विषय करैं हैं, यातैं प्रमा नहीं. अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला स्मृति ज्ञान भी है. औ स्मृतिज्ञानमैं प्रमाव्यवहार है नहीं यातैं स्मृतिभिन्न जो अबाधित अर्थगोचरज्ञान सो प्रमा कहिये है. यद्यपि अन्य यथार्थ ज्ञानकी नाईं यथार्थ स्मृति भी संवादिप्रवृत्तिकी जनक होनेतैं स्मृति साधारणही प्रमाका लक्षण चाहिये; तथापि संवादि प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमैं भी है सो प्रवृत्तिका उपयोगिप्रमात्व तौ अबाधित अर्थ गोचरत्वरूप है । प्रमाव्यवहारकी उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमैं नहीं है, काहेतैं ? लौकिक शास्त्रीय भेदसैं व्यवहारके दो भेद हैं. शास्त्रसैं बाह्य जो लोक शब्द प्रयोग करैं सो लौकिक व्यवहार कहिये है; शास्त्रकी परिभाषासैं जो शब्दप्रयोग सो शास्त्रीयव्यवहार कहिये है; शास्त्रसैं बाह्य तौ कोई प्रमाव्यवहार करै नहीं; औ कोई पंडित तथा शब्दप्रयोग करै है तौ शास्त्रकी परिभाषाके संस्कारतैं करै है, यातैं केवल शास्त्रीय प्रमाव्यवहार है; औ प्राचीन ग्रंथकारोंनैं स्मृतिसैं भिन्न यथार्थ ज्ञानमैंही प्रमाव्यवहार किया है. यातैं स्मृतिसैं व्यावृतही प्रमाका लक्षण कह्या चाहिये " यथार्थानुभवः प्रमा " यह प्रमाका लक्षण प्राचीन आचार्योंनैं लिख्या है, स्मृतिभिन्न ज्ञानकूं अनुभव कहैं हैं, यातैं स्मृतिमैं प्रमाव्यवहार इष्ट नहीं, औ प्रत्यक्षादि ज्ञानोंसैं विलक्षण स्मृतिज्ञान है. प्रत्यक्षादि सकल ज्ञानोंमैं अनुभवत्व है स्मृतिमैं नहीं है; यातैं अनुभवत्वके सत्त्वासत्त्वतैं प्रत्यक्षादिक औ स्मृति परस्पर विजातीय हैं; जैसैं प्रत्यक्ष

अनुमिति शाब्दादि ज्ञानोंमैं प्रत्यक्षत्व अनुमितित्व शाब्दत्वादिक विलक्षण धर्म होनेतैं प्रत्यक्षादिज्ञान परस्पर विजातीय हैं, विजातीय प्रमाके करणरूप प्रमाणभी प्रत्यक्ष अनुमान शब्दादिके भिन्न हैं, तैसैं सकल अनुभवसैं विजातीय स्मृति है, ताका कारण अनुभव है, सो किसी प्रमाका करण नहीं यातैं प्रमाण नहीं. यद्यपि व्याप्तिका प्रत्यक्ष अनुमितिका करण होनेतैं अनुमान प्रमाण है तैसैं पदका प्रत्यक्ष शब्दप्रमाण गवयमैं गोसादृश्यका प्रत्यक्ष उपमान प्रमाण है, औ प्रत्यक्ष ज्ञानभी अनुभवकाही विशेष है, यातैं अनुभव प्रमाण नहीं. यह कथन असंगत है, तथापि व्याप्तिज्ञानत्वरूपतैं व्याप्तिज्ञान अनुमितिका हेतु है, अनुभवत्वरूपतैं व्याप्तिज्ञान अनुमितिका हेतु नहीं; तैसैं पद प्रत्यक्ष औ सादृश्य ज्ञानभी अनुभवत्वरूपतैं शाब्दी प्रमा औ उपमिति प्रमाके हेतु नहीं, स्मृतिज्ञानमैं अनुभवत्वरूपतैं पूर्वानुभव स्मृतिका हेतु है, यातैं प्रमाण नहीं जो स्मृतिज्ञानकूंभी प्रमा कहैं तौ विजातीयप्रमाका करण पृथक् प्रमाण होवैहै, यातैं न्यायशास्त्रमैं तौ अनुभव नाम पंच प्रमाण कह्या चाहिये भट्ट औ वेदांतमतमैं सप्तमप्रमाण कह्या चाहिये; यातैं सकलग्रंथकारनकूं स्मृतिमैं प्रमाव्यवहार इष्ट नहीं औ जो कोई यथार्थज्ञानमात्रमैं प्रमाव्यवहार मानै तौ तिसके अनुसार प्रमाके लक्षणमैं स्मृतिभिन्न ऐसा निवेश नहीं करना अबाधित अर्थकूं विषयकरनेवाला ज्ञान प्रमा कहियेहै. भ्रम अनुभवजन्य अयथार्थस्मृति तौ बाधित अर्थकूं विषय करै है, यातैं तामैं अतिव्याप्ति नहीं औ यथार्थ अनुभवजन्य स्मृतिमैं लक्षण जावै तहां प्रमाव्यवहार इष्ट है, यातैं अतिव्याप्ति नहीं. अलक्ष्यमैं लक्षणका गमन होवै तौ अतिव्याप्ति होवै. यथार्थस्मृतिभी लक्ष्य है, यातैं अतिव्याप्ति नहीं; या मतके अनुसार यथार्थ अयथार्थ भेदसे वृत्ति दो प्रकारकी है. यथार्थकूं प्रमा कहैं हैं, अयथार्थकूं अप्रमा कहैहैं; यामतमैं प्रमाके सप्तभेद हैं:-प्रत्यक्ष १ अनुमिति २ शाब्दी ३ उपमिति ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ ये षट् भेद हैं, तैसैं यथार्थस्मृतिभी प्रमाका सप्तम भेद है. परंतु सकल ग्रंथनकी तौ

यह मर्यादा है स्मृतिमैं प्रमाव्यवहार नहीं, यातैं प्रत्यक्षादि भेदतैं **प्रमारूपवृत्ति षट् प्रकारकी** है. बाह्य आंतरभेदसैं **प्रत्यक्ष प्रमा दो प्रकारकी** है. अबाधित बाह्यपदार्थगोचरवृत्ति **बाह्यप्रत्यक्षप्रमा** कहिये है; औ श्रोत्रादि पंचइंद्रियते **पंचविध** बाह्यप्रत्यक्षप्रमा होवैहै. कहूं शब्दसैं भी बाह्यगोचर अपरोक्ष वृत्ति होवैहै, जैसैं "दशमस्त्वमसि" या शब्दसैं स्थूल शरीरका अपरोक्ष ज्ञान है; इसरीतिस कारणभेदतैं **बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाके षट् भेद** हैं. औ कितने ग्रंथकार अनुपलब्धि प्रमाणजन्य अभाव गोचर वृत्तिकूंभी अपरोक्षवृत्ति कहैं हैं, तिनके मतमैं श्रोत्रादिपंच इंद्रिय औ शब्द तथा अनुपलब्धि ये सप्त बाह्य प्रत्यक्षप्रमाके करण हैं;यातैं बाह्य प्रत्यक्षप्रमा सप्तविध है,परंतु यह अर्थ पूर्व लिख्या है.धर्माधर्मकी नाई प्रत्यक्षयोग्यता अभावमैं नहीं, यातैं वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभावावच्छिन्न चेतनका अभेद हुयेभी अभावगोचरवृत्ति अपरोक्ष नहीं है,किंतु अनुमित्यादिकनकी नाई अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावगोचरवृत्ति प्रत्यक्ष वृत्तिसैं विलक्षण है, यातैं बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाके षट् भेद हैं सप्त नहीं. आन्तर **प्रत्यक्षप्रमाभी दो प्रकारकी** है एक आत्मगोचर है दूसरी अनात्मगोचर है. **आत्मगोचरभी दो प्रकारकी** है. एक शुद्धात्मगोचर है दूसरी विशिष्टात्मगोचर है **शुद्धात्म गोचरभी दो प्रकारकी** है. एक तौ ब्रह्मागोचर है दूसरी ब्रह्मगोचर है, त्वंपदार्थबोधक वेदांतवाक्यसैं "शुद्धः प्रकाशोऽहम्" ऐसी अन्तःकरणकी वृत्ति होवै है. तावृत्तिदेशमैं ही अन्तःकरणउपहित शुद्धचेतन है; यातैं वृत्त्यवच्छिन्न चेतन औ विषयावच्छिन्न चेतनका अभेद होनेतैं वह वृत्ति अपरोक्ष है; औ ता वृत्तिके विषय शुद्ध चेतनमैं ब्रह्मताभी है परंतु ब्रह्माकार वृत्ति हुई नहीं. काहेतैं ? अवांतरवाक्यसैं वृत्ति हुई है, महावाक्यसैं होती तौ ब्रह्माकारभी होती. काहेतैं ? **शब्दजन्यज्ञानका यह स्वभाव** है:—सन्निहित पदार्थकूं जिस रूपतैं शब्दबोधन करै तिस रूपकूंही विषय करे है औ जिस रूपतैं शब्द कहैं नहीं तिस रूपतैं शब्दजन्यज्ञान विषय करै नहीं. जैसैं दशमपुरुषकूं "दश-

मोऽस्ति" इसरीतिसैं कहै तब "दशमोऽयम्" इसरीतिसैं श्रोताकूं ज्ञान होवै नहीं" जैसैं दशममैं आत्मता है तथापि आत्मताबोधक शब्दभाववैं आत्मताका ज्ञान होवै नहीं; तैसैं आत्मामैं ब्रह्मता सदा है तौभी ब्रह्मताबोधक शब्दाभाववैं ज्ञान होवै नहीं, यातैं उक्तवृत्ति **ब्रह्मगोचर शुद्धात्मगोचर आंतर प्रत्यक्षप्रमा** है.

प्रत्यक्षके प्रसंगते यह **शंका** होवैहै:—सिद्धांतमैं इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवैहै इसका तौ अंगीकार नहीं; किंतु वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं विषयावच्छिन्नचेतनका अभेदही **ज्ञानकी प्रत्यक्षताका हेतु** है. जहां इंद्रियसंबंध घटादिक होवै तहां इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाह्य जायकै विषयके आकारके समानाकार होयकै विषयतैं संबंधवती होवै है; यातैं वृत्तिचेतनकी औ विषयचेतनकी उपाधि एक देशमैं होनेतैं उपहित चेतनकाभी अभेद होवैहै तैसैं सुखादिकनका ज्ञान यद्यपि इंद्रियजन्य नहीं औ शुद्धात्मज्ञानभी शब्दजन्य है इंद्रियजन्य नहीं तथापि विषयचेतन औ वृत्तिचेतनका भेद नहीं. काहेतैं ? सुखाकार वृत्ति अंतःकरणदेशमैं है औ सुखभी अंतःकरणमैं है; यातैं वृत्त्युपहित चेतन विषयोपहित चेतनका अभेद है. तैसैं आत्माकार वृत्तिका उपादानकारण अंतःकरण है औ अंतःकरण उपहित चेतनके अभिमुख हुई है यातैं आत्माकार वृत्तिभी अंतःकरण देशमैं होवै है सो अंतःकरणही शुद्ध आत्माकी उपाधि है; इसरीतिसैं दोनूं उपाधि एकदेशमैं होनेतैं वृत्तिचेतन विषयचेतनका अभेद होवै है, यातैं सुखादिज्ञान शुद्धात्मज्ञान प्रत्यक्षरूप है. इहां यह निष्कर्ष है:—जहां विषयका प्रमातासैं वृत्तिद्वारा अथवा साक्षात्संबंध होवै तिस विषयका ज्ञान **प्रत्यक्ष** है, सो विषयभी **प्रत्यक्ष** कहिये है; जैसैं घटका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तब घट प्रत्यक्ष है ऐसा व्यवहार होवै है. बाह्यपदार्थनका वृत्तिद्वारा प्रमातासैं संबंध होवै है. सुखादिकनका प्रमातासैं साक्षात्संबंध है. अतीत सुखादिकनका प्रमातासैं वर्तमानसंबंध नहीं, यातैं अतीत सुखादिकनका

ज्ञान स्मृतिरूप है प्रत्यक्षरूप नहीं. अतीत सुखादिकनकाभी प्रमातामैं संबंध तौ हुया है; तथापि प्रत्यक्ष लक्षणमैं वर्त्तमानका निवेश है,प्रमातासैं वर्तमानसंबंधी योग्य विषय प्रत्यक्ष कहिये है; प्रमातासैं वर्तमानसंबंधी योग्यविषयका ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है, योग्य नहीं कहैं तौ धर्मादिक सदा प्रमाताके संबंधी हैं; यातैं सदाही प्रत्यक्ष कहे चाहिये औ तिनका शब्दादिकनसैं ज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष कह्या चाहिये धर्मादिक प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं लक्षणमैं योग्यपदके निवेशतैं दोष नहीं; योग्यता अयोग्यता अनुभवके अनुसार अनुमेय है; जा वस्तुमैं प्रत्यक्षताका अनुभव होवै तामैं योग्यता औ जामैं प्रत्यक्षताका अनुभव नहीं होवै तामैं अयोग्यता यह अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं ज्ञान होवै योग्यता अयोग्यता इसरीतिसैं नैयायिकनकूं भी माननी चाहिये; तिनके मतमैं सुखादिक औ धर्मादिक आत्माके धर्म है, तिनमैं मनःसंयुक्त समवायसंबन्ध सर्वसैं मनका है तथापि योग्यता होनेतैं सुखादिकनका मानस साक्षात्कार होवै है; औ योग्यताके अभावतैं धर्मादिकनका साक्षात्कार होवै नहीं; यातैं योग्यता अयोग्यता सर्वमतमैं अंगीकरणीय है; इसरीतिसैं प्रत्यक्षयोग्य वस्तुका प्रमातासैं वर्तमानसंबंध होवै तहां प्रत्यक्ष ज्ञान होवैहै ।

या अर्थमैं यह शंका है:—ब्रह्मगोचरज्ञान परोक्ष नहीं हुया चाहिये,काहेतैं? ब्रह्मका प्रमातासैं असंबंध होवै तौ बाह्यादि ज्ञानकी नाईं ब्रह्मज्ञानभी परोक्ष होवै जब अवांतर वाक्यसैं सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनंतस्वरूप ब्रह्म है ऐसी वृत्ति होवै तिसकालमैं भी ब्रह्मका प्रमातासैं संबंध है, यातैं अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी प्रत्यक्षही हुया चाहिये औ सिद्धांतमैं अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं किंतु परोक्ष है सो उक्त रीतिसैं संभवै नहीं.

या शंकाका यह समाधान है:—प्रत्यक्ष लक्षणमैं विषयका योग्यताविशेषण कह्या है तैसैं योग्यप्रमाणजन्यता ज्ञानका विशेषण है यातैं उक्त दोष नहीं. काहेतैं? प्रमातासैं वर्तमानसंबंधवाला जो योग्य विषय ताका योग्य प्रमाणज-

न्यज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहिये है. या लक्षणमैं उक्तदोष नहीं काहेतैं वाक्यका यह स्वभाव है. श्रोताके स्वरूपबोधक पदघटित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवैहै; श्रोताके स्वरूपबोधक पदरहितवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है. विषयसन्निहित होवै औ प्रत्यक्षयोग्य होवै तौभी स्वरूपबोधक पदरहित वाक्यतैं अपरोक्ष ज्ञान होवै नहीं. जैसैं दशमबोधक द्विविध वाक्य है, एकतो "दशमोऽस्ति" ऐसा वाक्य है औ दूसरा "दशमस्त्वमसि" ऐसा वाक्य है. तिनमैं प्रथम वाक्य तौ श्रोताके स्वरूपबोधक पदरहित है, औ दूसरा वाक्य श्रोताके स्वरूपका बोधक जो त्वंपद तासैं घटित कहिये युक्त है; तिनमैं प्रथमवाक्य श्रोताकूं दशमका परोक्षज्ञान ही होवै है. वाक्यजन्यज्ञानका विषय दशमपुरुष है सो दोनूं स्थानमैं अतिसन्निहित है. जो स्वरूपसैं भिन्न होवै औ संबंधी होवै सो सन्निहित होवैहै. दशम पुरुष श्रोताके स्वरूपसैं भिन्न नहीं, किंतु श्रोताका स्वरूप है, यातैं अतिसन्निहित है औ प्रत्यक्षयोग्य है. जो प्रत्यक्षयोग्य नहीं होवै तौ द्वितीयवाक्यसैं भी दशमका प्रत्यक्षज्ञान नहीं चाहिये औ द्वितीयवाक्यसैं प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है यातैं प्रत्यक्षयोग्य है. इसरीतिसैं अतिसन्निहित औ वाक्यजन्य प्रत्यक्ष योग्य दशमका जो वाक्यसैं प्रत्यक्ष ज्ञान होवै नहीं वह वाक्य अयोग्य है. द्वितीय वाक्यसैं तिसी दशमका अपरोक्ष ज्ञान होवैहै, यातैं द्वितीय वाक्य योग्य है. वाक्यनकी योग्यता अयोग्यतामैं और तौ कोई हेतु है नहीं; स्वरूपबोधक पदघटितत्व औ स्वरूपबोधक पदरहितत्वही योग्यताके औ अयोग्यताके संपादक हैं. इसरीतिसैं "दशमस्त्वमसि" यह वाक्य तो योग्य प्रमाण है तिससैं जन्य "दशमोऽहम्" यहप्रत्यक्ष ज्ञान है तैसैं "दशमोऽस्ति" यह वाक्य अयोग्यप्रमाण है, तिसतैं जन्य कहिये उत्पन्न जो "दशमः कुत्रचिदस्ति" ऐसा दशमका ज्ञान सो परोक्ष है. तैसैं ब्रह्मबोधकवाक्यभी दो प्रकारके हैं. ("सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म") इसरीतिके अवांतरवाक्य हैं. ("तत्त्वमसि") इस रीतिके महावाक्य हैं अवांतरवाक्यनमैं श्रोताका स्वरूपबोधक पद नहीं है यातैं प्रत्यक्षज्ञानके जननमैं योग्य अवांतरवाक्य नहीं औ महावाक्यनमैं श्रोताके स्वरूपके

बोधक त्वमादिपद हैं यातैं प्रत्यक्ष ज्ञानजननमैं योग्य महावाक्य है; इस रीतिसैं योग्यप्रमाण महावाक्य है तिनसैं उत्पन्न हुया ज्ञान प्रत्यक्ष है औ अयोग्यप्रमाण "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्यादिक वाक्य हैं. तिनसैं उपज्या ब्रह्मका ज्ञान परोक्ष होवै है. अवांतर वाक्यभी दोप्रकारके हैं; तत्पदार्थके बोधक हैं औ त्वंपदार्थके बोधक हैं. तिनमैं तत्पदार्थबोधक वाक्य तौ अयोग्य हैं, औ "य एष हृद्यंतर्ज्योतिःपुरुषः" इत्यादिक त्वंपदार्थबोधक अवांतरवाक्यभी महावाक्यनकी नाईं योग्य हैं अयोग्य नहीं. काहेतैं? श्रोताके स्वरूपके बोधक तिनमैं पद हैं, यातैं त्वंपदार्थबोधक अवांतर वाक्यनतैं अपरोक्ष ज्ञान होवै है परंतु वह अपरोक्ष ज्ञान ब्रह्माभेदगोचर नहीं यातैं परम पुरुषार्थका साधक नहीं; किंतु परम पुरुषार्थका साधक जो अभेदज्ञान तामैं पदार्थशोधनद्वारा उपयोगी है. इसरीतिसैं प्रमातासैं संबंधीभी ब्रह्म है औ योग्य है, तथापि अयोग्य जो अवांतर वाक्य तिनसैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै है.

या कहनेमैं अन्यशंका होवैहैः—प्रमातासैं वर्तमान संबंधवाला—जो योग्य विषय ताका योग्य प्रमाणजन्य ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहिये है. कहनेमैं सुखादिकनके प्रत्यक्षमैं उक्त लक्षणका अभाव है. काहेतैं ? सुखादि प्रत्यक्षमैं प्रमाणजन्यताके अभावतैं योग्य प्रमाणजन्यता सर्वथा सम्भवै नहीं, यातैं उक्त लक्षणमैं अव्याप्ति दोष है.

या शंका यह समाधान हैः—योग्यप्रमाणजन्यताका लक्षणमैं प्रवेश नहीं; किंतु अयोग्यप्रमाणअजन्यताका प्रवेश है. यातैं अव्याप्ति नहीं; काहेतैं? प्रमातासैं वर्तमानसंबंधवाला जो योग्य विषय ताका जो अयोग्यप्रमाणसैं अजन्यज्ञान सो प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है, इसरीतिसैं कहे अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानकी व्यावृत्ति होवैहै. उक्तरीतिसैं ब्रह्ममात्रके बोधक अवांतरवाक्य अयोग्यप्रमाण हैं. "ब्रह्मास्ति" यह परोक्ष ज्ञान तिनतैं जन्य है अजन्य नहीं, परोक्ष ज्ञानमैं लक्षण जावै नहीं औ सुखादिगोचर

ज्ञानका संग्रह होवै है. काहेतैं ? सुखादिगोचर ज्ञान किसी प्रमाणतैं जन्य नहीं, यातैं अयोग्यप्रमाणतैं अजन्य है औ इंद्रियजन्य घटादिज्ञान तैसैं महावाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान योग्य प्रमाण जन्य होनेतैं अयोग्य प्रमाणसैं अजन्य है, यातैं प्रत्यक्ष ज्ञानका उक्त लक्षण दोषरहित है.

पूर्व प्रसंग यह हैः-**शुद्धात्मगोचरप्रमा दो प्रकारकी** है. एक ब्रह्मा-गोचर है दूसरी ब्रह्मगोचर है. **ब्रह्मगोचर** कहि आये महावाक्यजन्य "अहं ब्रह्मास्मि" इसरीतिसैं ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माकूं जो विषय करै सो **ब्रह्मगोचर शुद्धात्मगोचर प्रत्यक्षप्रमा** है.

"अहं ब्रह्मास्मि" या ज्ञानकूं **वाचस्पति मनोजन्य** कहैं हैं औरनके मतमैं यह ज्ञान वाक्यजन्य है तामैंभी इतना भेद है. **संक्षेपशारीरकका यह सिद्धांत** हैः-महावाक्यतैं ब्रह्मका प्रत्यक्ष ज्ञानही होवैहै कदीभी परोक्ष ज्ञान महावाक्यतैं होवै नहीं. अन्य ग्रंथकारोंका यह मत हैः-विचारसहित महा वाक्यतैं अपरोक्ष ज्ञान होवै है, विचाररहित केवल वाक्यतैं परोक्षज्ञान होवैहै, सर्वके मतमैं "अहं ब्रह्मास्मि" यह ज्ञान **शुद्धात्मगोचर** है औ ब्रह्मगोचर है तस प्रत्यक्षहै.याअर्थमैं किसीका विवाद नहीं.**शुद्धात्मगोचरप्रमाके दो भेद** कहे औ **विशिष्टात्मगोचरप्रत्यक्षप्रमाके** अनंत भेद हैं, "अहमज्ञः अहं कर्ता, अहं सुखी अहं दुःखी अहं मनुष्यः" इसतैं आदि अनंत भेद हैं यद्यपि अबाधित अर्थकूं विषय करै सो ज्ञान प्रमा कहिये है "अहं कर्ता" इत्यादिक ज्ञानका "अहं न कर्ता" इत्यादिक ज्ञानसैं बाध होवै है. ताकूं प्रमा कहना संभवै नहीं. तथापि संसारदशामैं अबाधित अर्थकूं विषय करै सो **प्रमा** कहिये है. संसारदशामैं उक्तज्ञानोंका बाध होवै नहीं यातैं **प्रमा** है, इसरीतिसैं **आत्मगोचर आंतरप्रत्यक्षप्रमाके** भेद कहे. औ "मयि सुखम् मयि दुःखम्" इत्यादिक सुखादिगोचर ज्ञानभी **आत्मगोचरप्रत्यक्ष प्रमा** है परंतु "अहं सुखी, अहं दुःखी" इत्यादिक प्रमासैं तौ अहंपदका अर्थ आत्मा विशेष्य है और सुखदुःखादिक विशेषण हैं. "मयि सुखं मयि

दुःखम्” इत्यादिक प्रमामैं सुखदुःखादिक विशेष्य हैं आत्मा विशेषण है; यातैं “मयि सुखम्, मयि दुःखम्” इत्यादिक ज्ञानकूं आत्मगोचर प्रत्यक्षप्रमा नहीं कहैंहैं किंतु सुखादिक विशेष्य होनेतैं **अनात्मगोचर आंतरप्रत्यक्ष प्रमा** कहैं हैं. वाचस्पतिके मतमैं विशिष्टात्मज्ञान औ सुखादिज्ञान मनोजन्य हैं. औ सिद्धांतमैं अन्तःकरणविशिष्ट आत्मामैं अन्तःकरणभाग **साक्षीभास्य** है औ चेतनभाग स्वयंप्रकाश है; तैसैं सुखादिकभी साक्षीभास्य हैं. कोई ज्ञान मनोजन्य नहीं, यातैं मन इंद्रिय नहीं इस रीतिसैं स्मृतिसैं भिन्न यथार्थ वृत्तिकूं **प्रमा** कहैं हैं; ताके भेद कहे; **स्मृतिरूप अन्तःकरणकी वृत्तिभी यथार्थअयथार्थ भेदसैं दो प्रकारकी** है तिनमैं **यथार्थ स्मृति दो प्रकारकी** है; आत्मस्मृति औ अनात्मस्मृति तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्य अनुभवतैं आत्मतत्त्वकी **स्मृति यथार्थ आत्मस्मृति** है, व्यावहारिक प्रपंचका मिथ्यात्वअनुभव हुयां ताके संस्कारतैं मिथ्यात्वरूपतैं प्रपंचकी स्मृति **यथार्थ अनात्मस्मृति** है; तैसैं **अयथार्थ स्मृतिभी दो प्रकारकी** है; एक **आत्मगोचर अयथार्थ स्मृति** है औ **अनात्मगोचर अयथार्थ स्मृति** है. अहंकारादिकनमैं आत्मत्वभ्रमरूप अनुभवके संस्कारतैं अहंकारादिकनमैं आत्मत्वकी स्मृति **आत्मगोचर अयथार्थ स्मृति** है. तैसैं आत्मामैं कर्तृत्व अनुभवके संस्कारतैं ‘आत्मा कर्ता है’ यह स्मृतिभी **आत्मगोचर अयथार्थ स्मृति** है. औ प्रपंचमैं सत्यत्व भ्रमके संस्कारतैं ‘प्रपंच सत्य है’ यह स्मृति **अनात्मगोचर अयथार्थ स्मृति** है. यथार्थअयथार्थभेदसैं **वृत्ति दोप्रकारकी** कही, स्मृतिभिन्न यथार्थवृत्ति **प्रमा** कही, यथार्थअनुभवजन्य **स्मृति यथार्थ** कही औ अयथार्थअनुभवजन्य **स्मृति अयथार्थ** कही. अनुभवमैं यथार्थता अबाधित अर्थकृत है, अबाधित अर्थविषयक **अनुभव यथार्थ** कहिये है. **प्रमा** कहियेहै; यातैं अबाधित अर्थके अधीन अनुभवमैं यथार्थता है औ स्मृतिमैं यथार्थता औ अयथार्थता अनुभवके अधीन है; स्मृतिसैं भिन्न जो ज्ञान ताकूं **अनुभव** कहैंहैं, सोभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दो

प्रकारका है. यथार्थानुभव तौ कह्या अब अयथार्थानुभवका निरूपण करैं हैं अयथार्थस्मृतिका निरूपण तौ पूर्व कह्या है सोभी अनुभवके अयथार्थता अधीन है; यातें अयथार्थानुभवका निरूपण कह्या चाहिये.

संशयरूपभ्रमका लक्षण और भेद ॥ ६ ॥

अयथार्थानुभव दो प्रकारका है:—एक संशयरूप है औ दूसरा निश्चयरूप है. अयथार्थकूंही **भ्रम** कहैं हैं, संशय ज्ञानभी भ्रम है. काहेतैं ? स्वाभावाधिकरणमैं अवभासकूं **भ्रम** कहैं हैं औ संशय ज्ञानभी परस्पर विरुद्ध उभयविषयक होवै है. तिनमैं एकका अभाव होवै है यातैं संशयमैं भ्रमका लक्षण है. एक विशेष्यमैं विरुद्ध दो विशेषणका ज्ञान संशय कहिये है. जैसे स्थाणका "स्थाणर्न वा" ऐसा ज्ञान होवै अथवा "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" ऐसा ज्ञान होवै; दोनूंकूं **संशय** कहैं हैं. तहां स्थाणु विशेष्य है स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभाव विशेषण हैं दोनूं विरुद्ध हैं. एक अधिकरणमैं साथि रहैं नहीं, यातैं स्थाणुरूप एक विशेष्यमैं स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभावरूप विरुद्ध उभयविशेषणका ज्ञान होनेतैं प्रथम संशयमैं लक्षण संभवै है; तैसैं द्वितीय संशयमैंभी लक्षण संभवै है. काहेतैं ? स्थाणुरूप एक विशेष्यमैं स्थाणुत्व पुरुषत्वरूप विरुद्ध उभय विशेषणका ज्ञानहै. जैसैं स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभावका परस्पर विरोध है तैसैं स्थाणुत्व पुरुषत्वकाभी विरोध अनुभवसिद्ध है. यातैं प्रथम संशय तौ विरुद्ध भावाभाव उभयगोचर है तैसैं द्वितीयसंशय विरुद्ध उभयभावगोचर है. औ न्यायके ग्रंथनमैं तो यह लिख्या है:—भाव. भावगोचरही **संशयज्ञान** होवै है, केवल भावगोचर संशय होवै नहीं. जहां "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" ऐसा संशय होवै. तहांभी स्थाणुत्व औ स्थाणुत्वाभाव पुरुषत्व औ पुरुत्वाभाव ये च्यारि कोटि हैं. यातैं द्विकोटिक औ चतुष्कोटिक **दो प्रकारका संशय** होवै है. "स्थाणुन वा" यह द्विकोटिक संशय है "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" यह चतुष्कोटिक संशय है. एक धर्मीमैं प्रतीत धर्मकूं **कोटि** कहैं हैं, यातैं

केवल भावगोचरसंशय न्यायमतमैं अप्रसिद्ध है; सर्व प्रकारसैं संशयज्ञान भ्रमरूप है. दो विरुद्ध विशेषण एकमैं होवैं नहीं एकका अभावही होवैगा. जैसैं स्थाणुमैं स्थाणुत्व है औ स्थाणुत्वका अभाव नहीं है; यातैं स्थाणुत्वाभावरहित स्थाणुमैं स्थाणुत्वका अभावज्ञान भ्रमरूप है. परंतु एक अंशमैं संशयज्ञान भ्रम होवै है, सकलअंशमैं भ्रम होवै नहीं. जहां स्थाणुमें "स्थाणुर्न वा" यह संशय होवै तहां अभावअंशमैं भ्रम है. और जहां पुरुषमैं "स्थाणुर्न वा" ऐसा संशय होवै तहां अभाव अंश तौ पुरुषमैं है स्थाणुत्व अंश नहीं है यातैं भाव अंशमैं भ्रम है; इसरीतिसैं भावाभावगोचर संशय होवै है, तिनमैं एक अवश्य रहैगा; यातैं संशयज्ञान एक अंशमैं भ्रम होवै. औ विरोधी उभयभावगोचरभी संशय मानैं तौ सकल अंशमैंभी संशयकूं भ्रमत्व संभवै है. जैसैं " स्थाणुर्वा पुरुषो वा " या संशयकूं चतुष्कोटिक नहीं मानैं उभयकोटिकही मानैं औ स्थाणु औ पुरुषतैं भिन्न किसी पदार्थमैं " स्थाणुर्वा पुरुषो वा " ऐसा संशय होवै तहां संशयके धर्मीमैं "स्थाणुत्व पुरुषत्व दोनूं नहीं हैं. यातैं दोनूंका ज्ञान भ्रम है, संशयमैं जो विशेष्य होवै सो संशयमैं धर्मी कहिये है औ विशेषणकूं धर्म कहैं हैं, यातैं एकधर्मीमैं विरुद्ध नानाधर्मका ज्ञान संशय कहिये है, या लक्षणतैं उक्त लक्षणका भेद नहीं; परंतु इतना भेद है:— उक्त लक्षणमैं उभय पद है, यातैं चतुष्कोटिक संशयमैं उक्तलक्षणकी अव्याप्ति है. काहेतैं ? चतुष्कोटिक संशयमैं एक विशेष्यमैं च्यारि विशेषण प्रतीत होवै हैं उभय विशेषण नहीं. यद्यपि जहां च्यारि होवैं तहां तीनि औ दो तथा एकभी होवै है, तथापि अधिक संख्यासैं न्यूनसंख्याका बाध होवै है. इसीवास्ते जहां पंच ब्राह्मण होनेतैं कोई च्यारि ब्राह्मण कहै तौ उसकूं मिथ्यावादी कहैं हैं, न्यूनसंख्या यद्यपि अधिक संख्याके अन्तर्भूत है तथापि न्यूनसंख्याका व्यवहार होवै नहीं; यातैं उभयपद घटित लक्षणकी चतुष्कोटिक संशयमैं अव्याप्ति होनेतैं नाना पद कह्या है एकसैं भिन्नकूं नाना कहैं हैं; द्विकोटिक संशयकी नाईं चतुष्कोटिक

संशयभी च्यारिधर्म गोचर होनेतैं नानाधर्मगोचर है यातैं अव्याप्ति नहीं इसरीतिसैं संशयभी भ्रम है.

भ्रमके भेदनिरूपणतैं उत्तर निश्चयभ्रमका विस्तारसैं लक्षण कहैंगे. संशय निश्चयरूप भ्रम अनर्थका हेतु है, यातैं निवर्तनीय है, जिज्ञासुकूं निवर्तनीय जो भ्रम ताके भेद कहैं हैंः—संशयरूप **भ्रम दो प्रकारका** है. एक प्रमाणसंशय है औ दूसरा प्रमेयसंशय है. प्रमाणगोचर संदेह **प्रमाणसंशय कहिये** है ताहीकूं **प्रमाणगत असंभावना** कहैंहैं, वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्मविषै प्रमाण हैं वा नहीं हैं यह **प्रमाणसंशय** है; ताकी निवृत्ति शारीरकके प्रथमाध्यायके पठनसैं वा श्रवणतैं होवैहै. **प्रमेयसंशयभी आत्मसंशय और अनात्मसंशयभेदतैं दो प्रकारका है. अनात्मसंशय अनंतविध** है ताके कहनेसैं उपयोग नहीं. **आत्मसंशयभी अनेकप्रकारका** है.

आत्मा ब्रह्मसैं अभिन्न है अथवा भिन्न है ? अभिन्न होवै तौभी सर्वदा अभिन्न है अथवा मोक्षकालमैंही अभिन्न होवैहै ? सर्वदा अभिन्न नहीं. सर्वदा भिन्न होवै तौभी आनंदादिक ऐश्वर्यवान् है अथवा आनंदादिक रहित है ? आनंदादिक ऐश्वर्यवान् होवै तौभी आनंदादिक गुण हैं अथवा ब्रह्मात्माका स्वरूप है इसतैं आदिलेके तत्पदार्थाभिन्नत्वंपदार्थविषै अनेकप्रकारका संशयहै.

तैसैं केवल त्वंपदार्थगोचर संशयभी **आत्मगोचर संशय** है. आत्मा देहादिकनतैं भिन्न है वा नहीं ? भिन्न कहैं तौभी अणुरूप है वा मध्यमपरिमाण है वा विभुपरिमाण है ? जो विभु कहैं तौभी कर्ता है अथवा अकर्ता है ? अकर्ता कहैं तौभी परस्पर भिन्न अनेक है अथवा एक है ? इसरीतिके **अनेक संशय केवल त्वंपदार्थगोचर** हैं.

तैसैं केवल **तत्पदार्थगोचरभी अनेक प्रकारके संशय** हैं. वैकुंठादिकलोकविशेषवासी ईश्वर परिच्छिन्न हस्तपादादिक अवयवसहित शरीर है अथवा शरीररहित विभु है ? जो शरीररहित विभु कहैं तौभी परमाणुआदिका सापेक्ष जगत्का कर्ता है अथवा निरपेक्ष कर्ता है ? परमाणु आदिकनिरपेक्ष

कर्ता कहैं तौभी केवल कर्ता है अथवा अभिन्न निमित्तोपादानरूप कर्ता है? जो अभिन्न निमित्तोपादान कहैं तौभी प्राणिकर्मनिरपेक्ष कर्ता होनेतैं विषमकारितादिक दोषवाला है अथवा प्राणिकर्म सापेक्ष कर्ता होनेतैं विषमकारित्वादिक दोषरहित है? इसतैं आदि **अनेकप्रकारके तत्पदार्थगोचरसंशय** हैं, सो सकल संशय **प्रमेयसंशय** कहियेहैं; तिनकी निवृत्ति मननसैं होवैहै **शारीरकके** द्वितीयाध्यायके अध्ययनसैं वा श्रवणतैं मनन सिद्ध होवैहै, तासैं प्रमेयसंशयकी निवृत्ति होवैहै.

ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशयभी **प्रमेयसंशय** है. काहेतैं? प्रमाके विषयकूं **प्रमेय** कहैहैं; ज्ञानसाधन मोक्षसाधनभी प्रमाके विषय होनेतैं **प्रमेय** हैं; यातैं ज्ञानसाधनका संशय औ मोक्षसाधनका संशयभी **प्रमेय संशय** है; ताकी निवृत्ति शारीरकके तृतीय अध्यायसैं होवैहै.

तैसे मोक्षके स्वरूपका संशयभी प्रमेयसंशय है ताकी निवृत्ति शारीरकके चतुर्थाध्यायसैं होवैहै. यद्यपि शारीरकके चतुर्थाध्यायमैं प्रथम साधनविचारही है उत्तर फलविचार है; मोक्षकूं फल कहैहैं, तथापि चतुर्थाध्यायमैं साधनविचार जितनेमैं है उतने चतुर्थाध्यायसहित तृतीयाध्यायसैं साधनसंशयकी निवृत्ति होवैहै. शिष्ट चतुर्थाध्यायसैं फलसंशयकी निवृत्ति होवैहै.

निश्चयरूपभ्रमज्ञानका लक्षण ॥ ६ ॥

संशयनिश्चयभेदसैं **भ्रमज्ञान दो प्रकारका** है. संशयभ्रमका निरूपण किया; अब **निश्चयभ्रम** कहैहैं:—संशयसैं भिन्नज्ञानकूं **निश्चय** कहैहैं. शुक्तिका शुक्तित्वरूपसैं यथार्थज्ञान औ शुक्तिका रजतत्वरूपतैं भ्रमज्ञान दोनूं संशयतैं भिन्नज्ञान होनेतैं निश्चयरूप हैं. बाधित अर्थ विषयक जो संशयतैं भिन्न ज्ञान सो निश्चय है, शुक्तिमैं रजतविनिश्चयका विषय रजत है सो बाधित है. काहेतैं? संसारदशामैंही शुक्तिके ज्ञानतैं रजतका बाध होवैहै. ब्रह्मज्ञानविना जाका बाध न होवै सो **अबाधित** कहियेहै. औ ब्रह्मज्ञानविना ही शुक्तिआदिकनके ज्ञानतैं जाका बाध होवै सो **बाधित**

कहियेहै, अथवा प्रमाताके बाधविना जाका बाध नहीं होवै सो **अबाधित** कहिये है. प्रमाताके होनेतैं जाका बाध होवै सो **बाधित** कहिये है, **अबाधित दो प्रकारका** होवैहै. एक तौ सर्वदा अबाधित होवैहै दूसरा व्यावहारिक अबाधित होवै है. जिसका सर्वदा बाध नहीं होवै, ऐसा चेतन है; व्यवहार-दशामैं बाध नहीं होवै ऐसा अज्ञान औ महाभूत तथा भौतिक प्रपंच है सुखादिक प्रातिभासिक हैं, तौभी ब्रह्मज्ञानविना सुखादिकनका बाध होवै नहीं; यातैं अबाधित हैं; तिनका ज्ञान भ्रम नहीं तैसैं **बाधित अर्थभी दो प्रकारका** होवैहै, एक तौ व्यावहारिक पदार्थावच्छिन्न-चेतनका विवर्त है, दूसरा प्रातिभासिक पदार्थावच्छिन्न चेतनका विवर्त है; शुक्तिमैं रजतव्यावहारिक पदार्थावच्छिन्न चेतनका विवर्त है. काहेतैं? शुक्ति-रजतका अधिष्ठान शुक्त्यवच्छिन्न चेतन है शुक्ति व्यावहारिक है; औ स्वप्नमैं शुक्ति प्रतीत होयके तामैं रजतभ्रम होवै तिस रजतका स्वप्नमैंही शुक्तिज्ञानसैं बाध होवै.ता रजतका अधिष्ठन स्वप्नशुक्त्यवच्छिन्न चेतन है, स्वप्नकी शुक्ति प्रातिभासिक है, इसरीतिसैं बधितपदार्थ दो प्रकारके हैं तिनका निश्चय कहिये **भ्रमनिश्चय** कहिये है.

अध्यासका लक्षण औ भेद ॥ ७ ॥

भ्रमज्ञानमैं शास्त्रकारनका अनेकधा वाद है. तिनके मतसैं विलक्षण भाष्यकारने **भ्रमका असाधारण लक्षण** कह्या है:—जैसा भ्रमका स्वरूप अन्यशास्त्रवाले मानैंहैं; तिसमैं यह वक्ष्यमाण लक्षण संभवै नहीं, यातैं असाधारण है. अन्यसैं असाधारणलक्षण कथनतैं भाष्यकारका अन्याभिमत भ्रमके स्वरूपस अस्वरस है. अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला अवभास **अध्यास** कहियेहै, जहां शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां शुक्तिदेशमैं रजत उपजै है, ताका ज्ञान औ तात्कालिक रजत इन दोनूंकूं सिद्धांतमैं अवभास औ **अध्यास** कहैहैं अन्यशास्त्रनमैं रजतकी उत्पत्ति मानैं नहीं यह सर्वसैं विलक्षणता है. एक सत्ख्यातिवादमैं रजतकी उत्पत्ति मानी है, ताके मतसैं

भी विलक्षणता आगे कहैंगे. व्याकरणकी रीतिसैं अध्यासपदके औ अव-
भास पदके विषय औ ज्ञान दोनूं वाच्य हैं.

यातैं अर्थाध्यास औ ज्ञानाध्यासके भेदतैं **अध्यास दो प्रकारका है,**
अर्थाध्यास अनेक प्रकारका है, कहूं केवल संबंधमात्रका अध्यास है,
कहूं संबंधविशिष्ट संबंधीका अध्यास है, कहूं केवल धर्मका अध्यास है; कहूं
धर्मविशिष्ट धर्मीका अध्यास है,कहूं अन्योन्याध्यास है; कहूं अन्यतराध्यास
है **अन्यतराध्यासभी दो प्रकारका** है. एक आत्मामैं अनात्माध्यास
है दूसरा अनात्मामैं आत्माध्यास है;इसरीतिसैं अर्थाध्यास अनेक प्रकारका
है. उक्त लक्षणका सर्वत्र समन्वय है तथाहिः—मुख्यसिद्धांतमैं तौ सकल
अध्यासका अधिष्ठान चेतनहै. रज्जुमैं सर्प प्रतीत होनेतैं तहांभी इदमा-
कार वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभिन्न रज्जुअवच्छिन्न चेतनही सर्पका
अधिष्ठान है. रज्जु अधिष्ठान नहीं यह अर्थ विचारसागरमैं स्पष्ट है. तहां
चेतनकी परमार्थसत्ता है अथवा ताकी उपाधि रज्जु व्यावहारिक होनेतैं
रज्जुअवच्छिन्न चेतनकी व्यावहारिक सत्ता है. दोनूं प्रकारसैं सर्प
औ ताके ज्ञानकी प्रातिभासिक सत्ता होनेतैं अधिष्ठानकी सत्तासैं विषम-
सत्तावाला अवभास सर्प औ ताका ज्ञान है, यातैं दोनूंकूं **अध्यास** औ
अवभास कहैहैं. ज्ञान औ ज्ञानके विषयकूं **अवभास** कहैहैं इसरीतिसैं
सर्वत्र अध्यासका अधिष्ठान चेतन कहैं तब तौ अधिष्ठानकी परमार्थसत्ता
औ अध्यस्तकी प्रातिभासिकसत्ता होनेतैं अधिष्ठानतैं विषमसत्तावाला
अवभास कहिये ज्ञान औ ताका विषय स्पष्टही है; औ रजतका अधि-
ष्ठान शुक्ति है;यह व्यवहार लोकमैं होवैहै, यातैं अवच्छेदकता सम्बंधसैं शुक्ति
भी रजतका आश्रय है; काहेतैं? चेतनमैं रजतकी अधिष्ठानताका अवच्छे-
दक शुक्ति होनेतैं तामैं रजतका अवच्छेदकतासम्बंध है,अवच्छेदकता संबंधसैं
शुक्तिकूं रजतका अधिष्ठान कहैं तौ शुक्तिकी व्यावहारिक सत्ता है,रजतकी
प्रातिभासिक सत्ता है,यातैंभी अधिष्ठानसैं विषमसत्ता है,इसरीतिसैं सर्व अध्या-
सोंमैं आरोपितसैं अधिष्ठानकी विषमसत्ता है. जा पदार्थमैं आधारता प्रतीत

होवै सो अधिष्ठान कहियेहै यह आधारता परमार्थसैं होवै अथवा आरोपित होवै; औ परमार्थसैं आधार होवै सो अधिष्ठान कहिये है, ऐसा आग्रह या प्रसंगमैं नहीं है. काहेतैं? जैसैं आत्मामैं अनात्माका अध्यास है, तैसैं अनात्मामैं आत्माका अध्यास है. औ अनात्मामैं परमार्थसैं आत्माकी अधारता है नहीं किंतु आरोपित आधारता है; यातैं अधारमात्रकूं या प्रसंगमैं अधिष्ठान कहैंहैं. जहां अनात्मामैं आत्माका अध्यास है तहां अधिष्ठान अनात्मा है, ताकी व्यावहारिक सत्ता है औ आत्माकी पारमार्थिक सत्ता है, यातैं अधिष्ठानसैं विषम सत्तावाला अवभास है.

अन्योन्याध्यासमैं शंकासमाधान ॥ ८ ॥

यद्यपि आत्माका अधिष्ठान अनात्मा है या कहनेसैं आत्मा आरोपित है यह सिद्ध होवै है. जो आरोपित होवै सो कल्पित होवै है, यातैं आत्माभी कल्पित होवैगा; यातैं अनात्मामैं आत्माका अध्यास है यह कहना संभवै नहीं; **तथापि** भाष्यकारनैं शारीरकके आरंभमैं आत्मा अनात्माका अन्योन्याध्यास कह्या है; यातैं अनात्मामैं आत्माके अध्यासका निषेध तौ बनै नहीं; परस्पर अध्यासकूं **अन्योन्याध्यास** कहैंहैं; यातैं अनात्मामैं आत्माध्यास मानिकै उक्तशंकाका समाधान कह्या चाहिये.

सो समाधान इसरीतिसैं हैः—अध्यास **दोप्रकारका** होवैहै; एक तौ स्वरूपाध्यास होवैहै दूसरा संसर्गाध्यास होवै है. जा पदार्थका स्वरूप अनिर्वचनीय उपजै ताकूं **स्वरूपाध्यास** कहैं हैं, जैसैं शुक्तिमैं रजतका स्वरूपाध्यास है औ आत्मामैं अहंकारादिक अनात्माका स्वरूपाध्यास है; तैसैं जा पदार्थका स्वरूप तौ प्रथम सिद्ध होवै व्यावहारिक होवै अथवा पारमार्थिक होवै; औ अनिर्वचनीयसंबंध उपजै सो **संसर्गाध्यास** कहिये है जैसैं मुखसैं दर्पणका उक्त रीतिसैं कोई संबंध है नहीं औ दोनूं पदार्थ व्यावहारिक हैं, तहां दर्पणमैं मुखका सम्बंध प्रतीत होवै है; यातैं **अनिर्वचनीयसम्बंध** उपजै है तैसैं रक्त वस्त्रमैं "रक्तः पटः" यह प्रतीति होवै है

रक्तरूपवाला पट है. या प्रतीतिसैं रक्तरूपवाले पदार्थका पटमैं तादात्म्यसंबंध भासै है औ रक्तरूपवाला कुसुंभद्रव्य है, यातैं रक्तरूपवत्का तादात्म्य कुसुंभद्रव्यमैं है पटमैं नहीं. उसरीतिसैं रक्तरूपवत् कुसुंभद्रव्य औ पट तौ व्यावहारिक हैं, तिनका तादात्म्यसंबंध अनिर्वचनीय उपजै है. तैसैं "लोहितः स्फटिकः" या प्रतीतिसैं लोहितका तादात्म्यसम्बंध स्फटिकमैं भासै है, औ लोहितका तादात्म्य पुष्पमैं है स्फटिकमैं नहीं, रक्तरूपवालेकूं लोहित कहैहैं. रक्तरूपवाला पुष्प है स्फटिक नहीं, यातैं स्फटिकमैं अनिर्वचनीयतादात्म्यसम्बंध लोहितका उपजै है; इसरीतिसैं अनेक स्थानोंमैं संबंधी तौ व्यावहारिक है. तिनके संबंधनके ज्ञान अनिर्वचनीय उपजैं हैं. तिनकूं संसर्गाध्यास कहैं हैं, तैसैं चेतनका अहंकारमैं अध्यास नहीं किंतु चेतन तौ पारमार्थिक है ताके संबंधका अहंकारमैं अध्यास है, आत्मता चेतनमैं है औ अहंकारमैं प्रतीत होवै है, यातैं आत्माका तादात्म्य चेतनमैं है औ अहंकारमैं प्रतीत होवै है; यातैं आत्मचेतनका तादात्म्यसंबंध अहंकारमैं अनिर्वचनीय है अथवा आत्मवृत्ति तादात्म्यका अहंकारमैं अनिर्वचनीय सम्बंध है. यातैं चेतन कल्पित नहीं किंतु चेतनका अहंकारमैं तादात्म्यसंबंध कल्पित है अथवा आत्मचेतनके तादात्म्यका सम्बंध कल्पित है. यद्यपि अद्वैतग्रंथनमैं उक्त उदाहरणोंमैं अन्यथाख्याति कही है तथापि ब्रह्मविद्या भरणमैं उक्तरीतिसैं सारै अनिर्वचनीयख्याति मानिकै निर्वाह कर्या है, अन्यथाख्याति प्रसिद्ध नहीं; औ विचारसागरमैं तथा इस ग्रंथमैंभी पूर्व यह लिख्या है; जहां अधिष्ठानसैं आरोप्यका संबंध होवै तहां अन्यथाख्याति है; सो ग्रंथांतरकी रीतिसैं लिख्या है; औ अधिष्ठानसैं आरोप्यका संबंधहोवै तहां अन्यथाख्यातिकाही आग्रह होवै तौ अहंकारमैंभी चेतनका तादात्म्य अन्यथाख्यातिसैं प्रतीत होवै है या कहनेमैं कोई बाधक नहीं; इसरीतिसैं जहां पारमार्थिक पदार्थका अभाव हुयां तिसकी जहां प्रतीति होवै तहां पारमार्थिक पदार्थका तौ व्यावहारिक पदार्थमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है औ ताका अनिर्वचनीयही ज्ञान उपजै है. औ व्यावहारिक पदार्थका

अभाव हुयां जहां प्रतीति होवै तहां अनिर्वचनीयही संबधी उपज है; और संबंधीका अनिर्वचनीय ज्ञान उपजै है, और कहूं संबंधमात्र और संबंधीका अनिर्वचनीयज्ञान उपजै है. सारेही अधिष्ठानसैं अध्यस्तकी विषमसत्ता **अनीर्वचनीयसत्ता** है आत्माका अनात्मामैं अध्यास होवै तहांभी अधिष्ठान अनात्मा व्यावहारिक है औ अध्यस्त आत्मा नहीं किंतु आत्माका संबंध अनात्मामैं अध्यस्त है, यातैं अनिर्वचनीय है.

अनात्मामैं अध्यस्त आत्माकी परमार्थसत्ताविषै तात्पर्य ॥ ९ ॥

औ पूर्व यह कह्याहै, अनात्मामैं आत्माध्यास होवै तहां अध्यस्तकी परमार्थ सत्ता होनेतैं विषमसत्ता है, औ ब्रह्मविद्याभरणमैं उक्त स्थलमैं अध्यस्तकी परमार्थ सत्ताही कहीहै, ताका यह तात्पर्य है:—शुद्धपदार्थसैं विशिष्ट भिन्न होवै है, यातैं अनात्मामैं आत्माके संबंधका अध्यास कह्या तहां संबंधविशिष्ट आत्माकाही अध्यास है, औ स्वरूपसैं आत्मा सत्य है, यातैं अध्यस्तकी परमार्थसत्ता स्वरूपदृष्टिसैं कहैहै औ अध्यस्त कल्पित होवैहै, यातैं अनात्मसम्बंधविशिष्ट कल्पित होवै तौभी शुद्ध कल्पित होवै नहीं. काहेतैं ? शुद्धसैं विशिष्टकूं भिन्न होनेतैं विशिष्टकी कल्पितता शुद्धमैं होवै नहीं, औ केवल आत्मसंबंधके अध्यास कहनेतैं संबंधविशिष्ट आत्माका अध्यास कहना औ अध्यस्तकी परमार्थसत्ता कहनाही श्रेष्ठ है. काहेतैं ? केवलसंबन्धका अध्यास कहैं तौ अधिष्ठानकी आरोपितस विषमसत्ता संभवै नहीं. काहेतैं ? आत्माका संबन्ध अन्तःकरणमैं अध्यस्त है औ स्फुरणरूपचेतनका तादात्म्यसंबन्ध घटादिकनमैं अध्यस्त है. काहेतैं ? "घटः स्फुरति" यह व्यवहार घटमैं स्फुरणसंबंधसैं प्रतीत होवै है. चेतनके संबन्धके अधिष्ठान अंतःकरण औ घटादिक व्यावहारिक हैं; तिनमैं चेतनका संबंधभी व्यावहारिक हैं. प्रातिभासिक नहीं, चेतनका संबंध प्रातिभासिक होवै तौ ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध हुया चाहिये औ बाध होवै नहीं, यातैं आत्मसंबंधकी औ अधिष्ठान अनात्माकी व्यावहारिक

सत्ता होनेतैं विषमसत्ता नहीं होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै नहीं यातैं संबन्धविशिष्ट आत्माका अनात्मामैं अध्यास है औ विशेष्य भागकी परमार्थ सत्ता होनेत विशिष्टकी परमार्थ सत्ता है. अधिष्ठानकी व्यावहारिक सत्ता है; यातैं दोनूंकी विषमसत्ता होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै है, औ स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी है ताकी स्वरूपसैं पारमार्थिक सत्ता है, औ पदाथनकी प्रातिभासिक सत्ता है यातैं अधिष्ठानतैं विषमसत्ता होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै है.

यद्यपि सत्तास्वरूप चेतन है, ताका भेद कहना संभवै नहीं, **तथापि** चेतनस्वरूपसत्तासैं सत्ता नाम भिन्न पदार्थ है, तामैं उत्कर्ष अपकर्ष हैं ताके पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक तीनि भेद हैं. प्रातिभासिकमभी उत्कर्षापकर्ष हैं.स्वप्नमैं कितने पदार्थ प्रतीत होवैहैं; तिनका स्वप्नमैं ही बाध होवै हैं. जिनका जाग्रतमैं बाध होवै तिनमैं स्वप्नमैं बाधितपदार्थनकी अपकृष्टसत्ता हैं; इसरीतिसैं चेतनस्वरूपसत्तासैं भिन्नसत्ताका स्वरूप श्रुतिमैं लिख्या है "सत्यस्य सत्यं प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यमिति" औ रजतकी सत्तासैं शुक्तिकी सत्ता उत्कृष्ट है यह सर्वकूं अनुभव होवै है, यातैं उत्कर्षापकर्षवाली सत्ता चेतनसैं भिन्न है; इसरीतिसैं अध्यासका लक्षण कह्या.

अध्यासका अन्यलक्षण ॥ १० ॥

और अध्यासका अन्यलक्षण यह है:—अपने अभावके अधिकरणमैं आभासकूं अध्यास कहैहैं. शुक्तिमैं रजतका पारमार्थिक औ व्यावहारिक अभाव है औ रजत अनिर्वचनीय है, यातैं रजताभावका अधिकरण जो शुक्ति तासैं रजतकी प्रतीति औ ताका विषय होनेतैं रजतावभास है, यातैं अध्यास है. इसरीतिसैं कल्पितके अधिकरणमैं कल्पितका अभाव होनेतैं सारै अध्यासमैं यह लक्षण संभवै है.

एक अधिकरणमैं भावाभावके विरोधका शंका औ समाधान ॥११॥

यद्यपि एक अधिकरणमैं भावाभावका विरोध होवै है. संयोग औ ताका

अभावभी एक अधिकरणमैं मूळादिक देशके भेदसैं रहैं हैं एक देशमैं रहैं नहीं; यातैं एक अधिकरणमैं भावाभाव संभवै नहीं, तथापि पदार्थनका विरोध अनुभवके अनुसार कहियेहै. केवल भावाभावका विरोध नहीं है, किंतु घटत्व पटत्व दोनूं भाव हैं; एक अधिकरणमें रहै नहीं तिनका विरोध है औ द्रव्यत्व घटत्वका विरोध नहीं; तैसैं घटके अधिकरण भूतलमैं अतीत कालविशिष्ट घटका अभाव है, यातैं शुद्ध घटाभावतैं घटका विरोध है;विशिष्टघटाभावतैं घटका विरोध नहीं; तैसैं संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैं समवायसंबंधावच्छिन्न पटाभाव है,तासैं घटका विरोध नहीं. तैसैं समानसत्तावाले प्रतियोगी अभाव एक अधिकरणमैं रहै नहीं;विषम सत्तावाले प्रतियोगीका अभावसैं विरोध नहीं;कल्पितके अभावकी पारमार्थिक सत्ता है अथवा व्यावहारिक सत्ता है. कल्पितकी प्रातिभातिक सत्ता है यातैं विरोध नहीं जहां शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां व्यावहारिक रजत है नहीं, यातैं रजतका व्यावहारिक अभाव है.औ पारमार्थिक रजत तौ कहूं भी नहीं होनेतैं रजतका पारमार्थिक अभाव **केवलान्वयी** है, यातैं शुक्तिमैं रजतका पारमार्थिक अभावभी है औ अनिर्वचनीय रजत औ ताका ज्ञान एककालमैं उपजे है, औ एक कालम दोनूंका नाश होवैहै; यातैं रजत प्रातिभासिक है.प्रतीतिकालमैं जाकी सत्ता होवै प्रतीतिशून्यकालमैं होवै नहीं ताकूं **प्रातिभासिक** कहैहै. इसरीतिसैं भ्रमज्ञान औ ताके विषय अनिर्वचनीय उपजें हैं. सत् असत्सैं विलक्षणकूं **अनिर्वचनीय** कहैहैं. औ ताका अभाव व्यावहारिक है, यातैं प्रतियोगी अभावका परस्पर विरोध नहीं. व्यावहारिक अभावका व्यावहारिक प्रतियोगीसैं विरोध है.

अध्यासके प्रसंगमैं च्यारि शंका ॥ १२ ॥

या प्रसंगम च्यारि शंका होवैहैं.स्वप्नप्रपंचका अधिष्ठान साक्षी है यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं?जिस अधिष्ठानमैं जो आरोपित होवै तिस अधिष्ठानसैं संबद्ध प्रतीत होवैहै जैसैं शुक्तिमैं आरोपित रजत है सो "इदं

रजतम्" इस रीतिसैं शुक्तिकी इदंतासैं संबन्ध प्रतीत होवै है, आत्मामैं कर्तृत्वादिक आरोपित हैं सो "अहं कर्त्ता" इसरीतिसैं संबन्ध प्रतीत होवै है, तैसैं स्वप्नके गजादिक साक्षीमैं आरोपित होवैं तौ " अहं गजः मयि गजः" इसरीतिसैं साक्षीसैं संबद्ध गजादिक प्रतीत हुये चाहियें.

औ दूसरी शंका यह है:—शुक्तिमैं रजताभाव व्यावहारिक है औ पारमार्थिक है, यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतें ? अद्वैतवादमैं एक चेतनही पारमार्थिक है तासैं भिन्नकूं पारमार्थिक मानैं तौ अद्वैतवादकी हानि होवैगी. पारमार्थिक रजत है नहीं, यातैं पारमार्थिक रजतका अभाव है यह कहना तौ संभवै है औ पारमार्थिक अभाव है यह कहना संभवै नहीं.

तृतीय शंका यह है:—शुक्तिमैं अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्ति नाश होवैहै, यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतें ? जो रजतके उत्पत्ति नाश होवैं तौ घटके उत्पत्तिनाशकी नाईं रजतकी उत्पत्तिनाश प्रतीत हुये चाहियें जैसैं घटकी उत्पत्ति होवै तब घट उपजै है इसरीतिसैं घटकी उत्पत्ति प्रतीत होवै है औ घटका नाश होवैहै, तब घटका नाश हुया इसरीतिसैं घटका नाश प्रतीत होवैहै; तैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति होवै तब रजतकी उत्पत्ति हुई इसरीतिसैं उत्पत्ति प्रतीत हुई चाहिये औ रजतका ज्ञानसैं नाश होवै तब रजतका शुक्तिदेशमैं नाश हुया. इसरीतिसैं नाश प्रतीत हुया चाहिये औ शुक्तिमैं केवल रजत प्रतीत होवैहै ताके उत्पत्तिनाश प्रतीत होवैं नहीं, यातैं शास्त्रांतरकी रीतिसैं अन्यथाख्याति आदिक ही समीचीन हैं अनिर्वचनीयख्याति संभवै नहीं.

चतुर्थ शंका यह है:—सत् असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीय रजतादिक उपजैहैं यह पूर्व कह्या सो सर्वथा असंगत है. सत्सैं विलक्षण असत् होवैहै औ असत्सै विलक्षण सत होवैहै. सत्सैं विलक्षणता है औ असत् नहीं यह कथन विरुद्ध है, तैसैं असत्सैं विलक्षण है औ सत् नहीं यह कथनभी विरुद्ध है ये च्यारि शंका हैं.

उक्त च्यारि शंकाके समाधान ॥ १२ ॥

तिनके क्रमतैं ये समाधान हैंः-साक्षीमैं स्वप्नअध्यास होवै तौ "अहं गजः, मयि गजः" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये. या शंकाका यह समाधान है पूर्व अनुभवजनित संस्कारसैं अध्यास होवै है. पूर्व अनुभव होवै वैसाही संस्कार होवै है, औ संस्कारके समान अध्यास होवै है. सर्व अध्यासोंका उपादान कारण तौ अविद्या समान है; परंतु निमित्तकारण पूर्वानुभवजन्य संस्कार है, सो विलक्षण है. जैसा अनुभवजन्यसंस्कार होवै वैसाही अविद्याका परिणाम होवै है, जिसपदार्थका अहमाकारज्ञानजन्य संस्कार सहित अविद्या होवै तिसपदार्थका अहमाकर अविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है. जिसका ममताकार अनुभवजन्यसंस्कारसहित अविद्या होवै तिस पदार्थका ममताकार अविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है. जिस पदार्थका इदमाकार अनुभवजन्य संस्कारसहित अविद्या होवै तिसपदार्थका इदमाकार अविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है, स्वप्नके गजादिकनका पूर्व अनुभव इदमाकारही हुया है; अहमाकारादिक अनुभव हुया नहीं; यातैं अनुभवजन्यसंस्कारभी गजादिगोचर इदमाकारही होवै है, यातैं "अयं गजः" ऐसी प्रतीति होवै है, "मयि गजः अहं गजः" ऐसी प्रतीति होवै नहीं. संस्कार अनुमेय है, कार्यके अनुकूल संस्कारकी अनुमिति होवै है, संस्कारजनक पूर्व अनुभवभी अध्यासरूप है, ताका जनक संस्कारभी इदमाकारही होवै है, अध्यासप्रवाह अनादि है यातैं प्रथम अनुभवके इदमाकारतामैं कोई हेतु नहीं यह शंका संभवै नहीं. काहेतैं ? अनादिपक्षमैं कोई अनुभव प्रथम नहीं, पूर्वपूर्वसैं उत्तर सारे अनुभव हैं.

औ अभावकूं पारमार्थिक मानैं तौ अद्वैतकी हानि होवगी; या द्वितीयशंकाका यह समाधान हैः-सकल पदार्थ सिद्धांतमैं कल्पित हैं; तिनका अभाव पारमार्थिक है, सो ब्रह्मरूप है, यह भाष्यकारकूं संमत है; याम युक्ति आगे कहैंगे; इसकारणतैं अद्वैतकी हानि नहीं.

औ शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति मानैं तौ उत्पत्तिकी प्रतीति हुई चाहिये याका यह समाधान हैः—शुक्तिमैं तादात्म्यसंबंधसैं रजत अध्यस्त है औ शुक्तिकी इदंताका संबंध रजतमैं अध्यस्त है; यातैं "इदं रजतम्" इसरीतिसैं रजत प्रतीत होवै है. जैस शुक्तिके इदंताका संबन्ध रजतमैं अध्यस्त है, तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्व धर्म है, रजतप्रतीतिकालतैं प्रथम सिद्धकूं प्राक्सिद्ध कहैं हैं रजतप्रतीतिकालतैं प्रथम सिद्ध शुक्ति है, इसरीतिसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्व धर्म है ताके संबंधका अध्यासभी रजतमैं होवै है; इसीवास्तै "इदानीं रजतम्" यह प्रतीति नहीं होवै है, "प्राग्जातं रजतं पश्यामि" यह प्रतीत होवै है, या प्रतीतिका विषय प्राग्जातत्व है सो रजतमैं है नहीं; किंतु रजतमैं इदानींजातत्व है औ प्राग्जातत्व रजतमैं प्रतीत होवैं हैं. तहां रजतमैं अनिर्वचनीय प्राग्जातत्वकी उत्पत्ति मानैं तौ गौरव होवै है; शुक्तिके प्राग्जातत्वकी रजतमैं प्रतीति मानैं तौ अन्यथाख्याति माननी होवै है औ ऐसे स्थानमैं अन्यथाख्यातिकूं मानैं भी हैं, तथापि शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वधर्मका अनिर्वचनीय संबंध रजतमैं उपजै है, यह पक्ष समीचीन है. इसरीतिसैं शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वके संबन्धकी प्रतीतिसैं उत्पत्ति प्रतीतिका प्रतिबन्ध होवै है. काहेतैं ? प्राक्सिद्धता औ वर्तमान उत्पत्ति दोनूं परस्पर विरोधि हैं. जहां प्राक्सिद्धता होवै तहां अतीत उत्पत्ति होवै है. वर्तमान उत्पत्ति होवै तहां प्राक्सिद्धता होवै नहीं; इसरीतिसैं शुक्तिवृत्ति प्राक्सिद्धत्वके संबंधकी प्रतीतिसैं उत्पत्ति प्रतीतिका प्रतिबन्ध होनेतैं रजतकी उत्पत्तिहुयेभी उत्पत्ति प्रतीति होवै नहीं. औ जो कह्या रजतका नाश होवै तौ ताकी प्रतीति हुई चाहिये ताका यह समाधान हैः—अधिष्ठानका ज्ञान होवै तब रजतका नाश होवै है सो अधिष्ठानज्ञानतैं रजतका बाध निश्चय होवै है; शुक्तिमैं कालत्रयमैं रजत नहीं इस निश्चयकूं बाध कहैं हैं, ऐसा निश्चय नाश प्रतीतिका विरोधी है काहेतैं ? नाशमैं प्रतियोगी कारण होवै है औ बाधसैं प्रतियो-

गीका सर्वदा अभाव भासै है; जाका सर्वदा अभाव है ऐसा ज्ञान होवै ताकी नाशबुद्धि संभवै नहीं किंवा जैसा घटा कनका मुद्गरादिकनसैं चूर्णीभावरूप नाश होवैहै तैसा कल्पितका नाश होवै नहीं; किंतु अधिष्ठानके ज्ञानतैं अज्ञानरूप उपादानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवैहै. अधिष्ठानमात्रका अवशेषही अज्ञानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवैहै सो अधिष्ठान शक्ति है ताका अवशेषरूप रजतका नाश अनुभवसिद्ध है; यातैं रजतके नाशकी प्रतीति होवै नहीं यह कथन साहसतैं है.

औ सत् असत्सैं विलक्षण कथन विरुद्ध है. या चतुर्थ शंकाका यह समाधान है:—जो स्वरूपरहितकूं सद्विलक्षण कहैं औ विद्यमानस्वरूपकूं असद्विलक्षण कहैं तौ विरोध होवै काहेतैं? एकही पदार्थमैं स्वरूपराहित्य औ स्वरूपसाहित्य संभवै नहा; यातैं सदसद्विलक्षणका उक्त अर्थ नहीं; किंतु कालत्रयमैं जाका बाध नहीं. होवै ताकूं सत् कहैं हैं; जाका बाध होवै सो सद्विलक्षण कहिये शशशृंग वंध्यापुत्रकी नाई स्वरूपहानकूं असत् कहैहैं तासैं विलक्षण स्वरूपवान् होवै है; इसरीतिसैं बाधके योग्यस्वरूपवाला सदसद्विलक्षण शब्दका अर्थ है. सद्विलक्षण शब्दका बाध योग्य अर्थ है, स्वरूपवाला इतना अर्थ असद्विलक्षण शब्दका है.

पूर्व उक्त अध्यासके भेदका अनुवाद औ तामैं उदाहरण ॥ १४ ॥

इसरीतिसैं जहां भ्रमज्ञान है तहां सारे अनिर्वचनीय पदार्थकी उत्पत्ति होवैहै, कहूं संबंधीकी उत्पत्ति होवै है. जैसैं शुक्तिमैं रजतकी उत्पत्ति है; औ रजतमैं शुक्तिवृत्ति तादात्म्यके संबंधकी उत्पत्ति होवै है, शुक्तिवृत्ति स्वतादात्म्यकी रजतमैं अन्यथाख्याति नहीं; तैसैं शुक्तिमैं प्राक्सिद्धत्व धर्म है, ताके अनिर्वचनीय संबंधकी रजतमैं उत्पत्ति होवैहै ताकीभी अन्यथाख्याति नहीं, इसरीतिसैं अन्योन्याध्यासकाभी यह उदाहरण है. औ संबंधाध्यासका यह उदाहरण है, संबंधीअध्यासकाभी यह उदाहरण है; औ अनिर्वचनीयवस्तुकी प्रतीतिकूं ज्ञानाध्यास कहैं हैं; औ ज्ञानके अनिर्वचनीयविषयकुं

अर्थाध्यास कहैं हैं; यातैं ज्ञानाध्यास अर्थाध्यासका भी यह उदाहरण है; औ रजतत्वधर्मविशिष्ट रजतका शुक्तिमैं अध्यास है,यातैं धर्मी अध्यासकाभी यह उदाहरण है;जहां अन्योन्याध्यास होवै तहां दोनूंका परस्पर स्वरूपसैं अध्यास नहीं होवैहै,किंतु आरोपितका स्वरूपसैं अध्यास होवै है औ सत्यवस्तुका धर्म अथवा संबंध अध्यस्त होवै है संबंधाध्यासभी दो प्रकारका होवै है. कहूं धर्मके संबंधका अध्यास होवैहै. जैसैं उक्त उदाहरणमैं शुक्तिवृत्ति इदंतारूप धर्मके संबंधका रजतमैं अध्यास है औ "रक्तःपटः" या स्थानमैं कुसुंभवृत्ति रक्तरूप धर्मके संबंधका पटमैं अध्यास है, औ दर्पणमैं मुखके संबधका अध्यास होवैहै. अंतःकरणका आत्मामैं स्वरूपसैं अध्यास है, औ अंतःकरणमैं आत्माका स्वरूपसैं अध्यास नहीं; किंतु आत्मसंबंधका अध्यास होनेतैं आत्माका संसर्गाध्यास है, ज्ञानस्वरूप आत्मा है अंतःकरण नहीं; औ ज्ञानका संबंध अंतःकरणमैं प्रतीत होवै है, यातैं आत्माके संबंधका अंतःकरणमैं अध्यास है.तैसैं "घटः स्फुरति,पटःस्फुरति" इसरीतिसैं स्फुरणसंबंध सर्व पदार्थनमैं प्रतीत होवै है,यातैं आत्मसंबंधका निखिलपदार्थनमैं अध्यास है, आत्मामैं काणत्वादिक इंद्रिय धर्म प्रतीत होवैं हैं, यातैं काणत्वादिक धर्मनका आत्मामैं अध्यास है औ इंद्रियनका आत्मामैं तादात्म्य अध्यास नहीं है;काहेतैं? "अहं काणः" ऐसीप्रतीति होवै है औ "अहं नेत्रम्" ऐसी प्रतीति होवै नहीं;यातैं नेत्रधर्म काणत्वका आत्मामैं अध्यास है;नेत्रका अध्यास नहीं;धर्माध्यासका उदाहरण है. यद्यपि नेत्रादिक निखिल प्रपंचका अध्यास आत्मामैं है, तथापि ब्रह्मचेतनमैं समग्र प्रपंचका अध्यास है, त्वंपदार्थमैं निखिल प्रपंचका अध्यास नहीं, अविद्याका ऐसा अद्भुत महिमा है, एकही पदार्थका एक धर्मविशिष्टका अध्यास होवैहै, अपर धर्मविशिष्टका अध्यास होवै नहीं. जैसैं ब्राह्मणत्वादि धर्मविशिष्ट शरीरका आत्मामैं तादात्म्याध्यास होवैहै शरीरत्वविशिष्ट शरीरका अध्यास होवै नहीं. इसीवास्ते विवेकीभी "ब्राह्मणोऽहम् मनुष्योऽहम्" ऐसा व्यवहार करैहै. औ "शरीरमहम्" ऐसा व्यवहार विवेकीका होवै नहीं;यातैं अवि-

याका अद्भुत महिमा होनेतैं इंद्रियके अध्यासविना आत्मामैं काणत्वादिक धर्मनका अध्यास संभवै है यह **धर्माध्यासका उदाहरण** है. अन्याश्रित होवै स्वतंत्र होवै नहीं ताकूं **धर्म** कहैं हैं यातैं, संबंधभी धर्मही है; ताका अध्यासभी **धर्माध्यास** ही है, परंतु **धर्म दोप्रकारका** होवेहैः-एक तौ प्रतियोगी अनुयोगीकी प्रतीतिके अधीन प्रतीतिका विषय होवै है औ कोई धर्म अनुयोगी मात्रकी प्रतीतिके अधीन प्रतीति विषय होवै है; औ कदाचित् अनुयोगी प्रतीति विना केवल धर्मकीभी प्रतीति होवैहै; जैसैं घटत्वादिकनकी प्रतीतिमैं अनयोगी मात्रकी प्रतीतिको अपेक्षा है, औ घटत्व नित्य है इत्यादिवाक्यजन्य प्रतीतिम अनुयोगी प्रतीतिकीभी अपेक्षा नहीं इसरीतिसं दो प्रकारका धर्म होवैहै; अनुयोगी प्रतियोगीकी प्रतीतिविना जाकी प्रतीति होवै नहीं. ऐसे धर्मकूं संबंध कहैंहैं औ घटत्वादिकनकूं **केवल धर्म** कहैंहैं संबंध कहैं नहीं; इसरीतिसैं संबंधाध्यासभी धर्माध्यासही है; उक्तरीतिसैं सकलभ्रममैं दोनूं लक्षण संभवै हैं; अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला **अवभास अध्यास** कहिये है. अथवा स्वभावाधिकरणमैं **अवभास अध्यास** कहिये है, भ्रमकालमैं अनिवचनीय विषय औ ताका ज्ञान उपजै है; यातैं दोनं लक्षण अध्यासके संभवै हैं, परंतु परोक्ष अपरोक्ष भेदसैं **भ्रम दो प्रकारका** हैः-अपरोक्ष भ्रमके उदाहरण तौ कहे औ जहां वह्निशून्य देशमैं वह्निका अनुमितिज्ञान होवै सो **परोक्ष भ्रम** है सो इसरीतिसैं होवै हैः-महानसत्व वह्निका व्याप्य नहीं है औ महानसमैं बारंबार वह्निदेखके महानसत्वका व्याप्यताभ्रम होय जावै, तहां वह्निशून्य कालमैं ऐसा अनुमान होवै "इदं महानसं वह्निमत् महानसत्वात्, पूर्वदृष्टमहानसवत्" इसरीतिस महानसमैं वह्निका **अनुमितिरूप भ्रमज्ञान** होवै है औ विप्रलंभक वाक्यसैं वह्निका शब्दभ्रम होवैहै सो दोनूं परोक्ष ज्ञान हैं. जहां परोक्षभ्रम होवै तहां अनिर्वचनीय विषकी उत्पत्ति मानी नहीं; किंतु तिस देशमैं असत् वह्निकी प्रतीति होवैहै, यातैं अध्यासलक्षणका

लक्ष्य तौ परोक्षभ्रम नहीं है. औ वह्निके अभावाधिकरणमैं वह्निकी प्रतीति होनेतैं स्वाभावाधिकरणमैं अवभास है, विषय औ ज्ञानकूं अवभास कहै हैं, वह्निके अभावाधिकरणमैं वह्निका परोक्ष ज्ञानरूप अवभास होनेतैं उक्त लक्षणकी यद्यपि अतिव्याप्ति होवैहै तथापि लक्षणमैं अवभासपदसैं अपरोक्ष ज्ञानका ग्रहण है; यातैं परोक्षभ्रमविषै अध्यासलक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं. जहां परोक्षभ्रम होवै, तिसंस्थानमैं तौ जिसरीतिसैं नैयायिकादिक अन्यथाख्यात्यादिकनसैं निर्वाह करैं हैं, तासैं विलक्षण कहनेमैं अद्वैतवादी आग्रह नहीं है; अपरोक्ष भ्रमविषै ही पारिभाषिक अध्यास विलक्षण मानैं हैं काहेतैं ? कर्तृत्वादिक अनर्थभ्रम अपरोक्ष है, ताके स्वरूपमैं ज्ञाननिवर्त्यताके अथ अध्यासका निरूपण है, यातैं अपरोक्ष भ्रमकूं ही दृष्टांतताके अथ अध्यासताप्रतिपादनमैं आग्रह है. परोक्ष भ्रमविषै शास्त्रांतरसैं विलक्षणता कहनेमैं प्रयोजन नहीं औ अपरोक्षभ्रमविषै उक्तरीतिसैं लक्षणका समन्वय होवै है.

सिद्धांतसंमतअनिर्वचनीय ख्यातिकी रीति सांप्रदायिकमत ॥ १९ ॥

सिद्धांतमैं अनिर्वचनीय ख्याति है ताकी यह रीति है:—जहां रज्जु आदिकनमैं सर्पादिक भ्रम होवै तहां अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु है; यातैं रज्जुका इदमाकार सामान्यज्ञान होवैहै सो सामान्यज्ञान दोषसहित नेत्ररूपप्रमाणसैं उपजैहै यातैं प्रमा है. तिस दोषसहित नेत्रजन्य इदमकारवृत्त्यवच्छिन्न चेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्पज्ञान होवै है ताकूं ज्ञानाभास कहैं है; दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं संबंध हुये अंतःकरणकी इदमाकारवृत्ति तौ रज्जुदेशमैं गई, यातैं प्रमातृचेतन औ इदमवच्छिन्न चेतनकी उपाधिएकदेशमैं होनेतैं प्रमातृचेतनसैं इदमवच्छिन्नचेतनका भेद रहै नहीं, यातैं रज्जुका सामान्य इदंरूप प्रत्यक्ष है औ प्रत्यक्ष विषयका इदमाकार ज्ञानभी प्रत्यक्ष है जिस विषयका प्रमातृचेतनसैं अभेद होवै सो विषय

प्रत्यक्ष कहिये है और प्रत्यक्ष विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये, अथवा प्रमाण चेतनसैं विषयचेतनका अभेदही ज्ञानके प्रत्यक्षत्वका प्रयोजन कहै उक्तस्थलमैं प्रमातृचेतनका अभेदही वृत्तिद्वारा हुआ है; यातैं वृत्तिरूप प्रमाणचेतनका विषयचेतनसैं अभेदभी अबाधित है.जैसे तडागजलका कुलीद्वारा केदारजलसैं अभेद होवै. तहां कुलीजलकाभी केदारजलसैं अभेद होवै है इहां तडागजलसमान **प्रमातृचेतन** है, कुलीसमान वृत्ति औ कुलीजलसमान **वृत्तिचेतन** है,केदारसमान विषय औ केदार ्गनजलसमान **विषयचेतन** है **यद्यपि** उक्त दृष्टांतसे विषयचेतनका तौ प्रमातृचेतनसैं अभेद संभवै है,परंतु प्रमातृचेतनसैं घटादिक विषयका अभेद संभवै नहीं.जैसैं तडागजलसैं कुलीद्वारा केदारजलका अभेद होवै है औ पार्थिवकेदारका तडागजलसैं अभेद होवै नहीं,यातैं घटादिक विषयके प्रत्यक्षमैं प्रमातृचेतनसैं अभेद हेतु कह्या सो संभवै नहीं **तथापि** प्रमातृचेतनसैं अभेद विषयके प्रत्यक्षत्वका हेतु है; या कहनेतैं प्रमातृचेतनकी औ विषयकी एकता विवक्षित नहीं है. किंतु प्रमातृचेतनकी सत्तासैं विषयकी पृथक् सत्ता नहीं होवै; किंतु प्रमातृचेतनकी सत्ताही जा विषयकी सत्ता होवै सो **विषय प्रत्यक्ष** होवै है, यह अर्थ विवक्षित है. घटका अधिष्ठान घटावच्छिन्न चेतन है, रज्जुका अधिष्ठान रज्ज्ववच्छिन्न चेतन है; इसरीतिसैं विषयनका अधिष्ठान विषयावच्छिन्नचेतन है. औ अधिष्ठानकी सत्तासैं पृथक् अध्यस्तकी सत्ता होवै नहीं;किंतु अधिष्ठानकी सत्ताही अध्यस्तकी सत्ता होवै, यातैं विषयावच्छिन्न चेतनकी सत्तासैं विषयकी पृथक् सत्ता नहीं है. औ अन्तःकरणकी वृत्तिद्वारा प्रमातृचेतनका विषयचेतनसैं अभेद होवै तब प्रमातृचेतनभी विषयचेतनसैं अभिन्न हुवा विषयका अधिष्ठान होवैहै, यातैं अपरोक्षवृत्तिके विषयका अधिष्ठान जो प्रमातृचेतन ताकी सत्तासैं विषयकी भिन्न सत्ताका अभाव ही प्रमातृचेतनसैं विषयका अभेद कहिये है. सो उक्तरीतिसैं संभवै है, इसीवास्तै अपरोक्ष स्थलमैं विषय देशमैं

वृत्तिका निर्गमन मान्य है. जैसैं कुलीके संबंधविना तडागजलकी औ केदारजलकी एकता होवै नहीं. तैसैं वृत्तिसंबंधविना प्रमातृचेतन औ विषयचेतनकी एकता होवै नहीं. यातै जैसैं परोक्षज्ञानकालमैं प्रमातृचेतन औ विषयचेतनके भेदतैं प्रमातृचेतनसैं भिन्न सत्तावाला विषय होनेतैं प्रमातृचेतनसैं अभिन्नसत्तावाला विषय नहीं होवै है; तैसैं वृत्तिके निर्गमनविना अपरोक्षज्ञानकालमैंभी भिन्नसत्तावाला विषय होवैगा यातैं विषयदेशमैं वृत्तिका निर्गमन मान्या है; इस रीतिसैं "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इत्यादिक अपरोक्षभ्रमज्ञानकी उत्पत्ति होवै तहां भ्रमसैं अव्यवहित पूर्व कालमैं भ्रमका हेतु अधिष्ठानका सामान्यज्ञान होवै सो प्रत्यक्षरूपप्रमा होवै है, तिसतैं सर्पादिक विषय औ तिनका ज्ञान उपजै है यह सांप्रदायिक मत है ।

उक्त अनिर्वचनीयख्यातिरूप अर्थमैं शंका औ संक्षेप शारीरका समाधान ॥ १६ ॥

परंतु अपरोक्ष प्रमासैं अज्ञानकी निवृत्ति नियमतैं होवैहै यह वार्ता अष्टमप्रकाशतैं प्रतिपादन करैंगे; यातैं रज्जुशुक्ति आदिकनकी इदमाकार अपरोक्ष प्रमासभी विषयचेतनके अज्ञानकी निवृत्ति हुयातैं उपादानके अभावतैं सर्पादिक औ तिनके ज्ञानकी उत्पत्ति संभवै नहीं.

याका समाधान संक्षेपशारीरकानुसारी इसरीतिसैं कहैंः—इदमाकार वृत्तिसैं विषयके इदंअंशके अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै; औ रज्जुत्वशुक्तित्वादिक विशेषअंशके अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं; औ रज्जुत्वशुक्तित्वादिक विशेष अंशके ज्ञानतैंही अध्यासकी निवृत्ति होनेतैं विशेषअंशका अज्ञानही अध्यासका हेतु है. सामान्यअंशका अज्ञान अध्यासका हेतु नहीं जो सामान्यअंशका अज्ञानभी अध्यासका हेतु होवै तौ इदमाकार सामान्य ज्ञानसैंभी अध्यासकी निवृत्ति हुई चाहिये. काहेतैं ? जिसके अज्ञानसैं भ्रम होवै तिसके ज्ञानसैं नष्ट होवै यह नियम है, यातैं अंशके इदम्

अज्ञानकी अध्यासमैं अपेक्षा नहीं, प्रत्युत इदमाकार नेत्रप्रमाकी अपरोक्ष अध्यासमैं अपेक्षा है. काहेतैं ? रज्जुआदिकनतैं नेत्रका संयोग होवै तौ सर्पादिकनका अपरोक्षभ्रम होवै है, नेत्रके संयोगविना होवै नहीं; यातैं नेत्रजन्य अपरोक्ष प्रमारूप अधिष्ठानका सामान्यज्ञानही अध्यासका हेतु है, तहां अन्य प्रकारसैं तौ सामान्यज्ञानका अध्यासमैं उपयोग संभवै नहीं. अध्यासके उपादान अज्ञानका क्षोभ सामान्यज्ञानसैं होवैहै यह मानना चाहिये. इस रीतिसैं अधिष्ठानके सामान्य ज्ञानकूं अध्यासमैं कारणता होनेतैं इदंताअंशका अज्ञान अध्यासका हेतु नहीं.

कवितार्किकचक्रवर्त्तिनृसिंह भट्टोपाध्यायके मतका अनुवाद औ अनादर ॥ १७ ॥

औ कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायनैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं अध्यासमैं हेतुताका निषेध कह्या है; औ अधिष्ठानसैं नेत्रसंयोग होवै तौ सर्पादिक अध्यास होवै,नेत्रसंयोग नहीं होवै तौ सर्पादिक अध्यास होवै नहीं.इसरीतिसैं इंद्रियअधिष्ठानके संयोगके अन्वयव्यतिरेकतैं जो सामान्य ज्ञानकूं अध्यासकी कारणता पूर्व कही है तिस अन्वयव्यतिरेकसैंभी इंद्रिय-अधिष्ठानके संयोगकंही अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै है. इंद्रियसंयोग-जन्य सामान्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै नहीं. काहेतैं?अन्वय-व्यतिरेकसैं कारणताका निश्चय होवै है, साक्षात्कारणता संभवै; जहां परंपरातैं कारणताका कल्पन अयोग्य है;यातैं इंद्रिय संयोगके अन्वयव्यतिरेकसैं अध्यासमैं इंद्रिय अधिष्ठानके संयोगकूंही साक्षात्कारणता रचित है. अधिष्ठान-के सामान्यज्ञानद्वारा इंद्रियसंयोगकूं कारणता कहना उचित नहीं, जैसैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानसैं अविद्यामैं क्षोभ मान्या है तैसैं अधिष्ठान इंद्रियके संयोगतैंही क्षोभ मानना चाहिये.औ अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं अध्यासमैं हेतु नहीं मानैं तौ अध्यासतैं पूर्व इदमाकार अपरोक्षप्रमा होनेतैं जो अज्ञान-निवृत्तिकी शंका है औ समाधान है सोभी निर्मूल होवै है. यहभी अनुकूल

लाघव है. इसरीतिसैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकी अध्यासमैं कारणताका निषेध कवि तार्किक चक्रवर्ती नृसिंहभट्टोपाध्यायने कह्या है सभी अद्वैतवादी है, तथापि सांप्रदायिक वचनतैं ताकी उक्ति विरुद्ध है; यातैं ताकी उक्तिका खंडन इसी प्रसंगमैं विस्तारसैं कहैंगे.

यातैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु होनेतैं इदंताअंशके अज्ञानकी अध्यासमैं अपेक्षा नहीं; इसीवास्तै संक्षेपशारीरकमैं अधिष्ठान आधारका भेद कह्या है;सविलास अज्ञानका विषय अधिष्ठान कहिये है. कार्यकूं विलास कहैंहैं,सर्पादिक विलाससहित अज्ञानका विषय रज्जु आदिक विशेषरूप होनेतैं सर्पादिकनका अधिष्ठान रज्जु आदिक विशेषरूप है, अध्यस्तसैं अभिन्न होयकै जाका स्फुरण होवै सो आधार कहिये है. "अयं सर्पः,इदं रजतम्"इत्यादिक भ्रमप्रतीतिमैं अध्यस्त सर्परजतादिकनतैं अभिन्न होयकै सामान्य इदं अंशका स्फुरण होनेतैं सामान्य अंश आधार है यामतमैं अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता होवैहै. या नियमके स्थानमैं आधार अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता होवै है, यह नियम है;जो अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता मानैं तौ रज्जुशुक्ति आदिक विशेषरूपकूं अधिष्ठानता होनेतैं "रज्जुः सर्पः शुक्ती रूपम्"ऐसा भ्रम हुया चाहिये, औ सामान्य इदंअंशकूं आधारता है अधिष्ठानता नहीं, यातैं"अयं सर्पः इदं रजतम्" ऐसा भ्रम नहीं चाहिये, यातैं विशेष अंशका अज्ञानही अध्यासका हेतु है; या मतमैं आधार अध्यस्तकूं ही एक ज्ञानकी विषयता माननी चाहिये.

अध्यासकी कारणतामें पंचपादिका विवरणकारका मत ॥ १८ ॥

औ पंचपादिकाविवरणकारके मतको अनुसारी तौ यह कहैं हैं:— आवरणविक्षेपभेदसैं अज्ञानकी दो शक्ति हैं, आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका ज्ञानसैं विरोध होनेतैं नाश होवैहै,विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका ज्ञानसैं विरोध नहीं; यातैं ज्ञानसैं ताका नाश होवे नहीं यह वार्ता अवश्य

अंगीकरणीय है अन्यथा जलप्रतिबिंबित वृक्षके ऊर्ध्वभागमैं अधोदेशस्थत्व भ्रम होवै तहां वृक्षका विशेषरूपतैं ज्ञानहुयेभी ऊर्ध्वभागमैं अधोदेशस्थत्व अध्यासकी निवृत्ति होवै नहीं, तैसैं जीवन्मुक्त विद्वान्‌कूं ब्रह्मात्मका विशेषरूपतैं ज्ञानहुयेंभी अंतःकरणादिरूप विक्षेपकी निवृत्ति होवै नहीं, तहां उक्त स्थलकी नाईं सामान्यरूपस ज्ञान औ विशेषरूपसैं अज्ञान तौ कहना संभवै नहीं. विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानअंशकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं, आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशकीही ज्ञानसैं निवृत्ति होवै है, यही समाधान है. तैसैं रज्जुशुक्ति आदिकनके सामान्यज्ञानतैं इदंअंशक आवरणका हेतु अज्ञानांशका नाश होवै है, औ सर्परजतादिक विक्षेप हेतु अज्ञानांशका नाश होवै नहीं; यातैं इदमाकार सामान्यज्ञान हुयेभी सर्पादिक विक्षेपका हेतु इदंअंशका अज्ञानभी संभवै है. इस रीतिसैं इदमाकार सामान्यज्ञान हुयेंभी सविलास अज्ञानका विषय रज्जु आदिक सामान्य अंश संभवै हैं, यातैं अधिष्ठानताका इदंअंशमैं संभव होनेतैं अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता संप्रदायसैं प्राप्त है ताकाभी विरोध नहीं.

पंचपादिका औ संक्षेपशारीरकके मतकी विलक्षणता औ तामें रहस्य ॥ १९ ॥

संक्षेपशारीरककी रीतिसैं विशेष अंशमैं अधिष्ठानता है सामान्यअंशमैं अधिष्ठानता नहीं औ विशेष अंशमैं आधारता नहीं, या मतमैं सामान्य अंशमैं अधिष्ठानता है; इतना भेद है. औ विशेष अंशमैं आधारताका अभाव इसमतमैंभी समान है. काहेतैं अध्यस्तमैं अभिन्न होयक प्रतीत होवै सो आधार कहियेहैं. "रज्जुः सर्पः" इसरीतिसैं जो प्रतीत होवै तौ अध्यस्तसे अभिन्न होयके विशेष अंश प्रतीति होवै, उक्त रीतिसैं प्रतीत होवै नहीं यातैं विशेषरूपतैं रज्जु आधार नहीं इसरीतिसैं प्रथमपक्षमैं इदंत्वरूपतैं रज्जुमैं औ शुक्तिमैं प्रमाणजन्यज्ञानकी प्रमेयता है औ रज्जुत्वरूपतैं तथा शुक्तित्वरूपतैं प्रमेयताके अभावतैं अज्ञातत्व होनेतैं सर्प औ रजतका अधिष्ठानता है.

औ द्वितीय पक्षमैं आवरणशक्ति विरोधिप्रमाकी विषयतारूप प्रमेयता इदंत्वरूपतैं है तथापि विक्षेपशक्तिवाले अज्ञानकी विषयता ज्ञातमैंभी संभवै है यातैं इदंत्वरूपतैं ही रजतादिकनकी अधिष्ठानता है.

या स्थानमैं यह रहस्य है:--अज्ञानकृत आवरण चेतनमैं होवैहै औ स्वभावसैं आवृतरूप जन्मांधके समान जड़पदार्थनमैं अज्ञानकृत आवरणका अंगीकार नहीं, तैसैं प्रमाणजन्यज्ञानकी विषयतारूप प्रमेयताभी चेतनमैं है घटादिक जड़पदार्थनमैं आवरण होवै तौ ताकी निवृत्तिके अर्थ प्रमेयताका अंगीकार होवै, चेतनमैं अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता होनेतैं चेतनमैंही ज्ञातता औ प्रमेयता है, तैसैं सकल अध्यासका अधिष्ठानभी चेतन है. जड पदार्थ आप अध्यस्त हैं, अन्यके अधिष्ठान संभवै नहीं; यातैं रज्जुशुक्ति आदिकनमैं अज्ञातता तथा ज्ञातता औ अधिष्ठानता किसी प्रकारसैं संभवै नहीं तथापि मूलाज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता औ निरवयवावच्छिन्न विभु चेतनमैंहै,परन्तु तूलाज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता तिसतिस विषयावच्छिन्न चेतनमैं है, यह अर्थ अष्टमप्रकाशमैं कहैंगे तैसैं ब्रह्मज्ञानकी विषयतारूपज्ञाततता तो निरवयवावच्छिन्न चेतनमैं है औ घटादिज्ञानकी विषयतारूप ज्ञातता घटाद्यवच्छिन्नचेतनमैं है.तैसैं अविद्याकी अधिष्ठानता निरवयवावच्छिन्नचेतनमैं है. औ भूतभौतिक प्रपंचकी अधिष्ठानता अज्ञानावच्छिन्नम है. औ प्रातिभासिकसर्परजतादिकनकी अधिष्ठानता रज्जुअवच्छिन्न शुक्तिअवच्छिन्नादिक चेतनमैं है. इसरीतिस चेतनमैं अज्ञातता ज्ञातता अधिष्ठानतादिकनके अवच्छेदक जडपदार्थ हैं;यातैं अवच्छेदकता संबंधसैं जडपदाथनमभी अज्ञाततादिकनका संभव होनेतैं रज्जु अज्ञात है, ज्ञातहै, सर्पका अधिष्ठानहै इसरीतिसैंभी व्यवहार संभवै है., इसरीतिसैं सर्पादिभ्रमका हेतु रज्जुआदिकनतैं इंद्रियके संयोगतैं इदमाकार सामान्यज्ञान प्रमारूप अंतःकरणकी वृत्ति होवै है, तिस सामान्यज्ञानतैं क्षोभवती अविद्याका सर्पादिरूप परिणाम औ सर्पादिकनका ज्ञानरूप परिणाम होवै है. रज्जुआदिक विषयउपहित चेतनस्थ

अविद्यांशका सर्पादिक विषयाकार परिणाम होवै है, इदमाकारवृत्त्युपहितचेतनस्थ अविद्यांशका ज्ञानाकार परिणाम होवै है, रज्जुअवच्छिन्नचेतन सर्पका अधिष्ठान है औ इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचेतन सर्पज्ञानका अधिष्ठान है.

विषयउपहित औ वृत्तिउपहितचेतनके अभेदमैं शंकासमाधान २०

यद्यपि इदमाकार प्रत्यक्षवृत्ति होवै तहां विषयोपहितचेतन औ वृत्त्युपहितचेतनका अभेद होवै है. यातैं उक्तरीतिसैं विषय औ ज्ञानके उपादानका भेदकथन औ अधिष्ठानका भेदकथन संभवै नहीं. औ सर्पादिक विषयके अधिष्ठानतैं ज्ञानके अधिष्ठानकूं भिन्न मानोगे तौ सर्पादिकनके अधिष्ठान ज्ञानतैं सर्पादिकनके ज्ञानकी निवृत्ति नहीं होवैगी, काहेतैं? अपने अधिष्ठानके ज्ञानतैं अध्यस्तकी निवृत्ति होवै है, अन्यके अधिष्ठानज्ञानतैं अध्यस्तकी निवृत्ति होवै तौ सर्पके अधिष्ठान रज्जुके ज्ञानतैं अध्यस्तसंसारकी निवृत्ति हुई चाहिये; यातैं एकके ज्ञानतैं सर्पादिक विषय औ तिनके ज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ दोनूंका अधिष्ठान एकही मानना योग्य है.

या शंकाका यह समाधान है:—जहां एक वस्तुका उपाधिकृत भेद होवै तौ उपाधिकी निवृत्तिसैं अभेद होवै है, औ दोनूं उपाधि एकदेशमैं होवैं तहांभी उपहितका अभेद होवै है, परंतु उपाधिके एकदेशस्थत्वसैं जहां उपहितका अभेद होवै है तहां एकही धर्मीमैं तत्त्व उपाधिके दो धर्म रहैहैं जैसैं एक आकाशका घट मठ उपाधिभेदसैं भेद होवै तहां घट मठके नाशतैं अभेद होवै है औ मठदेशमैं घटके स्थापनतैंभी घटाकाशमठाकशतैं भेद रहै नहीं, तौ भी घटाकाशसैं घटोपहितत्व औ मठोपहितत्व दो धर्म रहैं हैं औ धर्मी एक है तथापि जितनैं घट मठ दोनं रहैं उतने काल घटाकाश मठाकाश यह दोनूं व्यवहार होवैं हैं; तैसैं रज्जुआदिक विषय देशमैं वृत्तिके निर्गमनकालमैं वृत्त्युपहितचेतनसैं विषयचेतनका यद्यपि अभेद होवैहै तथापि दोनूं उपाधिके सद्भावतैं वृत्त्युपहितत्व रज्जूपहितत्व दो धर्म रहैं हैं; तिनसैं सर्पा-

दिकविषयकी अधिष्ठानताका अवच्छेदक धर्म रज्जूपहितत्व है. औ सर्पादिकनके ज्ञानकी अधिष्ठानताका अवच्छेदक धर्म वृत्त्युपहितत्व है इस रीतिसैं सर्पादिक विषयोपादान अज्ञानांशकी चेतनमैं अधिकरणताका अवच्छेदक रज्जूपहितत्व है. औ भ्रांतिज्ञानोपादान अज्ञानांशकी चेतनमैं अधिकरणताका अवच्छेदक वृत्त्युपहितत्व है इसरीतिसैं एकदेशमैं उपाधिके होनेतैं उपहितका अभेद हुयेंभी धर्मनका भेद रहै है. यातैं वृत्त्युपहितत्वावच्छिन्न चेतननिष्ठ अज्ञानांशमैं भ्रमज्ञानकी उपादानता है, औ रज्जुआदिक विषयोपहितत्वावच्छिन्न तिसी चेतननिष्ठ अज्ञानांशमैं भ्रमके विषयकी उपादानता है. तैसैं वृत्त्युपहितत्वावच्छिन्नचेतनमैं भ्रमज्ञानकी अधिष्ठानता है; औ रज्जु आदिक विषयोपहितत्वावच्छिन्न तिसी चेतनमैं सर्पादिक विषयकी अधिष्ठानता है. या प्रकारतैं उपाधिके सद्भावकालमैं एकदेशस्थ उपाधिके होनेतैं उपहितका अभेद हुयेंभी उपाधिपुरस्कारतैं भेदव्यवहारभी होवैहै; औ भिन्नदेशमैं उपाधि होवै तब केवल भेदव्यवहार होवै है; उपाधिकी निवृत्ति होवै तब भेदव्यवहार होवै नहीं. केवल अभेदव्यवहार होवै है; याप्रकारतैं वृत्ति औ विषय दोनूं एकदेशस्थ होवैं तब चेतनका अभेद हुयेंभी उपाधिपुरस्कारतैं पूर्व उक्त उपादान औ अधिष्ठानका भेदकथन असंगत नहीं. औ स्वरूपमैं उपहितका अभेद है यातैं एक अधिष्ठानके ज्ञानतैं सर्पादिक विषय औ तिनके ज्ञानकी निवृत्तिभी संभवै है.

रज्जुआदिकनकी इदमाकार प्रमातैं सर्पादिकनका भ्रमज्ञान होवै तामैं दो पक्ष ॥ २१ ॥

रज्जु आदिकनकी इदमाकार प्रमातैं सर्पादिकनका भ्रमज्ञान होवै तहां दो पक्ष हैंः—कोई तौ कहै है "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इसरीतिसैं अधिष्ठानगत इदंताकूं औ ताके सर्प रजतादिकनमैं संबंधकूं विषय कर्ता हुवा सर्परजतादिगोचरभ्रम होवै है. अधिष्ठानकी इदंताकूं औ इदंताके संबंधकूं त्यागिके केवल सर्परजतादिगोचर अपरोक्ष भ्रम होवै नहीं; जो केवल

अध्यस्त गोचरही भ्रम होवै तौ " सर्पः, रजतम्" ऐसा आकार ऐसा भ्रमका हुया चाहिये. औ " इमं सर्पं जानामि, इदं रजतं जानामि" भ्रमका अनुव्यवसायभी इदंपदार्थसैं तादात्म्मापन्न सर्परजतादिगोचरव्यवसायकूं विषय करै है, औ कल्पित सर्पादिकनमैं इदंता है नहीं. काहेतैं ? वर्तमानकाल औ पुरोदेशका संबंध इदंता होवै है. व्यावहारिक देशकालका प्रातिभासिकसैं व्यावहारिक संबंध संभवै नहीं, औ अधिष्ठानकी इदंताकी कल्पितमैं प्रतीतिसैं व्यावहारिक निर्वाह होनेतैं कल्पितमैं इदंताका अंगीकार निष्फल है; औ अन्यथाख्यातिसैं विद्वेष होवै तौ अधिष्ठानकी इदंताकी कल्पितमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है, कल्पितमैं इदंताका अंगीकार नहीं तथापि संबंधीकूं त्यागिकै केवल संबंधका ज्ञान होवै नहीं; यातैं अधिष्ठानकी इदंताकूं त्यागिकै केवल अध्यस्तगोचर अपरोक्षभ्रम होवै नहीं इसरीतिसैं इदं पदार्थकी द्विधा प्रतीति होवै है, एक तौ इंद्रियअधिष्ठानके संयोगतैं इदमाकार प्रमा अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रतीति होवै है, औ दूसरो वृत्त्युपहितचेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्प रजतादि गोचरभ्रम प्रतीति होवै है. सोभी अध्यस्तमैं इदं पदार्थके तादात्म्यकूं विषय कर्ती हुई इदंगोचर होवै है, इसरीतिसैं सारै अपरोक्षभ्रम इदमाकार हुये अध्यस्ताकार होवै है कोई आचार्य ऐसैं मानैं हैं.

और बहुत ग्रंथकार यह कहैं हैंः—अधिष्ठान इंद्रियके संयोगतैं इदमाकार अन्तःकरणकी वृत्तिरूप प्रमातैं क्षोभवाली अविद्याका केवल अध्यस्ताकार परिणाम होवै है अविद्याका इदमाकार परिणाम होवै नहीं. काहेतैं ? व्यावहारिक पदार्थाकार अविद्याका परिणाम संभवै नहीं; साक्षात् अविद्याजन्य प्रातिभासिक पदार्थाकारही अविद्याका परिणाम भ्रमज्ञान होवै है, यातैं अधिष्ठानकी इदंतामैं भ्रमज्ञानकी विषयता नहीं, केवल अध्यस्तमैंही भ्रमकी विषयता है.

और जो पूर्वमतमैं कह्या है " अयं सर्पः, इदं रजतम्" ऐसा भ्रमका

आकार होवै है; तैसैं "इदं रजतं जानामि" यह भ्रमका अनुव्यवसाय होवै है. जो अध्यस्तमात्रगोचर भ्रम होवै तौ "सर्पः रजतम्" ऐसा भ्रमका आकार हुया चाहिये औ "रजतं जानामि" ऐसाही अनुव्यवसाय हुया चाहिये.

ताका यह समाधान है:—जैसैं सर्प रजतादिकनके अधिष्ठानगत इदंताका अध्यस्तमैं भान होवै अथवा अधिष्ठानगत इदंताका अध्यस्त सर्पादिकनमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है, तैसैं सर्पादिज्ञानाभासका अधिष्ठान इदमाकार प्रमावृत्ति है, ता प्रमावृत्तिमैं इदंपदार्थ विषयकत्व है. ताकी प्रतीति सर्पादिभ्रममैं होवै है, अथवा प्रमावृत्तिरूप अधिष्ठानमैं जो इदंपदार्थ विषयकत्व ताका अनिर्वचनीय संबंध सर्पादिज्ञाननमैं उपजै है; यातैं इदमाकारत्व शून्यभ्रम ज्ञानमैं इदमाकारत्वकी प्रतीति होवै है; यद्वा इदमाकारवृत्ति उपहित चेतनही सर्पादिज्ञानाभासका अधिष्ठान है, उक्तवृत्त्युपलक्षित जो अधिष्ठान होवै तौ उक्त वृत्तिसैं दो च्यारि घटिकाके व्यवधान हुयेभी सर्पादिक भ्रम हुया चाहिये. काहेतैं ? उपलक्षणवालेकूं उपलक्षित कहैं है. औ उपलक्षणमैं वर्तमानत्वकी अपेक्षा नहीं यह अर्थ आगे कहैंगे. औ वक्ष्यमाण रीतिसैं उपाधिमैं वर्तमानत्वकी अपेक्षा है, इदमाकार वृत्ति जाकी उपाधि होवै सो इदमाकारवृत्त्युपहित कहिये है; यातैं सर्परजतादिकनका भ्रमज्ञान होवै तिसकालमैं अंतःकरणकी इदमाकार वृत्ति भी रहै है यह अवश्य मानना चाहिये. काहेतैं ? अधिष्ठानकी सत्ताकालसैं अतिरिक्तकालमैं अध्यस्त होवै नहीं यातैं भ्रमज्ञानके समयमैं वृत्त्युपहितचेतनकी अधिष्ठानताकी उपयोगिनी इदमाकार अंतःकरणकी वृत्ति रहै है, औ रजताकार अविद्यावृत्ति होवै है. इसरीतिसैं "अयं सर्पः, इदं रजतम्" यह दो ज्ञान हैं, इदमाकार प्रमावृत्ति है, औ सर्प रजतादिक आकारवाली भ्रमवृत्ति है, अवच्छेदकतासंबंधसैं भ्रमवृत्तिका इदमाकारप्रमावृत्ति अधिष्ठान है, अध्यस्तका अभेद संबंध होवै है. जैसैं ब्रह्म औ प्रपंचका "सर्वमिदं ब्रह्म"

इस प्रतीतिका विषय अभेद है यातैं "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इसरीतिसैं उभयवृत्तिका अभेद प्रतीत होवै है. यद्यपि उक्तरीतिसैं वृत्तिद्वय होवै तौ अधिष्ठान अध्यस्त दोनूं एक ज्ञानके विषय होवैं हैं, यह प्राचीनवचन असंगत होवैगा, तथापि एक ज्ञानके विषय होवैं हैं; याका यह अर्थ नहीं; एक वृत्तिके विषय होवैं हैं; किंतु अधिष्ठान औ अध्यस्त एक साक्षीके विषय होवैं हैं यह प्राचीनवचनका अर्थ है, रज्जुशुक्ति आदिकनके देशमैंही सर्प रजतादिक होवैं हैं, औ इदमाकारवृत्तिभी रज्जु शुक्ति आदिकदेशमैं जावै है यातैं इदमाकारवृत्ति उपहित साक्षीके अधिष्ठान औ अध्यस्त विषय हैं. इस रीतिसैं अधिष्ठान औ अध्यस्त एक ज्ञानके विषय होवैं हैं. इस प्राचीन वचनमैं ज्ञानपदका साक्षी अर्थ है वृत्ति नहीं. यातैं भ्रमवृत्तिकूं अध्यस्तमात्र गोचरता माननेमैं बहुत आचार्योंकी संमति है.

कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायका मत ॥ २२ ॥

औ कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्याय तौ यह कहै हैं:— भ्रांतिज्ञानमैं विना प्रमारूप इदमाकार ज्ञान भ्रमका हेतु होवै नहीं किंतु "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इसरीतिसैं भ्रमरूप एकही ज्ञान होवै है. काहेतैं ? भ्रमसैं पूर्व इदंपदार्थाकार प्रमारूप सामान्य ज्ञान रज्जुशुक्ति आदिकनका मानैं ताकूं यह पूछै हैं:—अनुभवके अनुसारतैं ज्ञानद्वयका अंगीकार है अथवा भ्रमरूप कार्यकी अनुपपत्तिसैं भ्रमभिन्न सामान्यज्ञानका अंगीकार है ? जो अनुभवके अनुसारतैं ज्ञानद्वय कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रथम मतमैं तौ इदंपदार्थगोचर दो वृत्ति कही हैं. एक तौ प्रमारूप अन्तःकरणकी इदमाकार वृत्ति कही औ दूसरी अविद्याकी भ्रमरूप वृत्ति इदंपदार्थकूं विषय करती हुई रजतगोचर "इदं रजतम्" इस रीतिसैं कही. या मतमैं इदंपदार्थकी द्विधा प्रतीति कही, सो किसीके अनुभवमैं आरूढ होवै नहीं. सर्प रजतादि ज्ञानकी नाईं इदंगोचरज्ञानभी एकही अनुभवसिद्ध है; यातैं प्रथममतः अनुभवानुसारी नहीं. औ द्वितीय मतमैं

इदंपदार्थके दो ज्ञान तौ नहीं माने परंतु "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इत्यादिक दो ज्ञान माने हैं. इदमाकार तौ प्रमा मानी है. औ सर्परजतादिगोचर भ्रम मान्या है; सोभी अनुभवसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? रज्जु शुक्तिके ज्ञानतैं सर्परजतके बाधसैं उत्तर कोई पूछेः—तेरेकूं कैसा भ्रम हुयाथा ताका यह उत्तर कहैं हैंः—"अयं सर्पः, इदं रजतम्" ऐसा भ्रम मेरे कूं होता भया. औ इदमाकार प्रमा हुई.सर्पाकार रजताकार भ्रम हुया ऐसा उत्तर कोई कहै नहीं,यातैं द्वितीयमतकी रीतिसैंभी ज्ञानद्वयका अंगीकार अनुभवविरुद्ध है, यातैं इंद्रियजन्य अन्तःकरणकी वृत्तिरूप इदमाकारज्ञान प्रमा है, औ इदमाकार ज्ञानजन्य सर्परजतादिगोचर इदंपदार्थविषयक अथवा इदंपदार्थविषयक अविद्याकी वृत्तिरूप ज्ञानाभास है. इसरीतिसैं ज्ञानद्वयका अंगीकार अनुभवानुसारी नहीं.

उपाध्यायके मतमैं सामान्यज्ञान (धर्मिज्ञान) वादीकी शंका औ समाधान ॥ २३ ॥

औ जो सामान्यज्ञानवादी यह कहैंः—रज्जु आदिकनतैं इंद्रियसंयोग होवै तौ सर्पादिक अध्यास होवै है, इंद्रियसंयोग नहीं होवै तौ अध्यास होवै नहीं; इस रीतिके अन्वयव्यतिरेकतैं इंद्रियका अधिष्ठानसैं संयोगकूं अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै है, अधिष्ठान इंद्रियके संयोगकूं अधिष्ठानके ज्ञानद्वाराही कारणता संभवै है, अन्य प्रकारसैं अधिष्ठान इंद्रियसंयोगका अध्यासमैं उपयोग संभवै नहीं. जो अध्यासकी कारणता कहैं तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? अधिष्ठान इंद्रियके संयोगविनाभी अहंकारादिक अध्यास होवै है; यातैं अध्यासमात्रमैं अधिष्ठानज्ञानका सामान्यज्ञानहेतु है. अहंकारादिक अध्यासका अधिष्ठान प्रत्यक्स्वरूप आत्मा है सो स्वयंप्रकाश है. सर्पादिक अध्यासके अधिष्ठानका सामान्यज्ञान इंद्रियसंयोगतैं होवैहै, इस रीतिसैं निजप्रकाशशून्य अधिष्ठानके सामान्यज्ञानद्वाराही इंद्रिय संयोगका अध्यासमैं उपयोग है;साक्षात् उपयोग नहीं; यातैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञानही अध्यासका कारण है, अध्यास कार्य है. जहां कार्य प्रतीत होवै औ

कारण प्रतीत होवै नहीं तहां कार्यकी अन्यथाअनुपपत्तिसैं कारणकी कल्पना होवै है. भ्रमस्थलमैं इदमाकार प्रमा यद्यपि अनुभवसिद्ध नहीं है, तथापि भ्रमरूप कार्यकी सामान्यज्ञानरूप कारणविना अनुपपत्ति होनेतैं सामान्य ज्ञानकी कल्पना होवै है.

इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहैं तौ संभवै नहीं. अध्यासके हेतु सामान्यज्ञानकूं **धर्मिज्ञान** कहैं हैं, या प्रसंगमैं सामान्यज्ञानकूं अध्यास कारण मानैं सो पूर्वपक्षी हैं. औ सामान्यज्ञानका **अपलापी उपाध्याय सिद्धांती** है. ताकी उक्ति कहैं हैंः–सामान्यज्ञानविना कोईभी अध्यास नहीं होवै तौ अध्यासकी कारणता सामान्यज्ञानमैं संभवै अधिष्ठानके सामान्यज्ञानविना घटादिक अध्यास होवै है, यातैं अध्यासमात्रमैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं कारणता नहीं. धर्मिज्ञानवादी जो घटादिक अध्यासतैं पूर्व सामान्यज्ञान कहै ताकूं यह पूछ्या चाहिये, घटादिक अध्यासका हेतु अधिष्ठानतैं नेत्रसंयोगजन्य अंतःकरणकी वृत्तिरूप सामान्यज्ञान है अथवा चेतनस्वरूप प्रकाशही सामान्यज्ञान है? जो प्रथमपक्ष कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं? घटादिक अध्यासका अधिष्ठान अज्ञानावच्छिन्न ब्रह्मनीरूपहै, यातैं ब्रह्मगोचर अंतःकरणकी चाक्षुषवृत्ति संभवै नहीं औ द्वितीय पक्ष कहै तौ स्वरूपप्रकाश आवृत है, तिस आवृत प्रकाशरूप सामान्यज्ञानकूं भी अध्यासका हेतु मानैं तौ रज्जु आदिकनतैं इंद्रियसंयोगविनाभी सर्पादिक अध्यास हुया चाहिये, यातैं आवृतप्रकाशरूप सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु नहीं इसरीतिसैं घटादिक अध्यासतैं पूर्व सामान्य ज्ञानके अभावतैं अध्यासमात्रमैं सामान्यज्ञानकी कारणताके अभावतैं अध्यासरूपकार्यकी अनुपपत्तिसैं सामान्य ज्ञानरूप इदमाकार वृत्तिका कल्पन होवै नहीं.

और जो धर्मिज्ञानवादी यह कहैंः–सकल अध्यासमैं अनावृतप्रकाशरूप सामान्यज्ञानकूं हेतु कहै तौ घटादि अध्यासमैं व्यभिचार कथन संभवै. अध्यासमात्रमैं तौ आवृत वा अनावृत साधारण प्रकाश हेतु है

औ प्रातिभासिक अध्यासमैं अनावृत प्रकाश हेतु है, जैसैं उपाध्यायके मतमैं सर्पादिक अध्यासके हेतु इंद्रियसंयोग मान्या है औ घटादिक अध्यासका हेतु इंद्रियसंयोग मान्या नहीं औ संभवै नहीं;यातैं इंद्रियसंयोगके अभावकालके सर्पादिक अध्यास होवै नहीं, औ घटादिक अध्यास इंद्रियसंयोगविनाभी होवै है, यह व्यवस्था संभवै है. तैसैं हमारे मतमैं प्रातिभासिक सर्पादिक अध्यासका हेतु अनावृतप्रकाश है, यातैं अवरणभंगके अर्थ सर्पादिक अध्यासतैं पूर्व इदमाकार सामान्यज्ञानरूप प्रमाकी अपेक्षा है, औ घटादिक अध्यासका हेतु साधारण प्रकाश है, यातैं अनावृतप्रकाशके सद्भावतैं घटादिक अध्यासमैं वृत्तिकी अपेक्षा नहीं यातैं सामान्यज्ञानरूप वृत्तिके अभावकालमैं सर्पादिक अध्यास होवै नहीं औ घटादिक अध्यास वृत्तिविना होवै है, यह व्यवस्था संभवै है धर्मिज्ञानवादीका यह कथनभी असंगत है; काहेतैं ? प्रातिभासिक अध्यासतैं पूर्व इंद्रियजन्यप्रमारूप अंतः-करणकी वृत्ति नियमतैं होवैहै,याकाभी शंखके पीतताध्यासमैं औ कूपजलके नीलताध्यासमैं व्यभिचार है; काहेतैं ? ब्रह्मज्ञानविना जाका बाध होवै सो प्रातिभासिक अध्यास कहिये है; शंखमैं पीतताका औ कूपजलमैं नीलताका बाधभी ब्रह्मज्ञानसैं प्रथमही शंखश्वेतताज्ञान औ जलश्वेतताज्ञानसैं होवै है, यातैं यहभी प्रातिभासिक अध्यास है, स्थानमैं धर्मिज्ञानवादीकी यह प्रक्रिया है:-प्रातिभासिक अध्यासमैं अनावृतप्रकाशकूं कारणताके नियमतैं शंख औ जलसैं नेत्रके संयोगतैं इदमाकार अन्तःकरणकी वृत्तिसैं अभिव्यक्तशंखावच्छिन्न चेतनमैं औ जलावच्छिन्न चेतनमैं पीतरूपका अध्यास होवै है औ उपाध्यायके मतमैं तौ शंखसैं औ जलसैं नेत्रका संयोग हुयें पीतरूपका औ नीलरूपका अध्यास होवै है, इदमाकार वृत्तिकी अपेक्षा नहीं; यातैं धर्मिज्ञानवादीकूं यह प्रष्टव्य है:-इदमाकारवृत्तिका विषय रूपविना केवल शंखादिक द्रव्य हैं अथवा रूपविशिष्ट शंख औ रूपविशिष्ट जल इदमाकार वृत्तिका विषय है. जो रूपकूं त्यागिकै केवल

द्रव्यकूं वृत्ति विषय करै है यह कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं ?, नेत्रजन्य वृत्तिका यह स्वभाव है रूपकूं विषय करै है; औ रूपविशिष्ट द्रव्यकूं विषय करै है, केवल द्रव्यकूं नेत्रजन्यवृत्ति विषय करै नहीं. औ रूपकूं त्यागिकै केवल द्रव्यकूं विषय करै तौ घटके चाक्षुषज्ञानवालेकूं घटके नीलतादिकनमैं संदेह हुया चाहिये. और रूपरहित पवनादि द्रव्यकाभी चाक्षुषज्ञान हुया चाहिये.यातैं केवल द्रव्यगोचर इदमाकार चाक्षुषवृत्ति शंखादिकनका सामान्यज्ञानरूप संभवै नहीं;औ रूपविशिष्ट शंखगोचर तथा रूपविशिष्ट जलगोचर वृत्ति कहै तौ यह प्रष्टव्य है:शुक्लरूपविशिष्ट शंखकूं औ शुक्लरूपविशिष्ट जलकूं यह वृत्ति विषय करैहै अथवा अध्यस्तरूप विशिष्टकूं विषय करैहै जो प्रथमपक्ष कहै तौ शुक्लरूपकूं विषय कर्ती हुई इदमाकारवृत्तिसैं उत्तरकालमैं पूर्ववृत्तिका विरोधि पीतभ्रम औ नीलभ्रम नहीं होवैगा; यातैं पीतभ्रमतैं औ नीलभ्रमतैं पूर्व शुक्लरूपविशिष्ट शंखजलका इदमाकार ज्ञान संभवै नहीं, तैसैं अध्यस्तरूपविशिष्टगोचर इदमाकार वृत्तिकूं मानैं तौ शंखमैं अध्यस्त पीतरूप है औ जलमैं अध्यस्त नीलरूप है, तद्विशिष्ट ज्ञानही भ्रम है. ताकूं भ्रमकी हेतुता कथनमैं आत्माश्रय होनेतैं संभवै नहीं.किंच धर्मिज्ञानवादी इदमाकार ज्ञान प्रमारूप ही अध्यासका हेतु है यह मानैं हैं; औ अध्यस्तरूप विशिष्टके ज्ञानकूं भ्रमत्व होनेतैं प्रमारूप धर्मिज्ञान अध्यासका हेतु है, यह धर्मिज्ञानवादीका भंग होवैगा; इसरीतिसैं शंखमैं पीतता भ्रमके औ जलम नीलताभ्रमके पूर्व अधिष्ठानका सामान्य ज्ञान संभवै नहीं, औ अधिष्ठान इंद्रियके संयोगका संभवै है,यातैं सामान्यज्ञानका व्यभिचार औ इंद्रियसंयोगका अव्यभिचार होनेतैं अध्यासका हेतु अधिष्ठानतैं इंद्रियका संयोग है, सामान्य ज्ञान हेतु नहीं; यह उपाध्यायका मत है.

प्राचीनआचार्य धर्मिज्ञानवादीका मत ॥ २४ ॥

औ प्राचीनआचार्य जो धर्मिज्ञानवादी हैं,धर्मिज्ञानका जो शंखपीतादिक अध्यासमैं व्यभिचार कह्या ताका समाधान यह कहैं हैं:—अध्यासमात्रमैं

सामान्यज्ञान हेतु नहीं, किंतु अध्यासविशेषमैं सादृश्यग्यानत्वरूपतैं सामान्यज्ञानकं कारणता कहनेकूं **अध्यासके भेद** कहैं हैं:—प्रातिभासिक अध्यास **दो प्रकारका** होवैहै, एक तौ धर्मीके विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य है औ दूसरा विशेषज्ञानतैं अप्रतिबध्य है. नीलपृष्ठता त्रिकोणतादिक विशेषधर्मके ज्ञान हुयें रजत अध्यास नहीं होवै, यातैं रजताध्यास तौ विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य है तैसैं सर्पादिक अध्यासभी जाननें, श्वेततारूप विशेषधर्मके ज्ञान हुयभी शंखमैं पीतताध्यास औ जलमैं नीलताध्यास होवै है; यातैं उक्त अध्यासविशेष ज्ञानसैं अप्रतिबध्य है, तैसैं रूपराहित्य विशेष धर्मके ज्ञान हुयभी आकाशमैं नीलताध्यासभी विशेषज्ञानसैं अप्रतिबध्य है, सितामैं कटुता अध्यासभी विशेषज्ञानसैं अप्रतिबध्य है; काहेतैं ? आकाश नीरूप है इस निश्चयवालेकूं औ अनेकबार सितामैं मधुरताके निश्चयवालेकूंभी आकाशमैं नीलताअध्यास औ पित्तदोषतैं सितामैं कटुताअध्यास होवै है; इसरीतिसैं द्विविध अध्यास है. तिसमैं अन्त्यअध्यास तौ अधिष्ठान अध्यस्तके सादृश्यज्ञानविनाही होवै है. अधिष्ठान अध्यस्तमैं विरोधी धर्म है, तहां सादृश्यका संभव नहीं औ परस्पर वैधर्म्यज्ञान हुयभी उक्त अध्यास होवैहै, यातैं भ्रमरूप सादृश्यज्ञानभी तिस अध्यासका हेतु नहीं, परंतु विशेषज्ञानसैं जाका प्रतिबंध होवै ऐसैं रजतसर्पादिक अध्यासमैं अधिष्ठानका अध्यस्तसैं सादृश्य ज्ञान हेतु है जो विशाषज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यासकंभी सादृश्यज्ञानजन्य नहीं मानैं औ दुष्ट इंद्रियसयोगजन्यही मानैं तौ शुक्तिमैं रजताध्यासकी नाईं दुष्ट नेत्रके संयोगतैं इंगालमैंभी रजताध्यास हुआ चाहिये. अग्निदग्धनीलकाष्ठकूं इंगाल कहैं हैं. रज्जुम सर्पाध्यासकी नाईं दुष्टनेत्रसंयोगतैं घटमैंभी सर्पाध्यास हुया चाहिये. इस रीतिसैं विशेषज्ञानसैं जाका प्रतिबंध होवै ऐसे प्रातिभासिक अध्यासमैं सादृश्यज्ञान हेतु है, सादृश्यज्ञानभी सामान्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानही है, शुक्तिमैं औ रूप्यमैं चाकचक्यरूप सादृश्य है रज्जुमैं औ

सर्पमैं भूमिसंबंध दीर्घत्व सादृश्य है, पुरुषमैं औ स्थाणुमैं उच्चैस्त्व सादृश्य है, याप्रकारतैं अधिष्ठान अध्यस्तमैं समान धर्मही सादृश्य पदार्थ है. ताके ज्ञानकूं सामान्य ज्ञान औ धार्मिज्ञान कहना संभवै है इसरीतिसैं विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य जो प्रातिभासिक अध्यास तामैं सादृश्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानही हेतु है, दुष्टइन्द्रियसंयोगका सादृश्यज्ञानद्वारा उक्त अध्यासमैं उपयोग है.

धर्मिज्ञानवादीके मतमैं उपाध्यायका शंका औ समाधान ॥ २९ ॥

औ जो उपाध्यायका अनुसारी इसरीतिसैं कहैः—प्रमातृदोष प्रमाणदोष प्रमेयदोषसैं धर्मिज्ञान प्रतिबध्य अध्यास होवै है, सादृश्यज्ञानकूं उक्त अध्यासका हेतु कहै तौ प्रमाताका धर्मज्ञान होवै है; यातैं प्रमातृदोषतैं अध्यासका हेतु होवैहै औ सादृश्यकूं अध्यासका हेतु कहै तौ विषय दोष हुआ अध्यासका हेतु होवै है. जैसैं प्रमातृदोषरूप सादृश्यज्ञानकूं अध्यास हेतु कहे, इंगालमैं रूपअध्यासकी आपत्तिका परिहार होवै तैसैं विषयदोषरूप सादृश्यकूं अध्यासहेतु मानेभी उक्त आपत्तिका परिहार होवै है. यातैं सादृश्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानकूं उक्त अध्यासका हेतु मानना निष्फल है. इसरीतिसैं उपाध्यायानुसारी कहै तौ धर्मिज्ञानवादीका यह समाधान हैः— दूरदेशतैं समुद्रके जलमैं नील शिलाका भ्रम होवै सोभी विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यास है. काहेतैं ? जलमैं शुक्लरूप औ जलत्वके ज्ञानसैं नीलशिला भ्रमका प्रतिबंध होवैहै, औ जलमैं नील शिलाका सादृश्य नहीं किंतु समुद्रजलमैं नीलरूपका भ्रम होयके नीलशिलाका भ्रम होवैहै, तहां नीलरूपका ज्ञानही भ्रमरूप सादृश्यज्ञान है; यातैं भ्रमप्रमासाधारण सादृश्यज्ञान ही उक्त अध्यासका हेतु है, स्वरूपतैं सादृश्य हेतु नहीं. और जो उपाध्यायानुसारी इसरीतिसैं कहैः—इंगालादिकनमैं रूप्यादिक अध्यासकी आपत्ति परिहारके अर्थ सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूं उक्त अध्यासकी कारणता मानैं हैं. अधिष्ठान अध्यस्तमैं समान धर्मरूप जो

सादृश्य है तासैं इंद्रियका स्वसंयुक्तता दात्म्यरूप संबंधही सादृश्यज्ञानकी सामग्री है.समुद्रजलमैं नीलशिलाके अध्यासका हेतु भ्रमस्वरूप सादृश्यज्ञान है, ताकी सामग्री दोषवत् इंद्रियका जलमैं संयोग है इसरीतिसैं जो सादृश्य-ज्ञानकी सामग्री सोई उक्त अध्यासकी हेतु है.सादृश्यज्ञानकूं जो अध्यासका हेतु मानैं तौभी सादृश्य ज्ञानमैं इंद्रिय संबंधकूं कारणता अवश्य माननी होवैहै. यातैं सादृश्यज्ञानके कारणकूं ही अध्यासमैं कारणता उचित है. तिन दोनूंके मध्य सादृश्यज्ञानका अंगीकार निष्फल है. शंखपीतादिक अध्यासमैं इंद्रियसंबंधकूंही कारणता है,तिस स्थानमैं सादृश्य ज्ञान संभवै नहीं; यातैं जहां सादृश्य ज्ञानकी अपेक्षा है तहांभी सादृश्यज्ञानकी सामग्री अध्यासके कारण है, सादृश्यज्ञानकूं कारणता नहीं. सादृश्यज्ञानकी सामग्री कूं अध्यासकी कारणता मानैं तौ सकल अध्यासमैं एक इंद्रियसंयोगकूं कारणता सिद्ध हो-नेतैं लाघव है;औ सादृश्यज्ञानकूं कारणता मानैं तौ विरूप अध्यासमैं इंद्रिय संयोगकूं हेतुता माननी औ सादृश्य अध्यासमैं सादृश्यज्ञानकूं हेतुता माननेमैं अध्यासके कारणद्वयकल्पनसैं गौरव है, यातैं जहां सादृश्यज्ञानकूं हेतु कहैं तहांभी सादृश्यज्ञानकी सामग्रीरूप इंद्रियसंबंधही अध्यासका हेतु है.

इसरीतिसैं उपाध्यायकी शंकाका धर्मिज्ञानवादी यह समाधानकरै है:-इन्द्रियसंबंधसैं ज्ञानकी उत्पत्तिही देखी है. यातैं रजतादिक विषयकी उत्पत्ति इंद्रियसंबंधसैं संभवै नहीं; औ सादृश्यज्ञानकूं अध्यासका हेतु मानें कारणद्वयकल्पन गौरव कह्या सो असंगत है. काहेतैं ? धर्मिज्ञानवादीकूं कारणद्वयके कल्पनमैं जैसैं द्वित्वसंख्याका कल्पन है, तैसैं उपाध्यायके मतमैं सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूंअध्यासका कारण कल्पनमैं कारणका अधिक-शरीरकल्पन है.सादृश्यज्ञान सामग्रीके स्वरूपमैं अंतर्भूत सादृश्यज्ञान है.यातैं उपाध्यायके मतमैं सादृश्यज्ञानसामग्री अधिक शरीरवती अध्यासकी हेतु माननी होवैहै, इसरीतिसैं लाघव गौरव तौ दोनूं मतमैं सम हैं. औ ज्ञानकी सामग्रीतैं विषयकी उत्पत्तिका असंभवरूप युक्तिका विरोध उपाध्यायके

मतमैं अधिक दोष है, यातै सादृश्यज्ञानही उक्त अध्यासका हेतु है. सादृश्यज्ञानकी सामग्री हेतु नहीं.

उपाध्यायकरि सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणताका खंडन ॥ २६ ॥

इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी सादृश्यज्ञानत्वरूपतैं सामान्यज्ञानकूं विशेषज्ञान प्रतिबध्य अध्यासमैं कारणता कहै तौ इसरीतिसैं उपाध्यायके मतमैं समाधान है:—विरूपमैंभी अध्यास होनेतैं सकल अध्यासमैं तौ सादृश्यज्ञानकूं कारणता संभवै नहीं; किंतु इंगालादिकनमैं रूप्यादिक अध्यासके परिहारवास्तै विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यासमैंही सादृश्यनकूं हेतुता मानैं हैं; तहांभी रूप्यादिक अध्यासमैं जैसैं नीलपृष्ठ त्रिकोणतादिकविशेषधर्मका ज्ञान अध्यासका प्रतिबंधक है. तैसैं विशेषधर्मज्ञानकी सामग्रीभी अध्यासका प्रतिबंधक होनेतैं इंगालादिकनमैं रूप्यादिक अध्यासकी आपत्ति होवै नहीं; यातैं सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी हेतुता माननी निष्फल है; तथाहि:—जिस पदार्थका ज्ञान जामैं प्रतिबंधक होवै तिस पदार्थके ज्ञानकी सामग्रीभी तिसका प्रतिबंधक होवैहै यह नियम है. जैसैं पर्वतमैं वह्निकी अनुमितिका प्रतिबंधक वह्न्यभावका ज्ञान है ताकी सामग्री वह्न्यभाव व्याप्यका ज्ञान है. काहेतें? व्याप्यके ज्ञानसैं व्यापकका ज्ञान होवैहै. जैसैं वह्निव्याप्यधूम है; ताके ज्ञानसैं व्यापकवह्निका ज्ञान होवै है. तैसैं वह्न्यभावके व्याप्य जलादिक हैं तिनके ज्ञानतैं वह्निके अभावका ज्ञान होवै है; यातैं वह्न्यभावके ज्ञानकी सामग्री वह्न्यभावके व्याप्यका ज्ञान है वह्निकी अनुमितिका प्रतिबंधक वह्न्यभावका ज्ञानहै. तिस वह्न्यभावज्ञानकी सामग्री वह्न्यभावके व्याप्यका ज्ञानभी वह्न्यनुमितिका प्रतिबंधक है; इसरीतिसैं प्रतिबंधक ज्ञानकी सामग्रीभी प्रतिबंधक होवैहै. यद्यपि प्रतिबंधककी सामग्रीकूं प्रतिबंधक कहैं तौ दाहका प्रतिबंधक जो मणि ताकी सामग्रीकूं दाहकी प्रतिबंधकताका व्यभिचार है. तथाहि:—प्रतिबंधक ज्ञानकी सामग्रीकूं प्रतिबंधकता माननैं व्यभिचार नहीं. इसरीतिसैं अध्यासका प्रतिबंधक जो विशेषज्ञान ताकी सामग्रीभी अध्यासका

प्रतिबंधक है, शुक्तिमैं रूप्य अध्यासका प्रतिबंधक नीलतारूप विशेष धर्मका ज्ञान है, ताकी सामग्री नीलभागव्यापी नेत्रसंयोग है. सोभी रूप्यअध्यासका प्रतिबंधक है. काहेतैं ? नीलभागमैं शुक्तिसैं नेत्रसंयोग हुयां शुक्तिज्ञानही होवै है, रूप्यभ्रम होवै नहीं शुक्तिके नीलतैं भिन्नभाग जो चाकचक्यदेश तासैं नेत्रका संयोग हुयें रूप्यभ्रम होवैहै, इस रीतिसैं नीलरूपवत् धर्मिका ज्ञान रूप्यअध्यासका प्रतिबंधक है औ नीलरूपके आश्रयतैं नेत्रका संयोगसंबन्ध तैसैं नीलरूपसैं नेत्रका संयुक्त तादात्म्यसंबंध प्रतिबंधज्ञानकी सामग्री है. सोभी रूप्यअध्यासका प्रतिबंधक है. इंगालतैं नेत्रका संबंध होवै तब नीलरूपविशिष्टसैंही; होवैहै; यातैं इंगालतैं नेत्रका संयोग औ ताके नीलरूपतैं संयुक्त तादात्म्य संबंधरूपप्रतिबंधक ज्ञानकी सामग्री होनेतैं इंगालमैं रूप्यअध्यासकी प्राप्तिहो नहीं, ताके परिहारके अर्थ सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी हेतुता माननी निष्फल है.

धर्मिज्ञानवादीकरि उपाध्यायके मतमैं दोष औ ताका परिहार ॥ २७ ॥

और जो धर्मिज्ञानवादी उपाध्यायके मतमैं यह दोष कहैः—पुण्डरीकाकार कर्तितपटमैं पुण्डरीकभ्रम होवैहै. विस्तृत पटमैं पुण्डरीकभ्रम होवै नहीं, यातैं सादृश्यज्ञान अध्यासका हेतु है.

ताकाभी अध्यास प्रतिबंधक विशेषज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासका प्रतिबन्धक माननेतैं समाधान होवै है. तथाहिः—विस्तारविशिष्टपटमैं नेत्रका संबंध पटके विशेष ज्ञानकी सामग्री है. जहां विस्तृतपटसैं नेत्रका संबंध होवैं तहां पुंडरीक अध्यास होवै नहीं. जहां पुण्डरीकाकारपटसैं नेत्रका संबंध होवै तहां पटके विशेषज्ञानकी सामग्रीका अभाव होनेतैं पुण्डरीकाध्यास होवै,

यद्यपि जहां समुद्रजलके समुदायमैं नील शिलातलका अध्यास होवै है तहां विशेषज्ञानकी सामग्री है. काहेतैं ? नेत्रसंयुक्त तादात्म्यसंबंध शुक्र

गुणस्वरूप विशेषज्ञानका हेतु है औ चाक्षुषज्ञानका हेतु जलसैं आलोक संयोगभी है, तैसैं जलराशित्वरूप विशेषका व्यंजकतरंगादिकनका प्रत्यक्षभी होवै है, इसरीतिसैं समुद्रके जलसमुदायके विशेषज्ञानकी सामग्रीमैं तीनिपदाथ हैं. शुक्लरूपसैं नेत्रसंयुक्त तादात्म्य १ आलोकसंयोग २ जलराशित्वका व्यंजक तरंगादि प्रत्यक्ष ३ इन तीनोंके हुयेंभी समुद्रके जलसमुदायमैं नीलशिलातलका भ्रम होवै है. यातैं विशेषदर्शनकी सामग्रीकूं अध्यासकी प्रतिबन्धकताका व्यभिचार है.

तथापि प्रतिबन्धकरहित विशेषदर्शनकी सामग्री अध्यासका प्रतिबंधक है; प्रतिबन्धकसहित विशेषदर्शनकी सामग्री अध्यासका प्रतिबन्धक नहीं जहां समुद्रके जलसमुदायमैं नील शिलातलका अध्यास होवै तहां समुद्रजलमैं नीलरूपका भ्रम होयकै नील शिलाका अध्यास होवैहै औ नीलरूपका भ्रमज्ञान होतें जलमैं शुक्लरूपका ज्ञान होवै नहीं. यातैं जलका विशेषधर्म जो शुक्लरूप ताके ज्ञानका प्रतिबंधक नीलरूपका भ्रम है तैसैं दूरत्व दोषसैं जलराशित्वका व्यंजक तरंगादिकका प्रत्यक्ष होवै नहीं; यातैं जलराशित्वरूप विशेषके ज्ञानका प्रतिबंधकदूरत्व दोष है; यातैं प्रतिबंधकसहित विशेषज्ञानकी सामग्री तौ है परंतु प्रतिबंधकरहित विशेषज्ञानकी सामग्रीही अध्यासकी विरोधिनी होनेतैं समुद्रजलसमुदायमैं नीलशिलातलका अध्यास होवै है, ताका प्रतिबंध होवै नहीं बहुत क्या कहैं ? सकल कारणसैं स्वकार्यकी उत्पत्ति प्रतिबंधकरहितसैंही होवै है. प्रतिबंधक होनेतैं किसी कारणतैं कार्य होवै नहीं; यातैं प्रतिबंधकका अभावभी सकलकार्यका साधारणकारण होनेतैं प्रतिबंधक होतें नेत्रसंयोगादिक सकल असाधारणकारण सद्भावमैंभी विशेषज्ञानकी सामग्री नहीं है, काहेतैं ? सकल कारण सहकारणकूं सामग्री कहैं हैं जहां अनेक कारण होवैं एक नहीं होवै तहां सामग्री होवै नहीं. इसरीतिसैं जलमैं नीलता-

भ्रमकूं शुक्लरूपके ज्ञानमें औ दूरत्वदोषकूं जलरागित्वज्ञानमें प्रतिबंधकता है तिस प्रतिबंधके होनेतें प्रतिबंधकाभाववहितविशेषज्ञानकी सामग्रीका अभाव होनेतें नीलशिलातल भ्रम संभवै है. इहां यह अर्थ ज्ञातव्य हैः— समीपस्थपुरुषके आलोकवाले देशमें नेत्रसंयोग हुये भी जलसमुदायमें नीलरूपका भ्रम होवै है यातें जलमें नीलरूपके भ्रमका विशेषज्ञानमें वा ताकी सामग्रीमें प्रतिबंध होवै नहीं यातें विशेषज्ञानमें अप्रतिबध्य होनेतें जलके शुक्लरूपतें नेत्रका संयुक्त तादात्म्यसंबंध हुयेभी जलमें नीलरूपताका भ्रम संभवै है. धर्मिज्ञानवादीके मतमें उक्त भ्रमही सामान्यज्ञानत्वरूपता समुद्रजलमें नीलशिलातल अध्यासका हेतु है. उपाध्यायके मतमें दोषत्वरूपतें विशेषज्ञानका प्रतिबंधक है वा प्रतिबंधकाभावरहितविशेषज्ञानकी सामग्रीके अभावसंपादनद्वारा शिलातल अध्यासका हेतु है. इस रीतिसें उपाध्यायके मतसें सामान्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानकूं अध्यासकी करणता नहीं है, तथापि इंगलादिकनमें रूप्याध्यासादिकनका अभाव संभवै है; यातें अध्यासमें धर्मिज्ञानकी कार्यताके अभावतें कार्यानुपपत्तिसें धर्मिज्ञानरूप इदमाकार प्रमावृत्तिका कल्पन संभवै नहीं; इस रीतिसें अनुभवानुसारतें व कार्यानुपपत्तिसे इदमाकारवृत्ति मानैं ताका निषेध किया.

उपाध्यायके मतसें धर्मिज्ञानवादीकी शंका औ समाधान ॥ २८ ॥

तथापि धर्मिज्ञानवादी यह कहैः—विषयतें इंद्रियका संबंध ही अन्तः-करणकी विषयाकार वृत्तिका हेतु है, शुक्तिआदिकविषयतें नेत्रका संयोग हुये इदमाकारवृत्ति किसप्रकारसें नहीं होवैगी ? अन्यत्र व्यासंग होवै तो विषयतें इंद्रियका संयोग हुयेभी तिस विषयकी ज्ञानरूप वृत्ति होवै नहीं अन्यत्र व्यासंगरहितकूं विषयतें इंद्रियसंयोग हुयें तिस विषयाकार वृत्ति अवश्य होवैहै. यातें अन्यत्र व्यासंगरूप प्रतिबंधकके अभावसहित नेत्रसंयोगतें रज्जुशुक्तिआदिकनकूं विषयकर्ती हुई अन्तःकरणकी इदमाकार

वृत्ति होवै है, सो वृत्ति नेत्रादिप्रमाणजन्य होनेतैं औ शुक्ति आदिकनकी अबाधित इदंतागोचर होनेतैं प्रमारूप होवै है इसरीतिसैं कारणसद्भावतैं इदमाकार प्रमाका कल्पना मानै तौ इसरीतिसैं उपाध्यायका समाधान हैः—यद्यपि नेत्रसंयोगादिकनतैं इदमाकार वृत्ति होवै है परन्तु दोषसहित नेत्रजन्य होवै है औ " इदं रजतम् " इसरीतिसैं स्वकालमैं उत्पन्न हुये मिथ्या रजतकूं विषयकर्ती हुयी होवै है; यातैं वह वृत्ति भ्रमरूप होवै है, प्रमा नहीं होवै है, उपाध्यायमतका यह निष्कर्ष हैः—दोषसहित इंद्रियके संबंधतैं विषयचेतननिष्ठ अविद्यामैं कार्यकी अभिमुखतारूप क्षोभ होयकै सर्परजतादि अविद्याका परिणाम होवै है. नेत्रसंयोगतैं उत्तर क्षणमैं अविद्यामैं क्षोभ होवै है, तिसतैं उत्तरक्षणमैं अविद्याका सर्प रजतादिक परिणाम होवै है. जिस क्षणमैं सर्परजतादिक अविद्याका परिणाम होवै है तिसी क्षणमैं तिन सर्परजतादिकनकूं विषय करनेवाला " इदं रजतम् " इस रीतिसैं अंतःकरणकी वृत्तिरूपज्ञान होवै है; जिस दुष्ट नेत्रसंयोगतैं अविद्यामैं क्षोभद्वारा सर्परजतादिकनकी उत्पत्ति होवै है तिसी संयोगतैं अंतःकरणके परिणामरूपवृत्तिज्ञानकी उत्पत्ति होवै है.

यद्यपि इंद्रियसंयोगतैं अव्यवहित उत्तरक्षणमैं ज्ञानकी उत्पत्ति मानैं हैं, औ नेत्रसंयोगतैं एक क्षणके व्यवधानसैं सर्प रजतादिकनकी उत्पत्ति कही. काहेतैं ? नेत्रसंयोगतैं उत्तरक्षणमैं अविद्याका क्षोभ कह्या तिसतैं उत्तरक्षणमैं सर्परजतादिकनकी उत्पत्ति कही; यातैं अविद्याके क्षोभकालमैं वृत्तिज्ञानकी उत्पत्ति संभवै है. तिसतैं उत्तरक्षणमैं भावि सर्परजतादिकनकी ज्ञानकालमैं उत्पत्तिकथनमैं विरोध प्रतीत होवै है.

तथापि विरोध नहीं. काहेतैं ? कार्यके अभिमुख अविद्याकी अवस्थाकूं क्षोभ कहैं हैं. जैसैं कार्यके अभिमुख होयकै अविद्या स्वकार्य सर्परजतादिकनकूं रचै है, तैसैं अंतःकरणभी नेत्रसंयोगतैं ज्ञानरूप कार्यके

अभिमुख होयकै ज्ञानकूं रचै है, यातैं अविद्याका नमैं प्रतिबंधक
स्वकार्याभिमुख अवस्थाका अव्यवहित उत्तर एक क्षण नकी सामग्री
क्षणमैं अविद्याका सर्परजतादि परिणाम होवै है, औ ज्ञातव्य है:-
करणका ज्ञानरूप परिणाम होवै है; औ नेत्रसंयोगतैं अ लसमुदायमैं
क्षणमैं जो ज्ञानकी उत्पत्ति कहैं हैं सो क्षणकाल अति सूक्ष्म ानसैं वा
कार्याभिमुख अवस्थाका क्षण औ कार्यकी उत्पत्तिका क्षण एकही होनेतैं
इस अभिप्रायतैं कहैं हैं. इस रीतिसैं रज्जुशुक्तिआदिकनतैं दुष्ट इं
संयोगतैं अंतःकरणका परिणामरूप ज्ञान औ विषयावच्छिन्न चेतन
अविद्याका परिणाम सर्प रजतादिक एक कालमैं होवैं हैं, तिनका विष-
यविषयी भाव है; यातैं अंतःकरणका परिणामरूप वृत्तिज्ञानभी दुष्ट
इंद्रिय संयोगजन्य है औ मिथ्यापदार्थगोचर है; यातैं भ्रम है प्रमा नहीं.
धर्मिज्ञानवादीके मतमैं अविद्याक्षोभका हेतु सामान्यज्ञान है; यातैं धर्मि-
ज्ञानवादीके मतमैं इदमाकारवृत्तिसैं उत्तरकालमैं क्षोभवती अविद्याका
परिणाम सर्प रजतादिक होवैं हैं औ उत्तरकाल भाविपदार्थ प्रत्यक्ष-
ज्ञानका विषय संभवै नहीं, यातैं इदमाकार वृत्तिका विषय सर्प रज-
तादिक मिथ्यापदार्थ नहीं; किंतु शुक्तिरजतादिक होनेतैं इदमाकार
वृत्ति प्रमा है, सर्परजतादिकनकूं विषय करनेवाली अविद्याका परि-
णामरूप भ्रमवृत्ति होवै है इस कारणतैं धर्मिज्ञानवादीके मतमैं भ्रमवृत्ति
ऐंद्रियक नहीं होवै है.साक्षात् इंद्रियके संबंधतैं होवै सो ऐंद्रियक कहिये है
भ्रमवृत्तिका अधिष्ठान जो इदमाकारवृत्ति ताकी उत्पत्तिद्वारापरंपरातैं इंद्रि-
यसंबंधका भ्रमवृत्तिमैं उपयोग है साक्षात् नहीं. उपाध्यायके मतमैं सर्प-
रजतादिकनका उपादानभूत अविद्यामैं क्षोभका निमित्त दोषवत् इंद्रिय-
संयोग है; यातैं एकही इंद्रियसंयोगतैं अविद्याका परिणाम सर्परजतादिक
औ तिनकूं विषय करनेवाली अंतःकरणका परिणाम इदमाकारवृत्ति एक
कालमैं होवैं हैं इसरीतिसैं उपाध्यायके मतमैं इदमाकारवृत्ति भ्रमरूप तौ
होवै है; औ साक्षात् इंद्रियसंबंधतैं उपजै है; यातैं ऐंद्रियक कहिये है.

है, सो वृ संबंधसैं जो इदमाकारवृत्ति होवै सो स्वकालमैं उत्पन्न सर्परजतादि-
इदंताकार विषयकर्त्री होवै है, यातैं "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इसरीतिसैं
र प्रमाण है, केवल इदंपदार्थगोचर होवै नहीं.

नेत्रसंयो ## उपाध्यायके मतमैं शंका औ समाधान ॥ २९ ॥

औ उपाध्यायके मतमैं यह शंका होवै हैः—जिस पदार्थसैं ऐंद्रियक संबंध होवै तद्गोचरही वृत्ति होवै है यह नियम है. अन्यसैं इंद्रियके संबंधतैं अन्यगोचर वृत्ति होवै तो घटसैं इंद्रियके संबंधतैं पटगोचरभी वृत्ति हुयी चाहिये. बहुत क्या कहैं ? एक पदार्थसैं इंद्रियका संबंध हुये सकलपदार्थ-गोचरवृत्तिकी आपत्तिसैं सकल पुरुष अनायासतैं सर्वज्ञ हुये चाहियें, यातैं अन्यपदार्थसैं इंद्रियके संबंधतैं अन्यगोचर वृत्ति संभवै नहीं; किंतु जासैं इंद्रियका संबंध होवै तद्गोचरही वृत्ति होवै है. औ उपाध्यायमतमैं रज्जुशुक्ति आदिकनसैं नेत्रसंयोगतैं उत्पन्न हुई वृत्ति सर्परजतादिगोचर मानी सो संभवै नहीं.

या शंकाका यह समाधान हैः— स्वसंबंधतैं औ स्वतादात्म्यवालेसैं इंद्रियसंबंधतैं स्वगोचरवृत्ति होवै है. वृत्तिका विषय स्वपदका अर्थ है. जिसपदार्थकूं विषय करनेवाली वृत्ति होवै तिसपदार्थसैं इंद्रियका संबंध अथवा तिसपदार्थके तादात्म्यवालेसैं इंद्रियका संबंध चाहिये भ्रमवृत्तिके विषय सर्परजतादिक हैं. तहां वृत्तिके विषयसैं तौ नेत्रका संबंध नहीं हुया है परंतु सर्परजतादिकनके तादात्म्यवाले जो रज्जुशुक्ति आदिक तिनसैं नेत्रका संबंध हुया है. काहेतैं ? अध्यस्तका अधिष्ठानसैं तादात्म्यसंबंध होवै है,औ सर्परजतादिकनके अधिष्ठानताके अवच्छेदक होनेतैं रज्जुशुक्ति आदि-कभी सर्परजतादिकनके अधिष्ठान कहिये हैं, यातैं सर्परजतादिकनकी तादात्म्यवाले रज्जुशुक्ति आदिकनके संबंधतैं उत्पन्न हुई वृत्तिके सर्परजता-दिकभी विषय संभवैं हैं औ घटमैं पटका तादात्म्य नहीं; यातैं घटइंद्रियके संबंधतैं उत्पन्न हुई वृत्ति पटगोचर होवै नहीं; इसरीतिसैं एक पदार्थके संबं-

यातैं उत्पन्न हुई वृत्ति सकलपदार्थगोचर होवै नहीं; ब्रह्मसैं भिन्न किसी एक पदार्थमैं सकलका तादात्म्य नहीं; औ ब्रह्ममैं सकलपदार्थनका तादात्म्य है, परंतु ब्रह्म असंग है; तासैं इंद्रियका संबंध संभवै नहीं; यातैं एक पदार्थसैं इंद्रियके संबंधतैं वृत्ति हुयां सर्वज्ञताकी आपत्ति नहीं. धर्मिज्ञानवादीके मतमैं सर्परजतादिक ज्ञेय औ तिनके ज्ञान अविद्याके परिणाम हैं; उपाध्यायके मतमैं सर्परजतादिक तौ अविद्याके परिणाम हैं. औ तिनका ज्ञान उक्तरीतिसैं अंतःकरणका परिणाम है; वह अंतःकरणका परिणाम इंद्रियसंबंधतैं होवै है यातैं ऐंद्रियक है; इसरीतिसैं सर्परजतादिकनतैं नेत्रसंयोगके अभाव हुयांभी रज्जुशुक्ति आदिकनतैं दुष्टनेत्रसंयोगजन्य चाक्षुषभ्रमवृत्तिके विषय सर्परजतादिक हैं यह उपाध्यायका मत है. "चक्षुषा सर्पं पश्यामि, चक्षुषा रजतं पश्यामि" या अनुव्यवसायतभी सर्परजतादिक गोचर भ्रमरूप चाक्षुषवृत्तिही सिद्ध होवै है. रज्जु शुक्ति आदिक गोचर इदमाकार प्रमावृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षी गोचरता सर्परजतादिकनकूं धर्मिज्ञानवादी मानैं हैं, ताके मतमैं उक्त अनुव्यवसायका विरोध है.

धर्मिज्ञानवादीकरि अध्यासमैं परंपरासै नेत्रका उपयोग औ उपाध्यायकरि शंखपीताध्यासमैं साक्षात् उपयोग ॥ ३० ॥

जो इसरीतिसैं धार्मिज्ञानवादी कहैः—सर्परजतादिकनका प्रकाश तौ साक्षिरूप है, परंतु अभिव्यक्त साक्षीसैंही तिनका प्रकाश होवैहै, यातैं साक्षीकी अभिव्यंजक इदमाकार वृत्ति नेत्रजन्य होनेतैं परंपरातैं सर्परजतादिकनके साक्षीरूप प्रकाशमभी नेत्रका उपयोग है; यातैं सर्परजतादिकनके ज्ञानमैं चाक्षुषत्व व्यवहार होवैहै, यातैं धार्मिज्ञानवादी के मतमैं सर्परजतादिकनकूं साक्षिभास्यता माननेंभी उक्त अनुव्यवसायका विरोध नहीं.

यह कथनभी असंगत है. काहेतैं ? उक्त स्थलमैं तौ परंपरासैं नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्वव्यवहारका निर्वाह कह्या, तथापि शंखमैं पीतभ्रम होवै तहां परंपरासैंभी नेत्रका उपयोग संभवै नहीं; काहेतैं ? रूपविना

केवल शंखमैं तौ नेत्रकी योग्यता नहीं; यातैं रूपविशिष्टमैं कहै तौ शंखके शुक्लरूपका ग्रहण होवै तौ पीतताका अध्यास होवै नहीं;इसकारणतैं अध्यस्तपीतरूप विशिष्टमैं नेत्रकी योग्यता माननी होवैगी, सो धर्मिज्ञानवादीके मतमैं संभवै नहीं. काहेतैं ? अध्यस्तपदार्थमैं ऐंद्रियकत्व नहीं यह धर्मिज्ञानवादी मत है. याप्रकारतैं रूपविना केवल शंखज्ञानमैं वा रूपविशिष्ट शंख ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग संभवै नहीं. उपाध्यायके मतमैं शंखसैं नेत्रका संबंधही पीतरूप अध्यासका हेतु है सो नेत्रका संबंधरूपरहित केवल शंखसैं वा शुक्लरूप विशिष्टसैं संभवै है.

धर्मिज्ञानवादीकरि शंखपीतताका अनध्यास और उपाध्यायकरि ताका अनुवाद अरु दोष ॥ ३१ ॥

या स्थानमैं भी धर्मिज्ञानवादी यह कहैः—जहां शंखमैं पीतरूपका अध्यास होवै तहां सर्परजतादिकनकी नाई पीतिमाका स्वरूपसैं अध्यास नहीं है; किंतु जैसैं स्फटिकमैं जपाकुसुमवृत्ति लौहित्यके संसर्गका अध्यास है तैसैं नेत्रवृत्ति पीतसंबन्धी पीतिमाके संबंधका शंखमैं अध्यास है. पीतपित्तके ज्ञानविना ताके संबंधका अध्यास संभवै नहीं, यातैं पीतपित्तके ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग होनेतैं शंखपीतके अध्यासमैं भी परंपरासैं नेत्रका उपयोग है; यातैं "पीतशंखं चक्षुषा पश्यामि" यह अनुव्यवसाय संभवै है औ शंखमैं पीतरूपका संबंध अनिर्वचनीय उपजै है. यातैं अन्यथाख्यातिवादकी आपत्तिभी नहीं.

इसरीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहै तौ ताकी उक्तिमैं यह पूछ्या चाहिये. शंखमैं पीतरूपके संसर्गाध्यासका हेतु पित्तपीतताका ज्ञान है. सो नयनदेशस्थही पित्तके पीतताका प्रत्यक्षज्ञान होवै है अथवा शंखदेशमैं पीतद्रव्य प्राप्त होवै है, ताके पीतताका प्रत्यक्षज्ञान होवै है. जो प्रथम पक्ष कहै तौ नयनदेशस्थही पीतद्रव्यसैं नयनस्थ अंजनकी नाईं नेत्रसंयोगके असंभवतैं

ताका चाक्षुष प्रत्यक्ष तौ होवै नहीं यातैं नयनस्थ पीतपित्तगोचर परोक्ष-वृत्ति होवैगी; तिस परोक्षवृत्तिस्थ साक्षीतैं शंखकी पीतताका अपरोक्ष प्रकाश नहीं होवैगा औ किसी प्रकारसैं नयनस्थ पित्तपितत्तागोचर चाक्षुषवृत्ति मानैं तौभी तिसवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं नयनदेशस्थ पित्तपीत-तामात्रका संबंध है शंखसैं पीतताके संबन्धसैं साक्षीका संबन्ध नहीं, यातैं शंखका औ शंखमैं पीतिमाके संबंधका साक्षीसैं असंबंध होनेतैं प्रकाश नहीं हुया चाहिये. तात्पर्य यह हैः—जपाकुसुमसंबंधी रक्तताके अनिर्वचनीय संबन्धकी स्फटिकमैं उत्पत्ति होवै तहां तौ रक्तता औ स्फटिकता तथा रक्त-ताका संबन्ध ये तीनूं पदार्थ पुरोदेशमैं होनेतैं एकवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीके विषय होवैं हैं, औ पीतशंख अध्यासमैं पीतिमा नयनदेशमैं है. औ पीति-माके संबन्ध सहित शंख पुरोदेशमैं है, यातैं एक वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं तीनोंका प्रकाश संभवै नहीं, यातैं नयनदेशस्थपित्त पीतिमाके ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग है. यह प्रथम पक्ष संभवै नहीं, यातैं शंखदेशमैं प्राप्त हुये पित्तद्रव्यकी पीतताका अपरोक्षज्ञान नेत्रसैं होवै है तिसतैं अनंतर शंखमैं पीतताके अनिर्वचनीय संबन्धकी उत्पत्ति होवै है, जैसे कुसुम्भमैं संबंधी पटमैं कुसुम्भद्रव्यके रूपकी पटमैं प्रतीति होवै है. तहां एकवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं कुसुम्भ औ रक्तरूप तथा तत्संबन्धी पटका प्रकाश होवै है. औ स्फटिकमैं लौहित्यभ्रम होवै; तहांभी एकवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैंही निखिलका प्रकाश होवै है. तैसैं शंखपीत भ्रमविषैभी नयनदेशतैं निःसृतपी-तपित्तभी शंखदेशमैं प्राप्त होवै है; ताके अनिर्वचनीय संबंधकी शंखमैं उत्पत्ति होवै यह द्वितीय पक्ष मानैं तौ उक्त दोष नहीं. काहे-तैं ? पीतपित्त औ शंख एक देशस्थ होनेतैं पीतपित्तगोचर चाक्षुषवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं शंख औ शंखमैं पीतताके संसर्गका प्रकाश माननेमैं कोई बाधक नहीं है. इसरीतिसैं शंखदेशमैं प्राप्त जो पीतपित्त ताकी पीतता अनिर्वचनीय संसर्गकी शंखमैं उत्पत्ति होवै है. शंखदेशस्थ पीतपित्तका

प्रत्यक्ष नेत्रजन्य होवै है, तैसैं शंखमैं संसर्गाध्यास होवै है यातैं परंपरातैं शंखपीतअध्यासमैंभी नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्व प्रतीति संभवै है; यह धर्मिज्ञानवादीकी उक्तिभी संभवै नहीं. काहेतैं ? शंख देशमैं पीतरूपवाले पित्तका निर्गमन होवै पीतताकी शंखमैं प्रतीति सकल द्रष्टाकूं हुई चाहिये.

धर्मिज्ञानवादीकरि उक्तदोषका (दोबार) समाधान औ उपाध्यायकरि (दोबार) दोष ॥ ३२ ॥

जो धर्मिज्ञानवादी इस रीतिसैं कहैः—दोषवाले नेत्रसैं पित्त निकसतेकूं जो पुरुष देखै है तिसकूं शंखलिप्त पित्तपीतिमाकी प्रतीति होवै है जिसके नेत्रमैं पित्तदोष नहीं होवै तिसकूं नेत्रसैं निकसता पित्त दीखै नहीं; यातैं पित्तपीतताकी शंखमैं प्रतीति होवै नहीं. जैसैं भूमिमैं उद्गमन-कर्ता पक्षीकी आदि उद्गमन क्रियाकूं देखै औ मध्यक्रियाकूं देखै तिसीकूं अतिऊर्द्ध्व देश मैं पक्षीकी प्रतीति होवै है. अधोदेशमैं उद्गमनकर्ताकूं देखै नहीं. ताकूं अति ऊर्द्ध्वदेशगतपक्षीकी प्रतीति होवै नहीं, तैसैं जिसके नेत्रसैं पीतपित्त निकसे तिसीकूं निकसतकी प्रतीत होनेतैं शंखदेशमैं ताकी प्रतीति होवै है. अन्यकूं नहीं. इसदृष्टांतसैं अन्यपुरुषनकूं पीतिमा प्रतीतिकी आपत्तिका परिहार कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? जाकूं उर्द्ध्वदेशगत पक्षी दीखता होवै सो अन्य पुरुषकूं इसरीतिसैं उपदेश करै मेरे नेत्रके समीपकरिकै अपने नेत्रसैं देख औ अंगुली निर्देश करै तौ अन्यपुरुषकूंभी ऊर्ध्वदेशगत पक्षीकी प्रतीति है. औ शंखलिप्तपित्तकी पीतिमाकी प्रतीति किसी प्रकार सैंभी अन्यकूं नहीं होनेतैं दृष्टांत विषम है यातैं शंखदेशमैं पित्तका निर्गमन संभवै नहीं.

धर्मिज्ञानवादी इसरीतिसैं कहैः—दोषवत्नेत्रसैं निकसे पीतपित्तके पीतिमाका दोषवत्नेत्रसैंही अपरोक्ष होवै है, यातैं अन्यपुरुषनकूं शंखमैं पीतिमाका अध्यास होवै नहीं. इसरीतिसैं शंखदेशस्थ पित्तके पीतिमाका नेत्रइंद्रियसैं अपरोक्ष अनुभव होवै है औ नेत्रसैं अनुभूत पीतिमाका अनि-

र्वचनीयसंबंध शंखमैं उपजै है ताकूं साक्षी प्रकाशै है. शंखमैं पीतिमासंबंधकी प्रतीतिमैं परंपरासैं नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्व व्यवहार भी संभवै है.

इसप्रकारसैं धर्मिज्ञानवादीका समाधानभी अनुभूयमानारोपमैंही संभवै है; स्मर्यमाणारोपमैं संभवै नहीं. अन्यत्र अनुभूतकी अन्यत्र प्रतीतिकूं **अनुभूयमानारोप** कहै हैं. जैसैं शंखदेशस्थ नेत्रके पित्तमैं अनुभूत जो पीतिमाका संबंध ताकी शंखमैं प्रतीति होवै है यह **अनुभूयमानका आरोप** है. इसरीतिसैं सन्निहित पदार्थनके धर्मकी अन्यमैं प्रतीति होवै तहां सारै अनुभूयमानारोप है; प्रत्यक्ष अनुभवके विषयका आरोप होवै सो **अनुभूयमानारोप** कहिये सन्निहित उपाधिसैंही प्रत्यक्ष अनुभवकी विषयता होवै है. जलमैं नीलताका अध्यास होवै सो **स्मर्यमाणआरोप** है. **स्मृतिके विषयकूं स्मर्यमाण** कहैं हैं. जलाधारभूमि नील होवै, अथवा नीलमृत्तिकामिश्रितजल होवै तहां जलमैं नीलताअध्यास **अनुभूयमानारोप** संभवै है; परंतु धवलभूमिस्थ निर्मल जलमैं औ आकाशमैं नीलताका **स्मर्यमाणारोप** है तिसस्थानमैं नीलरूपसंसर्गी अधिष्ठानगोचर चाक्षुषवृत्तिका अंगीकार नहीं होनेतैं परंपरातैंभी नेत्रका उपयोग संभवै नहीं. यातैं उक्त अध्यासमैं चाक्षुषत्वप्रतीति धर्मिज्ञानवादीके मतमैं संभवै नहीं. काहेतैं ? अध्यस्त पदार्थकूं धर्मिज्ञानवादीके मतसैं साक्षी भास्यमानैं हैं; औ उपाध्यायके मतमैं अध्यस्त पदार्थकी ऐंद्रियवृत्ति होवै हैं; यातैं उक्त अध्यासमैंभी चाक्षुषत्वप्रतीति संभवै है. औ स्तनके मधुरदुग्धमैं जहां बालककूं तिक्तरसका भ्रम होवै तिस स्थानमैं मधुदुग्ध अधिष्ठान है. द्रव्य ग्रहणमैं रसनइंद्रियकी योग्यताके अभावसैं मधुरदुग्धके ज्ञानमैं तौ रसनइंद्रियका उपयोग संभवै नहीं. औ धर्मिज्ञानवादमैं अध्यस्तगोचर ऐंद्रियकवृत्ति होवै नहीं. यातैं मधुरदुग्धमैं तिक्तता भ्रमकूं रासनत्व नहीं कह्या चाहिये औ उपाध्यायके मतमैं तौ तिक्ततागोचर रासन वृत्ति है, यातैं तिक्ताभ्रमविषै रासनत्व व्यवहार संभवै है.

मधुरदुग्धमैं तिक्तरसाध्यासकी रसनागोचरतापूर्वक उपाध्यायके मतका निष्कर्ष ॥ ३३ ॥

परन्तु इतना भेद है:—सर्परजतादिक अध्यासमैं अधिष्ठानसैं नेत्रसंबंधतैं अधिष्ठानगोचर चाक्षुषवृत्ति होवैहै. तिसवृत्तिके समकाल उपजे सर्परजतादिकभी ताकेही विषय होवैंहैं. मधुर दुग्धमैं तिक्त रसका अध्यास होवै तहां दुग्धाकार रासनवृत्ति संभवै नहीं; किंतु शरीरव्यापि त्वक् है, यातैं त्वाचवृत्ति मधुर दुग्धाकार होवैहै. तासैं मधुर दुग्धका प्रकाश होवैहै. जिसकालमैं मधुरदुग्धसैं संयोग होवै तिसकालमैं दोषदूषित रसनाका दुग्धमैं संयोग होवै है. रसनसंयोगतैं दुग्धावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामैं क्षोभ होयकै तिक्तरसाकार परिणाम अविद्याका औ तिक्त रसगोचर रासनवृत्ति एककालमैं होवैहै. इसरीतिसैं मधुर दुग्धमैं तिक्तरसाध्यास होवै तहां मधुरद्रव्यका प्रकाश तौ त्वाचवृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं होवैहै. औ तिक्त रसाकार रासनवृत्ति होवैहै; यातैं रासनवृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं तिक्तरसका प्रकाश होवैहै, त्वाचवृत्ति औ रासनवृत्ति दुग्धदेशमैं जावैहै, यातैं एकदेशस्थ होनैतैं उभयवृत्त्युपहितचेतनका भेद नहीं; यातैं अधिष्ठानअध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयताभी संभवै है, तिक्तरसगोचर रासन वृत्ति नहीं मानैं, किंतु त्वाचवृत्तिम अभिव्यक्त चेतनसैंही तिक्त रसका प्रकाश मानैं तौ तिक्तरसके ज्ञानमैं रासनत्व प्रतीत नहीं होवैगी. धर्मिज्ञानवादीके मतमैं सर्परजतादिक अध्यासम तौ अध्यासकारण अधिष्ठानके ज्ञानमैं नेत्रका उपयोग होनैतैं परंपरातैं अध्यस्तज्ञानकूंभी नेत्रजन्यता है औ तिक्त रसके अध्यासमैं तौ अधिष्ठान मधुरदुग्ध है. सो द्रव्यरूप होनैतैं ताके ज्ञानमैं भी रसनइंद्रियके उपयोगके अभावतैं परंपरातैं तिक्तरसज्ञानकूं रसनजन्यता संभवै नहीं; यातैं तिक्तरसाध्यासमैं रासनत्वप्रतीतिके निर्वाहवास्तै धर्मिज्ञानवादीकूंभी रासनवृत्ति अवश्य माननी चाहिये; तैसैं सर्परजतादिक अध्यासमैंभी अध्यस्तगोचर ऐंद्रियक वृत्तिही होवैहै; यातैं भिन्न अध्यस्तगोचरअविद्याका परिणाम अनिर्वचनीयवृत्तिकल्पन निष्फल है. यामतमैं अविद्याका

है,इंद्रियसंबंधके असंभवतैं प्रातिभासिक अध्यासमैंभी अधिष्ठानसैं इंद्रियसंबं-
धकूं कारणता संभवै नहीं.इसरीतिसैं उपाध्यायमत समीचीन नहीं. औ धर्मि-
ज्ञानवादमैं जो उपाध्यायनैं दोष कह्या है:—अधिष्ठानज्ञानमैं जो इंद्रियसंबं-
धका उपयोग मानैं तौ शंखमैं पीतिमाध्यास होवै तहां रूपविना केवल शंखका
चाक्षुष मानैं तौ नीरूप वायुका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. औ शुक्लरूपविशिष्ट-
शंखका चाक्षुष मानैं तौ पीतरूपज्ञानका विरोधि शुक्लरूपज्ञानके होनेतैं
पीतरूपका अध्यास नहीं होवैगा. यह कथनभी उपाध्यायका अविवेकस है.
काहेतैं? रूपवाले द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है यह नियम है, कहूं दोष-
बलतैं रूपभागकूं त्यागिक केवल आश्रयका चाक्षुष होवै है; औ निर्दोष-
नयनतैं रूपविशिष्टका चाक्षुष होवै है; परंतु नीरूपका चाक्षुष होवै नहीं;
यातैं नीरूपवायुके चाक्षुषज्ञानकी आपत्ति नहीं, औ रूपवाले शंखका रूप-
भावकूं त्यागिकै दुष्टनेत्रसैं चाक्षुष होवै है, अथवा शुक्लरूपविशिष्ट शंखका
चाक्षुष होवै है, तथापि शुक्लरूपमैं शुक्लत्वज्ञानका प्रतिबंधक नयन मैं
दोष है;यातैं पीतरूपका अध्यासभी संभवै है. काहेतैं? शुक्लत्वविशिष्ट शुक्ल-
रूपका ज्ञानही पीतरूपके ज्ञानका विरोधी है. केवल शुक्लरूपव्यक्तिका
ज्ञान रूपांतर ज्ञानका विरोधी नहीं. यह वार्ता प्रतिबध्यप्रतिबंधकभाव
निर्णायक ग्रंथनमैं प्रसिद्ध है. इसरीतिसैं शंखमैं पीतता अध्यासका हेतु
शंखरूप अधिष्ठानका इदमाकार चाक्षुषज्ञान संभवै है. सो केवल शंखगोचर
होवैहै, अथवा दोषबलतैं शुक्लत्वकूं त्यागिक शुक्लरूपविशिष्ट शखगोचरहोवै
है, औ परंपरातैं पीतताज्ञानमैं नेत्रका उपयोग होनेतैं पीतताअध्यासमैं
चाक्षुषत्वप्रतीतिका निर्वाहभी धर्मिज्ञानवादमैं होवै है. औ मधुरदुग्धमैं
तिक्त रस अध्यास होवै तहां धर्मिज्ञानवादभी रासनवृत्तिकूं आव-
श्यकता कही. काहेतैं? तिक्त रसका अधिष्ठान मधुरदुग्ध तिसका सामान्य-
ज्ञानरूप वृत्ति रासन तौ संभवै नहीं. किंतु त्वाच वृत्तिही अधिष्ठानगोचर
होवै तिस त्वाच वृत्तिमैं अभिव्यक्ति साक्षीसैं तिक्तरसका प्रकाश मानैं तौ

तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रासनत्व व्यवहार संभवै नहीं, यातैं धर्मिज्ञानवादीकूं तिक्तरसकी भ्रमरूपभी प्रतीति रासनजन्यही माननी होवै है, तैसैं रजतादिक भ्रमज्ञानभी इंद्रियजन्य है इसरीतिसैं उपाध्यायका वचन मधुरदुग्धकूं अधिष्ठानता मानैं तौ संगत होवै;सो मधुररसवाला दुग्धरूपद्रव्य अधिष्ठानहीं है, किंतु तिक्तरस अध्यासका अधिष्ठान दुग्धका मधुर रस है;ताके ज्ञानमैं रसनका उपयोग होनेतैं तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रासनत्वकी प्रतीति औ व्यवहार संभवै है यद्यपि मधुररसका ज्ञान हुयां तिसतै विरोध तिक्तरसका अध्यास संभवै नहीं, तथापि मधुरत्वधर्मविशिष्ट मधुररसका ज्ञानही तिक्तरसज्ञानका विरोधी है. मधुरत्व धर्मकूं छोडिकै केवल मधुररस व्यक्तिका सामान्यज्ञान तिक्तरस अध्यासका विरोधी नहीं. जैसैं शुक्तित्वरूपतैं शुक्तिका ज्ञान रजत अध्यासका विरोधी है; तौभी शुक्तिका सामान्यज्ञान रजतअध्यासका विरोधी नहीं, उलटा शुक्तिका सामान्यज्ञान रजतअध्यासका हेतु है. तैसैं मधुररसका सामान्यज्ञानभी तिक्तरस अध्यासका हेतु है, इस रीतिसैं धर्मिज्ञानवादमैंभी तिक्तरसका अधिष्ठान जो मधुररस ताका रसनतैं सामान्यज्ञान हुयां तिक्तरसका अध्यास होनेतैं परंपरातैं रसनइंद्रियका तिक्तरसाध्यासमें उपयोग है, यातैं तिक्त रसकी प्रतीतिमैं रासनत्वव्यवहार संभवै है.

तिक्तरसाध्यासमैं कोईकी अन्यउक्ति औ खंडन ॥ ३९ ॥

औ मधुरदुग्धकूं ही तिक्तरसका अधिष्ठान मानैं तौभी तिक्तरसाध्यासमैं रसनको अपेक्षा नहीं, किंतु दुग्धगोचर त्वाचवृत्ति होवै है. सो त्वाचवृत्ति तिक्तरसाकार यद्यपि नहीं है, तथापि त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्ति साक्षी निरावृत है ताके संबंधसैं तिक्तरसका प्रकाश होवैहै. औ तिक्तरसकी प्रतीतिमैं रसनका व्यापार भासै नहीं, यातैं तिक्तरसाध्यासमैं रासनत्व व्यवहार अप्रमाणिक है. या पक्षमैं तिक्तरसाध्यास केवल अर्थाध्यास है, तिक्तरसाकार अविद्याकी वृत्ति निष्फलतासैं मानी नहीं, इस रीतिसैं कोई ग्रन्थकार मधुर

दुग्धकूं तिक्तरसाध्यासका अधिष्ठान मानिकै मधुरदुग्धगोचर त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं तिक्तरसका प्रकाश मानैंहैं, औ तिक्तरसगोचर वृत्तिका अभाव मानैं हैं.

यह लेख असंगत है. काहेतैं ? स्वाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसैं विषयका प्रकाश होवै है. अन्याकार वृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसैं स्वसम्बन्धी विषका प्रकाश मानैं तौ रूपवत्‌घटाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसैं घटगतपरिमाण संख्यादिकनकी प्रतीति हुई चाहियें. औ "रूपवान् घटः" ऐसा ज्ञान हुयेभी घटके स्थूलतादिकनका प्रकाश होवै नहीं. मधुरदुग्धाकार त्वाचवृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसैं तिक्तरसका प्रकाश संभवै नहीं, परंतु दोषका अद्भुत महिमा अंगीकृत है, यातैं दोष दुष्ट इंद्रियजन्यवृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं वृत्तिके अगोचरकाभी कहूं चेतनसंबंधीका प्रकाश मानैं तौ यथा कथंचित् उक्त लेखभी संभवै है. औ रूपवत्‌घटाकार वृत्ति दोषजन्य नहीं, यातैं तिस वृत्तिके अगोचर परिमाणादिकनका तिस वृत्तिमैं अभिव्यक्ति चेतनसैं प्रकाश होवै नहीं.

मुख्यसिद्धांतका कथन ॥ ३६ ॥

औ मुख्यसिद्धांत तौ यह हैः—जैसैं स्वप्न अवस्थामैं सारे पदार्थ साक्षीभास्य हैं तिनमैं चाक्षुषत्व रासनत्वादिक प्रतीति होवै है, तिस रीतिसैं सर्परजतादिक अनिर्वचनीय पदार्थ साक्षीभास्य हैं, तिनसैं चाक्षुषत्वादिक प्रतीतिभ्रम है, केवल सर्परजतादिकही साक्षीभास्य नहीं है; किंतु सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं,स्वप्नकी नाईं घटादिक प्रमेय औ नेत्रादिक प्रमाणसैं नेत्रादिकनका घटादिकनसैं संबंध एक कालमैं उपजै है; यातैं तिनका परस्पर प्रमाणप्रमेयभाव संभवै नहीं, औ प्रतीत होवै है;यातैं अनिर्वचनीय है यह सिद्धांत है. व्यावहारिक प्रपंचकूं मिथ्यात्वसिद्धिका उपयोगि साक्षीभास्यताके साधक मिथ्या सर्परजतादिक दृष्टांत हैं; तिनकूं ऐंद्रियकत्व मानैं तौ सिद्धांतका साधक दृष्टांत प्रतिकूल होवै है, यातैं उपाध्यायका मत सिद्धांतविरोधी है.

अध्यस्त पदार्थकूं ऐंद्रियकत्व नहीं मानैं तौ आकाशमैं नीलताध्यासकी अनुपपत्ति है, धर्मिज्ञानवादमैं यह दोष निराकरणीय है. काहेतैं ? आकाश नीरूप है यातैं आकाशका नेत्रसैं सामान्यज्ञान संभवै नहीं, जो सामान्यज्ञान संभवै तौ नीलताध्यास होवै औ उपाध्यायमतमैं तौ आकाशतैं नेत्रका संयोग हुये आकाशावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामैं क्षोभद्वारा नीलरूपकी उत्पत्ति औ नीलरूपविशिष्ट आकाशगोचर नेत्रसंयोगजन्य अंतःकरणकी चाक्षुषवृत्ति एककालमैं होवैहै; यातैं आकाशमैं नीलताध्यासका संभव है.

धर्मिज्ञानवादमैं आकाशमैं नीलताध्यासका असंभवदोष औ ताका परिहार ॥ ३७ ॥

तथापि धर्मिज्ञानवादमैं इस अध्यासकी अनुपपत्ति नहीं. काहेतैं ? यद्यपि आकाश नीरूप है **तथापि** आलोक द्रव्य रूपवत् है, यातैं आलोकसैं दुष्ट नेत्रका संयोग हुयां औ आलोकगोचर आलोकव्यापि आकाशाकार प्रमारूप सामान्यज्ञान होवै है, तिसतैं अनंतर आकाशावच्छिन्नचेतनस्थ अविद्यामैं क्षोभद्वारा नीलरूपाकार अविद्याका परिणाम होवै है; तैसैं इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचेतनस्थ अविद्याका नीलरूपगोचरज्ञानाकार परिणाम होवै है; आकाशगोचर प्रमावृत्ति औ नीलरूपगोचर अविद्यावृत्ति एकदेशमैं होनेतैं उभयवृत्ति उपहित साक्षी एक है; यातैं अधिष्ठान अध्यस्तका एक साक्षीसैं प्रकाश होवै है. यद्यपि विशेषरूपतैं अधिष्ठानका ज्ञान हुयां अध्यास संभवै नहीं, औ आकाशाकार प्रमावृत्तिसैं अनन्तर अध्यास कह्या तहां आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञान अध्यासका हेतु कहनेसैं विशेषरूपका ज्ञान अध्यास हेतु प्रतीत होवै है सो असंगत है. **तथापि** आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञानभी सामान्यज्ञान है विशेष ज्ञान नहीं "नीरूपमाकाशम्" इसरीतिसे नीरूपत्वविशिष्ट आकाशका ज्ञानही विशेष ज्ञान है. काहेतैं ? अध्यासकालमैं अप्रतीत अंशकूं **विशेष अंश** कहैंहैं, ताहीकूं **अधिष्ठान** कहैंहैं. औ अध्यासकालमैं प्रतीतअंशकूं **सामान्य**

अंश कहैं हैं ताकूं आधार कहैं हैं. "आकाशम् नीलम्" इसरीतिसैं भ्रांति-कालमैं आकाशत्वरूपतैं आकाशकी प्रतीति होवै है; औ "नीरूपमाकाशम्" इसरीतिसैं नीरूपत्वधर्मतैं आकाशकी प्रतीति भ्रांतिकालमैं होवै नहीं; यातैं आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञानभी सामान्यज्ञान होनेतैं तिसतैं अनन्तर नीलरूपका अध्यास संभवै है.

सर्पादिभ्रमस्थलमैं च्यारि मत औ चतुर्थ मतमैं दोष ॥ ३८ ॥

इसरीतिसैं सर्परजतादिक भ्रम होवै तहां तीनि मत कहेः—एक तौ उपाः न्यायका मत कह्या, ताके मतमैं एकही ज्ञान दुष्टइंद्रियविषयके संबंधतैं अंतःकरणका परिणामरूप होवैहै; यह ज्ञान अधिष्ठानके सामान्य अंशकूं औ अध्यस्तकूं विषयकर्ता भ्रमरूप है तासैं पृथक् अधिष्ठानके सामान्य अंशमात्रगोचर प्रमाज्ञानका तिसके मतमैं अंगीकार नहीं. औ धर्मिज्ञानवादमैं दो मत कहे. एक मतम तौ इदमाकार सामान्यज्ञान प्रमारूपतैं अनंतर "अयं सर्पः । इदं रजतम्" इसरीतिसैं भ्रमज्ञान होवैहै सो अविद्याका परिणामरूप होवैहै, औ अधिष्ठानक सामान्यअंशकूं विषय कर्ता हुया अध्यस्तकू विषय करैहै, यातैं इदमाकार औ अध्यस्ताकार होवैहै, औ धर्मिज्ञानवादमैं दूसरा मत यह हैः—इदमाकार सामान्यज्ञान अध्यास हेतु प्रमारूप होवैहै; तासैं उत्तरक्षणमैं सर्परजतादिगोचर अविद्याका परिणाम ज्ञान होवैहै सो भ्रमरूप होवैहै. यातैं अधिष्ठानगोचर होवैं नहीं; किंतु केवल अध्यस्तगोचर होवैहै. तिस भ्रमज्ञानमैं इदंपदार्थविषयकत्व नहीं है, तथापि तिसके अधिष्ठानज्ञानमैं इदंपदार्थविषयकत्व है, ताका अनिर्वचनीयसंबंध भ्रमज्ञानमैं उपज है. इसरीतिसैं केवल अध्यस्तपदार्थाकार भ्रमज्ञान होवैहै यह मतही समीचीन है.

औ धर्मिज्ञानवादमैंही कोई ग्रंथकार तीसरा पक्ष मानैं हैं. तथाहिः—अध्यासका हेतु अधिष्ठानका सामान्य ज्ञान होवैहै, तासैं भिन्न सर्परजतादिगोचर अविद्याकी वृत्ति निष्फल है. काहेतैं ? अधिष्ठानगोचर अंतःकरणकी

इदमाकारवृत्ति जो अध्यासकी हेतु मानी है तिस वृत्तिमैं अभिव्यक्ति चेतनसैं ही सर्परजतादिकनका प्रकाश होवैहै; यातैं सर्परजतादिक ज्ञेयरूप तौ अविद्याका परिणाम होवैहै औ ज्ञानरूपपरिणाम अविद्याका होवै नहीं- यामतमैं भी उपाध्यायके मतकी नाईं शुक्तिरजतादिकनमैं केवल अर्थाध्यास है. ज्ञानाध्यासका अंगीकार नहीं. यह मतभी उपाध्यायके मतकी नाईं सकल आर्यवचननतैं औ युक्तिसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? या मतमैं भ्रमज्ञानका लोप होवै है इदमाकार जो ज्ञान होवै सो अधिष्ठानसैं इंद्रियके संयोगतैं अन्तःकरणकी वृत्तिरूप होवै है औ अधिष्ठानगोचर होवै है, यातैं प्रमा होवै है तासैं भिन्नज्ञान मानैं नहीं, यातैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध होवैगा. जो ऐसैं कहैः—अधिष्ठानगोचर इदमाकारज्ञानही सर्परजता- दिकनकूं विषय करैहै, यातैं बाधितपदार्थगोचर होनेतैं भ्रम कहिये है, तथापि या मतमैं तिसी ज्ञानकूं अबाधित अधिष्ठानगोचरता होनेतैं प्रमात्वभी हुया चाहिये; यातैं एकज्ञानमैं भ्रमत्वप्रमात्वका संकर होवैगा. यद्यपि सत्यरजतगोचर औ शुक्तिरजतगोचर एक ज्ञान तहां भ्रमत्वप्रमात्वका संकर प्रसिद्ध है; यातैं अवच्छेदकभेदतैं जैसैं एक पदार्थमैं संयोग औ संयोगका अभाव विरोधी पदार्थ रहैं हैं. तैसैं एकज्ञानमैंभी अवच्छेदक- भेदतैं भ्रमत्व प्रमात्व विरोधी धर्म संभवैं हैं. दृष्टांतमैं वृक्षवृत्तिसंयोगा- भावका अवच्छेदक मूलदेश है औ संयोगका अवच्छेदक शाखादेश है, तैसैं ज्ञानमैंभी बाधितविषयकत्व तौ भ्रमत्वका अवच्छेदक धर्म है. औ अबाधित- विषयकत्व प्रमात्वका अवच्छेदक धर्म है,यातैं एकही ज्ञानमैं बाधितविषय- कत्वावच्छिन्न भ्रमत्व है; औ अबाधित विषयकत्वावच्छिन्न प्रमात्व होनेतैं भ्रमत्व प्रमात्वका संकरदोष नहीं; तथापि भ्रमत्वप्रमात्वकी नांई बाधित- विषयकत्व अबाधितविषयकत्वभी परस्पर भावाभावरूप होनेतैं विरोधी हैं तिनकाभी अवच्छेदकभेदविना एक ज्ञानमैं समावेश संभवै नहीं. औ तिनके अन्यअवच्छेदक उपलब्ध होवैं नहीं. औ किसी अन्यकी कल्पनाकी

कल्पना करै तौ परस्पर विरोधिही कोई अवच्छेदकमाननें होवैंगे. यातैं तिनके अन्यअवच्छेदक माननेमैं अनवस्थादोष होवैगा. इसरीतिसैं एक ज्ञानमैं भ्रमत्व प्रमात्वका संशय संभवै नहीं. औ सत्यरजतगोचर शुक्तिरजतगोचर एक ज्ञानमैं भ्रमत्वप्रमात्वका संकर कह्या सोभी सिद्धांतके अज्ञानसैं कह्या है. काहेतैं ? सत्यरजतगोचर अंतःकरणकी वृत्ति होवै है, शुक्तिरजतगोचर अविद्याकी वृत्ति होवै है, यातैं सत्यरजतगोचर और शुक्तिरजतगोचर दो ज्ञान होवैं हैं, दोनूं ज्ञान समानकालमैं होवैं हैं औ सजातीय गोचर होवैं हैं यातैं तिनका परस्परभेद प्रतीत होवै नहीं; किंतु तिनमैं एकत्वभ्रम होवै है, यातैं भ्रमत्व प्रमात्वका संकर अदृष्टगोचर होनेतैं इदमाकार प्रमावृत्तिमैं अभिव्यक्तसाक्षीसैं अध्यस्तका प्रकाश संभवै नहीं औ अधिष्ठानगोचर वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैंही अध्यस्तका प्रकाश मानिके अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्ति नहीं मानैं तौ अध्यस्तपदार्थकी स्मृति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? अनुभवके नाशतैं संस्कार होवै है अन्यगोचर अनुभवतैं अन्यगोचर संस्कारस्मृति होवै तौ पटगोचर अनुभवतैं घटगोचर संस्कारस्मृति हुई चाहिये; यातैं समानगोचर अनुभवतैं संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति होवै है, यह नियम होनेतैं अधिष्ठानगोचरवृत्तिरूप अनुभवतैं अध्यस्तगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति संभवै नहीं. औ अध्यस्तगोचर साक्षीरूप अनुभवतैं संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति कहै तौ सर्वथा असंगत है. काहेतैं ? अनुभवके नाशतैं संस्कार होवै है औ साक्षी नित्य है; ताकूं संस्कारजनकता संभवै नहीं. जो ऐसैं कहैः—जा वृत्तिसैं चेतनकी अभिव्यक्तिद्वारा जिस पदार्थका प्रकाश होवै ता वृत्तिसैं तिस पदार्थगोचर संस्कारद्वारा स्मृति होवै है; पटगोचर वृत्तिमैं अभिव्यक्त चेतनसैं घटका प्रकाश होवै नहीं. यातैं पटगोचर अनुभवतैं घटगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिकी आपत्ति नहीं; औ अधिष्ठानगोचर अंतःकरणकी इदमाकारवृत्तिमैं अभिव्यक्तचेतनसैं अध्यस्तका प्रकाश होवैहै;

यातैं अधिष्ठानगोचर इदमाकारप्रमासैं अध्यस्तगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिका संभव होनेतैं अध्यस्तगोचर अविद्यावृत्तिका अंगीकार निष्फल है. यह कथनभी असंगत हैः—काहेतैं ? अधिष्ठानगोचर इदमाकार ज्ञानसैं जो अध्यस्त का प्रकाश मानैं ताकूं यह पूछ्या चाहियेः—इदमाकार ज्ञान होवै सो अध्यस्ताकारभी होवैहै अथवा नहीं होवैहै ? जो ऐसैं कहै अध्यस्ताकारभी होवै है सो संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्षज्ञानमैं आकार समर्पणका हेतु विषय होवैहै. इदमाकारज्ञानसैं उत्तरक्षणमैं अध्यस्तपदार्थकी उत्पत्ति होनेतैं भाविविषयसैं प्रत्यक्षज्ञानमैं स्वाकारका समर्पण संभवै नहीं, यातैं इदमाकर ज्ञानकूं अध्यस्ताकारता नहीं होवै है यह द्वितीय पक्ष कहै तौभी संभवै नहीं. काहेतैं ? अन्याकार वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं अन्यविषयका प्रकाश होवै नहीं यह पूर्व कह्या है. जो इदमाकार वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीके संबंधसैं आकार समर्पण अकर्ताकाभी प्रकाश मानैं तौ इदमाकार वृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीका संबंधी जो अधिष्ठानका विशेष अंश ताकाभी प्रकाश हुया चाहिये. यातैं इदमाकार सामान्यज्ञानसैं भिन्न अविद्याका परिणामरूप अध्यस्ताकार वृत्तिरूप ज्ञान अवश्य अंगीकरणीय है; तिसमैंभी दो पक्ष कहैहैंः—तिनमैं अधिष्ठानगोचर औ अध्यस्तगोचर अनिर्वचनीयज्ञान होवै है; यह प्रथम पक्ष तौ समीचीन नहीं यह पूर्व कह्या है. जो अनिर्वचनीय मिथ्याज्ञानकूं उभयगोचर मानै तौ प्रमात्वभ्रमत्वका संकर दोष होवैगा. यातैं इदमाकार सामान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमैं केवल अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्ति होवैहै. जैसैं सर्परजतादिक मिथ्या हैं तैसैं तिनका ज्ञानभी मिथ्या है, इसीवास्तै सर्परजतादिकनके बाधकी नाईं तिनके ज्ञानकाभी बाध होवै है. इदमाकार प्रमावृत्तिमैं अभिव्यक्त साक्षीसैं ही अध्यस्तका प्रकाश मानैं तौ साक्षी तौ सदाही अबाध्य है औ इदमाकर वृत्तिभी अंतःकरणका परिणाम होनेतैं घटादिज्ञानकी नाईं व्यवहारकालमैं अबाध्य है; यातैं ब्रह्मज्ञानविना अध्यस्तके ज्ञानका बाध नहीं हुया चाहिये.

अनिर्वचनीयख्यातिमैं उक्त च्यारिमतका अनुवाद औ ताकी समाप्तिका दोहा ॥ ३९ ॥

इसरीतिसैं सर्परजतादिगोचर भ्रम होवै तहां सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति कही है. तामैं च्यारि पक्ष हैं. एक तौ कवि तार्किक नृसिंहभट्टोपाध्यायका मत है, तामैं अधिष्ठानसैं इंद्रियका संबंधही अध्यासका हेतु है अधिष्ठानका सामान्यज्ञान हेतु नहीं. अन्य आचार्यनके मतमैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु है. सामान्यज्ञानकूं धर्मिज्ञान कहैं हैं. उपाध्यायमतसैं भिन्न तीनूं मतमैं सामान्यज्ञानकूं अध्यासकी कारणता मानी है, यातैं तीनूं मत धर्मिज्ञानवादी हैं. तिनमैं भी अध्यस्तपदार्थाकारही अविद्याकी वृत्तिरूप भ्रमज्ञान होवै है यह पक्षही समीचीन है, औ अधिष्ठानगोचर इदमाकार तथा अध्यस्ताकार अविद्याकी वृत्ति होवै है यह पक्ष और इदमाकार वृत्तिरूप सामान्यज्ञान जो अध्यासका हेतु तासैं ही निर्वाह होवै हैं, अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्तिका अनंगीकारपक्ष समीचीन नहीं,तैसैं अध्यासका हेतु सामान्यज्ञान- का अनंगीकार पक्ष उपाध्यायकाभी समीचीन नहीं, इस रीतिसैं प्राचीन ग्रंथकारोंनैं जो लिख्या है, तिसके अनुसारही हमनैं दूषण भूषण लिखे हैं. अपने बुद्धिके बलसैं विचार करैं तौ इन चारों मतनमैं दूषण भूषण समान हैं. औ प्रपंचके मिथ्यात्व साधनमैं अद्वैतवादका अभिनिवेश है अवांतरमतभेदके प्रतिपादनमैं वा खंडनमैं अभिनिवेश नहीं, यातैं किसी जिज्ञासुकूं खंडित पक्षही बुद्धिमैं आरूढ होवै तौ कछु हानि नहीं औ एकही मतके अनुकूल हमनैं युक्ति लिखी है सो प्राचीन आचार्यनके मार्गसैं उत्पथगमनके निरोधार्थ लिखी है.

दोहा—निश्चल बिन किनहु न लिखी, भाषामैं यह रीति ॥
ख्याति अनिर्वचनीयकी, पेषहु सुजन सप्रीति ॥ १ ॥

शास्त्रांतरमैं उक्त पांचख्यातिके नाम ॥ ४० ॥

और शास्त्रांतरमैं जो भ्रमका लक्षणस्वरूप कह्या है तासैं विलक्षणही

भ्रमका लक्षण औ स्वरूप है. इस अर्थके जणावनेकूं शास्त्रांतरके भ्रमके स्वरूप भाष्यमैं कहे हैं तिनका निरूपण औ खंडन करैं हैं. शुक्तिमैं रजतादि भ्रम होवै तहां सिद्धांतपक्षसैं विना पांच मत हैः—सत्‌ख्याति १ असत्‌ख्याति २ आत्मख्याति ३ अन्यथाख्याति ४ आख्याति ५ भ्रमके ये नाम कहे हैं. सर्वके मतमैं पंचनाममैं अन्यतमभ्रमका नाम प्रसिद्ध है.

सत्‌ख्यातिकी रीति ॥ ४१ ॥

तिनमैं सत्‌ख्याति वादीका यह सिद्धांत हैः—शुक्तिके अवयवनके साथि रजतके अवयव सदा रहैं हैं. जैसैं शुक्तिके अवयव सत्य हैं, तैसैं ही रजतके अवयव हैं, मिथ्या नहीं. जैसैं दोषसहित नेत्रके संबंधतैं सिद्धांतमैं अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय रजत उपजै हैं. तैसैं दोषसहित नेत्रसंबंधतैं रजतावयवनसैं सत्यरजत उपजै है. अधिष्ठानज्ञानतैं जैसैं अनिर्वचनीय रजतकी निवृत्ति सिद्धांतमैं होवै है; तैसैं शुक्तिज्ञानतैं सत्यरजतका अपने अवयवनमैं ध्वंस होवै है.

सत्‌ख्यातिवादका खंडन ॥ ४२ ॥

यह सत्‌ख्यातिवादीका मत है सो निराकरणीय है. काहेतैं ? शुक्तिरजतदृष्टांतसैं प्रपंचकूं मिथ्यात्वकी अनुमिति होवैहै. सत्‌ख्यातिवादमैं शुक्तिमैं रजत सत्य है; तिसकूं दृष्टांत धरिकै प्रपञ्चमैं मिथ्यात्वसिद्धि होवै नहीं; यातैं यह पक्ष निराकरणीय है. या पक्षमैं यह दोष हैः—शुक्तिज्ञानसैं अनंतर “कालत्रयेऽपि शुक्तौ रजतं नास्ति” इसरीतिसैं शुक्तिमैं त्रैकालिक रजताभाव प्रतीत होवै है सिद्धांतमैंभी अनिर्वचनीय रजत तौ मध्यकालमैं होवै है औ व्यावहारिक रजताभाव त्रैकालिक है सत्‌ख्यातिवादीके मतमैं व्यावहारिक रजत होवै तिस कालमैं व्यावहारिक रजताभाव संभवै नहीं, यातैं त्रैकालिक रजताभावकी प्रतीतिसैं व्यावहारिक रजतकथन विरुद्ध है. और अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्तिमैं तौ प्रसिद्ध रजतकी सामग्री चाहिये नहीं. दोषसहित अविद्यासैं ताकी उत्पत्ति संभवै है औ व्यावहारिक रजत-

की उत्पत्ति तौ रजतकी प्रसिद्ध सामग्री विना संभवै नहीं; औ शुक्ति-देशमें रजतकी प्रसिद्ध सामग्री है नहीं यातें सत्यरजतकी उत्पत्ति शुक्ति-देशमें संभवै नहीं.

शुक्तिमें सत्यरजतकी सामग्रीका अंगीकार औ खण्डन ॥ ४३ ॥

औ जो ऐसें कहैं शुक्तिदेशमें रजतके अवयव हैं सोई सत्यरजतकी सामग्री है; ताकूं यह पूछे हैं:—रजतावयवनका उद्भूत रूप है अथवा अनुद्भूत रूप है? उद्भूत रूप कहै तौ रजतावयवनकाभी रजतकी उत्पत्तिसें प्रथम प्रत्यक्ष हुया चाहिये. जो अनुद्भूत रूप कहै तौ अनुद्भूतरूपवाले अवयवनतें रजतभी अनुद्भूतरूपवाला होवैगा, यातें रजतका प्रत्यक्ष नहीं होवैगा औ उद्भूतरूपवत् त्र्यणुकआरंभक द्व्यणुकमें तौ अनुद्भूत रूप नहीं, किंतु उद्भूत रूप है. द्व्यणुकमें महत्त्व नहीं, यातें उद्भूत रूप होनेतैंभी द्व्यणुकका प्रत्यक्ष होवै नहीं, औ द्व्यणुकमेंही उद्भूत रूप नहीं है, किंतु परमाणुमेंभी नैयायिक उद्भूत रूप अंगीकार करैं हैं.

औ जो ऐसें कहैं द्व्यणुककी नाई रजतावयवभी उद्भूतरूपवाले हैं, परंतु महत्त्वशून्य हैं; यातें रजतावयवका प्रत्यक्ष होवै नहीं, सो संभवै नहीं, काहेतें? महत्परिमाणके च्यारि भेद हैं:—आकाशादिकनमें परम महत्परिमाण है. परममहत्परिमाणवालेकूं ही नैयायिक विभु कहैं हैं. विभुसें भिन्न घटादिकनमें अपकृष्टमहत्परिमाण है, औ सर्षप आदिकनमें अपकृष्टतरमहत्परिमाण है. त्र्यणुकमें अपकृष्टतम महत्परिमाण है. जो रजतके अवयवभी महत्परिमाणशून्य होवैं तौ द्व्यणुकसें आरब्ध त्र्यणुक-की नाई महत्त्वशून्य अवयवनतें आरब्ध रजतादिकभी अपकृष्टतममहत्परि-माणवालेही हुये चाहियें; यातें रजतावयव महत्त्वशून्य है, यह कहना संभवै नहीं. औ रजतावयवमें तौ महत्त्वका अभाव कहै तौ किसी रीतिसें संभवै भी परंतु जहां वल्मीकमें घटका भ्रम होवै तहांभी घटावयव कपाल मानने होवैंगे. औ जहां स्थाणुमें पुरुषभ्रम होवै तहां स्थाणुमें पुरुषके अवयव

हस्तपादादिक मानने होवैंगे, कपाल औ हस्तपादादिक तौ महत्त्वशून्य संभवै नहीं रजतत्वजाति तौ अणु साधारण है यातैं सूक्ष्मावयवनमैंभी रजतव्यवहार संभवै है, औ घटत्व कपालत्व हस्तपादत्व पुरुषत्वादिकजाति तौ महान् अवयवी मात्रवृत्ति है; तिनके सूक्ष्म अवयवनमैं कपालत्वादिक जाति संभवै नहीं ? यातैं भ्रमके अधिष्ठानदेशमैं आरोपितके व्यावहारिक अवयव होवैं तौ तिनकी प्रतीति हुई चाहिये, यातैं व्यावहारिक अवयवनसैं रजतादिकनकी उत्पत्तिकथन असंगत है.

सत्ख्यातिवादीकरि उक्त दोषका परिहार औ ताका खंडन ॥ ४४ ॥

औ जो सत्ख्यातिवादी ऐसैं कहैः—शुक्तिदेशमैं रजतके साक्षात् अवयव नहीं हैं; किंतु अवयवनके अवयव परम मूल द्व्यणुक अथवा परमाणु रहैं हैं; तैसैं वल्मीकदेशमैं घटके औ स्थाणुदेशमैं पुरुषके साक्षात् अवयवनके अवयव परममूल द्व्यणुक अथवा परमाण रहैंहैं. दोषसहित नेत्रके संबंधतैं झटिति अवयविधारा उपजिकै रजतघट पुरुषकी उत्पत्ति होवै है. दोषके अद्भुत माहात्म्यतैं ऐसे वेगसैं त्र्यणुकादिकनकी धारा उपजै है यातैं मध्यके अवयवी कपाल हस्तपादादिक प्रतीत होवैं नहीं अंत्य अवयवी घटादिकी उत्पत्ति हुयां तौ कपालादिक कहूंभी प्रतीत होवैं नहीं यातैं भ्रमके अधिष्टानमैं आरोपितके अवयव प्रतीत होवैं नहीं; औ व्यावहारिक अवयव रजतादिकनके हैं अथवा शुक्तिदेशमैं रजतके महत् अवयव हैं; औ वल्मीकदेशमैं घटके अवयव कपाल हैं, स्थाणुदेशमैं पुरुषके अवयव हस्तपादादिक हैं; इसरीतिसैं भ्रमके अधिष्ठानमैं आरोपितके सारे अवयव हैं, तौभी अधिष्ठानकी विशेषरूपतैं प्रतीति तिन अवयवनकी प्रतीतिकी प्रतिबंधक है; यातैं विद्यमान महत् अवयवनका प्रत्यक्ष होवै नहीं. इस रीतिसैं सत्ख्यातिवादीका समाधानभी समीचीन नहीं. काहेतैं ? शुक्तिदेशमैं व्यावहारिक रजतकी उत्पत्ति मानैं तौभी अनुभवानुरोधसैं रजतकी निवृत्ति शुक्तिज्ञानसैंही मानी चाहिये.

रजतज्ञानकी निवृत्तिसैं प्रातिभासिक औ व्यावहारिक रजतकी निवृत्ति औ ताका खंडन ॥ ४९ ॥

औ सत्ख्यातिवादी ऐसैं कहैः-रजतकी निवृत्तिमैं शुक्तिज्ञानकी अपेक्षा नहीं; किंतु रजतज्ञानाभावसैं रजतकी निवृत्ति होवै है; जितने काल रजतका ज्ञान रहै उतने काल रजत रहै है. रजतज्ञानका अभाव होवै तब रजतकी निवृत्ति होवै है. शुक्तिका ज्ञान कहूं रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतु है, कहूं शुक्तिज्ञानविना अन्यपदार्थके ज्ञानतैं रजतज्ञानकी निवृत्ति होवै है ता रजतज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरक्षणमैं रजतकी निवृति होवैहै अथवा रजतज्ञानकी निवृत्ति जासैं होवै तासही रजतज्ञानकी निवृत्ति-क्षणमैं रजतकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसैं ज्ञानकालमैं रजतकी स्थिति होनेतैं यद्यपि प्रतिभासिक ही रजतादिक हैं तथापि अनिर्वचनीय नहीं किंतु व्यावहारिक सत्य हैं जैसैं सिद्धातमैं सुखादिक प्रातिभासिक हैं तौभी स्वप्नसुखादिकनसैं विलक्षण व्यावहारिक मानेहैं. औ न्यायमतमैं द्वित्वा-दिक प्रातिभासिक मानिकै व्यावहारिक सत्य माने हैं, तैसैं रजतादिक प्रातिभासिक हैं तौभी व्यावहारिक सत्य . इसरीतिसैं रजतज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरक्षणम रजतादिकनकी निवृत्ति होवै है; अथवा रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतु जो शुक्तिका ज्ञान अथवा पदार्थांतरका ज्ञान तामैंही रज-तज्ञानके निवृत्तिक्षणमैं रजतकी निवृत्ति होवैहै. शुक्तिज्ञानसैं ही रजतकी निवृत्ति होवै यह नियम नहीं है.

ऐसा कहैं तौ लोकानुभवस विरोध होवैगा, सकलशास्त्रनसैं विरोध होवैगा सिद्धांतका त्याग होवैगा; औ युक्तिविरोध होवैगा. काहेतैं ? शुक्तिज्ञानसैं रजतभ्रमकी निवृत्ति होवै है यह सर्व लोकमैं प्रसिद्ध है. औ सकल शास्त्रमैं प्रसिद्ध है औ सत्ख्यातिवादीकाभी यही सिद्धांत है. औ सत्ख्यातिवादी मतमैं विशेषरूपतैं शुक्तिका ज्ञान रजतावयवके ज्ञानका प्रतिबंधक है यातैं रजतावयवके ज्ञानका विरोधी शुक्तिका ज्ञान निर्णीत है. रजतावयवकी

प्रतीतिका विरोधी शुक्तिज्ञानही रजतज्ञानका विरोधी मानना क्लृप्तकल्पना है. निर्णीतकूं क्लृप्त कहैं हैं. शुक्तिज्ञानसैं विना अन्यसैं रजतज्ञानकी निवृत्ति मानैं तौ अक्लृप्तकल्पना होवैगी. इसरीतिसैं क्लृप्तकल्पना योग्य है या युक्तिसैंभी विरोध होवगी; यातैं शुक्तिज्ञानसैं ही रजतकी औ ताके ज्ञानकी निवृत्ति माननी योग्य है.

सत्ख्यातिवादमैं प्रबल दोष ॥ ४६ ॥

औ जो पूर्व उक्तरीतिसैं रजतज्ञानाभावसैं रजतकी निवृत्ति मानैं औ रजतज्ञानकी निवृत्तिके अनेक साधन मानैं तौभी वक्ष्यमाण दोषसैं सत्ख्यातिवादीका उद्धार होवै नहीं सो दोष यह है:—जहां शुक्तिमैं जा क्षणमैं रजत भ्रम होवै तिसी क्षणमैं शुक्तिसैं अग्निका संयोग होयकै उत्तर क्षणमैं शुक्तिका ध्वंस औ भस्मकी उत्पत्ति होवै तहां रजतज्ञानकी निवृत्तिका साधन कोई हुया नहीं; यातैं शुक्तिध्वंस औ भस्मकी उत्पत्तिसैं प्रथम रजतकी निवृत्ति नहीं होनैतैं भस्मदेशमैं रजतका लाभ हुया चाहिये, काहेतैं ? रजत द्रव्य तैजस है, ताका गन्धकादि संबंधविना ध्वंस होवै नहीं. यातैं भ्रमस्थानमैं व्यावहारिक रजत रूप सत्पदार्थकी ख्याति होवैं है यह सत्ख्यातिवाद असंगत है औ जहां एक रज्जुमैं दशपुरुषनकूं भिन्न भिन्न पदार्थनका भ्रम होवै किसीकूं दण्डका किसीकूं मालाका; किसीकूं सर्पका तथा किसीकूं जलधाराका इत्यादिक पदार्थनके अवयव स्वल्परज्जुदेशमैं संभवै नहीं. काहेतैं ? मूर्तद्रव्य स्थानका निरोध करैं हैं, यातैं स्वल्पदेशमैं इतने पदार्थनके अवयव संभवै नहीं; औ भ्रमकालमैं दंडादिक अवयवी सर्वथा स्वल्पदेशमैं संभवै नहीं औ सिद्धांतमैं तौ अनिर्वचनीय दंडादिक हैं. व्यावहारिक देशका निरोध करैं नहीं औ जो सत्ख्यातिवादी भी तिन दंडादिकनमैं स्था निरोधादिक फल नहीं मानैं तौ दंडादिकनकूं सत् कहना विरुद्ध है औ निष्फल है. दंडादिकनकी प्रतीतिमात्र होवैहै अन्यकार्य तिनतैं होवै नहीं; ऐसा कहैं तौ अनिर्वचनीयवादही सिद्ध होवै है.

औ भ्रमस्थलमैं सत्पदार्थकी उत्पत्ति मानैं तौ अंगारसहित ऊपर भूमिमैं जलभ्रम होवै तहां जलसैं अंगार शांत हुये चाहियें औ तूलके उपरि धरे गुंजापुंजमैं अग्निभ्रम होवै तहां तूलका दाह हुया चाहिये. औ जो ऐसा कहैः—दोषसहित कारणतैं उपजे पदार्थकी अन्यकूं प्रतीति होवै नहीं जाके दोषतैं उपजै है ताहीकूं प्रतीति होवैहै. औ दोषके कार्य जल अग्निसैं आर्द्रीभाव दाह होवै नहीं तौ तिनकूं सत्यता कहना केवल हास्यका हेतु है. काहेतैं ? अवयव तौ स्थान निरोधादिकके हेतु नहीं. अवयवीसैं कोई कार्य होवै नहीं ऐसे पदार्थकूं सत् कहना सुनिके बुद्धिमानाकूं हास्य होवै है. यातैं सत्ख्याति वादकी उक्तिसंभवभी नहीं सर्वथा यह पक्ष निर्युक्तिक है, इसी वास्तै विचारसागर मैं सत्ख्याति नहीं जा पक्षका किसीप्रकारसैं उपपादन होवै फेरि तर्कादिबलतैं खंडन होवै सो पक्ष लिख्या चाहिये. सत्ख्यातिवादका उपपादन नहीं संभवै यातैं इसग्रन्थमैंभी लेखनीय नहीं, तथापि सर्वथा लिखेविना अध्येताकूं ऐसा भ्रम होयजावै. ग्रन्थकर्ताकूं सत्ख्यातिवादका ज्ञान नहीं था तिसभ्रमकी निवृत्तिवास्तै इहां लिख्या है.

त्रिविध असत्ख्यातिकी रीति शून्यवादीकी रीतिसैं असत्ख्यातिवादका खंडन ॥ ४७ ॥

तसैं असत्ख्यातिवादभी सर्वथा युक्तिअनुभवशून्य है. निराकरण विनाभी किसीकी बुद्धिमैं आरूढ होवै नहीं, यातैं निराकरणीय नहीं तथापि असत्ख्यातिवादी वेदमार्गका प्रतिद्वंदी प्रसिद्ध है. औ सूत्रनसैं ताके मतका खंडन कह्या है यातैं खंडनीय है. असत्ख्यातिवादी दो हैंः—एकतौ शून्यवादी नास्तिक असत्ख्याति मानैं हैं. तिसके मतमैं तौ सारे पदार्थ असत्रूप हैं, यातैं शुक्तिमैं रजतभी असत् है. ! शून्यवादीके मतमैं तौ असत्अधिष्ठानमैं रजत असत् है यातैं निरधिष्ठान भ्रम है. तैसैं ज्ञाता ज्ञानभी असत् हैं; या मतका खंडन शारीरकके द्वितीयाध्यायके तर्कपादमैं विस्तारसै कथ्या है औ अनुभव विरुद्ध है काहेतैं ? शून्यवादमैं सर्वस्था-

नमैं शून्य है, यातैं किसीका व्यवहार प्रसिद्ध नहीं हुया चाहिये, औ शून्यस व्यवहार होवै तौ जलका प्रयोजन अग्निसैं, अग्निका प्रयोजन जलसैं हुया चाहिये. अग्नि जल तौ सत्य वा मिथ्या कहूं हैं नहीं, केवल शून्यतत्त्व हैं; सो सारे एकरस हैं तामैं कोई विशेष नहीं. जो शून्यमैं विशेष मानैं तौ शून्यवादीकी हानि होवैगी. काहेतैं ? वह विशेषही शून्यसैं भिन्न है, औ जो एक कहै शून्यमैं विशेष है जाकूं **विलक्षणता** कहैं हैं तासैं व्यवहारभेद होवै है. औ वह विशेष औ व्यवहार तथा व्यवहारका कर्ताभी परमार्थसैं शून्य है, यातैं शून्यताकी हानि नहीं सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? शून्यमैं विशेष है यह कथन विरुद्ध है. विशेषवाला कहै तौ शून्यताकी हानि होवै है औ शून्य कहै तौ विशेषवत्ताकी हानितैं व्यवहार भेदका असंभव है; इसरीतिसैं शून्यवाद संभवै नहीं.

कोई तांत्रिककी रीतिसैं असत्ख्यातिवाद ॥ ४८ ॥

औ कोई तांत्रिक असत्ख्यातिवादी है, ताके मतमैं शुक्तिआदिक व्यवहारके पदार्थ तौ असत् नहीं, किंतु भ्रमज्ञानके विषय जो अनिर्वचनीय रजतादिक सिद्धांतमैं मान हैं वह असत् हैं. यातैं व्यावहारिक रजतादिक अपने देशमैं हैं तिनका शुक्तिमैं संबंध नहीं. औ अन्यथाख्यातिवादीकी नाईं शुक्तिमैं रजतत्वकी प्रतीतिभी होवै नहीं. अनिर्वचनीय रजत उपजै नहीं औ अख्यातिवादीकी नाईं दो ज्ञान होवै नहीं. शून्यवादीकी नाईं शुक्ति असत् नहीं; ज्ञाताज्ञानभी असत् नहीं; किंतु शुक्ति ज्ञान ज्ञाता सत् हैं, दोषसहित नेत्रका शुक्तिसैं संबंध होवै तब शुक्तिका ज्ञान होवै नहीं; किंतु शुक्तिदेशमैं असत् रजतकी प्रतीति होवै है. यद्यपि अन्यथाख्यातिवादमैं शुक्तिदेशमैं रजत असत् है औ कांताकरमैं तथा हट्टमैं सत् रजत दोनूं मतमैं हैं; तथापि अन्यथाख्यातिवादमैं तौ देशांतरस्थ सत्यरजतवृत्ति-रजतत्वका शुक्तिमैं भान होवै है, औ असत्ख्यातिवादमैं देशान्तरमैं रजत तौ है, तिसके धर्म रजतत्वका शुक्तिमैं भान होवै नहीं; किंतु असत्गोचर

रजतज्ञान है. शुक्तिसैं दोषसहित नेत्रके संबंधतैं रजतभ्रम होवै है, ताका विषय शुक्ति नहीं जो रजतभ्रमका विषय शुक्ति होवै तौ, "इयं शुक्तिः" ऐसा ज्ञान हुया चाहिये. जो शुक्तित्वरूप विशेष धर्मका दोषबलतैं भान नहीं होवै तौ सामान्य अंशका "इयम्" इतनाही ज्ञान हुया चाहिये; यातैं भ्रमका विषय शुक्ति नहीं तैसैं भ्रमका विषय रजत् भी नहीं. काहेतैं ? पुरोवर्ति देशमैं तौ रजत् है नहीं, औ देशांतरमैं रजत है, तासैं नेत्रका संबंध नहीं. इसरीतिसैं रजतभ्रमका विषय कोई नहीं. औ शुक्तिज्ञानसैं उत्तरकालमैं "इह कालत्रयेऽपि रजतं नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है; यातैं रजत भ्रम निर्विषयक होनेतैं **असत् गोचर** कहिये है असत्‌गोचर ज्ञानकूं ही **असत्-ख्याति** कहैं हैं.

न्यायवाचस्पत्यकारकी रीतिसैं असतख्यातिवाद ॥ ४९ ॥

औ कोई असतख्याति इसरीतिसैं कहैंहैंः—शुक्तिसैं नेत्रके संबंधतैं रजतभ्रम होवै है यातैं रजतभ्रमका विषय शुक्ति है; परंतु शुक्तिमैं शुक्तित्व औ शुक्तित्वका समवाय दोनूं दोषतैं भासैं नहीं; किंतु शुक्तिमैं रजतत्वका समवाय भासै है. जो रजतत्वका समवाय शुक्तिमैं है नहीं, यातैं असत्‌ख्याति है; रजतत्वप्रतियोगीका शुक्ति अनुयोगिक समवाय असत् है. ताकी ख्याति कहिये प्रतीति **असत ख्याति** कहियेहै. रजतत्वप्रतियोगिक समवायरजतमैं रजतत्वका प्रसिद्ध है. और शुक्त्यनुयोगिक समवाय शुक्तिमैं शुक्तित्वका प्रसिद्ध है, परंतु रजतत्व प्रतियोगिक समवाय रजतानुयोगिक प्रसिद्ध है; शुक्त्यनुयोगिक नहीं. औ जो शुक्त्यनुयोगिक समवाय प्रसिद्ध है, सो शुक्तित्व प्रतियोगिक है. रजतत्वप्रतियोगिक नहीं. इसरीतिसैं रजतत्वप्रतियोगिक-शुक्ति अनुयोगिक समवाय अप्रसिद्ध होनेतैं असत्‌है, ताकी प्रतीतिकूं असत्-ख्याति कहैंहैं. शुक्ति जाका **अनुयोगी** कहिये धर्मी होवै सो शुक्त्यनुयो-गिक कहिये है, रजतत्व जिसका प्रतियोगी होवै सो रजतत्वप्रतियोगिक कहिये है. भाव यह हैः—केवल समवाय प्रसिद्ध है औ रजतत्व प्रतियोगिक

समवायभी रजतसैं प्रसिद्ध है; औ शुक्त्यनुयोगी समवायभी शुक्तिधर्मनका शुक्तिमैं प्रसिद्ध है;प्रसिद्धसमवायमैं समवायत्व धर्म है रजतत्व प्रतियोगित्वभी समवायमैं प्रसिद्ध है तैसैं शुक्त्यनयोगित्वभी समवायमैं प्रसिद्ध है; परंतु रजतत्व प्रतियोगिकत्व शुक्त्यनुयोगिकत्व दोनूं धर्म एकस्थानमैं समवायमैं अप्रसिद्ध होनेतैं शुक्त्यनुयोगिकत्वविशिष्ट रजतत्व प्रतियोगिकत्वविशिष्ट-समवाय अप्रसिद्ध होनेतैं असत् है;ताकी ख्याति असतख्याति कहिये है. यह न्याय वाचस्पत्यकारका मत है. इसरीतिसैं अधिष्ठानकूं मानिकै असत्-ख्याति दो प्रकारकी मानैं हैं; एक तौ शुक्तिअधिष्ठानमैं असत्रजतकी प्रतीतिरूप है औ दूसरी शुक्तिमैं असत्रजतत्व समवायकी प्रतीतिरूप है.

द्विविध असतख्यातिवादका खण्डन ॥ ९० ॥

सो दोनूं असंगत हैं. काहेतैं ? जो असतख्याति मानैं ताकूं यह पूछै हैं; असत्ख्याति या वाक्यमैं अबाध्यविलक्षण असत् शब्दका अर्थ है अथवा असत् शब्दका अर्थ निःस्वरूप है जो ऐसैं कहैः—असत् शब्दका अर्थ निःस्वरूप है तौ "मुखे मे जिह्वा नास्ति" इसवाक्यकी नाईं असत्ख्याति-वादका अंगीकार निलज्जका है. काहेतैं ? सत्तास्फूर्तिरहितकूं निःस्वरूप कहैहैं. यातैं सत्तास्फूर्तिशून्यभी प्रतीत होवै है यह असत्ख्यातिवाद कहैं तैसैं सिद्ध होवै है, सत्तास्फूर्तिशून्यकी प्रतीति कहना विरुद्ध है यातैं अबा-ध्यविलक्षण असत् शब्दका अर्थ कहै तौ अबाध्यविलक्षण वाध्य होवै है-वाधके योग्यकूं बाध्य कहैहैं; इसरीतिसैं वाधके योग्यकी प्रतीत असत्-ख्याति कहिये है, यह सिद्ध हुया. सोई सिद्धांतीका मत है. काहेतैं ? अनि-र्वचनीय ख्याति सिद्धांतमैं है और वाधयोग्यही आनिर्वचनीय होवै है.इस-रीतिस सिद्धांतसैं विलक्षण असत्ख्यातिवाद है यह कहना संभवै नहीं.

आत्मख्यातिकी रीति औ खण्डन, आंतर-पदार्थमानी आत्मख्यातिवादीका अभिप्राय ॥ ९१ ॥

आत्मख्याति असंगत है. काहेतैं ? विज्ञानवादीके मतमैं आत्मख्याति है-

क्षणिकविज्ञानकूं विज्ञानवादी आत्मा कहैं हैं; तिसके मतमैं बाह्य रजत नहीं है, किंतु अन्तर विज्ञानरूप आत्मा है. ताका धर्म रजत है दोषबलतैं बाह्य प्रतीत होवै है. शून्यवादीके मतविना आंतरपदार्थकी सत्तामैं किसी सुगतशिष्यका विवाद नहीं. बाह्य पदाथ तौ कोई मानैं हैं कोई नहीं मानैं हैं.यातैं बाह्यपदाथकी सत्तामैं तौ तिनका विवाद है.आंतर विज्ञानका निषेध शून्यवादी विना कोई नास्तिक करै नहीं, यातैं आंतररजतका विज्ञानरूप आत्मा अधिष्ठान है, ताका धर्म रजत आंतर है;दोषबलतैं बाह्यकी नाईं प्रतीत होवै है. ज्ञानतैं रजतका स्वरूपसैं बाध नहीं होवै है; किंतु रजतकी बाह्यताका बाध होवै है. अनिर्वचनीय ख्यातिवादमैं रजतधर्मीका बाध औ इदंतारूप बाह्यवृत्ति ताका बाध मानना होवै है. औ आत्मख्यातिमतमैं रजतका तौ बाध मानना होवै नहीं काहेतैं ? शून्यवादीसैं भिन्न सकल सौगतके मतमैं पदार्थनकी आंतरसत्तामैं विवाद नहीं यातैं स्वरूपसैं रजतका बाध मानना होवै नहीं; केवल बाह्यतारूप इदंताका बाध मानना होवै है; यातैं अनिर्वचनीयवाद मानैं तौ धर्म औ धर्मीका बाधकल्पन गौरव है. आत्मख्याति मानैं तौ धर्मीके बाधविना इदंतारूप धर्ममात्रके बाधकल्पनमैं लाघव है.यह आत्मख्यातिवादीका अभिप्राय है. या मतमैं रजत आंतर सत्य है, ताकी बाह्य देशमैं प्रतीति भ्रम है;यातैं रजतज्ञानमैं रजतगोचरत्व अंशभ्रम नहीं; किंतु रजतका बाह्यदेशस्थत्व प्रतीति अंशमैं भ्रम है.

आंतरपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीके मतका खण्डन ॥ ६२ ॥

यह मतभी समीचीन नहीं. रजत आंतर है. ऐसा अनुभव किसीकूं होवै नहीं भ्रमस्थलमैं वा यथार्थस्थलमैं रजतादिकनकी आंतरता किसी प्रमाणसैं सिद्ध होवै नहीं.सुखादिक आंतर हैं औ रजतादिक बाह्य है यह अनुभव सर्वकूं होवै है. रजतकूं आंतर मानैं तौ अनुभव विरोध होवै है और आंतरताका साधक प्रमाण युक्ति है नहीं; यातैं आंतर रजतकी बाह्य प्रतीति मानना असंगत है.

सौगतनके दो भेदनमैं बाह्यपदार्थवादीकी आत्मख्यातिका अनुवाद ॥ ५३ ॥

यद्यपि सौगतनमैं दो भेद हैं. एकतौ विज्ञानवाद है औ दूसरा बाह्यवाद है. बाह्यवादमैंभी दो भेद हैं एक तौ बाह्यपदार्थ अनुमेय है प्रत्यक्ष नहीं ज्ञानका प्रत्यक्ष होवैहै; ज्ञानसैं ज्ञेयकी अनुमिति होवै है. इसरीतिसैं बाह्यपदार्थनका परोक्षवाद है;औ बाह्यपदार्थभी प्रत्यक्षज्ञानके विषय हैं. इसरीतिसैं बाह्यपदार्थनका अपरोक्षवाद है; इनमैं विज्ञानवादीके मतमैं तौ व्यावहारिक रजतभी बाह्य नहीं है. औ बाह्यपदार्थवादीके मतमैं यथार्थज्ञानका विषय रजत तौ बाह्य है, यातैं उक्त अनुभवका विरोध नहीं. औ भ्रमस्थलमैं बाह्य रजत माननेका प्रयोजन नहीं. काहेतैं ? कटकादिसिद्धि तौ तिस रजतसैं होवै नहीं केवल प्रतीतिमात्र होवैहै;औ विषयविना प्रतीति होवै नहीं;यातैं भ्रमप्रतीतिकी सविषयता सिद्धिही तिस रजतका फल है सो आंतरही मानै तौभी भ्रमप्रतीति सविषयक होय जावै है. बाह्य मानिकै प्रतीतिकी सविषयता सिद्ध करै ताके मतमैं उक्तरीतिसैं धर्मधर्मीका बाध माननेतैं गौरव है. आंतररजतकी दोषबलतैं बाह्यप्रतीति मानैं तौ केवल इदंताके बाध माननेतैं लाघव होवैहै;औ यथार्थज्ञानका विषय रजत पुरोवर्तिदेशमैं होवैहै. भ्रमज्ञानका विषय रजतभी पुरोवर्तिदेशमैं होवै तौ यथार्थ ज्ञान औ भ्रमज्ञानकी विलक्षणता नहीं होवैगी. औ आत्मख्याति मतमैं तौ यथार्थज्ञानका विषय रजतभी पुरोवर्तिदेशमैं है औ भ्रमज्ञानका विषय रजत आंतर है यातैं बाह्यत्व आंतरत्वरूप विषयकी विलक्षणतासैं यथार्थत्व अयथार्थत्व भेदज्ञानके होवै हैं. औ बाह्यदेशमैं जो भ्रमके विषयकी उत्पत्ति मानैं तौ शुक्तिदेशमैं उपजे रजतकी सर्वकूं प्रतीति हुई चाहिये. औ अधिष्ठानमैं दशमपुरुषनकूं भिन्नभिन्न पदार्थनका भ्रम होवै तहां एक एक पुरुषकूं सकल पदार्थनकी प्रतीति हुई चाहिये. औ आत्मख्यातिमतमैं तौ जिसके आंतर जो पदार्थ उपजै है तिसीकूं पुरोवर्तिदेशमैं वह पदार्थ प्रतीति होवैहै; यातैं अन्यपु-

रुषकूं ताकी प्रतीतिकी शंकाही होवै नहीं. भ्रमके विषयकी बाह्य उत्पत्ति मानें तिसके मतसैं अन्यपुरुषनकूं अप्रतीतिमैं समाधानका अन्वेषणरूप क्लेशही फल है; इस रीतिसैं बाह्यपदार्थवादी सौगतमतमैं आत्मख्यातिकी उक्ति संभवैहै व्यावहारिक पदार्थही तिसके मतमैं बाह्य है प्रातिभासिक रजतादिक बाह्य नहीं, केवल आंतरही हैं.

बाह्यपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीके मतका खंडन ॥ ५४ ॥

तथापि आत्मख्यातिवाद असंगतही है. काहेतें ? रजतादिक पदार्थ स्वप्नविना जागरणमैं आंतर अप्रसिद्ध हैं.बाह्यस्वभावकूं भ्रमस्थलमैं आंतरकल्पना अप्रसिद्ध कल्पना दोष है औ आंतर होवै तौ "मयि रजतम्, अहं रजतम्" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये."इदं रजतम्" इसरीतिसैं रजतकी बाह्य प्रतीति हुई चाहिये.

और जो ऐसैं कहै. यद्यपि रजत आंतर है बाह्य देशमैं है नहीं, तथापि दोषमाहात्म्यतैं आंतरपदार्थकी बाह्य प्रतीति होवै है. बाह्यतारूप इदंता शुक्तिमैं है दोषके माहात्म्यतैं शुक्तिकी इदंता रजतमैं भासै है. जा दोषतैं आंतर रजत उपजै है ता दोषतैंही आंतर उपजे रजतमैं शुक्तिकी इदंता प्रतीति होवै है. जो रजतकी बाह्यदेशमैं उत्पत्ति मानैं तौ बाह्यदेशमैं सत्यरजत तौ संभवै नहीं; अनिर्वचनीय मानना होवैगा. सो अनिर्वचनीय वस्तु लोकमैं अप्रसिद्ध है, यातैं अप्रसिद्ध कल्पना दोष होवैगा औ आंतर तौ सत्य रजत उपजै है. आंतर होनेतैं ताके हान उपादान अशक्य हैं; यातैं सत्य मानेंभी कटकादिसिद्धिरूप फलका अभाव संभवै है, यातैं अनिर्वचनीय वस्तुकी कल्पना होवै नहीं, अनिर्वचनीय ख्यातिसैं आत्मख्यातिंवै यह लाघव है.

सोभी असंगत है. शुक्तिकी इदंता रजतमैं प्रतीत होवै है, या कहनेसैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवै है. जो इदंताप्रतीतिमैं अन्यथा

ख्याति मानी तौ शुक्तिमैं रजतत्व धर्मकी प्रतीतिभी अन्यथाख्यातिही मानी चाहिये. आंतर रजतकी उत्पत्ति माननी निष्फल है. जैसैं रजत पदार्थ शुक्तिसैं व्यवहित है; ताके धर्मकी शुक्तिमैं प्रतीतिका असंभव कहै तो तेरे मतमैंभी शुक्तिसैं व्यवहित अंतर्देशमैं रजत है. तामैं शुक्तिधर्म इदंताकी प्रतीतिका असंभव तुल्य है.

आत्मख्यातिवादतैं विलक्षण अद्वैतवादका सिद्धांत ॥ ५५ ॥

सिद्धांतमैं तौ शुक्तिवृत्तितादात्म्यका अनिर्वचनीय संबंध रजतमैं उपजै है; ताकूं संसर्गाध्यास कहैहैं. अधिष्ठानका संबंध आरोपितमैं जहां प्रतीत होवै तहां सारै अधिष्ठानका संसर्गाध्यास होवै है. संसर्गाध्यास विना अन्य धर्मकी अन्यमैं प्रतीति होवै नहीं इसरीतिसैं अध्यासविनाशुक्ति-वृत्ति इदंताका आंतर रजतमैं प्रतीतिके असंभवतैं आत्मख्यातिवाद असं-गत है औ अनिर्वचनीय वस्तुकी अप्रसिद्ध कल्पना दोष कह्या सोभी अज्ञानसैं कह्याहै. काहेतैं ? अद्वैतवादका यह मुख्य सिद्धांत है:— चेतन सत्य है, तासैं भिन्न सकल मिथ्या है. अनिर्वचनीयकूं मिथ्या कहैं हैं, यातैं चेतनसैं भिन्न पदार्थकूं सत्य कथनमैं ही अप्रसिद्ध कल्पना है. चेतनसैं भिन्न पदार्थनमैं अनिर्वचनीयता तौ अतिप्रसिद्ध है. युक्तिसैं विचार करै तब किसी अनात्मपदार्थनका स्वरूप सिद्ध होवैं नहीं औ प्रतीत होवै है, यातैं सकल अनात्मपदार्थ अनिर्वचनीय हैं, सिद्धान्तमैं अनात्मपदार्थ कोई सत्य नहीं. गन्धर्वनगरकी नाई दृष्ट सार प्रपंच नष्टस्वभाव है. स्वप्नमैं जागृतपदार्थनमैं किंचिद्विलक्षणता नहीं. औ शुक्ति रजत प्रातिभासिक है. कांताकरादिकनमैं रजत व्यावहारिक है; इसरीतिसैं अनात्मपदार्थनमैं मिथ्यात्व सत्यत्व विलक्षणता परस्पर कहीहैं, सो स्थूल बुद्धिवालेका अद्वैतबोधमैं प्रवेशवास्तै अरुंधतीन्यायसैं कहिये. स्थूल बुद्धिपुरुषकूं प्रथमही मुख्यसिद्धांतकी रीति कहै तौ अद्भुत अर्थकूं सुनिके अनात्मसत्यत्व भावनावाला पुरुष शास्त्रसैं विमुख होयकै पुरुषार्थसैं भ्रष्ट

होय जावैं इसवास्तै अनात्मपदार्थनकी व्यावहारिक प्रातिभासिकभेदसैं द्विविध सत्ता कही, औ चेतनकी पारमार्थिक सत्ता कही. चेतनसैं न्यून-सत्ता प्रपञ्चकी बुद्धिमैं आरूढ हुये सकल अनात्मपदार्थनकूं स्वप्नादि-दृष्टांतसैं प्रतिभासिकता जानिकै निषेधवाक्यनतैं सर्व अनात्मकूं सत्ता-स्फूर्तिशून्य जानि लेवै, इसवास्तै सत्ताभेद कह्या है औ अनात्मपदार्थनका परस्पर सत्ताभेदमैं अद्वैतशास्त्रका तात्पर्य नहीं यातैं अद्वैतवादीकूं अनिर्वचनीय पदार्थ अप्रसिद्ध है. यह कथन विरुद्ध है. औ प्रकारांतरका असंभव है, यातैं लाघव गौरव कथन सर्वदा असंभव है. जो अनिर्वचनीय ख्यातिबिना अन्यप्रकारभी संभवै तौ गौरवदोष देखिकै या पक्षका त्याग संभवै औ उक्त वक्ष्यमाण रीतिसैं सत्‌ख्यातिसैं आदिलेकै कोई पक्ष संभव नहीं, यातैं गौरव लाघव विचारही निष्फल है ॥

सिद्धांतोक्त गौरवदोषके परिहारपूर्वक द्विविध विज्ञानवादका असंभव ॥ ६६ ॥

और जो आत्मख्यातिनिरूपणके आरंभमैं कह्या बाह्य रजतकी उत्पत्ति मानैं तौ रजतधर्मी औ इदंताधर्म इन दोनूंका बाध माननेमैं गौरव है. आत्मख्याति मानैं तौ इदंतामात्रके बाध होनेतैं धर्मीका बाध नहीं माननेमैं लाघव है.

यह कथनभी अकिंचित्कर है. काहेतैं ? शुक्तिका ज्ञान हुयें मिथ्या रजत मेरेकूं प्रतीत हुया. इसरीतिसैं रजतका बाध सर्वके अनुभवसिद्ध है औ आत्मख्यातिकी रीतिसैं रजतमैं मिथ्या बाह्यता प्रतीत हुई ऐसा बाध हुया चाहिये; यातैं धर्मीके बाधका लाघवबलसैं लोप करै तौ पाकादिफल साधक व्यापारसमूहमैं एक व्यापार करिकै लाघवबलतै अधिक व्यापारका त्याग कर्‍या चाहिये. औ भ्रमवाले पुरुषकूं आप्त उपदेश करें तब "नेदं रजतम् किंतु शुक्तिरियम्" इसरीतिसैं रजतका स्वरूपसैं निषेध करैहै. औ आत्मख्यातिकी रीतिसैं "नात्र रजतम्, किंतु ते आत्मनि

रजतम्” इसरीतिसैं रजतके देशमात्रका निषेध कऱ्या चाहिये; यातैं आत्मामैं उपजेकी बाह्यदेशमैं ख्याति है. इस अर्थमैं तात्पर्यतैं बाह्यपदार्थवादी सौगतका आत्मख्यातिवाद असंगत है औ विज्ञानसैं भिन्न कोई बाह्य औ आंतर पदाथ नहीं किंतु विज्ञानरूप आत्माके आकार सर्वपदार्थ हैं इसरीतिसैं विज्ञानवादीका विज्ञानरूप आत्माके रजतरूपसैं ख्याति है, इस तात्पर्यतभी आत्मख्यातिवाद असंगत है. विज्ञानसैं भिन्न रजत है सो ज्ञानका विषय है; ताकूं विज्ञानरूप आत्मासैं अभिन्न कथन संभवै नहीं औ विज्ञानवादीके मतमैं सारे पदार्थ क्षणिक विज्ञानरूपहैं, तामैं प्रत्यभिज्ञाअसंभवादिक अनंत दूषण हैं, यातैं आत्मख्याति संभवै नहीं.

अन्यथाख्यातिकी रीति औ खंडन, अन्यथाख्यातिवादीका तात्पर्य ॥ ९७ ॥

अन्यथाख्यातिवादभी असंगत है यह अन्यथाख्यातिवादीका तात्पर्य है. जा पुरुषकूं सत्यपदार्थके अनुभवजन्य संस्कार होवैं ताके दोषसहित नेत्रका पूर्वदृष्टसदृशपदार्थसैं संबंध होवै तहां पुरोवर्तिसदृश पदार्थके सामान्यज्ञानतैं पूर्वदृष्टकी स्मृति होवै है अथवा स्मृति नहीं होवै तौ सदृशके ज्ञानतैं संस्कार उद्भूत होवैं हैं. जा पदार्थकी स्मृति होवै अथवा जाके उद्भूत संस्कार होवै तिस पदार्थका धर्म पुरोवर्तिपदार्थमैं प्रतीत होवै है. जैसैं सत्य रजतके अनुभवजन्यसंस्कारसहित पुरुषका रजतसदृश शुक्तिसैं दोषसहित नेत्रका संबंध हुयें रजतकी स्मृति होवैहै; ताके स्मरण करे रजतका रजतत्व धर्म शुक्तिमैं भासै है. अथवा नेत्रका संबंध हुयें रजतभ्रममैं विलंब होवै नहीं, यातैं नेत्रसंबंध औ रजतके प्रत्यक्षभ्रमके अंतरालमैं रजतकी स्मृति नहीं होवै है; किंतु रजतानुभवके संस्कार उद्भूत होयकै स्मृतिके व्यवधानविना शीघ्र ही शुक्तिमैं रजतत्वधर्मका प्रत्यक्ष होवै है. स्मृतिस्थलमैं जैसैं पूर्वदृष्ट सदृशके ज्ञानतैं संस्कारका उद्बोध होवैहै, तैसैं भ्रमस्थलमैं पूर्वदृष्टके सदृश पदार्थसैं इंद्रियका संबंध होनेतैं ही संस्कारका उद्बोध होयके संस्कार-

गोचर धर्मका पुरोवर्तिमैं भान होवैहै; याकूं अन्यथाख्याति कहैहैं. अन्य रूपतैं प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहैहैं. शुक्तिपदार्थमैं शुक्तित्वधर्म है रजतत्व नहीं है. औ शुक्तिकी रजतत्वरूपतैं प्रतीति होवैहै, यातैं अन्यरूपतैं प्रतीति है.

विचारसागरोक्त द्विविधख्यातिवादमैं प्रथम प्राचीन मतका प्रकार औ खण्डन ॥ ५८ ॥

औ विचारसागरमैं अन्यथाख्यातिके दो भेद लिखे हैं. दूसरीका प्रकार यह है—रजतभ्रम होवै तहां कांताकरादिकनमैं स्थितरजतसैं नेत्रका संबंध होयकै ताका प्रत्यक्ष होवैहै, यातैं कांताकरमैं वा हट्टमैं स्थितरजतकी पुरोवर्तिदेशमैं प्रतीति अन्यथाख्याति है. या मतमैं धर्मधर्मी अंशमैं तौ रजतका ज्ञान यथार्थ है, परंतु देश अंशमैं अन्यथाज्ञान है. यद्यपि हट्टादिकनका रजत व्यवहित है, तासैं नेत्रका संबंध संभवै नहीं, तथापि दोषसहित नेत्रका व्यवहित रजतसैं संबंध होयकै ज्ञान होवै है; यह दोषका माहात्म्य है. इस रीतिकी अन्यथाख्याति वर्तमान न्यायादिग्रंथनमैं उपलंभ नहीं; तथापि इसप्रकारका अन्यथाख्यातिका खण्डन अनेक ग्रंथनमैं है.

यामैं यह दोष हैः—जो देशांतरमैं स्थित रजतसैं नेत्रका संबंध होवै तौ हट्टमैं रजतके सन्निहित धरे अन्यपदार्थनका प्रत्यक्षभी हुया चाहिये. कांताकरस्थ रजतका प्रत्यक्ष होवै तब कांताके करकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये औ जो ऐसैं कहैः—अन्यथाख्यातिकी केवल इंद्रियसैं उत्पत्ति नहीं होवै है; किंतु पूर्वानुभवजनित संस्कारस[हि]त सदोष नेत्रसैं अन्यथाख्यातिज्ञान उपजै है, यातैं उद्भूतसंस्कार नेत्रका सहकारी है. रजतगोचर संस्कारसहित नेत्रसैं रजतकाही ज्ञान होवै है, अन्यपदार्थगोचर संस्कार तौ है, परंतु उद्बुद्ध नहीं; यातैं अन्यवस्तुका ज्ञान होवै नहीं. संस्कारनकी उद्बुद्धता औ अनुद्बुद्धता कार्यसैं अनुमेय है, यातैं दोष नहीं, तथापि जहां शुक्तिमें रजतभ्रम होवै तहां शुक्तिके समान आरोपित रजतका परिमाण प्रतीत होवैहै

लघुशुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां आरोपित रजतमैंभी लघुता भासै है, महती शुक्तिमैं रजतभ्रम होवै तहां महत्परिमाणवाला रजत भासै है,इसरीतिसैं आरोपित पदार्थमैं अधिष्ठानपरिमाणका नियम होनेतैं शुक्त्यादिकनमें रजतत्वादिक धर्मकी प्रतीति होवैहै. अन्यदेशस्थ रजतकी प्रतीति होवै तौ आरोपितमैं अधिष्ठानपरिमाणका नियम नहीं चाहिये. औ लघु तथा महत्परिमाण शुक्तिका भासै है,यातैं देशांतरके रजतकी प्रतीति नहीं औ रजतसंस्कारवालेकूं अन्यपदार्थकी प्रतीति यद्यपि नहीं सम्भवै तथापि सारे देशके अनंत रजतनकी प्रतीति हुई चाहिये, इसरीतिसैं अनंतदूषणग्रस्त यह पक्ष है. इसीवास्तै वर्तमानग्रंथनमें या पक्षका उपलम्भ होवै नहीं.

पूर्वोक्त अन्यथाख्यातिवादका खंडन ॥ ६९ ॥

औ शुक्तिमैं रजतत्व धर्मकी प्रतीति होवै है, यह अन्यथाख्यातिवाद अनेक ग्रंथकार नैयायिकोंनैं यद्यपि लिख्या है तथापि तिनका लेखभी श्रुति स्मृतिविरुद्ध है,यातैं श्रद्धायोग्य नहीं.स्वप्नज्ञानकूं नैयायिक मानसविपर्यय कहैहैं. औ अन्यथाख्यातिकूं विपर्यय कहैहैं औ श्रुतिमैं स्वप्नपदार्थनकी उत्पत्ति कही है"न तत्र रथा न रथयोगा न पंथानो भवंत्यथ रथान्रथयोगान्पथः सृजते" यह श्रुति है.तामैं व्यावहारिक रथ अश्व मार्गनका स्वप्नमैं निषेध करिकै अनिर्वचनीय रथ अश्व मार्गकी उत्पत्ति कहीहै.तैसैं"संध्येसृष्टिराहहि" यह व्याससूत्र है,तामैंभी स्वप्नमैं अनिर्वचनीय पदार्थकी सृष्टि कही है व्यासकृत सूत्र स्मृतिरूप है. इस रीतिसैं नैयायिकनका अन्यथाख्यातिवाद श्रुतिस्मृति विरुद्ध है औ नेत्रसैं व्यवहितरजतत्वका शुक्तिमैं ज्ञान संभवै नहीं जो शुक्तिके समीप रजत होवै तौ दोनूंसैं नेत्रका संयोग होयके रजतवृत्ति रजतत्वकी शुक्तिमैं नेत्रजन्य भ्रम प्रतीति संभवै.औ जहां शुक्तिके समीप रजत नहीं तहां शुक्तिमैं रजतत्वभ्रम नेत्रजन्य संभवै नहीं. काहेतैं? विशेषण विशेष्यतैं इंद्रियका संबंध हुयें इंद्रियजन्य विशिष्ट ज्ञान होवै है. जहां सत्य रजत है तहां विशेषण रजतत्व है विशेष्य रजतव्यक्ति है, रजतव्यक्तिसैं नेत्रका

संयोगसंबंध होवैहै, औ रजतत्वसैं नेत्रका संयुक्तसमवाय संबंध होवै है; यातैं "इदं रजतम्" इसरीतिसै रजतत्वविशिष्टका नेत्रजन्यज्ञान होवैहै. औ जहां शुक्तिमैं रजतत्वविशिष्ट भ्रम होवै तहां विशेष्यशुक्तिसैं तौ नेत्रका संयोगसंबंध है, रजतत्वविशेषणसैं संयुक्तसमवाय है नहीं; जो रजतव्यक्तिसैं संयोग होवै तौ रजतत्वसैं संयुक्तसमवाय होवै. रजतव्यक्तिसैं संयोगके अभावतैं रजतत्वसैं संयुक्तसमवायका अभाव है, यातैं रजतविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान संभवै नहीं.

प्रत्यक्षज्ञानके हेतु षड्विध लौकिक अरु त्रिविध अलौकिक ये दो संबन्ध ॥ ६० ॥

औ जो नैयायिक कहै, प्रत्यक्षज्ञानका हेतु विषयइंद्रियका संबंध दो प्रकारका है. एक लौकिक संबंध है औ दूसरा अलौकिक संबंध है. संयोग आदिक षड्प्रकारका संबंध लौकिक कहिये है, औ सामान्यलक्षण ज्ञानलक्षण योगजन्यधर्मलक्षण यह तीनिप्रकारका अलौकिक संबंध है. लौकिक संबंधके उदाहरण औ स्वरूप प्रत्यक्षनिरूपणमैं कहेहैं.

अलौकिक संबंधके इसभांति उदाहरणस्वरूप हैं जहां एक घटसैं नेत्रका संयोग होवै तहां एकही घटका नेत्रसैं साक्षात्कार नहीं होवैहै, किंतु घटत्वाश्रय सकल घटनका नेत्रसैं साक्षात्कार होवैहै, परंतु नवीन मतमैं नेत्रसंयुक्त घटका औ देशांतरवृत्ति घटनका एकही क्षणमैं साक्षात्कार होवैहै. औ प्राचीन मतमैं नेत्रसंयुक्त घटका प्रथम क्षणमैं साक्षात्कार होवैहै, परंतु नवीन मतमैं नेत्रसंयुक्त घटका औ देशांतरवृत्ति घटका द्वितीय क्षणमैं साक्षात्कार होवैहै. दोनूं साक्षात्कार नेत्रजन्य हैं, परंतु संबंध भिन्न है. ये दो मत हैं. तिनमैं प्राचीन रीति सुगम है; यातैं प्राचीन रीतिही कहैहैं:—पुरोवर्ति घटसैं नेत्रका संयोग होयकै "अयं घटः" इसरीतिसैं एक घटका साक्षात्कार होवै है. या साक्षात्कारका हेतु संयोगसंबंध है. यातैं यह साक्षात्कार लौकिक संबंधजन्य है. या साक्षात्कारका विषय घट औ घटत्व है तिनमैंभी व्यक्ति विशेष्य है, घटत्व प्रकार है; विशेषणकूं प्रकार कहैं हैं. या ज्ञानमैं

प्रकार जो घटत्व सो यावत् घटमैं रहै है, यातैं पुरोवर्ति घटके ज्ञानकालमैं नेत्र इंद्रियका स्वजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्ता संबंध सकल घटनमैं है या संबंधसैं नेत्रइंद्रियजन्य सकल घटनका साक्षात्कार द्वितीयलक्षणमैं होवै है. या साक्षात्कारका विषय पुरोवर्ति घटभी है. काहेतैं ? घटत्ववत्ता जैसे अन्य घटनमैं है तैसैं पुरोवर्तिघटमैं भी है, यातैं पुरोवर्तिघटगोचर दो ज्ञान होवैहैं. प्रथमक्षणमैं लौकिकज्ञान होवैहै, द्वितीयक्षणमैं अलौकिक ज्ञान होवैहै, यह उक्त संबंध अलौकिक है, अलौकिक संबंधजन्य ज्ञानभी अलौकिक है. इंद्रियका सकल घटनतैं स्वजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्ता संबंध है, जहां नेत्रजन्य साक्षात्कार एक घटका होवै तहां स्वशब्द नेत्रका बोधक है, औ जहां त्वक्सैं एक घटका ज्ञान होवै तहां स्वशब्द त्वक्का बोधक है. इसरीतिसैं जा इंद्रियतैं एक व्यक्तिका ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्यही सकल घटनका अलौकिक साक्षात्कार होवै है; नेत्रइंद्रियजन्य एक घटका लौकिक साक्षात्कार हुये त्वक्इंद्रियजन्य सकल घटनका अलौकिक साक्षात्कार होवै नहीं. नेत्रजन्य एक घटका ज्ञान हुये स्व कहिये नेत्र तिसतैं जन्य "अयं घटः" यह ज्ञान है. तामैं प्रकारीभूत कहिये विशेषण जो घटत्व तद्वत्ता कहिये ताकी आधारता घटनमैं है इसरीतिसैं सकल घटनके ज्ञानका हेतु उक्त संबंध है. सो घटका ज्ञान होवै तब नेत्रजन्यज्ञानमैं घटत्वप्रकार होवैहै. औ पुरोवर्ति घटके लौकिक ज्ञानसैं प्रथम उक्तसंबंध संभवै नहीं; यातैं लौकिकज्ञान प्रथमक्षणमैं होवै है अलौकिक उत्तरक्षणमैं होवैहै, यह प्राचीन रीति है, नवीनरीतिसैं एकही ज्ञान सकल घटगोचर होवैहै. पुरोवर्ति घट अंशमैं लौकिक होवैहै. देशांतरस्थ घटांशमैं अलौकिक होवैहै; प्रसंगप्राप्त एकरीति कही विस्तारभयतैं नवीन रीति कही नहीं. यह सामान्यलक्षण संबंध है, जातिकूं सामान्य कहैहैं. सामान्य कहिये जाति लक्षण कहिये स्वरूप यातैं जातिस्वरूप संबंध है. यह सिद्ध हुया—नेत्रजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्ता कहनेसैं घटत्वही सिद्ध

होवै है; यातैं उक्त संबंध सामान्यस्वरूप है, अथवा घटत्वाधिकरणताकूं घटत्ववत्ता कहै तौभी सामान्यलक्षणही संबंध है. काहेतैं ? अनेक अधिकरणनमैं अधिकरणता धर्म सामान्य है,या स्थानमैं अनेक मैं जो समान धर्मसें होवै सो सामान्यशब्दका अर्थ है.केवल जातिही सामान्यशब्दका अर्थ नहीं यातैं अनेक घटनमैं घटत्वकी अधिकरणताभी समान धर्महोनेतैं सामान्य कहिये है इसरीतिसैं एक व्यक्तिसैं इंद्रियका संबंध हुयें इंद्रियसंबंधी व्यक्तिके समानधर्मवाली इंद्रियसंबंधी सकल व्यक्तिसैं सामान्य लक्षण अलौकिक संबंध इंद्रियका होनेतैं व्यवहितअव्यवहित वस्तुका इंद्रियजन्य अलौकिक साक्षात्कार होवै है.

औ ज्ञानलक्षण सम्बंधका यह उदाहरणसहित स्वरूप है:—जहां इंद्रियके योग्य पदार्थसैं इंद्रियका सम्बंध होवै औ इंद्रियसम्बंध कालमैं तिस इंद्रियके अयोग्य पदार्थका स्मृतिज्ञान होवै तहां इंद्रियसम्बंधी पदार्थका औ स्मृतिगोचर पदार्थका एक ज्ञान होवैहै,तहां जिस पदार्थकी स्मृति होवै तिस अंशमैं वह ज्ञान अलौकिक है; जिस अंशका इंद्रियसंबंधजन्य है तिस अंशमैं लौकिक है. जैसें चंदनसैं नेत्रइंद्रियका संयोग होवै तिस कालमैं सुगंध धर्मकी स्मृति होवै तब नेत्रइंद्रियजन्य "सुगंधिचंदनम्" ऐसाप्रत्यक्षहोवै है तहां चंदनत्वविशिष्ट चंदन तौ नेत्रके योग्य है, औ चंदनका धर्म यद्यपि सुगंध है तासैं नेत्रसंयुक्त समवायसंबंधभी है. तथापि नेत्रके योग्य सुगंध नहीं घ्राणके योग्यसुगंध है यातैं नेत्रसंयुक्तसमवायसंबंधसैं सुगंध धर्मका चाक्षुषसाक्षात्कार होवै नहीं; किंतु नेत्रसंयोगतैं चंदनव्यक्तिका औ नेत्रसंयुक्त समवायतैं चंदनत्वका चाक्षुष ज्ञान होवै है. चंदनके सुगंधगुणतैं नेत्रका संयुक्त समवाय संबंध विद्यमानभी आकिंचित्कर है, तथापि नेत्रके संयोग होतेही "सुगंधि चंदनम्" इसरीतिका चंदनगोचर चाक्षुषज्ञान अनुभवसिद्ध है, यातैं चंदनवृत्ति सुगंध गुणसैं नेत्रका संबंध कोई साक्षात्कारका हेतु मानना चाहिये. तहां और तौ कोई नेत्रका सुगंधगुणसैं है नहीं;

नेत्रसंयुक्तसमवाय है सो गंधज्ञानका जनक नहीं. औ जाकूं चंदनकी सुगंधता घ्राणसैं अनुभूत होवै ताकूंही चंदनका नेत्रसैं "सुगंधि चंदनम्" ऐसा ज्ञान होवै है. जाकूं चंदनकी सुगंधवत्ता घ्राणसैं अनुभूत नहीं होवै. ताकूं चंदनसैं नेत्रका संयोग हुये"सुगंधि चंदनम्" ऐसा ज्ञान होवै नहीं. इस रीतिसैं पूर्व अनुभवजन्यसुगंधके संस्कारका "सुगंधि चंदनम्"या प्रत्यक्षतैं अन्वयव्यतिरेक है, यातैं "सुगंधि चंदनम्" या चाक्षुषज्ञानका सुगंधानुभवजन्यसंस्कार वा सुगंध स्मृति हेतु है. जो सुगंधसंस्कारकूं अथवा स्मृतिकूं सुगंधप्रत्यक्षकी स्वतंत्रकारणता कहैं तौ सुगंधअंशमैं वह ज्ञान चाक्षुष नहीं होवैगा.औ"सुगंधि चंदनम्"यह ज्ञान सुगंध अंशमैंभी चंदनचंदनत्वकी नाईं चाक्षुषही अनुभवसिद्ध है, यातैं ता ज्ञानके हेतु संस्कारकूं वा स्मृतिकूं नेत्रका संबंध मानना चाहिये. जो नेत्रका सम्बन्ध मानैं तौ सुगंधज्ञानभी संस्कार वा स्मृतिरूप नेत्रके संबंधजन्य है यातैं चाक्षुष है. परंतु संस्कार वा स्मृतिनेत्रनिरूपित होवै तौ नेत्रका संबंध होवै जैसैं घटनिरूपितसंयोगघटका संबंध कहिये है, पटनिरूपितसंयोग पटका संबंध कहियेहै. इसरीतिसैं सुगंध गोचरस्मृति औ संस्कारभी नेत्रनिरूपित होवै तौ नेत्रका संबंध संभवै अन्यथा नेत्रका संबंध सुगंधकी स्मृतिकूं वा सुगंधके संस्कारकूं कहना संभवै नहीं; यातैं इसरीतिसैं नेत्रनिरूपित हैं,जब चंदनका साक्षात्कार होवै तब मन आत्माका सम्बन्ध होयके मन औ नेत्रका सम्बन्ध होवै है आत्मसंयुक्तमनसंयुक्त नेत्रका चंदनसैं संयोग होवै है; इसरीतिसैं मनआत्माका संयोग औ मन नेत्रका संयोग चंदनसाक्षात्कारका हेतु है, जिसकालमैं आत्मसंयुक्त मनका नेत्रसैं संयोग होवै तिसकालमैं सुगन्धनकी स्मृति अथवा सुगंधके संस्कार आत्मामैं समवायसंबंधसैं हैं, तिनका विषय सुगंध है, यातैं स्वसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञान अथवा स्वसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत संस्कार चंदनके सुगंधमैं हैं, काहेतैं ? स्वशब्दसैं नेत्रका ग्रहण है तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला मन है. तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला आत्मा है, तामैं समवेत कहिये समवायसंबंधसैं वृत्तिका सुगंधकी स्मृति है, औ सुगं-

थका संस्कारभी समवायसंबंधसैं आत्मवृत्ति है. यातैं नेत्रसंयुक्तमनःसं-युक्तात्मसमवेत स्मृतिज्ञान औ नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत संस्कार ये दोनूं नेत्रनिरूपित हैं, नेत्रघटितस्वरूप यह परंपरा है,यातैं नेत्रका संबंध है. इस परंपरा सम्बन्धका प्रतियोगी नेत्र है औ अनुयोगी सुगंधहै.जामैं सम्बन्ध रहै सो सम्बन्धका **अनुयोगी** कहिये है. स्मृतिरूप अथवा संस्काररूप जो उक्तपरंपरासैं नेत्रका संबंध ताका विषय सुगंध है, यातैं उक्त संबंधका सुगंध **अनुयोगी** है. ज्ञानकी अधिकरणता विषयमैं अनुभवसिद्ध है, यातैं आत्माकी नाईं विषयभी ज्ञानका अधिकरण औ **अनुयोगी** कहिये है;जैसैं "घटे ज्ञानम्"यह व्यवहार होवैहै तहां"घटवृत्तिज्ञानम्" यह उक्तवाक्यका अर्थ है;इसरीतिसैं विषयभी आत्माकी नाईं ज्ञानका आधार होनेतैं अनुयोगी है, परंतु समवायसंबंधसैं ज्ञानका आधार आत्मा है. औ विषयतासंबंधसैं ज्ञानका आधार सुगन्धादिक विषय हैं. जो ज्ञानका आधार होवै सोई संस्कार का आधार होवै है काहेतैं ? पूर्व अनुभवतैं संस्कार उपजै है औ अनु-भवके समान विषयवाले उत्तरस्मृति आदिकनकूं उपजावैहै, यातैं पूर्वअनु-भव संस्कार स्मृति इन तीनूंका आश्रय विषय समान होवैहै, यातैं सुगन्ध गोचरसंस्कारभी विषयतासंबंधसैं सुगंधमैं रहैहै;यातैं नेत्रप्रतियोगिकसंस्का-रका अनुयोगी सुगन्ध है, इसरीतिसं स्मृतिरूप अथवा संस्काररूप सम्बन्ध नेत्रका सुगंधसैं है औ संयोगसंबंध चंदनव्यक्तिसैं है,संयुक्तसमवाय चंदनत्वसैं है; यातैं तीनूंकूं विषय करनेवाला "सुगंधि चंदनम्" यह चाक्षुषसाक्षा-त्कार होवै है.सुगंधवाला चंदन है यह वाक्यका अर्थ है. नेत्रसैं सुगन्धचंद-नत्व चंदनका साक्षात्कार होवै तहां चंदनत्वसैं तौ लौकिक सम्बन्ध है संयोगादिक षट्सम्बन्धकूं लौकिकसंबंध कहैं हैं, औ स्मृति औ संस्कार लौकिक सम्बन्धसैं भिन्न होनेतैं अलौकिकहैं जहां चंदनसैं नेत्रके सम्बन्ध कालमैं सुगंधस्मृति अनुभवसिद्ध होवै तहां स्मृतिरूप सम्बन्ध है. औ स्मृतिका अनुभव नहीं होवै तौ संस्कारही सम्बंध है. इस अलौकिक सम्बंधकूं ज्ञानलक्षणसंबन्ध कहैहैं. स्मृतिमैं तौ ज्ञानशब्दका प्रयोग प्रसिद्ध

औ जाकूं चंदनकी
ही है, औ संस्कारभी ज्ञानजन्य होवै है, उत्तर ज्ञानका "सुगंधि चंदनम्"
यातैं ज्ञानका सम्बंधी होनेतैं ज्ञान कहैहैं. भूत नहीं होवै.

तैसैं योगीकूं इंद्रियसम्बंधीके साक्षात्कारकी नांई इंद्रियसैं होवै नहीं. इस साक्षात्कार होवै है, तहां योगाभ्यासत इंद्रियमैं विलक्षण सामर्थ्य प्रत्यक्षतैं यातैं योगज धर्मही इंद्रियका सम्बंध कहिये है, परंतु याम म ग्यानुभव-

जगदीशभट्टाचार्यका तौ यह मत है:—जिस इंद्रियके यो स्मृतिकूं पदार्थ होवै है, तिस इंद्रियतैं ता पदार्थका साक्षात्कार होवै है. योगीकूं नहीं वहितका औ भूतभावीकाभी इंद्रियजन्यसाक्षात्कार होवै है. योगीसैं इं ताई वर्तमान इंद्रियसम्बंधीकाही साक्षात्कार होवै है औ जा इंद्रियके पदार्थ योग्य नही तिस इंद्रियतैं ता पदार्थका साक्षात्कार योगीकूंभी हो नहीं. जैसैं रूपका ज्ञान नेत्रसैंही होवै है रसनादिकनतैं होवै नहीं.

औ कितने ग्रंथकारनका यह मत है:—योगकी अद्भुत महिमा है. अभ्यासके उत्कर्ष अपकर्षतैं योगजधर्म विलक्षण होवै है. किसीमैं तौ अभ्यासके उत्कर्षतैं ऐसा धर्म होवै है, एक इंद्रियतैं योग्य अयोग्य सकलका ज्ञान होवै है, किसीम अभ्यासके अपकर्षतैं योग्यविषयके ज्ञानकीही सामर्थ्य होवै है. सर्व प्रकारसैं योगज धर्मसैं व्यवहितका ज्ञान होवै है, यातैं योगज धर्मभी अलौकिक संबंध है.

न्यायमतमैं अलौकिक संबन्धसैं देशांतरस्थरजतत्वका शुक्तिमैं प्रत्यक्षभान औ ता भानस सुगंधिचन्दनके भानतैं विलक्षणता ॥ ६१ ॥

इस रीतिस इंद्रियके संयोगादिक संबंधविना अलौकिकसम्बंधतैंभी इंद्रियजन्य साक्षात्कार होनेतैं देशांतरस्थरजतवृत्ति रजतत्वकाभी शुक्तिमैं अलौकिक संबंधसैं चाक्षुष साक्षात्कार संभवै है. जैसैं सुगंधस्मृति औ चंदनस नेत्रसंयोग हुयां "सुगंधि चन्दनम्" इसरीतिस योग्यअयोग्यानुभव गोचर चाक्षुषज्ञान होवै है. इसरीतिसैं दोषसहित नेत्रका शुक्तिसैं संयोग

होवैहै. शुक्तिव्यक्ति तौ नेत्रके योग्य है; औ रजतत्वजाति यद्यपि प्रत्यक्षयोग्य है तथापि जातिका आश्रय व्यक्ति जहां प्रत्यक्षगोचर होवै तहां जाति योग्य है. औ जहां जातिका आश्रय प्रत्यक्षयोग्य नहीं तहां जाति अयोग्य है. या प्रसंगमैं रजतत्वका आश्रय रजतव्यक्ति नेत्रसैं व्यवहित है. यातैं नेत्रयोग्य नहीं. जसैं सुगंध अंशमैं चन्दनज्ञान अलौकिक है; तैसैं "इदं रजतम्" यह ज्ञानभी रजतत्व अंशमैं अलौकिक है, परंतु इतना भेद है:— "सुगंधि चन्दनम्" या ज्ञानसैं तौ चन्दनवृत्ति सुगन्ध चन्दनमैं भासै है. औ "इदं रजतम्" या ज्ञानसैं इदंपदार्थमैं आवृत्ति रजतत्व इदंपदार्थम भासैहै; तैसैं औरभी विलक्षणता है. "सुगंधि चन्दनम्" या ज्ञानसैं नेत्रके अयोग्य सुगन्ध भासै है, औ चन्दनकी सकलसामान्य विशेषता भासै है और "इदं रजतम्" या ज्ञानसैं व्यवहित होनेतैं नेत्रके अयोग्य रजतत्वका भास तौ सुगन्धभासके समान है, परंतु चन्दनके विशेषरूप चन्दनत्वके भासकी नाईं शुक्तिका विशेषरूप शुक्तित्वका भास होवै नहीं; औ मलयाचलोद्भूत काष्ठविशेषरूप चन्दनके अवयव भास हैं. औ शुक्तिके त्रिकोणतादिविशिष्ट अवयव भासैं नहीं. इसरीतिसैं दोनं ज्ञानोंका भेद है. उक्त भेदकृतही क्रमतैं यथार्थत्व अयथार्थत्व है. यद्यपि इंद्रियसंयोग औ अयोग्य धर्मकी स्मृति-रूप सामग्री दोनूं ज्ञानोंमैं सामान्य है औ सामग्रीभेद विना उक्तप्रका-रकी विलक्षणता संभवै नहीं, तथापि सामग्रीम दोषराहित्य औ दोषसा-हित्य विलक्षणता है, यातैं उक्त विलक्षणता संभवै है. जैसैं "सुरभि चन्दनम्" या स्थानमैं ज्ञानलक्षणसंबंधकी निरूपकता नेत्रकूं है. तैसैं " इदं रजतम् " या स्थानमैंभी नेत्रसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेतज्ञानसंबंध है. ताका निरूपक नेत्र है औ विषय रजतत्व है सो स्मृतिज्ञानका अनु-योगी है. जा विषयका ज्ञान होवै सो विषयतासंबंधसैं ज्ञानका अनुयोगी होवै है नेत्रसैं संयोगवाला होनेतैं नेत्रसंयुक्त मन है, तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामैं समवेतज्ञान रजतत्वकी स्मृति है; सो विष-

यतासम्बन्धसैं रजतत्वमैं है. इसरीतिसैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञानरूप नेत्रका सम्बन्ध रजतत्वमैं होनेतैं नेत्रसम्बद्धरजतत्वका भ्रमज्ञान प्रत्यक्ष है.

अथवा ज्ञानरूपसम्बन्ध नहीं किंतु ज्ञानका विषयतासबन्ध है, यातैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञान विषयतासम्बन्ध अलौकिक सम्बन्ध है, " सुगन्धि चन्दनम्" या स्थानमैं सम्बन्धरूप उक्त विषयता सुगन्धमैं है, औ "इदं रजतम्" या स्थानमैं नेत्रसंयुक्तमनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञान रजतत्वस्मृति है; ताकी विषयता रजतत्वमैं है, इसरीतिसैं विषयता अंश सम्बन्धमैं मिलावनेतैं सम्बन्धके अनुयोगी सुगंधरजतत्व स्पष्ट ही है. यातैं अन्यथाख्यातिवाद संभवै है. नेत्रके संबंधविना रजतत्वका ज्ञान संभवै नहीं. यह दोष अन्यथाख्यातिवादमैं नहीं. इसरीतिसैं रजतत्वरूप विशेषणतै नेत्रका अलौकिक सम्बन्ध औ शुक्तिरूप विशेष्यतैं लौकिकसंबंध मानिके अन्यथाख्यातिका संभव कहैं हैं.

अनिर्वचनीयख्यातिमैं न्यायउक्त दोष ॥ ६२ ॥

औ अनिर्वचनीय ख्यातिमैं यह दोष कहैं हैंः—अन्यथाख्यातिवादीकूं भ्रमज्ञानकी कारणता दोषमैं माननी होवै है औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं रजतादिक अनिर्वचनीय विषयकी कारणता और तिसके ज्ञानकी कारणता माननी होवैहै, यातैं अन्यथाख्यातिवादमैं लाघव है, औ अनिर्वचनीय ख्यातिवादीकूं अन्यथाख्याति विना निर्वाह होवै नहीं. कहूं अन्यथाख्याति मानैं हैं कहूं अनिर्वचनीयख्याति मानैं हैं, यातैं सारै अन्यथाख्यातिही माननी योग्य है. औ सारै अनिर्वचनीयख्याति मानैं तौ अद्वैतवादीकूं स्वमतके ग्रंथनसैं विरोध होवैगा. औ केवल अनिर्वचनीयख्यातिसैं निर्वाह होवै नहीं. जहां अनिर्वचनीयख्याति नहीं संभवै तहां अद्वैतमतके ग्रन्थनमैं अन्यथाख्यातिही लिखी है. जैसैं अनात्मपदार्थनमैं अबाध्यत्वरूप सत्यत्वप्रतीति होवै है तहां अनिर्वचनीय अबाध्यत्वकी अनात्मपदार्थनमैं उत्पत्ति कहैं तौ अज-

न्मका जन्म हुया, नित्यका ध्वंस हुया इनवाक्यनके समान यह कथन विरुद्ध है; यातैं आत्मसत्यताकी अनात्ममैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्यातिही संभवै है. औ ऐसे स्थानमैं अन्यथाख्यातिही अद्वैतग्रंथनमैं लिखी है औ परोक्षभ्रमस्थलमैंभी अद्वैतग्रंथनमैं अन्यथाख्यातिही कही है. यह तिनका तात्पर्य है:—प्रत्यक्षज्ञान तौ नियमतैं वर्तमानगोचर होवै है, औ जा विषयका प्रमातासैं संबंध होवै तिस विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. व्यवहित रजतके रजतत्वका प्रमातासैं संबंध संभवै नहीं; यातैं पुरोवर्तिदेशमैं रजतकी सत्ता अवश्य चाहिये. औ परोक्ष ज्ञान तौ अतीतका औ भविष्यत्काभी होवैहै; यातैं परोक्षज्ञानके विषयका प्रमातासै संबंध अपेक्षित नहीं औ संभवैभी नहीं. काहेतें? जहां अनुमान प्रमाणतै वा शब्दप्रमाणतैं देशांतरस्थ कालांतरस्थका यथार्थज्ञान होवै तहांभी भिन्नदेशस्थ भिन्नकालस्थ प्रमातासैं संबंध होवै नहीं. भ्रमरूप परोक्षज्ञानमैं तौ प्रमातासै विषयका संबंध सर्वथा असंभावित है यातैं परोक्षभ्रमस्थलमैं अनिर्वचनीयख्याति नहीं किंतु विषयशून्यदेशमैं विषयकी प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति है. इसरीतिसैं बहुत स्थलमैं अन्यथाख्याति मानिके अपरोक्षभ्रममैं जहां व्यवहित आरोपित होवै तिसी स्थानोंमैं अनिर्वचनीयख्याति मानी है. औ जहां पुरोवर्तिदेशमैं अधिष्ठानसंबंधी आरोपित होवै तहांभी अन्यथाख्यातिही है. काहेतें? अधिष्ठानगोचर वृत्ति होवै तब आरोपितवस्तुका प्रमातासैं संबंध अन्यथाख्याति माननेंभी संभवै है. अनिर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति निष्प्रयोजन है, इसरीतिसैं अद्वैतवादीके मतमैं एक अनीर्वचनीयख्यातिसैं निर्वाह होवै नहीं औ अन्यथाख्याति मानें अनिर्वचनीयख्यातिका मानना होवै नहीं, जहां व्यवहित आरोपित होवै औ प्रत्यक्षभ्रम होवै तिस स्थानमैं अद्वैतवादीने अन्यथाख्यातिका असंभव कह्या है तहांभी उक्तरीतिसैं नेत्रका ज्ञानलक्षणसंबंध संभवै है, यातैं प्रत्यक्षभ्रमका संभव होनेतैं अनिर्वचनीयख्यातिका अंगीकार प्रयोजनशून्य गौरवदूषित है.

सामान्यलक्षणादि अलौकिकसंबंधकूं प्रत्यक्षज्ञानहेतुताका असंभवकरिके भ्रमज्ञानकी इंद्रियअजन्यता ॥ ६३ ॥

ऊपर कहेहुए अनंत निरर्थक प्रलाप नैयायिक विवेकके अभावतैं करै हैं काहेतैं ? जो सामान्यलक्षणादिक संबंध प्रत्यक्ष ज्ञानके हेतु कहे सो सकलके अनुभवसैं विरुद्ध हैं. जाकूं एक घटका नेत्रजन्यज्ञान होवै ताकूं पूछैं—कितने घटनका चाक्षुषसाक्षात्कार तेरेकूं हुया है? तब प्रश्नकर्ताकूं द्रष्टा यह कहै है:—मेरे नेत्रके अभिमुख एक घट है,कितने घटनकासाक्षात्कार हुया यह तेरा प्रश्न अविवेकसैं है.इस रीतिसैं घटका द्रष्टा प्रश्नका उपालंभ करै है.नैयायिकरीतिसैं लौकिक अलौकिक भेदसैं सकल घटके प्रत्यक्षकी सामग्री होनेतैं उपालंभ संभवै नहीं ऐसा उत्तर कह्या चाहिये. एक घटका लौकिक चाक्षुष हुया है,अलौकिक चाक्षुषसाक्षात्कार सर्वथा हुया है, औ व्यवहित घटका साक्षात्कार सुनि सर्वके हृदयमैं विस्मय होवै है, यातैं सामान्यलक्षण संबंधसैं साक्षात्कार सर्वलोक विरुद्ध है औ सर्वतंत्रविरुद्ध हैं, परंतु एक घटका साक्षात्कार होवै तब घटांतरकी सजातीयतासैं स्मृत्यादिक संभवै हैं; तैसैं "सुरभि चंदनम्" इसरीतिसैं चंदनमैं सुगंधधर्मावगाही चाक्षुषसाक्षात्कार ज्ञानरूप संबंधतैं नेत्रजन्य होवै है. यह कथन भी नैयायिकका विरुद्ध है. काहेतैं ? जापुरुषकूं चंदनका साक्षात्कार होवै ताकूं यह पूछैः-"किं दृष्टम्" तब द्रष्टा यद्यपि ऐसे कहैहै" सुगंधि चंदनं दृष्टम्" तथापि फेरि विवेचनसैं पूछैः-इसचंदनमैं सुगंध है यह ज्ञान तेरेकूं किसरीतिसैं हुया?तब द्रष्टा यह कहैहै:—श्वेतचंदन है, यातै सुगंध यामैं अवश्य होवैगा, रक्तचंदनमैं सुगंध नहीं होवैहै.इसरीतिके श्वेतमैं गंध होवै है; इसरीतिसैं सुगंध ज्ञानमैं अनुमानजन्यताके सूचक वचन कहै है. औ नेत्रसैं सुगन्धका साक्षात्कार मेरेकूं हुया है ऐसा उत्तर कहै नहीं, यातैं सुगन्धका ज्ञान नेत्रजन्य प्रत्यक्षरूप नहीं; किंतु सुगंधअंशमैं वह ज्ञान अनुमिति है चन्दन अंशमैं प्रत्यक्ष है. औ "सुगंधि चंदनम्" इस वाक्यप्रयोगवाले चंदनद्रष्टाकूं पूछैः—या चंदनमैं अल्प गंध है अथवा उत्कट गंध है ? तब ऐसा

उत्तर कहैहैः—नेत्रसैं श्वेतचंदन प्रतीति होवै है यातैं गंध सामान्यकी अनुमिति होवै है.गंधका प्रत्यक्ष होवै तौ गंधके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान होवै यातैं गंधके उत्कर्ष अपकर्ष तौ नासिकासैं आघ्रात करैं तब ज्ञात होवै, नेत्रसैं तौ श्वेतचंदनका ज्ञान होवै है; तासैं गन्धसामान्यका ज्ञान होवै है ऐसा उत्तर कहनेसभी सुगंधके ज्ञानकी अनुमिति होवै है,प्रत्यक्ष होवै नहीं. जा इंद्रियसैं रूप -रस-गंध-स्पर्श-शब्दका ज्ञान होवै ता इंद्रियसं रूपादिकनके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान होवै है.जो नेत्रंद्रियसैं गंधका ज्ञान होवै तौ गंधके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान हुया चाहिये; यातैं चंदनमैं सुगंधका ज्ञान अनुमितिरूप है प्रत्यक्ष नहीं. अनुमितिज्ञानसं तौ उत्कर्ष अपकर्षकी अप्रतीति अनुभवसिद्ध है. धूमसं वह्निका ज्ञान होवै तहां वह्निके अल्पत्वमहत्त्वका ज्ञान होवै नहीं. औ जो नैयायिक ऐसैं कहै लौकिकसंबंधजन्यप्रत्यक्षसैं विषयके उत्कर्ष अपकर्ष भासैं हैं. अलौकिकसं विषयका सामान्यधर्म भासै है विशेष धर्म भासैं नहीं, सोभी असंगत है. काहेतैं ? सामान्य धर्मसैं तौ परोक्ष ज्ञानसभी विषयका प्रकाश संभवै है. अप्रसिद्धसंबंधसैं अप्रसिद्धप्रत्यक्षकल्पना निष्प्रयोजन है. औ विशेषरूपतैं सुगंधका प्रकाश होवै नहीं; सामान्यरूपतैं सुगन्धका प्रकाश है. ऐसा सुगंधका ज्ञान नेत्रसैं होवै है. इस नैयायिक वचनतैं यह सिद्ध होवै है, नेत्रसैं श्वेतचंदनका साक्षात्कार होते ही सुगन्धका सामान्य ज्ञान अनुमितिरूप होवै है. ता अनुमितिका प्रयोजक चंदनकी श्वेतताज्ञानद्वारा नेत्र है. इसरीतिसैं सुगन्धका ज्ञान नेत्रजन्य नहीं अनुमिति है. औ जो नैयायिक ऐसैं कहैः—यद्यपि नेत्रजन्य सुगन्धका ज्ञान उत्कर्ष अपकर्षकूं प्रकाशै नहीं,यातैं अनुमितिके समान है तथापि अनुमितिरूप संभवै नहीं. काहेतैं ? "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान एक है दो नहीं; एक ही ज्ञानकूं सुगंधअंशमैं अनुमितिता औ चंदनअंशमैं प्रत्यक्षता कहै तौ अनुमितित्व प्रत्यक्षत्व विरोधी धर्मका समावेश होवैगा; यातैं सर्व अंशमैं प्रत्यक्ष है यह कथनभी संभवै नहीं. काहेतैं ? तेरे

मतमैं एक ज्ञानमैं जैसैं लौकिकत्व अलौकिकत्व विरोधी धर्मका समावेश है, तस अनुमितित्व प्रत्यक्षत्वका भी एक ज्ञानमैं समावेश संभवै है औ प्रत्यक्षत्व अनुमितित्वका विरोध तौ न्यायशास्त्रके संस्कारवालेकूं प्रतीति होवैहै. औ लौकिकत्व अलौकिकत्व तौ परस्पराभावरूप है, यातैं तिनका विरोध सर्वकूं भासै है, प्रतियोगीअभावका परस्पर विरोध है. यह सकल लोकमैं प्रसिद्ध है, यातैं लोकप्रसिद्ध विरोधवाले धर्मनका समावेश नैयायिक मानैं हैं, यातैं विरोधी पदार्थनका समावेश नहीं, यह वाक्य निलज्जतामूलक है.

औ वेदांतमतमैं तौ अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान सांश होनेतैं एक वृत्तिमैं अंशभेदतैं विरोधि धर्मनका समावेश संभवै है. न्यायमतमैं ज्ञानजन्यता है परंतु द्रव्य नहीं, यातैं सांश नहीं. निरंशज्ञानमैं विरोधी धर्मनका समावेश बाधित है, यातैं "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान सुगन्धअंशमैं अनुमिति है औ चन्दन अंशमैं प्रत्यक्ष है. अथवा ज्ञानका उपादान अन्तःकरण सांश है यातैं अन्तःकरणके परिणाम दो ज्ञान हैं. "सुगंधि" यह ज्ञान अनुमितिरूप है; "चन्दनम्" यह ज्ञान प्रत्यक्ष है दोनूं परिणाम एक कालमैं होवैहैं, यातैं तिनका द्वित्व कदीभी भासै नहीं. इसरीतिसैं "सुरभि चन्दनम्" यह ज्ञान सुगन्धअंशमैं चाक्षुष नहीं औ या ज्ञानकूं किसीरीतिसैं अलौकिकसंबंधजन्यता कहैंभी तथापि "इदं रजतम्" इत्यादिक भ्रम तौ उक्तरीतिसैं संभवै नहीं. काहेतैं ? शुक्तिसैं नेत्रका सम्बंध औ रजतत्वस्मृतिकूं "इदं रजतम्" या ज्ञानकी कारणता मानैं ताकूं यह पूछैं हैं. शुक्तिसैं नेत्रका सम्बंध होयकै शुक्तिरजतसाधारण धर्म चाकचिक्यविशिष्टशुक्तिका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान होयकै रजतकी स्मृति होवैहै, तिसतैं उत्तर भ्रम होवैहै अथवा शुक्तिके सामान्यज्ञानतैं पूर्वही शुक्तिसैं नेत्रका सम्बंध होवै तिसी कालमैं रजतत्वविशिष्ट रजतकी स्मृति होयकै "इदं रजतम्" यह भ्रम होवै है ? जो प्रथम पक्ष कहै तौ सम्भवै नहीं. काहेतैं ? प्रथम तौ शुक्तिका

सामान्यज्ञान, तिसतैं उत्तर रजतत्वविशिष्ट रजतकी स्मृति, तिसतैं उत्तर रजत-भ्रम, इसरीतिसैं तीनि ज्ञानोंकी धारा अनुभवसैं बाधित है. "इदं रजतम्" यह एक ही ज्ञान सबकूं प्रतीत होवै है.

औ जो ऐसैं कहैः-प्रथम शुक्तिका सामान्य ज्ञान हुयेविना शुक्तिसैं नेत्रके संयोगकालमैं रजतकी स्मृति होयकै "इदं रजतम्" यह भ्रम होवै है सोभी संभवै नहीं; काहेतैं ? सकल ज्ञानचेतनरूप स्वप्रकाश है वृत्तिरूप ज्ञान साक्षीभास्य है. कोई ज्ञान किसी कालमैं अज्ञात होवै नहीं. यहवार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे; यातैं शुक्तिसैं नेत्रके संयोगकालमैं रजतकी स्मृति होवै तौ स्मृतिका प्रकाश हुया चाहिये. स्मृतिमैं चेतनभाग तौ स्वयंप्रकाश हैं औ वृत्तिभागका साक्षीअधीन सदा प्रकाश होवैहै; यातैं स्मृतिका अनुभव हुया चाहिये. औ नैयायिककूं शपथपूर्वक यह पूछैं, शुक्तिमैं "इदं रजतम्" या भ्रमतैं पूर्वकालमैं रजतस्मृतिका अनुभव तेरेकूं होवै है ? तब यथार्थवक्ता होवै तौ स्मृतिके अनुभवका अभावही कहै है, यातैं शुक्तिसैं नेत्रसंयोगकालमैं भ्रमके पूर्व रजतकी स्मृति संभवै नहीं.

औ जो ऐसैं कहैः-रजतानुभवजन्य रजतगोचरसंस्कारसहित नेत्रसंयोगतैं रजतभ्रम है, संस्कारगुणप्रत्यक्षयोग्य नहीं, किंतु अनुमेय है; यातैं उक्त दोष नहीं, तथापि ताकूं यह पूछैं हैंः-उद्बुद्धसंस्कार भ्रमके जनक है अथवा उद्बुद्ध औ अनुद्बुद्ध दोनूं संस्कार भ्रमके जनक हैं ? जो दोनूंकूं जनकता कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? अनुद्बुद्ध संस्कारनसैं स्मृत्यादिक ज्ञान कदीभी होवै नहीं. जो अनुद्बुद्धसैंभी स्मृति होवै तौ अनुद्बुद्धसंस्कारसैं सर्वदा स्मृति हुई चाहिये, यातैं उद्बुद्धसंस्कारसैं स्मृति होवै है तैसैं भ्रमज्ञानभी उद्बुद्धसंस्कारसैं ही संभवै है, यातैं उद्बुद्धसंस्कार भ्रमके जनक हैं यह कहै सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? संस्कारके उद्बोधक सदृशदर्शनादिक हैं; यातैं शुक्तिसैं नेत्रके संयोगतैं चाकचिक्यविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान हुये पाछै रजतगोचर संस्कारका उद्बोध संभवै है. नेत्रशु-

क्तिके संयोगकालमैं रजतगोचरसंस्कारका उद्बोध सम्भवै नहीं, यातैं यह मानना होवैगा. प्रथमक्षणमैं नेत्रसंयोग द्वितीय क्षणमैं चाकचिक्यधर्मविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान, तिसतैं उत्तरक्षणमैं संस्कारका उद्बोध तिसतैं उत्तरक्षणमैं रजतभ्रम संभवै है. इसरीतिसैं नेत्रसंयोगतैं चतुर्थक्षणमैं भ्रमज्ञानकी उत्पत्ति सिद्ध हुई. सो अनुभवसैं बाधित है. नेत्रसंयोगसैं अव्यवहित उत्तरक्षणमैं चाक्षुष ज्ञान होवैहै. तैसाही अनुभव होवैहै, यातैं उक्तरीति असंगत है.

औ उक्तरीतिमैं शुक्तिके दो ज्ञान सिद्ध होवैं हैं. एक तौ संस्कारका उद्बोधक सामान्यज्ञान औ दूसरा संस्कारजन्य भ्रमज्ञान. इसरीतिसैं शुक्तिके दो ज्ञानभी अनुभवविरुद्ध हैं. नेत्रसंयोग होतेही "इदं रजतम्" यह एकही ज्ञान अनुभवसिद्ध है, यात रजतानुभवजन्यसंस्कारसहित नेत्रसंयोगतैं "इदं रजतम्" यह भ्रम होवै है यह कहनाभी संभवै नहीं.

औ "सुगंधि चंदनम्" या ज्ञानकूं अलौकिक प्रत्यक्ष मानैं तौभी "इदं रजतम्" यह ज्ञान तौ ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंधजन्य संभवै नहीं. काहेतैं ? "सुगंधि चंदनम्" यह ज्ञान हुयें सुगंधके उत्कर्ष अपकर्षका संदेह होवैहै; यातैं सुगंधके उत्कर्ष अपकर्षका निश्चयरूप प्राकट्य अलौकिकज्ञानतैं होवै नहीं, यह मानना चाहिये. जो अलौकिक ज्ञानतभी विषयका प्राकट्य होवै तौ सुगंधका अपकर्षादिकनका सन्देह संभवै नहीं. औ "इदं रजतम्" या भ्रमतैं औ सत्य रजतमैं "इदं रजतम्" या प्रमातैं रजतकी प्रकटता सम होवैहै जो भ्रम स्थलमैं रजतकी प्रगटता न होवै तौ रजतके परिमाणादिकनका संदेह हुया चाहिये ? औ परिमाणादिकनका संदेह होवै नहीं, यातैं भ्रमज्ञानतैं रजतकी प्रगटता होवै है. औ ज्ञानलक्षण संबंधजन्य ज्ञानतैं विषयकी प्रगटता होवै नहीं, यातैं "इदं रजतम्" या भ्रमज्ञानका हेतु ज्ञानलक्षणसंबंध नहीं.

औ विचार करैं तौ ज्ञानरूप संबंध कहूंभी संभवै नहीं. काहेतैं ज्ञान-

लक्षणसम्बन्धसैं अलौकिक प्रत्यक्ष होवैहै; या पक्षका यह निष्कर्ष है; जहां एक पदार्थकी अनुभवजन्य स्मृति होवै अथवा अनुभवजन्य संस्कार होवै औ परपदार्थसैं इंद्रियका सम्बन्ध होवै तहां इंद्रियसम्बंधीमैं स्मृतिगोचर पदार्थकी अथवा संस्कारगोचर पदार्थकी प्रतीति होवै है. इंद्रियसम्बन्धी पदार्थ तौ विशेष्यरूपतैं प्रतीत होवै है. औ स्मृतिगोचरपदार्थ विशेषणरूपतैं प्रतीत होवैहै जैसैं "सुगंधि चंदनम्" या ज्ञानमैं नेत्ररूप इंद्रियसम्बन्धीचंदन विशेष्य है और स्मृतिगोचर सुगंध विशेषण है. तैसैं "इदं रजतम्" या भ्रमज्ञानमैंभी इंद्रियसंबंध शुक्ति विशेष्य है औ स्मृतिका गोचर अथवा संस्कारका गोचर रजतत्व विशेषण है. विशेषण विशेष्य दोनूंका ज्ञान प्रत्यक्ष है, या पक्षका अंगीकार होवै तौ अनुमानप्रमाणका उच्छेद होवैगा, काहेतैं ? "पर्वतो वह्निमान्" ऐसा अनुमितिज्ञान अनुमानप्रमाणतैं होवै है हेतुमैं साध्यकी व्याप्तिके स्मरणतैं अथवा साध्यकी व्याप्तिके उद्बुद्ध संस्कारनतैं अनुमितिज्ञान होवै है, यह अर्थ अनुमान निरूपणमैं निर्णीत है. साध्यकी व्याप्तिकी स्मृति होवै तब व्याप्तिनिरूपक साध्यकीभी स्मृति होवै है, यातैं पर्वतसैं नेत्रका संयोग औ वह्निकी स्मृतिसैं "पर्वतो वह्निमान्" ऐसैं प्रत्यक्षज्ञानका संभव होतैं पक्षमैं साध्यनिश्चयरूप अनुमितिज्ञानका जनक अनुमानप्रमाणका अंगीकार निष्फल है. औ गौतम कणाद कपिलादिक सर्वज्ञकृत सूत्रनमैं अनुमानप्रमाण प्रत्यक्षसैं भिन्न कह्या है. जो अनुमानप्रमाण निष्प्रयोजन होता तौ सूत्रनमैं नहीं कहते; यातैं अनुमानका प्रयोजन साधक ज्ञानरूप संबंधजन्य अलौकिक प्रत्यक्ष अलीक है. औ जो अन्यथाख्यातिवादी ऐसैं कहै. प्रत्यक्षज्ञानकी विषयतासैं अनुमितिज्ञानकी विषयता विलक्षण है, इसीवास्तै प्रत्यक्षके विषयमैं परिमाणादिकनका संदेह नहीं होवै है औ अनुमितिके विषयमैं परिमाणादिकनका संदेह होवैहै इसरीतिसैं परोक्षता अपरोक्षतारूप विषयताका भेद अनुमितिज्ञान औ प्रत्यक्षज्ञानके भेदसैं होवै है; यातैं परोक्षतारूप विषयताका

संपादक प्रत्यक्षज्ञान नहीं,किंतु अनुमितिज्ञान है ताका हेतु अनुमानप्रमाण है, यह कथनभी संभवै नहीं. काहेतें ? लौकिकप्रत्यक्षकी विषयता तौ अनुमितिसैं विलक्षण है,परन्तु "सुगंधि चंदनम्" इत्यादिक ज्ञान सुगंधादिक अंशमैं अलौकिक है, तहां सुगंधका ज्ञान अनुमितिके समान है. जैसैं अनुमिति ज्ञानके विषयमैं उत्कर्षादिक अनिर्णीत होवै हैं तैसैं सुगंधके उत्कर्षादिकभी अनिर्णीत हैं, यातैं अलौकिक प्रत्यक्षकी विषयताका अनुमितिकी विषयतासैं भेद नहीं. औ भ्रमरूप अलौकिक प्रत्यक्षकी विषयता रजतादिकनमैं है ताका तौ यद्यपि अनुमितिकी विषयतासैं भेद अनुभवसिद्ध है इसीवास्तै रजतकी अल्पतादिकनका संदेह होवै नहीं, तथापि ज्ञानलक्षणसंबंधजन्य अलौकिक प्रत्यक्षप्रमाकी विषयतासैं भेद नहीं. जैसैं अनुमितिके विषयमैं अप्राकट्य है तैसैं अलौकिक प्रत्यक्षप्रमाके विषयगंधमैं अप्राकट्य है यातैं ज्ञानलक्षणसंबंधसैं पर्वतमैं वह्निका अलौकिक प्रत्यक्षसैं प्रकाश संभवै है; अनुमितिज्ञान वास्तै अनुमानप्रमाण व्यर्थ होवैगा; औ अनुमानप्रमाण सर्वज्ञवचन सिद्ध है, यातैं अनुमानकी व्यर्थतासंपादक अलौकिकप्रत्यक्ष अप्रसिद्ध है.

औ जो यह कह्या, विलक्षणविषयताका संपादक अनुमितिज्ञान है. ताका हेतु अनुमानप्रमाण व्यर्थ नहीं; यह कथनही असंगत है, काहेतें ? जहां अनुमानप्रमाणतें अनुमिति होवै तहां सारै अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री है जैसैं पर्वतमैं वह्निकी अनुमितिसैं पूर्व धूमदर्शनव्याप्तिज्ञान तौ अनुमितिकी सामग्री है; औ पर्वतसैं नेत्रका संबंध औ वह्निकी स्मृति यह अलौकिकप्रत्यक्षकी सामग्री है. दोनूं ज्ञानोंकी दो सामग्री होतें पर्वतमैं वह्निका प्रत्यक्षरूपही ज्ञान होवैगा, अनुमितिज्ञान होवै नहीं; यातैं अनुमानप्रमाण व्यर्थ ही होवैहै. काहेतें ? यह न्यायशास्त्रका निर्णीत अर्थ है, जहां एकगोचर अनुमितिसामग्रीका औ अपरगोचर प्रत्यक्षसामग्रीका समावेश होवै तहां अनुमिति सामग्री प्रबल है. जैसैं पर्वतसैं नेत्रसंयोग तौ

पर्वतके प्रत्यक्षकी सामग्रीका औ वह्निकी अनुमितिकी सामग्रीका समावेश हुयां वह्निकी अनुमिति होवैहै, पर्वतका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं. जहां धूमसैं औ वह्निसैं नेत्रका संयोग होवै औ धूममैं वह्निकी व्याप्तिका ज्ञान होवै तहां वह्निकी अनुमितिकी सामग्री है औ वह्निके प्रत्यक्षकी सामग्री है; यातैं समानगोचर उभयज्ञानकी सामग्री है; तहां प्रत्यक्षसामग्री प्रबल है; यातैं वह्निका प्रत्यक्षही ज्ञान होवै है. वह्निकी अनुमिति होवै नहीं. औ पुरुषमैं "पुरुषो न वा" ऐसा संदेह होयकै "पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम्" ऐसा प्रत्यक्षरूप परामर्शज्ञान औ पुरुषतैं नेत्रका संयोग होवै तहां परामर्श तौ पुरुषकी अनुमितिकी सामग्री है औ पुरुषके नेत्रसंयोग पुरुषके प्रत्यक्षकी सामग्री है. तहां पुरुषका प्रत्यक्षज्ञानही होवै है पुरुषकी अनुमिति होवै नहीं, यातैं एकविषयके दोनूं ज्ञानोंकी सामग्री होवै तिनमैं प्रत्यक्ष सामग्री प्रबल है, यातैं वह्निकी अनुमितिसामग्री होतेंभी अलौकिक संबंधरूप सामग्रीतैं वह्निका प्रत्यक्षज्ञानही होवैगा इस रीतिसैं ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंधतैं प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति मानैं तौ अनुमान प्रमाण व्यर्थ है.

जो नैयायिक ऐसैं कहैः—यद्यपि भिन्न विषय होवै तहां प्रत्यक्षसामग्रीसैं अनुमितिसामग्री प्रबल है, औ समानविषय होवै तहां अनुमितिसामग्रीसैं प्रत्यक्ष सामग्री प्रबल है; तथापि समानविषय होनेसैंभी लौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री अनुमितिसामग्रीसैं प्रबल है. औ अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री तौ अनुमितिकी सामग्रीसैं सारै दुर्बल है, यातै पर्वतमैं वह्निकी अनुमिति सामग्रीसैं अलौकिक प्रत्यक्ष सामग्रीका बाध होनेतैं अनुमानप्रमाण निष्फल नहीं यह कहनाभी समीचीन नहीं. काहेतैं ? जहां स्थाणमैं "स्थाणुर्न वा" ऐसा सन्देह होयकै "पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम्" ऐसा भ्रम होयकै "पुरुष एवायम्" ऐसा भ्रमरूप प्रत्यक्ष होवै है. तहां नैयायिकवचनकी रीतिसैं अनुमिति हुई चाहिये, प्रत्यक्ष नहीं हुया चाहिये, काहेतैं ? उक्तस्थलमैं स्थाणुमैं पुरुषत्वका प्रत्यक्ष

होनेतैं भ्रमप्रत्यक्ष है, औ भ्रमप्रत्यक्षकी तेरे मतमैं अलौकिक सामग्री है; यातैं अनुमिति सामग्रीसैं अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्रीकूं दुर्बल मानैं तौ उक्त स्थलमैं अनुमिति हुई चाहिये; औ जो उक्तस्थलमैं पुरुषका भ्रम अनुमितिरूप मानैं तौ उत्तरकालमैं "पुरुषं साक्षात्करोसि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है सो नहीं होवैगा "पुरुष मनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय हुया चाहिये, यातैं दोनूं समानविषय होवैं तहां लौकिकप्रत्यक्षसामग्रीकी नाईं अलौकिकप्रत्यक्षसामग्रीभी प्रबल है; अनुमिति सामग्री दुर्बल है; यातैं ज्ञानलक्षणसंबन्धसैं प्रत्यक्षकी उत्पत्ति मानैं तौ अनुमितिज्ञानकूं बाधिकै पर्वतादिकनमैं वह्नि आदिकनका प्रत्यक्ष ज्ञानही होवैगा; यातैं अनुमान प्रमाण निष्फल होवैगा. इसकारणतैं जो अनुमानप्रमाण मानैं ताके मतमैं स्मृतिज्ञानसहित इंद्रियसंयोगतैं वा संस्कारसहित इंद्रियसंयोगतैं व्यवहितवस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान संभवै नहीं; यातैं शुक्तिका रजतत्वरूपतैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभवै नहीं.

अनिर्वचनीयवादमें न्यायोक्तदोषका उद्धार ॥ ६४ ॥

औ अनिर्वचनीयख्यातिवादमैं जो दोष कह्या है सो कहते हैं. अनिर्वचनीयख्यातिके मतमैं विषयकी औ ज्ञानकी कारणता दोषमैं मानैं हैं. अन्यथाख्यातिवादमैं ज्ञानकी कारणता मानैं है विषयकी नहीं. यातैं अन्यथाख्यातिवादमैं लाघव है. औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं अन्यथाख्यातिभी माननी होवै है. अन्यथाख्यातिवादीकूं अनिर्वचनीयख्याति माननी होवै नहीं. यातैंभी लाघव है; यह कथनभी अविवेकमूलक है. काहेतैं ? अन्यथाख्यातिवादीकूं श्रुतिस्मृतिकी आज्ञातैं स्वप्नमैं तौ अनिर्वचनीयख्याति अवश्य माननी चाहिये. वेदोक्त अर्थका पुरुषमतिकल्पित युक्तिसमुदायसैं अन्यथा भावकल्पन आस्तिककूं योग्य नहीं औ शुक्तिरजतका तादात्म्यप्रतीत होवैहै. जैसै इदंपदार्थमैं रजतत्वका समवाय प्रतीत होवै है तैसैं इदंपदार्थका औ रजतका तादात्म्य प्रतीत होवै है. इदंपदार्थ शुक्ति है, शुक्तिरजतका तादात्म्य अन्यस्थानमैं प्रसिद्ध नहीं, यातैं पुरोवर्तिदेशमैं

शुक्तिरजतका तादात्म्य अनिर्वचनीय उपजै है. जो अनिर्वचनीयतादात्म्यकी उत्पत्ति नहीं मानैं तौ अप्रसिद्धकी अपरोक्षप्रतीति नहीं होवैगी. औ तादात्म्यकी अपरोक्ष प्रतीति होवै है. औ जो नैयायिक आग्रहतैं यह कहैः— शुक्तिमैं रजतत्वका समवायही भासै है, याकाभी यह अर्थ है, समवायसंबन्धतैं रजतत्व भासै है औ शुक्तिरजतका तादात्म्य भासै नहीं ऐसा कहैं तौ शुक्तिज्ञानतैं उत्तरकालमैं "नेदं रजतम्" ऐसा बाध होवै है. ताका बाध्य इदंपदार्थमैं रजतका तादात्म्य है. जो भ्रमकालमैं इदंपदार्थमैं रजतका तादात्म्य नहीं भासै तौ बाध निर्विषय होवैगा. जो केवल रजतत्वका समवायही शुक्तिमैं भास तौ "नात्र रजतत्वम्" ऐसा बाध हुया चाहिये. यातैं शुक्तिमैं रजतका तादात्म्य भासै है सो शुक्तिरजतका तादात्म्य उभयसापेक्ष है. कहूं प्रसिद्ध नहीं; यातैं अनिर्वचनीय तादात्म्यकी उत्पत्ति अन्यथाख्यातिवादमैं आवश्यक है केवल अन्यथाख्यातिसैं निर्वाह होवै नहा.

औ अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं अन्यथाख्याति माननी होवै है. औ अद्वैतग्रंथकारोंनैं मानी है, यह कथनभी अद्वैतग्रंथनके अभिप्रायके अज्ञानतैं है. काहेतैं ? अद्वैतवादमैं कहूंभी अन्यथाख्याति नहीं. सारै अनिर्वचनीयख्याति है. बहुत क्या कहैंः—जहां प्रमा ज्ञान कहैं हैं, तहां अद्वैत सिद्धांतमैं विषय औ ज्ञान अनिर्वचनीय है, औ कितने स्थानोंमैं अन्यथाख्याति लिखी है ताका यह तात्पर्य है. जहां अधिष्ठान आरोप्यका संबंध होवै औ परोक्ष भ्रम होवै तहां अन्यथाख्यातिभी संभवै है,परंतु सारै अन्यथाख्याति संभवै नहीं. जहां आरोप्य व्यवहित हुयां अपरोक्ष भ्रम होवै तहां अनिर्वचनीयख्याति आवश्यक है,यातैं आवश्यक अनिर्वचनीयख्यातिही सारै मानी चाहिये. इसरीतिसैं अन्यथाख्यातिका कथन संभवाभिप्रायतैं है अंगीकरणीयत्वाभिप्रायतैं नहीं. जहां आत्मसत्ताभी अनात्ममैं अन्यथाख्याति कही तहांभी आत्मसत्ताका अनिर्वचनीय संबंध उपजै है, इसरीतिसैं जहां अनिर्वचनीयसंबंधीकी उत्पत्ति नहीं संभवै तहां अनिर्वचनीय संबंधका अंगीकार

है. तैसैं परोक्षभ्रम होवै तहांभी अनीर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति ब्रह्मविद्याभरणसैं लिखी है, परंतु परोक्षभ्रम होवै तहां अन्यथाख्याति मानैं तौभी दोष नहीं है, इसवास्तै सरलबुद्धितैं परोक्षभ्रम अन्यथाख्यातिरूप कह्या है.

औ जो ऐसैं कहैः—"तदेवेदं रजतम्" इसरीतिसैं शुक्तिमैं रजतका प्रत्यभिज्ञा भ्रम होवै तहां अनिर्वचनीयरजतकी पुरोवर्तिदेशमैं उत्पत्ति मानैं तौ सन्निहितरजतमैं तौ तत्ता संभवै नहीं. यातैं देशांतरस्थ रजतवृत्ति रजतत्वकी औ तत्ताकी शुक्तिपदार्थमैं प्रतीति होवै है, अथवा तादात्म्यसंबंधसैं देशांतरस्थ रजतकी प्रतीति होवै है, यातैं उक्त स्थलमैं अन्यथाख्याति आवश्यक है.

यह कथनभी असंगत है; काहेतैं ? उक्त प्रत्यभिज्ञामैंभी अनिर्वचनीयरजतही विषय है; देशांतरस्थ नहीं. काहेतैं ? प्रमातासैं संबंधविना अपरोक्ष अवभास संभवै नहीं; औ देशांतरस्थ रजतका प्रमातासैं संबंध बाधित है, यातैं देशांतरस्थ रजतकी प्रतीति नहीं. औ जहां यथार्थ प्रत्यभिज्ञा होवै तहांभी तत्ता अंशमैं स्मृति है यह सिद्धांत है; यातैं "तदेवेदं रजतम्" यह भ्रमरूप प्रत्यभिज्ञाभी तत्ताअंशमैं स्मृति है. औ "इदं रजतम्" इतने अंशमैं अनिर्वचनीय प्रत्यक्ष है; यातैं कहूंभी अन्यथाख्याति आवश्यक नहीं. जहां अनिर्वचनीयविषयकी उत्पत्ति नहीं संभवै तहां अनिर्वचनीय संबंधकी उत्पत्ति होवै है. जैसैं आत्मानात्मका अन्योन्याध्यास होवै, तहां अनात्मामैं आत्मा औ आत्मधर्म अनिर्वचनीय उपजैं हैं, यह कहना संभवै नहीं; यातैं आत्माका आत्मधर्मनका अनात्मामैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है. इसरीतिसैं सारे अनिर्वचनीय ख्यातिसैं निर्वाह होवै है कहूंभी अन्यथाख्याति माननी होवै नहीं.

औ जो अन्यथाख्यातिवादीनैं अनिर्वचनीयख्यातिवादमैं यह गौरव कह्या ता दोषकूं अनिर्वचनीय रजतादिक औ तिनके ज्ञानकी कारणता माननेतैं केवल ज्ञानकी कारणता माननेमैं लाघव है. अन्यथाख्यातिवादमैं

रजत तौ देशांतरमैं प्रसिद्ध है; ताके रजतत्वधर्मका शुक्तिमैं ज्ञान होवै है, अथवा तादात्म्यसंबंधसैं रजतका शुक्तिमें ज्ञान होवै है. इसरीतिसैं केवल ज्ञानही दोषजन्य है. औ अनिर्वचनीयख्यातिवादमैं विषय औ ज्ञान दोनूं दोषजन्य कहैं हैं, यातै गौरव है.

यह कथनभी असंगत है. काहेतैं ? लाघवबलतैं अनुभवसिद्ध पदार्थका लोप करै तौ यथार्थ ज्ञानके विषयभी नहीं मानैं औ विज्ञानवादकी रीतिसैं केवल विज्ञानही मानै तौ अतिलाघव है. जैसैं अनुभवसिद्ध घटादिक मानिक लाघवसहकृत विज्ञानवादका त्याग है. तैसैं अपरोक्षप्रतीति सिद्ध अनिर्वचनीय रजतादिक मानिक अन्यथाख्यातिवादभी त्याज्य है.

औ विचार करैं तौ गौरवभी अन्यथाख्यातिवादमैं है. काहेतैं ? देशांतरस्थ रजतका ज्ञान मानै ताके मतमैं यह गौरव है. रजतनेत्रसंयोगकी रजतसाक्षात्कारमैं कारणता निर्णीत है; तिस निर्णीतका त्याग होवै है, औ रजत आलोकसंगसैं रजतका साक्षात्कार निर्णीत है. अन्यथाख्यातिवादमैं शुक्तिआलोकसंगसैं रजतका भ्रमसाक्षात्कार होवै है, सो अनिर्णीत है, यातैं अनिर्णीतका अंगीकार होवैहै तैसैं ज्ञानलक्षणसंबंध अप्रसिद्ध है, यातैं अप्रसिद्धका अंगीकार होवै है औ जो ज्ञानलक्षणसंबंधकूं मानै तौभी जा पदार्थका अलौकिक संबंधसैं प्रत्यक्ष होवै है ताकी प्रकटता होवै नहीं. इसीवास्तैं "सुगंधि चन्दनम्" इसरीतिसैं सुगंधका अलौकिक प्रत्यक्ष हुयेभी "सुगंध साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै नहीं औ अलौकिक संबंधजन्य रजतभ्रम हुये रजतकी प्रकटता होवै है. इसीवास्तै भ्रमतैं उत्तरकालमैं "रजतं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. इसरीतिसैं ज्ञानलक्षणसंबंधजन्य यथार्थज्ञानमैं प्राकट्य जनकता नहींहै. भ्रमस्थलमें अलौकिकज्ञानकूं प्राकट्यजनकता मानी सोभी अप्रसिद्धकल्पना है. इसरीतिसैं अनेक प्रकारकी अप्रसिद्ध कल्पना अन्यथाख्यातिवादमैं होनेतैं या पक्षविषै ही गौरव है. औ दोषकूं अनिर्वचनीय विषयकी जनकता तौ श्रुति-

स्मृतिबलतैं स्वप्नमैं है, अप्रसिद्ध कल्पना नहीं. **ब्रह्मानन्दकृत अनिर्वचनीयवादमैं** अन्यथाख्यातिका खण्डन विशेष कऱ्या है सो प्रकार कठिन है, यातैं ब्रह्मविद्याभरणकी सुगमरीतिसैं अन्यथाख्यातिवादकी हेयता प्रतिपादन करी, यातैं अन्यथाख्याति असंगत है.

अख्यातिवादकी रीति औ खंडन

अख्यातिवादीका तात्पर्य ॥ ६९ ॥

जैसैं अन्यथाख्याति असंगत है तैसैं **अख्यातिवाद** भी असंगत है प्रभाकरका अख्यातिवाद है. यह ताका तात्पर्य है. अन्यशास्त्रनमैं यथार्थ अयथार्थ भेदसैं **दो प्रकारका ज्ञान मान्या** है. यथार्थ ज्ञानसैं प्रवृत्ति निवृत्ति सफल होवै है. अयथार्थ ज्ञानसैं प्रवृत्ति निवृत्ति निष्फल होवै है यह सकल शास्त्रनका लेख असंगत है. काहेतैं? अयथार्थ ज्ञान अप्रसिद्ध है, सारे ज्ञान यथार्थही होवै है. जो अयथार्थ ज्ञानभी होवै तौ पुरुषकूं ज्ञान होते ही ज्ञानत्व सामान्य धर्म देखिकै उत्पन्न हुये ज्ञानमैं अयथार्थका संदेह होयकै प्रवृत्तिनिवृत्तिका अभाव होवैगा. काहेतैं ? ज्ञानमैं यथार्थत्व निश्चय औ अयथार्थतासंदेहका अभाव पुरुषकी प्रवृत्तिनिवृत्तिके हेतु है. औ अयथार्थताके संदेह होनेतैं दोनूं संभवैं नहीं; औ अयथार्थ ज्ञानकूं नहीं मानैं तब उत्पन्न हुये ज्ञानमैं उक्त संदेह होवै नहीं. काहेतैं ? कोई ज्ञान अयथार्थ होवै तौ तिसकी ज्ञानत्वधर्मतैं सजातीयता अपनें ज्ञानमैं देखिकै अयथार्थत्व संदेह होवै सो अयथार्थ ज्ञान है नहीं. सारे ज्ञान यथार्थ ही है, यातैं ज्ञानमैं अयथार्थतासंदेह होवै नहीं. इस रीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है. जहां शुक्तिमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै है औ भयहेतुक रज्जुसैं निवृत्ति होवै है, तहांभी रजतका प्रत्यक्षज्ञान औ सर्पका प्रत्यक्षज्ञान नहीं है. तहांभी रजतका प्रत्यक्षज्ञान औ सर्पका प्रत्यक्षज्ञान उक्तस्थलमैं होवै तौ यथार्थ तौ संभवै नहीं; यातैं अयथार्थ होवै सो अयथार्थ ज्ञान अलीक है, यातैं उक्तस्थलमैं रजतका औ सर्पका प्रत्यक्ष-

ज्ञान नहीं; किंतु रजतका स्मृतिज्ञान है औ शुक्तिका इदंरूपतैं सामान्य-ज्ञान प्रत्यक्ष है. तैसैं पूर्वानुभूत सर्पका स्मृतिज्ञान है औ सामान्य इदं-रूपतैं रज्जुका प्रत्यक्ष ज्ञान है. शुक्तिसैं तथा रज्जुसैं दोषसहित नेत्रका सम्बंध होवै है, यातैं शुक्तिका तथा रज्जुका विशेषरूप भासै नहीं; किंतु सामान्यरूप इदंता भासै है.औ शुक्तिसैं नेत्रके सम्बंधजन्य ज्ञान हुये रजतके संस्कारउद्बुद्ध होयकै शुक्तिके सामान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमैं रजतकी स्मृति होवै है; तैसैं रज्जुके सामान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमैं सर्पकी स्मृति होवै है यद्यपि सकल स्मृतिज्ञानमैं पदार्थकी तत्ताभी भासै है, तथापि दोषसहित नेत्रके सम्बंधतैं संस्कार उद्बुद्ध होवै तहां दोषके माहात्म्यतैं तत्ताअंशका प्रमोष होवै है, यातैं प्रमुष्टतत्ताकी स्मृति होवै है. प्रमुष्ट कहिये लुप्त हुई है तत्ता जिसकी सो प्रमुष्टतत्ताके शब्दका अर्थ इसरीतिसैं " इदं रजतम्, अयं सर्पः" इत्यादिक स्थलमैं दो ज्ञान हैं. तहां शुक्तिका औ रज्जुका सामान्य इदंरूपका प्रत्यक्षज्ञान यथार्थ है औ रजतका तथा सर्पका स्मृतिज्ञानभी यथार्थ है. यद्यपि विशेष शुक्तिरज्जुभागकूं त्यागिकै प्रत्यक्षज्ञान हुया है औ तत्ताभागरहित स्मृतिज्ञान हुया है, तथापि एक भाग त्यागनेसैं ज्ञानअयथार्थ होवै नहीं; किंतु अन्यरूपतैं ज्ञानकूं अयथार्थ कहैं हैं, यातैं उक्त ज्ञान यथार्थ है अयथार्थ नहीं. इसरीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है.

अख्यातिवादीकरि अन्यकृतशंकाका उद्धार ॥ ६६ ॥

औ जो शास्त्रांतरवाले ऐसैं कहैं—जा पदार्थमैं इष्टसाधनता ज्ञान होवै तासैं प्रवृत्ति होवै है, औ जामैं अनिष्टसाधनता ज्ञान होवै तासैं निवृत्ति होवै है अख्यातिवादीके मतमैं शुक्तिमैं इष्टसाधनता ज्ञान कहै तौ भ्रमका अंगीकार होवै, यातैं इष्टसाधनता ज्ञानके अभावतैं शुक्तिमैं रजतार्थकी प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये. तैसैं रज्जुमैं अनिष्टसाधनत्व है नहीं, औ ताका ज्ञान मानैं तौ भ्रमका अंगीकार होवै, यातैं अनिष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं निवृत्ति नहीं

हुई चाहिये, यातैं भ्रमज्ञान आवश्यक है. ताका इसरीतिसैं अख्यातिवादी समाधान करै हैः—जा पदार्थमैं पुरुषकी प्रवृत्ति होवै ता पदार्थका सामान्य-रूपतैं प्रत्यक्षज्ञानऔ इष्ट पदार्थकी स्मृति औ स्मृतिके विषयतैं पुरोवर्ति पदार्थका भेदज्ञानाभाव तैसैं स्मृतिज्ञानका पुरोवर्तिके ज्ञानतैं भेदज्ञानाभाव इतनी सामग्री प्रवृत्तिकी हेतु है, यातैं भ्रमज्ञानविना प्रवृत्ति संभवै है. जो विषयका औ ज्ञानका भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिमैं हेतु कहै तौ उदासीन-दशामैं प्रवृत्ति हुई चाहिये. औ विषयका सामान्यज्ञानसहित इष्टकी स्मृतिही प्रवृत्तिका कारण कहै तौ "देशांतरे तद्रजतं किंचिदिदम्" इसरीतिसैं देशांतरसंबंधी रूपतैं रजतकी स्मृति होवै औ शुक्तिका किंचित्‌रूपतैं ज्ञान होवै तहांभी रजतार्थीकी प्रवृत्ति हुई चाहिये. यातैं इष्टपदार्थतैं विषयका भेदज्ञानाभावभी प्रवृत्तिका हेतुहै उक्त स्थलमैं इष्ट रजतका शुक्तिसे भेदज्ञान है ताका अभाव नहीं; यातैं प्रवृत्ति होवै नहीं जो इष्टपदार्थका पुरोवर्तिसैं भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिकी सामग्रीमैं मिलावै औ दोनूंके ज्ञानका भेदज्ञाना-भाव नहीं कहै तौ "इदं रजतम्" इसरीतिसैं दोज्ञान होयकै इदंपदार्थका मेरेकूं प्रत्यक्षज्ञान हुया है औ रजतका स्मृतिज्ञान हुया है इसरीतिसैं दोनूं ज्ञानोंके भेदका ज्ञान होवै अथवा इदंपदाथका ज्ञान औ रजतपदार्थका ज्ञान मेरेकूं परस्पर भिन्न हुये हैं. इसरीतिसैं भेदज्ञान होवै तहांभी विषयका भेदज्ञान नहीं, यातैंप्रवृत्ति हुई चाहिये. यातैं ज्ञानका भेदज्ञानाभावभीप्रवृति सामग्रीमैं कह्या चाहिये. उक्तस्थलमैं पुरोवर्तिका सामान्यज्ञान औ इष्टरजतकी स्मृति है, तैसैं पुरोवर्तिसैं इष्टरजतका भेदज्ञानका अभावभी है परंतुदोनूंज्ञानों-का भेदज्ञान है ताका अभाव नहीं. इसरीतिसैं उभयविधभेदज्ञानाभाव सहित इष्टस्मृतिसहित पुरोवर्तिका सामान्यज्ञान प्रवृत्तिका हेतु है. सो पुरोवर्तिशुक्तिका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान यथाथ है. यातैं भ्रमका अंगीकार निष्फल है. जहां शुक्तिमैं रजतका भेदज्ञान होवै तहां रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवैनहीं औशुक्ति-ज्ञानमैंरजतज्ञानका भेदग्रह होवै तहांभी प्रवृत्ति होवै नहीं; यातैं भेदज्ञान

प्रवृत्तिका प्रतिबंधक है, प्रतिबंधकाअभाव कारण होवै है, यातैं भेदज्ञाना भावमैं प्रवृत्तिकी कारणता माननेमैं अप्रसिद्धकी कल्पना नहीं; औ जहां रज्जुदेशतैं भय हेतुसैं पलायन होवै है; तहांभी सर्पभ्रम नहीं होवै है; किंतु द्वेषगोचर सर्पकी स्मृति औ रज्जुका सामान्यज्ञान तैसैं ज्ञान औ तिनके विषयका भेदज्ञानाभाव पलायनके हेतु हैं. पलायनभी प्रवृत्तिविशेष है, परंतु वह प्रवृत्ति विषयके अभिमुख नहीं; किंतु विमुखप्रवृत्ति है. विमुखप्रवृत्तिमैं द्वेषगोचरकी स्मृति हेतु है, सन्मुखप्रवृत्तिमैं इच्छागोचरकी स्मृति हेतु है, इसरीतिसैं भयजन्य पलायनादि क्रिया होवै ताकूं प्रवृत्ति कहोअथवा निवृत्ति कहो ताका हेतु द्वेषगोचरपदार्थकी स्मृति है; औ जहां शुक्तिज्ञानसैं रजतार्थीकी प्रवृत्तिका अभावरूप निवृत्ति होवै ताका हेतु तौ शुक्तिज्ञान है, सोभी भ्रम नहीं. औ जहां सत्यरजतमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै तहां तौ रजतत्वविशिष्ट रजतका ज्ञानही रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है. पुरोवर्तिसत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञानाभाव प्रवृत्तिका हेतु नहीं. यातैं विशिष्टज्ञानमैं प्रवृत्तिजनकताका सर्वथा लोप नहीं. काहेतैं ? जहां सत्य रजत है तहां पुरोवर्तिरजतमैं रजतका भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिका हेतु कहैं तौ संभवै नहीं जो प्रतियोगी प्रसिद्ध होवै ताका अभाव व्यवहारगोचर होवै है. अप्रसिद्ध प्रतियोगीका अभाव व्यवहारयोग्य नहीं. जैसैं शशशृंगाभावका प्रतियोगी अप्रसिद्ध है, यातैं शशशृंगाभावभी अलीक है.अलीक पदार्थसैं कोई व्यवहार होवै नहीं.केवल शब्दप्रयोग औ विकल्परूपज्ञान तौ अलीक पदार्थका होवै है,औ अलीकपदार्थमैं कारणता कार्यता नित्यता अनित्यतादिक व्यवहार होवैं नहीं; यातैं प्रसिद्ध पदार्थका अभाव ही व्यवहारयोग्य होवै है अप्रसिद्धका अभाव किसी व्यवहारके योग्य नहीं; यातैं अलीक है. सत्यरजतमैं रजतका भेद है नहीं यातैं सत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञान संभवै नहीं. जो भ्रम ज्ञानकूं मानैं तौ सत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञान संभवै अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है,यातैं सत्यरजतमैं रजतका भेदज्ञान संभवै

नहीं. इस रीतिसैं सत्यरजतमैं रजतप्रतियोगिक भेदज्ञानरूप प्रतियोगीके असंभवतैं सत्यरजतमैं रजतप्रतियोगिक भेदज्ञानका अभाव अलीक है; तामैं प्रवृत्तिकी जनकता संभवै नहीं. यातैं सत्यरजतस्थलमैं पुरोवर्तिदेशमैं रजतत्वविशिष्ट रजत है, ऐसा विशिष्ट ज्ञानही रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है औ अख्यातिवादमैं भ्रमज्ञान तौ है नहीं. सारे ज्ञान यथार्थ हैं तथापि कहूं प्रवृत्ति सफल होवै है; कहीं निष्फल होवै है इसका हेतु कह्या चाहिये; तामैं यह हेतु है; विशिष्ट- ज्ञानजन्यप्रवृत्ति सफल होवै है. भेदज्ञानाभावजन्य प्रवृत्ति निष्फल होवै है, रजतदेशमैं भी भेदज्ञानाभावजन्य प्रवृत्ति कहै तौ सारे समप्र वृत्ति हुई चाहिये. यातैं सफलप्रवृत्तिका जनक विशिष्टज्ञान मानना चाहिये औ जहां सत्यरजतमैं रजतार्थीकी प्रवृत्ति नहीं होवै तहांप्रवृत्त्यभावरूप निवृत्ति है, ताका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञानाभाव है. तहां भी भ्रमरूप रजताभावज्ञान नहीं काहेतैं? प्रवृत्ति निवृत्ति परस्पर प्रतियोगी अभावरूप हैं. प्रवृत्तिरूप प्रतियोगीका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञान है; औ प्रवृतिअभावरूप निवृत्तिका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञानका अभाव है. इसरीतिसैं अख्यातिवाद मैं विषय नहीं होवै औ विषयार्थीकी प्रवृति होवै ताके हेतु इष्ट स्मृत्यादिकहैं. विशिष्टज्ञान नहीं. जहां शुक्तिदेशमैं "इदं रजतम्" ऐसा ज्ञान होवै सो एक ज्ञान नहीं है, शुक्तिका इदमाकार सामान्य ज्ञान है, रजतकी प्रमुष्टतत्ताक स्मृति है. इन दो ज्ञानोंसैं प्रवृत्ति होवै है, परन्तु भेदज्ञानाभाव होवै तब प्रवृत्ति होवै है. भेदज्ञान हुयां प्रवृत्ति होवै नहीं, यातैं उक्त ज्ञानद्वयसहित भेदज्ञानाभाव प्रवृत्तिका हेतु है.

औ बहुत ग्रंथनमैं असंबन्ध ग्रहाभावसैं प्रवृत्ति कही है. ताका यह अर्थ है:—शुक्तिमैं रजतत्वका असंबंध है, तैसैं रजतका भी इदंपदार्थमैं तादात्म्य संबंध नहीं. ऐसा जाकूं ज्ञान होवै ताकी प्रवृत्ति होवै नहीं, यातैं असंबंध ग्रहका अभाव प्रवृत्तिका हेतु है. यातैं भेदग्रहाभावके समान अर्थ ही सिद्ध होवै है, परन्तु इसरीतिसैं प्रवृत्ति होवै सो निष्फल होवै है. औ विषय

देशमैं विषयार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु विशिष्टज्ञान है. विशिष्टज्ञानसैं जहां प्रवृत्ति होवै तहां सफल होवै है. भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है. सर्वज्ञान यथार्थ है जहां ज्ञानद्वयसैं निष्फल प्रवृत्ति होवै, तहां ज्ञानद्वयकूं ही भ्रम कहैं हैं यह प्रभाकरका अख्यातिवाद है. ज्ञानद्वयका विवेकाभाव औ उभयविषयका विवेकाभाव अख्यातिपदका पारिभाषिक अर्थ है.

अख्यातिवादका खण्डन ॥ ६७ ॥

यह मतभी समीचीन नहीं. काहेतें ? शुक्तिमैं रजतभ्रमतें प्रवृत्त हुये पुरुषकूं रजतका लाभ नहीं होवै तब पुरुष यह कहै है, रजतशून्यदेशमैं रजतज्ञानसैं मेरी निष्फल प्रवृत्ति हुई, इसरीतिसैं भ्रमज्ञान अनुभवसिद्ध है, ताका लोप संभवै नहीं. औ मरुभूमिमैं जलका बाध होवै तब यह कहै है, मरुभूमिमैं मिथ्याजलकी प्रतीति मेरेकूं हुई, या बाधतैंभी मिथ्या जल औ ताकी प्रतीति होवै है. अख्यातिवादीकी रीतिसैं तौ रजतकी स्मृति औ शुक्तिज्ञानके भेदाग्रहतैं मेरी शुक्तिमैं प्रवृत्ति हुई ऐसा बाध हुया चाहिये. औ मरुभूमिके प्रत्यक्षसैं औ जलकी स्मृतिसैं मेरी प्रवृत्ति हुई, ऐसा बाध हुया चाहिये औ विषयतथा भ्रमज्ञान दोनूं त्यागिके अनेकप्रकारकी विरुद्ध कल्पना अख्यातिवादमैं हैं. तथाहिः-नेत्रसंयोग हुये दोषके माहात्म्यतैं शुक्तिका विशेषरूपतैं ज्ञान होवै नहीं यह कल्पना विरुद्ध है. तैसैं तत्तांशके प्रमोषतैं स्मृतिः कल्पना विरुद्ध है; औ विषयनका भेद है औ भासै नहीं. तैसैं ज्ञानोंका भेद है कदीभी भास नहीं यह कल्पना विरुद्ध है, औ रजतकी प्रतीतिकालसैं अभिमुखदेशसैं रजतप्रतीति होवै है, यातैं अख्यातिवाद अनुभवविरुद्ध है. औ अख्यातिवादीके मतमैं रजतका भेदग्रह प्रवृत्तिका प्रतिबंधक होनेतैं रजतके भेदग्रहका अभाव जैसैं रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु मान्या है, तैसैं सत्यरजतस्थलमैं रजतका अभेदग्रह निवृत्तिका प्रतिबंधक अनुभवसिद्ध है, यातैं रजतके अभेदग्रहका अभाव निवृत्तिका हेतु होवैगा. इसरीतिसैं रजतके भेदज्ञानका अभाव रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है, औ रजतके अभेद-

ज्ञानका अभाव रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु है. शुक्तिमैं "इदं रजतम्" ऐसैं दो ज्ञान होवैं तहां अख्यातिवादीके मतमैं दोनूं हैं. काहेतैं ? शुक्तिमैं रजतका भेद तौ है, परंतु दोषबलतैं रजतके भेदका शुक्तिमैं ज्ञान होवै नहीं, यातैं प्रवृत्तिका हेतु रजतके भेदज्ञानका अभाव है. औ शुक्तिमैं रजतका अभेद है नहीं. औ अख्यातिवादमैं भ्रमका अंगीकार नहीं, यातैं शुक्तिमैं रजतके अभेदका ज्ञान संभवै नहीं. इस रीतिसैं शुक्तिसैं रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु रजतके अभेदज्ञानका अभाव है. रजतार्थीकी सामग्री दोनूं है औ प्रवृत्ति निवृत्ति दोनूं परस्पर विरोधी हैं. एककालमैं दोनूं संभवै नहीं. औ दोनूंके असंभवतैं दोनूंका त्याग करै सोभी संभव नहीं. काहेतैं ? प्रवृत्तिका अभाव ही इसस्थानमैं निवृत्तिपदार्थ है, यातैं प्रवृत्तिका त्याग करैं निवृत्तिप्राप्त होवै है, निवृत्तिका त्याग करैं प्रवृत्तिप्राप्त होवै है. इसरीतिसैं उभयके त्यागमैं औ उभयके अनुष्ठानमैं अशक्त हुवा अख्यातिवादी व्याकुल होयकै लज्जातैं प्राणत्याग करैगा. यातैं अख्यातिवाद मरणका हेतु है या अर्थमैं अनेक कोटि हैं. क्लिष्ट जानिकै लिखी नहीं.

औ अख्यातिवादीके मतमैंभी इच्छाविना भ्रमज्ञानकी सामग्री बलतैं सिद्ध होवै है. जहां धूमरहित वह्निसहित पर्वतमैं धूलिपटल देखिकै "वह्निव्याप्यधूमवान्" ऐसा परामर्श होवै है, तहां वह्निकी प्रमारूप अनुमिति होवै. है काहेतैं ? अनुमितिका विषय वह्नि पर्वतमैं विद्यमान है, यातैं प्रमा है ताका हेतु "वह्निव्याप्यधूमवान्पर्वतः" इसरीतिसैं पर्वतमैं वह्निव्याप्य धूमके संबंधका ज्ञान तौ अख्यातिवादीके मतमैं संभवै नहीं. काहेतैं ? पर्वतमैं धूमका संबंध है नहीं. औ भ्रमज्ञानका अंगीकार होवै तौ धूमसंबंधरहित पर्वतमैं धूमसंबंधका ज्ञान होवै, भ्रम ज्ञानका अंगीकार नहीं; यातैं धूमरहितमैं धूमसंबंधका ज्ञान संभवै नहीं. यातैं पर्वतमैं धूमके असंबंधज्ञानका अभावरूप परामर्श ही उक्त अनुमितिका कारण होनेतैं सारै पक्षमैं हेतुका असंबंधज्ञानाभावही अनुमितिका कारण मान्या चाहिये, जहां पक्षमैं हेतुका संबंध है तहां

पक्षमैं हेतुके असंबंधज्ञानका अभाव है औ पक्षमैं हेतुका संबंधज्ञानभी है, परंतु जहां उक्तपर्वतमैं धूम नहीं है औ अनुमिति होवै है, तहां पक्षमैं हेतुका संबंधज्ञान संभवै नहीं. औ हेतुके असंबंधज्ञानका अभाव सारै संभवै है, यातैं पक्षमैं हेतुके असंबंधज्ञानका अभावही अनुमितिका कारण अख्यातिवादमैं सिद्ध होवैहै; यातैं वक्ष्यमाणरीतिसैं गलग्रहन्यायतैं अख्यातिवादीके मतमैं अनुमितिरूप भ्रमज्ञानकी सिद्धि होवै है.तथाहि—जैसैं वह्निका व्याप्य धूम है;तैसैं इष्टसाधनत्वका व्याप्य रजतत्व है;"यत्र यत्र रजतत्वं तत्र तत्र इष्टसाधनत्वम्" इसरीतिसैं रजतत्वमैं इष्टसाधनताकी व्याप्ति है; जामैं जाकी व्याप्ति होवै, सो ताका व्याप्य होवै है, जाकी व्याप्ति होवै सो व्यापक होवै है; इसरीतिसैं इष्टसाधनत्व व्यापक है, रजतत्व व्याप्य है, व्याप्य हेतु होवैहै, व्यापक साध्य होवै है, यह प्रकार अनुमानमैं लिख्या है. यातैं रजतत्व हेतुसैं इष्टसाधनत्वरूप साध्यकी अनुमिति होवै है. यह अर्थ तौ सर्वके मतमैं निर्विवाद है, अन्यमतमैं तौ पक्षमैं व्याप्य हेतुके संबंधज्ञानतैं व्यापक साध्यकी अनुमिति होवैहै. औ अख्यातिवादमैं पक्षमैं व्याप्य हेतुके असंबंधज्ञानाभावतैं साध्यकी अनुमिति होवै है, यह अर्थ प्रतिपादन कर्या है. यातैं "इदं रजतम्" इसरीतिसैं जहांशुक्तिदेशमैं ज्ञान होवै तहां इदंपदार्थ शुक्तिमैं रजतत्वका ज्ञान तौ नहीं है, तथापि रजतत्वके असंबंधका ज्ञान नहीं; यातैं रजतत्वके असंबंधका ज्ञानाभाव होनेतैं इदंपदार्थरूप पक्षमैं रजतत्वरूप हेतुके असंबंध ज्ञानाभावतैं इष्टसाधनत्वरूप साध्यकी अनुमिति इच्छाविना सामग्रीबलतैं सिद्ध होवैहै, सो इदंपदार्थमैं इष्टसाधनत्वकी अनुमिति भ्रमरूप है. काहेतैं ? इदंपदार्थ शुक्ति है, तामैं इष्टसाधनत्व है नहीं. इष्टसाधनत्वरहितमैं इष्टसाधनत्वका अनुमिति ज्ञान भ्रमरूप है. इसरीतिसैं गलग्रहन्यायतैं अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञानकी सिद्धि होवै है. धूलिपट सहित पर्वतमैं जो धूमका परामर्श कह्या तहां धूमका संबंधज्ञान पर्वतमैं मानै तौ धूमका संबंधज्ञानही भ्रमरूप मानना होवै है औ तिसपर्वतमैं धूमका असंबंधज्ञानाभाव अनुमितिका हेतु कहै तौ तिसस्थानमैं तौ भ्रमज्ञानकै अनंगीकारसैंभी निर्वाह

हुआ, परंतु सकल अनुमितिमैं हेतुके असंबंधज्ञानाभावकूं कारण मानिकैं शुक्तिमैं रजतत्वके असंबंधज्ञानाभावतैं इष्टसाधनत्वकी भ्रमरूप अनुमिति सिद्ध हुई. इसरीतिसैं उभयतःपाशारज्जुन्यायतैं अख्यातिवादीके मतमैं भ्रम सिद्ध होवै है.

और भी अख्यातिवादमैं दोष हैः—जहां रंग रजत धरे होवैं तिनका "इमे रजते" ऐसा ज्ञान होवै; यह ज्ञान अन्यमतनकी रीतिसैं तौ रंग अंशमैं भ्रम है औ रजतअंशमैं प्रमा है; औ रंगमैं तथा रजतमैं तथा रजतत्व धर्मकूं विषय करै है, यातैं रंगअंशमैं रजतत्वविशिष्ट ज्ञान है; औ अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान तौ है नहीं. उक्त ज्ञानभी सर्वअंशमैं यथार्थ है, परंतु रजतअंशमैं तौ रजतत्वसंग्रह है. औ रंगअंशका इदंरूपतैं ज्ञान है तामैं रजतत्व असंबंधका अग्रह है; इसरीतिसैं भेदकल्पन अनुभवविरुद्ध है. काहेतैं ? रंग औ रजतका "इमे रजते" इसरीतिसैं एकरूप उल्लेख होवै है, तामैं उक्तभेदकथनकी रीतिसैं विलक्षण उल्लेख हुया चाहिये, औ रंग अंशमैं रजतत्वका संबंधग्रह तौ भ्रमके अनंगीकारतैं संभवै नहीं; रजतअंशमैंभी रजतत्वके असंबंधका अग्रह मानै तौ संभवै है.काहेतैं ? रजतमैं रजतत्वके असम्बंधका ग्रह नहीं है; किंतु सम्बंधका ग्रह है यातैं एकरूप उल्लेखभी संभवै है, परंतु जहां प्रवृत्तिका विषय अभिमुख होवै तहां संसर्गविशिष्ट ज्ञानसैं प्रवृत्ति होवै है यह पूर्व नियम कह्या है, ताका त्याग होवैगा. औ जो ऐसे कहै जहां प्रवृत्तिका विषय इष्टपदार्थही अभिमुख होवै अनिष्ट पदार्थ अभिमुख होवै नहीं, तहां संसर्गविशिष्टका ज्ञान होवै है. जैसे केवल रजतका "इदं रजतम्" यह ज्ञान रजतत्ववि. शिष्टका ज्ञान है. औ जहां इष्ट रजत अनिष्ट रंग दोनूं अभिमुख होवैंऔ अनिष्ट पदार्थकाभी इष्टकी नाईं इदमाकार ज्ञान होवै तहां इष्टपदार्थमैं भी रजतत्वविशिष्ट ज्ञान होवै नहीं, किंतु रजतत्वके असंबंधज्ञानका अभाव होवै है. यह माननेमैं "इमे रजते" इसरीतिसैं समान उल्लेख संभवै है.

रजत औ रंगका इदमाकार सामान्य ज्ञान है. तैसें रंगमैं रजतत्वका असंबंध तौ है परन्तु असंबंधका दोषतैं ज्ञान नहीं, यातैं रंगमैं रजतत्वके असंबंध ज्ञानका अभाव है; औ रजतमैं रजतत्वका असम्बन्ध नहीं; यातैं असंबन्ध-ज्ञानका अभाव है. यातैं एकरस उल्लेख संभवै है, परन्तु उक्तरीतिसैं रजत-अंशमैंभी निष्फल प्रवृत्ति हुई चाहिये, यातैं उक्त स्थलमैं रजतअंशमैं रज-तत्वविशिष्टका ज्ञान है. काहेतैं ? अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान तौ है नहीं जासैं निष्फल प्रवृत्ति होवै; किंतु इष्टपदार्थके भेदके ज्ञानतैं जो प्रवृत्ति होवै सो निष्फल होवै है; औ विशिष्टज्ञानतैं सफल प्रवृत्ति होवै है, यातैं रंग रजत पुरोवर्ति होवैं औ "इमे रजते" ऐसा ज्ञान होवै, तहां रंग रजतका इदंरूपसैं तौ ज्ञान सम है, परन्तु रजतका इदंमंशमैं रजतत्व-विशिष्ट ज्ञान है; औ रंगके इदंमंशमैं रजतत्वके संबन्धका अग्रह है, अथवा रजतका भेदाग्रह है. जहां रजतत्वका असंबंध है तहां रजतका भेद है, यातैं रजतत्वके असंबंधका अग्रह औ रजतभेदका अग्रह कहनेमैं अर्थभेद नहीं. इसरीतिसैं अख्यातिवादमैं " इमे रजते" या स्थानमैं समान उल्लेख संभवै नहीं, यातैं अख्यातिवाद असंगत है.

भ्रमज्ञानवादीके मतमैं उक्तदोषका असंभव ॥ ६८ ॥

औ जो भ्रमज्ञानकूं मानैं तिनके मतमैं दोष कह्याः—जो भ्रमज्ञानभी प्रसिद्ध होवै तौ सर्वज्ञानोंमैं भ्रमत्वसंदेहतैं निष्कंप प्रवृत्ति नहीं होवैगी, सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? अख्यातिवादीके मतमैं भ्रमज्ञान तौ नहीं है, सारे ज्ञान यथार्थ है परंतु ज्ञानसैं प्रवृत्ति तौ कहूं सफल होवै है, कहूं निष्फल होवै है यातैं प्रवृत्तिमैं सफलता निष्फलताकी संपादक तौ ज्ञानोंमैं विलक्षणता अख्यातिवादीनेभी मानी है. जहां संसर्गविशिष्ट ज्ञानसैं प्रवृत्ति होवै सो सफल होवै है, यातैं सफल प्रवृत्तिका जनक संसर्गविशिष्ट ज्ञान प्रमा है. अगृहीत भेदज्ञानद्वयसैं निष्फल प्रवृत्ति होवै है. निष्फल प्रवृत्तिके जनक जो ज्ञान होवैं हैं सो अप्रमा है, यद्यपि विषयके भावाभावतैं ज्ञानोंमैं

प्रमात्व अप्रमात्व नहीं है, तथापि प्रवृत्तिकी विलक्षणताके हेतु प्रमात्व अप्रमात्व तौ अख्यातिवादीकूं इष्ट है औ अप्रमात्व संज्ञातैंभी अख्यातिवादीका विद्वेष होवै तौभी अगृहीत भेदज्ञानद्वयमैं सफल प्रवृत्तिजनक ज्ञानतैं विलक्षणता तौ अनुभवसिद्ध है औ अख्यातिवादीनैं मानी है, यातैं व्यवहार भेदवास्तै संज्ञांतर करणीय है, यातैं प्रसिद्ध संज्ञासैं ही व्यवहार करना योग्य है. इसरीतिसैं भ्रमज्ञानके अनंगीकारमैं भी भ्रमके स्थानमैं निष्फल प्रवृत्तिके जनक जो अगृहीत भेद यथार्थ ज्ञान होवै और सफलप्रवृत्तिका जनक रजतमैं रजतत्वविशिष्ट ज्ञान होवै तिनमैं ज्ञानत्वरूप समानधर्म देखिकै यह संदेह संभवै है. जैसैं शुक्तिमैं अगृहीत भेद दो ज्ञान हैं तिनका भेद प्रतीत नहीं होवैहै. तैसैं यह ज्ञानभी अगृहीतभेदज्ञानद्वयरूप हैं, अथवा भेदरहित एक है. जो अगृहीतभेदज्ञानद्वयरूप होवैगा तौ रजतका लाभ प्रवृत्तिसैं नहीं होवैगा; या संदेहतैं अख्यातिवादमैंभी निष्कंपप्रवृत्ति संभवै नहीं, यातैं निष्कंपप्रवृत्तिका असंभव दोनूं मतमैं समान है, इसरीतिसैं अख्यातिवादभी असंगत हैं.

प्रमात्व अप्रमात्वके स्वरूप उत्पत्ति और ज्ञानका प्रकार, प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप ॥ ६९ ॥

अनिर्वचनीयख्यातिही निर्दोष है:—सत्ख्याति आदिक पंचविधवादका विस्तारसैं खंडन विवरण आदिक ग्रंथनमैं है इहां रीतिमात्र जनाई है. अख्यातिवादीनैं सिद्धांतमतमैं निष्कंप प्रवृत्तिका असंभव दोष कह्या; तिस दोषका अख्यातिवादमैं भी संभव कह्या औ स्वमतमैं उद्धार नहीं कऱ्या ताका यह उद्धार है:—जिस पदार्थका जो ज्ञान होवै ता ज्ञानमैं अप्रमात्वनिश्चय होवै तौ प्रवृत्ति होवै नहीं. अप्रमात्वका संदेह होवै तौ सकंप प्रवृत्ति होवै है. प्रमात्वका निश्चय होवै तौ निष्कंप प्रवृत्ति होवै है; इसवास्तै प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप औ तिनकी उत्पत्ति औ तिनके ज्ञानका प्रकार कहैं हैं. यद्यपि प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप पूर्व कह्या है. स्मृतिसैं भिन्न जो अबाधित

अर्थगोचर ज्ञान सो प्रमा है; तासैं भिन्न ज्ञान अप्रमा है; या कहनेतैं यह जाना जावै है. स्मृतिभिन्न अबाधित अर्थ गोचर ज्ञानका धर्म प्रमात्व है, तासैं अन्यज्ञानका धर्म अप्रमात्व है, तथापि पूर्वउक्त पारिभाषिक प्रमात्व स्मृतिमैं नहीं है औ प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमैंभी मानना चाहिये, काहेतैं ? स्मृतिज्ञानसैंभी पुरुषकी प्रवृत्ति होवै है. जिस स्थानमैं स्थित इष्ट पदार्थकी स्मृति होवै तिसस्थानमैं पुरुषकी प्रवृत्ति होवै है. स्मृतिज्ञानमैं प्रमात्व निश्चय होवै तौ निष्कंप प्रवृत्ति होवै है, यातैं प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमैंभी है, यातैं उक्त स्वरूप प्रमात्वसैं अन्यविध प्रमात्वका स्वरूप कह्या चाहिये. सकल शास्त्रनमैं स्मृतिसैं भिन्न ज्ञानमैं अनुभव व्यवहार करैं हैं, संस्कारजन्यज्ञानमैं स्मृतिव्यवहार करैं हैं, यथार्थअनुभवमैं प्रमा व्यवहार करैं हैं औ तासैं भिन्नमैं अप्रमा व्यवहार करैं हैं. इसरीतिसैं ज्ञानत्व धर्म तौ सकल ज्ञानमैं होनेतैं व्यापक है औ अनुभवत्व स्मृतित्व ज्ञानत्वके व्याप्य हैं परस्पर विरोधी हैं, तैसैं प्रमात्व धर्मभी अनुभवत्वका व्याप्य है. काहेतैं ? अनुभवत्व तौ यथार्थानुभव औ अयथार्थानुभवमैं रहै है. औ प्रमात्वधर्म यथार्थानुभवमैंही रहे हैं यातैं अनुभवत्वका व्याप्य प्रमात्व है, तैसैं यथार्थत्वकाभी प्रमात्व व्याप्य है. काहेतैं ? यथार्थत्व तौ सत्यपदार्थकी स्मृतिमैं भी रहै है. औ स्मृतिमैं प्रमात्व रहै नहीं, यातैं यथार्थत्वकाभी प्रमात्व व्याप्य है यह शास्त्रकारनकी परिभाषा है. याके अनुसार प्रमाका स्मृतिसैं भिन्न अबाधित अर्थगोचर ज्ञान प्रमा कहिये है; यह लक्षण कह्या है जिस प्रमात्वके ज्ञानतैं पुरुषकी निष्कंप-प्रवृत्ति होवै ऐसा प्रमात्वस्मृतिमैंभी मानना चाहिये; यातैं इस प्रसंगमैं यथार्थत्वका व्याप्य प्रमात्व नहीं; किंतु यथार्थत्वका नामही प्रमात्व है. पूर्व उक्त पारिभाषिक प्रमात्व तौ स्मृतिमैं नहीं है यथार्थत्व है यातैं पूर्व उक्त प्रमात्व यथार्थत्वरूप नहीं, किंतु तासैं भिन्न है औ तासैं न्यूनदेशवृत्ति होनेतैं यथार्थत्वका व्याप्य है, औ प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व विचारणीय है, सो स्मृति साधारण है, यातैं यथार्थत्वसैं न्यूनदेशवृत्ति नहीं; किंतु यथार्थत्व-

रूपही प्रमात्व विचारणीय है. औ जो स्मृतिज्ञानमैं प्रमाव्यवहारसैं सर्वथा विद्वेष होवै तौ प्रमात्वज्ञानसैं निष्कंप प्रवृत्ति होवै है, इसवाक्यकूं त्यागिकै यथार्थत्वज्ञानसैं निष्कंपप्रवृत्ति होवै है, ऐसा वाक्य कहै; इसरीतिसैं या प्रसंगमैं प्रमात्वका एकही अर्थ है; यातैं या प्रसंगमैं यथार्थत्वधर्मका प्रमात्वशब्दसैं व्यावहार है.

न्यायवैशेषिकमतमैं ज्ञानकी उत्पादकसामग्रीतैं बाह्यसामग्रीतैं प्रमात्व अप्रमात्वकी उत्पत्ति. (परतः प्रामाण्यवाद औ परतः अप्रामाण्यवाद.) ॥ ७० ॥

न्यायशास्त्रके मतमैं ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं औ ज्ञानकी ज्ञापकसामग्रीसैं प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं; याकूं **परतः प्रामाण्यवाद** कहैं हैं. या प्रसंगमैं प्रमात्वका नाम प्रामाण्य है. परतः कहिये अन्यतैं प्रामाण्यकी उत्पत्ति होवै है. अन्यतैंही प्रामाण्यका ज्ञान होवै है, ज्ञानकी सामग्रीतैं भिन्न सामग्री परशब्दका अर्थ है, यातैं यह निष्कर्ष हुयाः—ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी सामग्री भिन्न हैं. ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्री तौ इंद्रिय अनुमानादिक पूर्व कही है, तासैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै तौ सकल ज्ञान प्रमा हुये चाहिये. अप्रमाज्ञानका लोप होवैगा, यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्रीसैं अधिक सामग्रीसैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है. जहां अधिक सामग्री नहीं है तहां ज्ञानमैं प्रमात्वधर्म होवै नहीं, यातैं भ्रमज्ञानका लोप नहीं सो अधिक सामग्री गुण है. जहां गुणसहित इंद्रिय अनुमानादिकनतैं ज्ञान होवै तहां प्रमा होवै है, गुणरहित इंद्रियानुमानादिकनतैं ज्ञान होवै है प्रमा नहीं. प्रत्यक्ष प्रमाकी उत्पत्तिमैं विषयके अधिक देशमैं इंद्रियका संयोग गुण है औ साध्यके व्याप्यहेतुका साध्यवत्पक्षमैं ज्ञान अनुमितिप्रमाकी उत्पत्तिमैं गुण है. जहां व्यभिचारी हेतुका पक्षमैं ज्ञान होवै, तहां अनुमिति ज्ञानकी सामग्री पक्षमैं हेतुका ज्ञान तौ है, परंतु व्याप्यहेतुका ज्ञानरूप गुण

नहीं; यातैं अनुमिति प्रमा होवै नहीं इस रीतिसैं ज्ञानवृत्ति प्रमात्व धर्मकी उत्पत्तिमैं ज्ञानकी जनक सामग्रीतैं अन्य गुणकी अपेक्षा होनेतैं परतः प्रामाण्यकी उत्पत्ति होवै है..

प्रमात्वकी नाईं ज्ञानवृत्ति अप्रमात्वकीभी परतः उत्पत्ति होवैहै. काहेतैं ? भ्रमज्ञान दोषजन्य होवै है; यह वार्ता प्रसिद्ध है. औ प्रमाज्ञानमैं दोष हेतु नहीं, यातैं ज्ञानकी सामग्रीतैं दोष बाह्य है सो **दोष अनंतप्रकारका** है. इसरीतिसैं ज्ञानसामग्रीतैं दोष पर है, भिन्नकूं पर कहैं हैं तासैं अप्रमाकी उत्पत्ति होनेतैं परतः अप्रामाण्यकी उत्पत्ति होवै है. अप्रमात्वकूं **अप्रामाण्य** कहैं हैं. इसरीतिसैं प्रमात्वकी उत्पत्ति औ अप्रमात्वकी उत्पत्ति परतः होवै है

ज्ञान औ ज्ञानत्वकी सामग्रीतैं अन्यकारणतैं प्रमात्वके ज्ञानकी उत्पत्ति (परतःप्रामाण्यग्रहवाद) ॥ ७१ ॥

तैसैं ज्ञानके ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं; किंतु ज्ञानका औ ज्ञानत्वका जा सामग्रीतैं ज्ञान होवै तामैं अन्यकारणतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै है. जैसैं प्रत्यक्षादिक प्रमाणतैं घटादिकनका ज्ञान होवै तैसैं मन-संयुक्त-समवायसंबंधतैं घटादिज्ञानका ज्ञान होवै है. नेत्रादिप्रमाणतैं घटका ज्ञान होवै ताका "अयं घटः" ऐसा आकार है. औ मनोरूप प्रमाणतैं घटज्ञानका प्रत्यक्ष होवै ताका "घटमहं जानामि" ऐसा आकार है. "घटमहं जानामि" या मानस ज्ञानका विषय घटज्ञान है और घटभी विषय है. काहेतैं ? ज्ञानका ज्ञान **अनुव्यवसाय** कहिये है. घटादिकनका ज्ञान **व्यवसाय** कहिये है. **अनुव्यवसायज्ञानका** यह स्वभाव हैं. व्यवसायके विषयकूं त्यागै नहीं किंतु विषयसहित व्यवसायकूं प्रकाशै है; इसी वास्तै ज्ञानके ज्ञानकी अनुव्यवसाय संज्ञा है. व्यवसायके अनुसारीकूं **अनुव्यवसाय** कहैं हैं. जैसैं व्यवसायके घटादिक विषय हैं तैसैं अनुव्यवसायकेभी घटादिक विषय हैं; यातैं व्यवसायके अनुसार अनुव्यवसाय है औ अनुव्यवसायज्ञानका आत्माभी विषय है. काहेतैं ? **यह नियम** है. ज्ञान इच्छा कृति सुख दुःख द्वेष ये

आत्माके विशेष गुण हैं. इनमें किसी एक गुणकी प्रतीति होवै तौ आत्माकी प्रतीति होवै. किसीकी प्रतीति नहीं होवै तौ आत्माकी प्रतीति होवैनहीं यातैं सकल विशेषगुणनकूं त्यागिकै आत्माकी प्रतीति होवै नहीं तैसैं आत्माकूं त्यागिक केवल ज्ञानादिकनकी प्रतीति होवै नहीं. यातैं घटके ज्ञानका ज्ञान होवै तब आत्माकाभी ज्ञान होवै है, यातैं व्यवसायज्ञानकूं औ ताके विषय घटकूं तैसैं व्यवसायके आश्रय आत्माकूं "घटमहं जानामि" यहज्ञान प्रकाशै है; इसीवास्तै त्रिपुटीगोचर ज्ञानकूं **अनुव्यवसाय** कहैं हैं. अनुव्यवसाय ज्ञानका करण मन है, यातैं सकल विषयनतैं मनका संबंध कह्या चाहिये. जैसैं घटज्ञान आत्मा विषय है. तैसैं घटत्व ज्ञानत्व आत्मत्वभी घटज्ञानके ज्ञानके विषय है. घटज्ञानसैं तौ मनका स्वसंयुक्त समवायसंबंध है. औ ज्ञानत्वसैं स्वसंयुक्त समवेतसमवाय संबंध है. आत्मासैं स्वसंयोगसंबंध है, आत्मत्वसैं स्वसंयुक्त समवायसंबंध है; औ घटसैं तौ मनका संबंध प्रत्यक्षका हेतु संभवै नहीं. काहेतैं ? बाह्यपदार्थका ज्ञान स्वतंत्रमनसैं होवै नहीं. यातैं घटसैं मनका अलौकिक संबंध कह्या चाहिये. लौकिक संबंधसैं बाह्यपदार्थका ज्ञान मनमैं होवै नहीं. अलौकिक संबंधसैं बाह्यपदार्थकाभी मनसैं ज्ञान होवै है, सो अलौकिकसंबंध ज्ञानलक्षण है. अनुव्यवसायज्ञानका विषय जो व्यवसायज्ञान सोई मनका घटसैं संबंध है ताका यह स्वरूप है. स्वसंयुक्त समवेतज्ञान अथवा स्वसंयुक्त समवेतज्ञानविषयता घटसैं मनका संबंध है. ज्ञानलक्षणवाक्यमैं लक्षणशब्दका स्वरूप अर्थ करैं तब तौ आद्यसंबंध है. लक्षणशब्दका ज्ञापक अर्थ करैं तब द्वितीय संबंध है. स्वशब्दका अर्थ मन है तासैं संयुक्त आत्मतामैं समवेतव्यवसायज्ञान है सो घटमैं रहै है; यातैं उक्त ज्ञानही मनका घटसैं संबंध होनेतैं घटका मानसज्ञान होवै है औ द्वितीय पक्षमैं उक्तज्ञानकी विषयतारूप संबंध घटमैं है. व्यवसायज्ञानके विषय घटघटत्व दोनूं हैं, यातैं व्यवसायरूप संबंधसैं अनुव्यवसाय ज्ञानके दोनूं विषय हैं. इसरीतिसैं घटज्ञानादिक अनुव्यवसायज्ञानके विषय हैं; यातैं ज्ञानका ज्ञान **अनुव्यवसाय** है. ताकी सामग्री मनःसंयोगादि-

रूप हैं; तातैं ज्ञानका औ ज्ञानत्वका ज्ञान होवै है, प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं; किंतु ज्ञान होयकै पुरुषकी सफल प्रवृत्ति होवै तातैं उत्तरकालमैं प्रवृत्तिजनक ज्ञानमैं प्रमात्वका अनुमिति ज्ञान होवै है. जैसैं तडागमैं जलके प्रत्यक्ष ज्ञानतैं जलार्थीकी प्रवृत्ति हुये जलका लाभ होवै तब पुरुषकूं ऐसा अनुमान होवैहै, "इदं जलज्ञानं प्रमा सफलप्रवृत्तिजनकत्वात्।यत्र यत्र सफलप्रवृत्तिजनकत्वं तत्र तत्र प्रमात्वम् । यथा निर्णीतप्रमायाम्" इहां वर्तमान जलज्ञान पक्ष है. यद्यपि अनुमानकालमैं जलज्ञान अतीत है तथापि वर्तमानके समीप भूत भविष्यत्भी वर्तमानही कहियै हैं; यातैं वर्तमान जलज्ञानही पक्ष कह्या अतीत नहीं कह्या. प्रमात्व साध्य है. आगे हेतुदृष्टांत स्पष्ट हैं. **व्यतिरेक दृष्टांत** कहना होवै तौ "यत्र यत्र सफलवृत्तिजनकत्वं नास्ति तत्र तत्र प्रमात्वं नास्ति।यथा शुक्तौ रजतज्ञानम्" इसरीतिसैं वाक्य कहै; या अनुमानतैं जलज्ञानमैं प्रमात्वका निश्चय होवै है. इसरीतिसैं सकल ज्ञानोंमें सफल प्रवृत्तिसैं प्रमात्वकी अनुमिति होवै है. जलज्ञानग्राहक सामग्री "जलमहं जानामि" या अनुव्यवसायकी सामग्री है; प्रमात्वग्राहक सामग्री उक्त अनुमान है. सो अनुव्यवसायकी सामग्रीतैं भिन्न होनेतैं पर है; यातैं परतः प्रमात्वग्रह होवै है. यद्यपि न्यायमतमैं अनुमितिका विषय पक्षभी होवै है, औ उक्त अनुमितिमैं जलज्ञान पक्ष है यातैं प्रमात्वका अनुमानभी ज्ञानग्राहक सामग्री है, तैसैं **अनुव्यवसाय भी दो प्रकारका होवै है.** एक तौ "जलमहं जानामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. जहां प्रमात्व निश्चयतैं उत्तर अनुव्यवसाय होवै तहां "जलं प्रमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, यातैं उक्त अनुमानरूप ज्ञानग्राहकसामग्रीतैं प्रमात्वका निश्चय हुया औ द्वितीय अनुव्यवसायकी सामग्रीभी ज्ञानग्राहक है; तातैं प्रमात्वका निश्चय हुया. इस रीतिसैं सिद्धांतकोटि स्वतःप्रामाण्यग्रहकी प्राप्ति हुई; तथापि जो जो ज्ञानग्राहक सामग्री सो सारी प्रमात्वकी ग्राहक है यह सिद्धांतकोटि है; ज्ञानग्राहक सकल सामग्रीमैं "जलमहं जानामि"

या अनुव्यवसायकी सामग्रीभी अंतर्भूत है, तातैं प्रमात्वका ग्रह होवै नहीं, यातैं सिद्धांत कोटिका अंगीकार नहीं.

इसरीतिस घटादिकनके ज्ञानतैं घटादिकनका प्रकाश होवै है. घटादिकनके प्रकाश हुयेभी घटादिकनक ज्ञानका औ ज्ञानके आश्रय आत्माका प्रकाश होवै नहीं. जिसकालमैं अनुव्यवसायज्ञान होवै तब घटादिक विषयसहित औ आत्मसहित घटादिज्ञान प्रकाश होवै है, परंतु अनुव्यवसायज्ञानतैं व्यवसायकी त्रिपुटीका प्रकाश होवै है अनुव्यवसायका प्रकाश होवै नहीं. जब अनुव्यवसायगोचर अनुव्यवसाय होवै तब प्रथम अनुव्यवसायका प्रकाश होवै है, द्वितीयअनुव्यवसाय अप्रकाशित ही रहै है. प्रथम अनुव्यवसाय तौ व्यवसायगोचर है,अनुव्यवसायगोचर द्वितीय अनुव्यवसाय है. "घटज्ञानमहं जानामि" यह द्वितीय अनुव्यवसायका स्वरूप है. द्वितीय अनुव्यवसायका व्यवहार इष्ट होवै तौ "घटज्ञानस्य ज्ञानमहं जानामि" ऐसा तृतीय अनुव्यवसाय होवै है, परंतु न्यायमतमैं घटज्ञानसैं घटका प्रकाश होयकै घटका व्यवहार सिद्ध होवै है. घटव्यवहारमैं घटज्ञानके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं. घटज्ञानका व्यवहार इष्ट होवै तब अनुव्यवसायतैं घटज्ञानका प्रकाश होयक घटज्ञानका व्यवहार होवै है; अनुव्यवसायकै प्रकाशकी अपेक्षा नहीं. इसरीतिसैं जाका व्यवहार इष्ट होवै ताके ज्ञानकी अपेक्षा है. विषय प्रकाशक जो ज्ञान सो प्रकाशित होवै अथवा अप्रकाशित होवै ताके प्रकाशसैं उपयोग नहीं. जो प्रकाशितज्ञानसैं ही विषयका प्रकाश होवै तौ न्यायमतमैं अनवस्था दोष होवै. काहेतैं ? जा ज्ञानतैं विषय प्रकाश होवै सो ज्ञान स्वप्रकाश तौ है नहीं; ताका प्रकाशक ज्ञानांतर होवै तब ज्ञानतैं विषयका प्रकाश होवै, तिस प्रथम ज्ञानका प्रकाशक ज्ञानांतरका अन्य ज्ञान चाहिये, तृतीयका प्रकाशक चतुर्थज्ञान चाहिये; इसरीतिसैं अनवस्था दोष होवै परस्पर सापेक्ष प्रकाश मानै तौ अन्योन्याश्रय चक्रिका दोष होवै. यातैं विषयके प्रकाशमैं अपने प्रकाशकी

ज्ञान अपेक्षा करै नहीं, किंतु स्वव्यवहारमैं प्रकाशकी अपेक्षा है, जहां घटादिक विषयका व्यवहार इष्ट होवै तहां घटज्ञानकी घटके प्रकाशवास्तै अपेक्षा है. अप्रकाशितज्ञानसैंही घटका व्यवहार होवै है. जैसैं जब घटका ज्ञान नहीं होवै है तिसकालमैं भी जलधारणादि प्रयोजनकी सिद्धि घट करै है,स्वकार्यमैं प्रकाशकी अपेक्षा घट करै नहीं. तस ज्ञानका कार्य विषयका प्रकाश है. ता विषयप्रकाशरूप कार्यमैं अपने प्रकाशकी अपेक्षा ज्ञान करै नहीं. घटकी नाईं स्वव्यवहारमैं प्रकाशवास्तै ज्ञानकी अपेक्षा ज्ञान करै है. जा ज्ञानका व्यवहार इष्ट होवै तिस ज्ञानका ज्ञान होवै है. ज्ञानज्ञानके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं इच्छाके विषयकूं इष्ट कहैं हैं; यातैं न्यायमतमैं अनवस्था दोष कहैं हैं, सो तिनका अविवेकमूलक प्रलाप है. इसरीतिसैं न्यायमतमैं कोई ज्ञान स्वप्रकाश नहीं. यातैं ज्ञानके ज्ञानकी जासैं उत्पत्ति होवै सो ज्ञानग्राहक सामग्री कहिये है. अनुव्यवसाय ज्ञानकी सामग्री मनःसंयोगादिक औ ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंध है, सो अनुव्यवसायभेदसैं नाना है.तैसैं"जलज्ञानं प्रमा"यह अनुमितिभी ज्ञानका ज्ञान है,ताका जनक अनुमान है, सोभी ज्ञानग्राहक सामग्री है; औ तासैं जलज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान भी होवै है,औ"जलं प्रमिनोमि"इस अनुव्यसायकी सामग्रीभी ज्ञानग्राहक सामग्री है; औ तास जलज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान होवै है,परंतु"जलमहं जानामि" यह अनुव्यवसायभी जलज्ञानका ज्ञान है औ जलज्ञानके प्रमात्वकूं प्रकाश नहीं, यातैं ज्ञानग्राहक सामग्री उक्त अनुव्यवसाय सामग्रीसैं जलज्ञानके प्रमात्वका अग्रहण होनेतैं जलज्ञानग्राहक सकल सामग्रीतैं जलज्ञानके प्रमात्वका ग्रहण नहीं होनेतैं स्वतःप्रामाण्यग्रह होवै नहीं; किंतु परतः प्रामाण्यग्रह होवै है. जो जो ज्ञानग्राहक सामग्री तिन सर्वतैं प्रमात्वग्रह होवै, याकूं स्वतः प्रामाण्यग्रह कहैं हैं. या पक्षमैं प्रमात्वधर्मकूं त्यागिक किसी ज्ञानका ज्ञान होवै नहीं प्रमात्व ज्ञानत्व ये उभयधर्मविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवैहै;केवल ज्ञानत्वधर्मवि-

शिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवै नहीं. औ परतः प्रामाण्यग्रहवादमैं प्रथम अनुव्यवसायतैं प्रमात्वकूं त्यागिकै ज्ञानत्वविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवै है, फेरि अन्य अनुव्यवसायतैं वा उक्त प्रकारके अनुमानतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै है.

मीमांसक औ सिद्धांतसंमत स्वतःप्रामाण्यवादमैं दोष ॥ ७२ ॥

मीमांसकमतमैं औ सिद्धांतमतमैं स्वतःप्रामाण्यग्रहका अंगीकार है, न्यायवैशेषिक मतमैं परतःप्रामाण्यग्रहका अंगीकार है औ स्वतःप्रामाण्यग्रहमैं यह दोष कह्या है.जहां एक पदार्थका अनेकबार ज्ञान होयकै प्रवृत्ति हुई होवै तहां तौ ज्ञानके प्रमात्वमैं कहूं संदेह होवै नहीं. काहेतैं ? अनेकबार सफल प्रवृत्ति होयकै प्रमात्वनिश्चय होय जावै है, सो प्रमात्वनिश्चय प्रमात्वसंशयका विरोधी है,परंतु जा पदार्थका अपूर्व ज्ञान होवै ताके ज्ञानमैं प्रमात्वका संदेह होवै है, सो नहीं हुया चाहिये. काहेतैं ? अद्वैतमतमैं औ प्रभाकरके मतमैं तौ ज्ञान स्वप्रकाश है; यातैं ज्ञान कदीभी अगृहीत होवै नहीं गृहीतही होवै है, यातैं प्रमात्वभी साथिही गृहीत होवै तौ निर्णीत पदार्थका संदेह होवै नहीं, यातैं प्रमात्वका संदेह संभवै नहीं. सिद्धांतपक्षमैं तौ प्रकाशरूप ज्ञान है, प्रकाशपदार्थका ज्ञानपदार्थसैं भेद नहीं.

प्रभाकरके मतमैं सारे ज्ञानतैं त्रिपुटीका प्रकाश ॥ ७३ ॥

औ प्रभाकरके मतमैं ज्ञानके विषयमैं प्रकाश होवै है. प्रकाशका हेतु ज्ञान है. जैसैं घटका ज्ञान होवै तब घट ज्ञानतैं घटका प्रकाश होवै. तैसैं घटका ज्ञान अपने स्वरूपका प्रकाश करै है.औ अपना आश्रय जो आत्मा ताका प्रकाश करै है, सारे ज्ञान त्रिपुटीकूं प्रकाशै है. ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयका समुदाय **त्रिपुटी** कहिये है. इसरीतिसैं प्रभाकरके मतमैं अपनैं स्वरूपकूंभी ज्ञान विषय करै है औ अपने प्रमात्वकूं विषय करै है.

मुरारिमिश्रका मत ॥ ७४ ॥

औ **मुरारिमिश्रके** मतमैं ज्ञानका प्रकाश अनुव्यवसायतैं होवै है.

औ तिस ज्ञानका प्रकाशक अनुमितिही प्रमात्वका प्रकाश मान्या है; यातैं अनुव्यवसायसैं उत्तरप्रमात्वका सन्देह नहीं हुया चाहिये.

भट्टका सिद्धांत ॥ ७५ ॥

तैसैं भट्टका यह सिद्धांत हैः—घटादिकनके ज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्षरूप होवै नहीं. काहेतैं? ज्ञानगुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं ज्ञानका ज्ञान अनुमितिरूप होवै है, मानसप्रत्यक्षरूप नहीं सो अनुमिति ज्ञान इसरीतिसैं होवै है इंद्रियविषयके संयोगतैं प्रत्यक्षज्ञान होवै अथवा अनुमिति ज्ञान होवै सकल ज्ञानतैं घटादिक विषयमैं ज्ञातता नाम धर्म उपजै है; इसीवास्तै ज्ञान हुयां पाछै "ज्ञातो घटः" ऐसा व्यवहार होवै है, ज्ञानसैं प्रथम जो घटइंद्रियका संयोग होवै, तासैं "अयं घटः" ऐसा प्रत्यक्ष होवै है, सो प्रत्यक्षज्ञान समवायसंबंधसैं ज्ञातामैं रहै है, विषयतासम्बंधसैं घटमैं रहै है. जहां विषयता सम्बंधसैं ज्ञान होवै तहां समवायसम्बंधसैं ज्ञातता उपजै है. इसरीतिसैं घटके ज्ञानतैं घटमैं ज्ञातता उपजै है. तिस ज्ञातताका उपादानकारण घट है, निमित्तकारण ज्ञान है. असमवायिकारणपरिभाषा भट्टके मतमैं है नहीं, उपादान कारणसैं भिन्नकूं **निमित्तकारण** ही कहैं हैं. इसरीतिसैं ज्ञानजन्य ज्ञातता धर्म घटमैं होवै है.प्रथम तौ "अयं घटः" इसरीतिसैं घटका प्रकाशक प्रत्यक्ष हुया है. ता प्रत्यक्षसैं घटमैं ज्ञातता धर्म उपज्या तब इंद्रियसंयोगतैं तिसी घटका "ज्ञातो घटः" इसरीतिसैं प्रत्यक्ष होवै है. इसरीतिसैं ज्ञानजन्य ज्ञातताका बाह्य इंद्रियसैं प्रत्यक्ष होवै है. औ बाह्य पदार्थके ज्ञानका बाह्य इंद्रियसैं तौ किसीके मतमैं प्रत्यक्ष होवै नहीं. न्यायादिकनके मतमैं ज्ञानका मानसप्रत्यक्ष होवै है. भट्टके मतमैं घटादिकनके ज्ञानका मानसप्रत्यक्षभी होवै नहीं, परंतु घटादिज्ञानका अनुमानजन्य अनुमितिज्ञान होवै है. अनुमानका यह आकार है "अयं घटः विषयतासंबंधेन ज्ञानवान्समवायेन ज्ञाततावत्त्वात् । यत्रयत्र समवायेन ज्ञातता तत्र तत्र विषयतासंबंधेन ज्ञानम्" या स्थानमैं पुरोवर्ति घट पक्ष है, विषयतासंबंधसैं

ज्ञान साध्य है, आगे हेतु दृष्टांत है. अन्य ग्रंथनमैं प्रकारांतरसैं अनुमान लिख्या है सो कठिन है. औ भट्टके मतमैं अनुमानसैं ज्ञान जानिये है यह सुगमरीति दिखाई है.इसरीतिसैं ज्ञानग्राहकसामग्री भट्टके मतमैं अनुमानहै.

न्याय वैशेषिक मतका निष्कर्ष ॥ ७६ ॥

या अनुमानतैं ही घटज्ञानके प्रमात्वकाभी ज्ञान होवै है. यातैं ज्ञानकी अनुमिति हुये पाछे प्रमात्वका सन्देह भट्टमतमैं नहीं हुया चाहिये; यातैं ज्ञानके सकल ज्ञानतैं प्रमात्वका निश्चय होवै नहीं; किंतु सफल प्रवृत्ति हुये पाछे ज्ञानके प्रमात्वका निश्चय होवै है. यह न्यायका औ वैशेषिकका मत है. याकूं परतः **प्रामाण्यवाद** कहैं हैं. ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं; अधिक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है तैसैं अधिक सामग्रीतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै है. प्रमात्वकी नांई अप्रमात्वकी परतः उत्पत्ति होवै है औ परतः ज्ञान होवै है, जो ज्ञानकी जनक सामग्रीतैं ज्ञानके अप्रमात्व धर्मकी उत्पत्ति होवै तौ सकल ज्ञान अप्रमा हुये चाहियें; यातैं ज्ञानकी जनक सामग्रीसैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं, ज्ञानके जनक इंद्रिय अनुमानादिक हैं. तिनमैं दोषका सहकार होवै तौ अप्रमात्वसहित ज्ञानकी उत्पत्ति होवै ऐसैं दोष नानाविध हैं. ।

प्रत्यक्षभ्रम होवै तहां तौ नेत्रादिगत प्रमाण दोषकी नांई विषयगत सादृश्य दोषभी हेतुहै, कहूं प्रत्यक्षभ्रममैं विषयगत सादृश्य दोषका व्यभिचारभी है. परंतु सदृशमैं ही बहुत भ्रम होवै है, यातैं बहुत स्थानमैं तौ सादृश्य दोष भ्रमका हेतु है, जहां विसदृशमैं भ्रम अनुभवसिद्ध होवै तहां सादृश्य दोष भ्रमका कारण नहीं,एक रूपसैं दोष हेतु नहीं;किंतु जिसके हुयां जो भ्रम होवै तिस दोषकूं तिसभ्रमकी कारणता है. परोक्षभ्रमज्ञानमैं सादृश्यकी अपेक्षा नहीं, यह अनुभवसिद्ध है, यातैं परोक्षज्ञानमैं विषयगत दोष हेतु नहीं किंतु अनुमितिभ्रमविषै अनुमान दोष हेतु है, व्याप्य हेतुका ज्ञान अनुमान

है, हेतुमैं व्यभिचारादिक दोष न्यायग्रंथनमैं प्रसिद्ध हैं. औ शाब्दभ्रम होवै तहां श्रोतामैं वाक्यतात्पर्यका अनवधारण दोष है, वक्तामैं विप्रलंभकतादिक दोष हैं, शब्दमैं अन्यथाबोधकत्वादिक दोष हैं, इसरीतिसैं अप्रमात्वके हेतुदोष अनुभवानुसारतैं जानने चाहियें.

या प्रसंगमैं प्रमात्वकी उत्पत्ति औ अप्रमात्वकी उत्पत्ति कही सो विरुद्ध प्रतीत होवै है. भूत भविष्यत् वर्तमान सकल प्रमामैं प्रमात्वधर्म एक है तैसैं सकल अप्रमामैं अप्रमात्वभी एक है. तिनकी उत्पत्ति कहना संभवै नहीं तथापि अपने कारणतैं ज्ञान उपजै तब कोई ज्ञानप्रमा होवै है कोई अप्रमा होवै है. प्रमात्वविशिष्ट प्रमा होवै है, अप्रमात्वविशिष्ट अप्रमा होवै है. इसरीतिसैं ज्ञानमैं प्रमात्व औ अप्रमात्व धर्मकी विलक्षणता ज्ञानकी जनक सामग्रीके अधीन है. कहूं ज्ञानकी ऐसी सामग्री है, जातैं प्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है; औ कहूं ऐसी सामग्री है; जातैं अप्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है, यातैं ऐसा मानना चाहिये, प्रमात्व धर्म तौ एक है, सकल प्रमामैं ताका संबंध है, परंतु प्रमात्वका संबंध सामग्रीके अधीन है; इसरीतिसैं ज्ञानमैं प्रमात्वकी प्रयोजक सामग्री होनेतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति कही है. तैसैं अप्रमात्वका प्रयोजक दोष है, यातैं दोषजन्य अप्रमात्व कहिये है, दोषजन्य कहनेका दोष प्रयोज्यमैं तात्पर्य है, औ तिनके ज्ञानकी तौ मुख्य उत्पत्ति संभवै है.

यद्यपि सिद्धांतमैं साक्षीभास्य प्रमात्व है; यातैं प्रमात्वके ज्ञानकीभी उत्पत्ति कहें साक्षीकी उत्पत्ति सिद्ध होवै है सो बनै नहीं तथापि वृत्तिमैं आरूढसाक्षी प्रमात्वादिकनकूं प्रकाशै है, यातैं वृत्तिभी ज्ञान कहिये है, ताकी उत्पत्ति संभवै है. यह वार्ता पूर्व कही है, तथापि उक्त अर्थके कथनतैं श्रोता अध्येताकूं बोध दृढ होवै है. शास्त्रीय अर्थके मंदसंस्कारवाले पुरुषकूं वारंवार कहनेतैं अनायासतैं बोध होवै है. यातैं इस प्रकरणमैं अनेक अर्थ वारंवार कहे हैं, पुनरुक्ति दोष नहीं. इस

अथवा नहीं हुया. जो घटका ज्ञान अज्ञात होवै तौ कदाचित् संदेहभी हुया चाहिये, यातैं ज्ञान अज्ञात होवै नहीं ज्ञानका प्रकाश अनुव्यवसाय होवै है; यह कथन असंगत है. औ जो ऐसैं कहैः—ज्ञानगोचरज्ञान नहीं होवै तौ "अयं घटः घटमहं जानामि" इसरीतिसैं ज्ञानमैं विलक्षणताप्रतीति नहीं हुई चाहिये. काहेतें? न्यायमतमैं तौ प्रथमज्ञानका विषय घट है, द्वितीयज्ञानका विषय घटज्ञान है, यातैं विषयभेदतैं ज्ञानोंकी विलक्षणता संभवै है औ स्वप्रकाश ज्ञानवादीके मतमैं ज्ञानका विषय ज्ञान होवै नहीं. दोनूं ज्ञानोंका विषय घट होनेतैं विषयभेदके अभावतैं विलक्षणप्रतीति नहीं हुई चाहिये, यह शंकाभी संभवै नहीं. जैसैं एकही घटका कदाचित् "अयं घटः" ऐसा ज्ञान होवै है, कदाचित् "अनित्यो घटः" ऐसा ज्ञान होवै है, तहां विषयके भेदविना विलक्षणज्ञान होवै है; परंतु प्रथमज्ञानमैं घटकी अनित्यता भासै नहीं. औ द्वितीय ज्ञानमैं घटकी अनित्यता भासै है. तैसैं "अयं घटः" या ज्ञानमैं घटकी ज्ञातता भासै नहीं. औ "घटमहं जानामि" या ज्ञानमैं घटकी ज्ञातता भासै है. ज्ञानजन्यप्रकटताकूं **ज्ञातता** कहैं हैं. द्वितीयज्ञानका विषय घटवृत्ति ज्ञातता है, घटका ज्ञान नहीं; इसीवास्तै घटज्ञानसैं उत्तरकालमैं कदाचित "घटमहं जानामि" ऐसा ज्ञान होवै है. कदाचित् "ज्ञातो घटः" ऐसा प्रत्यक्ष होवै है. "ज्ञातो घटः" या प्रत्यक्षका विषय घटकी ज्ञातता है. यह अर्थ भट्टकूं संमत है औ अनुभावानुसारी है, काहेतें? जैसैं "अनित्यो घटः" या कहनेतैं अनित्यपदार्थमैं विशेषण अनित्यत्वकी प्रतीति घटमैं सर्वकूं संमत है, तैसैं "ज्ञातो घटः" या कहनेतैं ज्ञातपदार्थमैं विशेषण ज्ञातत्वकी घटमैं प्रतीति सर्वानुभवसिद्ध है. "ज्ञातो घटः" इस ज्ञानके अवसरमैं "घटमहं जानामि" यह ज्ञान होवै है यातैं "घटमहं जानामि" यह ज्ञानभी घटकी ज्ञातताकूं विषय करैहै; इसरीतिसैं ज्ञानगोचरज्ञान नहीं मानैं तौभी "अयं घटः" "घटमहं जानामि" इसरीतिसैं विलक्षण ज्ञान संभवै है; यातैं अनुव्यवसायज्ञानका विषय ज्ञान है यह नैयायिकमत असंगत है.

मुरारिमिश्रके मतका खण्डन ॥ ७८ ॥

तैसैं मुरारिमिश्रका मतभी या प्रसंगमैं नैयायिकमततुल्य है; यातैं असंगत है. यद्यपि मुरारिमिश्रके मतमैं ज्ञानप्रकाशक अनुव्यवसायतैं ही प्रमात्वका प्रकाश होवै है इतना न्यायमतसैं विशेष है, तथापि यह विशेष अकिंचित्कर है. काहेतैं ? अप्रकाश स्वभावज्ञानका अनुव्यवसायतैं प्रकाश होवै है या अंशमैं न्यायके तुल्य होनेतैं असंगत है.

भट्टमतखण्डन ॥ ७९ ॥

तैसैं भट्टके मतमैं अनुमितिसैं ज्ञानका परोक्ष प्रकाश होवै है यह न्यायतैंभी असंगत है. काहेतैं ? तिसके मतमभी ज्ञानका प्रकाश जो अनुमिति तासैं प्रमात्वका प्रकाश होवै है इतना अंश तौ न्यायसैं विलक्षण है, सिद्धांत अनुकूल है, तथापि घटादिक विषयकूं अपरोक्षता करनेवाले प्रत्यक्षज्ञानका अनुमितिरूप परोक्ष प्रकाश होवै है, यह कथन हास्यका आस्पद है.

प्रभाकरमतका खण्डन ॥ ८० ॥

तैसैं प्रभाकरके मतमैं घटज्ञानादिक अपने प्रकाशमैं अनुव्यवसायकी अपेक्षा करै नहीं. इतने अंशमैं सिद्धांतके अनुकूल है औ प्रमात्वग्रहमैं ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं अन्यकी अपेक्षा करै नहीं इस अंशमैंभी सिद्धांतके अनकूल है; तथापि प्रभाकरमतभी श्रद्धायोग्य नहीं. काहेतैं ? सकलज्ञान स्वप्रकाश हैं औ त्रिपुटीविषयक हैं, केवल विषयगोचर कोई ज्ञान होवै नहीं सारै ज्ञान "घटमहं जानामि" इसरीतिसैं त्रिपुटीगोचर होवैहै. "अयं घटः" इसरीतिसैं केवल विषयगोचर ज्ञान अप्रसिद्ध है. घटसैं इंद्रियका संबंध हुये घटका ज्ञान होवै सो घटकूं और अपने स्वरूपकूं तथा अपने आश्रय आत्माकूं विषय करैहै, तैसैं घटका ज्ञानही अपने धर्म प्रमात्वकूं विषय करै है; इसरीतिसैं घटका ज्ञान अपने प्रकाशमैं अन्यकी अपेक्षा करै नहीं इतना अंश तौ समीचीन है; परंतु अपना प्रकाश आप करैहै, यह विरुद्ध है. एक क्रियाका जो कर्ता होवै सो कर्म होवै नहीं; यातैं

प्रकाशका कर्ता आप औ प्रकाशका कर्मभी आपही; यह कथनभी विरुद्ध है. औ सिद्धांतमैं तौ ज्ञान प्रकाशरूप है, यातैं उक्त विरोध नहीं इस रीतिसैं प्रकाशरूप ज्ञानकूं नहीं मानैं सो मत सकल अशुद्ध है, यातैं ज्ञानका अनुव्यवसायतैं प्रकाश होवै है, यह नैयायिक वचन असंगतहै ।

स्वतः प्रामाण्यवादका अंगीकार और सिद्धांतमतमैं उक्त संशयानुपपत्तिरूप दोषका उद्धार ॥ ८१ ॥

औ ज्ञानग्रहकालमैं प्रमात्वका ग्रह होवै तौ संशयानुपपत्ति होवैहै याका यह समाधान हैः—ज्ञानकी ग्राहकसामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवैहै, परंतु दोषाभावसहित ज्ञानसामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवैहै यह आगे कहैंगे. जहां संशय होवै तहां दोषाभाव नहीं. जो दोष नहीं होवै तौ संशय संभवै नहीं. काहेतैं ? संशयज्ञानभी भ्रम है औ भ्रमकी उत्पत्तिमैं दोष हेतु है, यातैं संशय स्थलमैं दोषाभाव संभवै नहीं. औ प्रमात्वज्ञानमैं दोषाभाव हेतु है, यातैं जहां संशय होवैहै तहां प्रमात्वका ज्ञान नहीं होवै है, यातैं संशय संभवै है, सिद्धांतमैं वृत्तिरूपज्ञानका साक्षीसैं प्रकाश होवैहै, यातैं ज्ञानग्राहक सामग्री साक्षी है, तासैंही वृत्तिज्ञानके प्रमात्वका ग्रह होवै है, परंतु किसी स्थानमैं ज्ञान तौ प्रमा होवैहै ऐसा विलक्षण दोष होवै. जासैं अनिर्वचनीय भ्रमकी तौ उत्पत्तिहोवै नहीं. यातैं ज्ञान तौ प्रमा हुया ताके प्रमात्वका प्रकाश साक्षी करै तिसमैं प्रतिबंधक होय जावै; यातैं ज्ञानग्राहक साक्षी तौ है, प्रमात्वका ग्रहण होवै नहीं, इसकारणतैं उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होवैहै, ज्ञानग्राहक सकल सामग्रीतैं प्रमात्वके ग्रहकूं स्वतोग्रह कहैंहै उक्तस्थलमैं ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं प्रमात्वग्रह हुया नहीं, यातैं अव्याप्ति है, तथापि दोषाभावसहित ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवै ताकूं स्वतःप्रामाण्यग्रह कहैं हैं. उक्त स्थलमैं दोषाभावसहित सामग्री नहीं; किंतु दोषसहित सामग्री है; यातैं उक्त स्थलमैं लक्ष्य नहीं; या कारणतैं अव्याप्ति नहीं. इसरीतिसैं ज्ञानके प्रमात्वका प्रकाशक तौ दोषाभावसहित

साक्षी है औ अप्रमात्वका ग्रह तौ साक्षीसैं होवै नहीं. काहेतैं ? भ्रमका लक्षण दोषजन्यत्व है अथवा निष्फल प्रवृत्तिजनकत्व है अथवा अधिष्ठानसैं विषम सत्तावालेका अवभास है ? इसरीतिसैं दोषघटित निष्फलप्रवृत्तिघटित विषमसत्ताघटित भ्रमके लक्षण हैं सो दोषादिक साक्षीके विषय नहीं, यातैं दोषादिघटित अप्रमात्वभी साक्षीका विषय नहीं; यातैं अप्रमात्वका ज्ञान तौ नैयायिककी नाईं निष्फलप्रवृत्ति देखिकै होवै है, तैसैं अप्रमात्वकी उत्पत्तिभी ज्ञानकी सामान्य सामग्रीतैं होवै तौ सकल ज्ञान अप्रमा हुये चाहिये; यातैं दोषसहित ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति होवैहै याका अर्थ यह हैः—दोष सहित नेत्रानुमानादिकनतैं अप्रमा ज्ञानकी उत्पत्ति होवैहै, अप्रमात्वविशिष्ट भ्रमज्ञानकी उत्पत्ति ही या प्रकरणमैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति कहिये है; औ प्रमात्वकी उत्पत्ति तौ ज्ञानकी सामान्य सामग्रीतैं होवैहै.

न्यायमत (परतःप्रामाण्यवाद) मैं दोष ॥ ८२ ॥

औ जो प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं गुण कारण कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्षस्थलमैं अधिक अवयवनतैं इंद्रियका संयोग गुण कह्या सो निरवयव रूपादिके प्रत्यक्षमैं संभवै नहीं. औ अनुमितिमैं व्याप्य हेतुका पक्षमैं ज्ञान गुण कह्या सोभी संभवै नहीं; काहेतैं ? जहां वह्निसहित पर्वतमैं धूलिपटलमैं धूमभ्रम होयकै वह्निका ज्ञान होवै तहां उक्त गुण तौ नहीं है; औ वह्निकी अनुमिति प्रमा होवै है, यातैं प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं गुणकूं जनकता कहना संभवै नहीं. किंतु ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है.

औ जो ऐसैं कहैः—ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति मानैं तौ भ्रमस्थलमैं भी ज्ञानसामान्यसामग्री होनैतैं प्रमाज्ञान हुया चाहिये, ताका यह समाधान हैः—दोष होवै तहां प्रमाज्ञान होवै नहीं, यातैं प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं दोष प्रतिबंधक है. औ सकल कार्यकी

उत्पत्तिमैं प्रतिबंधकाभाव हेतु है, यातैं दोषाभावसहित ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है. इहां प्रमात्वकी उत्पत्ति कहनेसैं प्रमात्वविशिष्ट-ज्ञानकी उत्पत्तिमैं तात्पर्य है; यातैं प्रमात्वधर्मकी उत्पत्तिकथन असंगत नहीं. रीतिसैं इस दोषाभावसहित जो ज्ञानकी उत्पादक नेत्रादिरूप सामग्री तासैं प्रमाज्ञानकी उत्पत्ति होनेतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति स्वतः होवै है.

यद्यपि ज्ञान सामान्यकी सामग्री इंद्रियअनुमानादिक हैं, सामान्यज्ञान-का कारण दोषाभाव नहीं औ प्रमात्वकी उत्पत्तिमैं दोषाभावभी कारण कह्या यातैं सामान्यसामग्रीतैं अधिककारणजन्य होनेतैं परतः प्रामाण्यका अंगीकार हुया, तथापि ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं अधिक भावकी अपेक्षा होवै तौ परतःप्रामाण्य होवै है; अभावरूपदोषाभावकी अपेक्षातैं परतः प्रामाण्य होवै नहीं. तैसैं ज्ञानकी ग्राहक सामग्री साक्षी है. दोषाभावसहित साक्षीसैं ज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान होवै है औ दोषसहित इंद्रिय अनुमानादि-रूपज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है. ज्ञानसामान्यकी सामग्री इंद्रिय अनुमानादिक है,तिनतैं दोष पर है,यातैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति-परतैं होवै है.औ भ्रम होयके प्रवृत्ति हुये फलका लाभ नहीं होवै तब अप्र-मात्व अनुमिति ज्ञान होवै सो अनुमानसैं होवै है; और ज्ञानग्राहकसामग्री साक्षीसैं अनुमानभिन्न है यातैं अप्रमाण्यग्रहभी परतैं होवै है. अनुमा-नका आकार यह है:-''इदं जलज्ञानं अप्रमा निष्फलप्रवृत्तिजनकत्वात् । यत्र यत्र निष्फलप्रवृत्तिजनकत्वं तत्र तत्र अप्रमात्वम् । यथा भ्रमांतरम्'' इस रीतिसैं ज्ञानकी उत्पत्तिकालसैं ही साक्षीसैं ज्ञानके स्वरूपका प्रकाश होवै है औ ज्ञानवृत्ति प्रमात्वका प्रकाश होवै है.

अख्यातिवादीके वचनका परिहार ॥ ८३ ॥

निश्चयज्ञानका संशयज्ञानसैं विरोध है, यातैं प्रमात्वका निश्चय हुयां प्रमात्वका संदेह होवै नहीं, यातैं प्रमात्व संदेहसैं निष्कंप प्रवृत्तिका अभाव होवैगा; यह अख्यातिवादीका वचन असंगत है. यद्यपि प्रमात्व संशयका

विरोधी प्रमात्वनिश्चय है, भ्रमत्वसंशयका विरोध प्रमात्वनिश्चय नहीं. काहेतें ? समानविषयमैं संशय औ निश्चय विरोधी होवैं हैं. प्रमात्वनिश्चय औ भ्रमत्वसंशयके विषय प्रमात्व औ भ्रमत्व भिन्न हैं यातें अख्यातिवादी कथित वचन संगत है,तथापि जिस ज्ञानमैं प्रमात्वनिश्चय होवे तिस ज्ञानमैं भ्रमत्वका निश्चय औ भ्रमत्वका संदेह होवै नहीं, यह अनुभवसिद्ध है, यातें भ्रमत्वसंदेहकाभी विरोधी है, औ विचार करै तौ प्रमात्वसंशय औ भ्रमत्वसंशयका भेद नहीं एकही पदार्थ है. काहेतें ? "एतदज्ञानं प्रमा न वा" यह प्रमात्व संशयका आकार है. यामैं विधिकोटि प्रमात्व हैं औ निषेधकोटी भ्रमत्व है. काहेतें ? ज्ञानमैं प्रमात्वका निषेध करै भ्रमत्वकी शेष रहै है. तैसैं "एतदज्ञानं भ्रमो न वा" यह भ्रमत्वसंशयका आकार है यामैं विधिकोटि भ्रमत्व है निषेधकोटि प्रमात्व है. ज्ञानमैं भ्रमत्वका निषेध करैं तौ प्रमात्वकाही शेष रहै है; इसरीतिसैं दोनूं संशयमैं भ्रमत्व प्रमात्व कोटि समान हैं, यातें प्रमात्वसंशय औ भ्रमत्वसंशयका भेद नहीं, तथापि जामैं विधिकोटि प्रमात्व है सो प्रमात्वसंशय कहिये है, जामैं विधिकोटि भ्रमत्व है सो भ्रमत्वसंशय कहिये है, या प्रकारसैं प्रमात्व संशय औ भ्रमत्वसंशयका विषय समान होनैतें प्रमात्वनिश्चय हुयां जैसैं प्रमात्वसंशय होवै नहीं तैसैं भ्रमत्वसंशयभी होवै नहीं; यातें सिद्धांतमैं भ्रमज्ञानकूं मानैं तौभी निष्कंपप्रवृत्ति संभवै है.अनिर्वचनीयका निश्चय भ्रमनिश्चय है.

भ्रांतिज्ञानकी त्रिविधता औ वृत्तिभेदका उद्धार ॥ ८४ ॥

इसरीतिसैं संशयनिश्चयभेदसैं भ्रमज्ञान दो प्रकारका है. तर्कज्ञानका भ्रम निश्चयके अंतर्भूत है. काहेतें ? व्याप्यके आरोपतैं व्यापकका आरोप तर्क है. जैसैं "यदि वह्निर्न स्यात्तदा धूमोऽपि न स्यात्" ऐसा ज्ञान धूमवह्निसहितदेशमैं होवै सो तर्क है, तहां वह्निका अभाव व्याप्य है, धूमका अभाव व्यापक है, वह्न्यभावके आरोपतें धूमाभावका आरोप होवै है, वह्निधूमके होनेतें वह्न्यभावका औ धूमाभावका ज्ञान है, यातें भ्रम

बाध होनेतैं भ्रम होवैं ताकूं **आरोप** कहैं हैं; इहां धूमवह्निका सद्भाव है, यातैं तिनके अभावका बाध है, ताके होनेतैं भी पुरुषकी इच्छातैं वह्निके अभावके औ धूमाभावका भ्रमज्ञान होवै है यातैं आरोप है. इस रीतिसैं आरोपस्वरूप तर्कभी भ्रमके अंतर्भूत है, पृथक् नहीं. वृत्तिके प्रसिद्ध भेद कहे औ अवांतर भेद अनंत हैं.

इतिश्रीमन्निश्चलदाससाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे वृत्तिभेदनिरूपणप्रसंगप्राप्त-सत्ख्यात्यादिनिराकरणागताख्यातिनिराकरणप्रयोजकस्वतः-प्रमात्वप्रमाणनिरूपणं नाम सप्तमः प्रकाशः ॥ ७ ॥

अथ जीवेश्वरस्वरूपवृत्तिप्रयोजनसहित-कल्पितनिवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नामाष्टमप्रकाशप्रारम्भः ।

अज्ञानविषै विचार,

वृत्तिके प्रयोजन कहनेकी प्रतिज्ञा ॥ १ ॥

सप्तम प्रकाशमैं वृत्तिका स्वरूप कह्या, अब अष्टम प्रकाशमैं वृत्तिका प्रयोजन कहते हैं. अज्ञानकी निवृत्ति वृत्तिका **मुख्य प्रयोजन** है. घटादिक अनात्माकार वृत्तिसैं घटादिक अवच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. अखंड ब्रह्माकारवृत्तिसैं निरवच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै है.

अज्ञानका आश्रय औ विषय ॥ २ ॥

वाचस्पतिके मतमैं वृत्तिसैं नाश्य अज्ञानका आश्रय जीव हैं औ विषय ब्रह्म है. विवरणकारादिकनके मतमैं अज्ञानका आश्रय औ विषय शुद्धचेतन है. जैसैं ज्ञानकृत घटादिकनका प्रकाश **ज्ञानकी विषयता** कहिये है, तैसैं अज्ञानकृत स्वरूपका आच्छादनही अज्ञानकी विषयता है. जीवभाव ईश-भाव अज्ञानाधीन हैं यातैं अज्ञानकृत जीव अज्ञानका आश्रय संभवै नहीं; इस अर्थके ज्ञानमैं उपयोगी प्रथम जीव ईश्वरका स्वरूप निरूपण करैंगे,

अज्ञानका निरूपण ॥ ३ ॥

जीवईश्वरके निरूपणमैं उपयोगि अज्ञानका निरूपण करैं हैं. **अज्ञान, अविद्या, प्रकृति, माया, शक्ति,** ये नाम एकही पदार्थके हैं माया अविद्याका भेदवाद एकदेशीका है. नैयायिकादिक ज्ञानाभावकूं ही अज्ञान कहैं हैं. सिद्धांत मतमैं आवरण विक्षेपशक्तिवाला अनादिभावरूप **अज्ञान** पदार्थ है विद्यासैं नाश्य होनेतैं **अविद्या** कहैं हैं, प्रपंचका उपादान होनेतैं **प्रकृति** कहै हैं, दुर्घटकूंभी संपादन करै यातैं **माया** कहैं हैं, स्वतंत्रताके अभावतैं **शक्ति** कहैं हैं.

अज्ञानकी अनादिभावरूपतामैं शंका ॥ ४ ॥

अज्ञानकूं अनादिभावरूपता कथन संभवै नहीं. काहेतैं ? यह अद्वैत ग्रंथका लेख हैः—चेतनसैं भिन्न वा अभिन्न अज्ञान है यह दोनूं पक्ष संभवै नहीं काहेतैं ? "नेह नानास्ति किंचन" इत्यादिक श्रुतिवचनतैं चेतनसैं भिन्नका निषेध है, औ जड चेतनका अभेद संभवै नहीं; औ भिन्नत्वअभिन्नत्वका परस्पर विरोध होनेतैं चेतनसैं भिन्नाभिन्न अज्ञान है यह कथनभी संभवै नहीं, तैसैं अद्वैतप्रतिपादक श्रुतिविरोधसैं अज्ञानकूं सत्स्वरूपता संभवै नहीं, प्रपंचकारणताके असंभवतैं तुच्छतास्वरूप असत्स्वरूपता संभवै नहीं, परस्परविरोधी धर्म एकमैं संभवै नहीं, यातैं सत् असत् उभयरूप कहना संभवै नहीं. तैसैं अज्ञानकूं सावयव मानैं तौ न्यायमतमैं तौ द्रव्य आरंभक उपादानकूं अवयव कहैं हैं.सांख्यादिकमतमैं द्रव्यरूप परिणामवाले उपादानकूं अवयव कहैं हैं. उपादानकूं ही अवयव कहै तौ शब्दका उपादान आकाशभी शब्दका अवयव होवैगा. तैसैं अपने गुणक्रियाके उपादानकारण घटादिकभी रूपादि गुणनके औ चलनरूप क्रियाके अवयव होवैंगे यातैं द्रव्यके उपादानकारणकूं अवयव कहै हैं, अन्यके उपादानकूं अवयव कहै नहीं. अवयवजन्यकूं सावयव कहैं हैं. जो अविद्या द्रव्य होवै तौ सावयवता संभवै; अविद्यामैं द्रव्यत्व संभवै नहीं. काहेतैं ? नित्यअनित्यभेदसैं

द्रव्य दो प्रकारका होवैहै. जो अविद्याकूं नित्यद्रव्यरूप मानैं तौ सावयवत्व कथन असंगत है.—तैसैं ज्ञानमैं अविद्याका नाश नहीं हुया चाहिये. अनित्य द्रव्यरूप मानैं तौ ताके अवयवी आत्मासैं भिन्न होनेतैं अनित्यही होवैंगे औ अवयवके अवयवभी अनित्य होनेतैं अनवस्था होवैगी औ अंत्य अवयवकूं परमाणुकी नाईं और प्रधानकी नाईं नित्य मानैं तौ अद्वैतप्रतिपादक श्रुतिवचनका विरोध होवैगा. न्यायमतमैं नित्य परमाणुका औ सांख्यमतमैं नित्यप्रधानका अंगीकार श्रुतिविरुद्ध है. इसरीतिसैं द्रव्यत्वके अभावतैं अज्ञानमैं सावयवत्व संभवै नहीं. तैस उपादानताके असंभवतैं निरवयव अज्ञान है, यह कथन भी संभवै नहीं, सावयवही उपादानकारण होवै है. औ न्यायमतमैं शब्दका उपादानकारण आकाश निरवयव मान्या है. सोभी "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" इस श्रुतिसैं विरुद्ध है. तैसैं द्व्यणुकका उपादानकारण परमाणु निरवयव मान्या है सोभी निरवयव परमाणुके संयोग असंभवादिदोषतैं सूत्रकारनैं शारीरक शास्त्रके द्वितीयाध्यायस्थ द्वितीय पादमैं निषेध कऱ्या है, यातैं प्रपंचके उपादान अज्ञानकूं निरवयवता संभवै नहीं, औ अज्ञानकूं प्रपंचकी उपादानता "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" इस श्रुतिमैं प्रसिद्ध है, माया औ अज्ञानका भेद नहीं. इसरीतिसैं अज्ञानमैं सावयवता अथवा निरवयवता संभवै नहीं. तैसैं परस्परविरुद्ध उभयरूपताभी संभवै नहीं. इस रीतिसैं किसी धर्मसैं अज्ञानका निरूपण अशक्य होनेतैं ताकूं अनिर्वचनीय कहैहैं, इस प्रकारका लेख बहुत ग्रंथनमैं है, यातैं अनिर्वचनीय अज्ञानकूं अनादिभावरूपताकथन संभवै नहीं, भावरूपता कहनेतैं सत्रूपता सिद्ध होवैहै औ सत्रूपताका निषेध किया है.

उक्त शंकाका समाधान ॥ ९ ॥

जैसैं सत्‌विलक्षण अज्ञान है तैसैं असत्‌विलक्षणभी है. यातैं अबाध्यरूप सत्त्व तौ अज्ञानमैं नहीं है, परंतु तुच्छरूप असत्‌मैं विलक्षणतारूप सत्त्वका अज्ञानमैं अंगीकार है इसीवास्तै सत् असत्‌सैं विलक्षण अनिर्वच-

नीय अज्ञान है; सर्वथा वचनके अगोचरक अनिर्वचनीय नहीं कहैहैं, किंतु पारमार्थिक सतस्वरूप ब्रह्मसैं विलक्षण औ सर्वथा सत्तास्फूर्तिशून्यशशशृंगादिक असत्सैं विलक्षणही अनिर्वचनीय शब्दका पारिभाषिक अर्थ है; यातैं अनादिभावरूपताकथन संभवै है औ नैयायिकादिकनके मतमैं जैसैं निषेधमुख प्रतीतिका विषय ज्ञानाभावरूप अज्ञान है. तैसा अद्वैतग्रंथनमैं अज्ञानशब्दका अर्थ नहीं है; किंतु ज्ञानबाध्य रज्जुसर्पादिक जैसैं विधिमुख प्रतीतिके विषय हैं तैसैं ज्ञानसैं निवर्तनीय विधिमुख प्रतीतिका गोचर अज्ञान है. अज्ञानशब्दमैं अकारका विरोधी अर्थ है यह पूर्व कह्या है, यातैं अज्ञानमैं भावरूपता कथन संभवै है. औ प्राचीन आचार्य विवरणकारादिकोंनैं अत्यंत उद्घोषतैं प्रकाशविरोधी अंधकारकूं भावरूपता प्रतिपादन करिकै ज्ञानविरोधी अज्ञानकूं भावरूपताही प्रतिपादन करी है; यातैं अज्ञानकूं भावरूपता श्रवण करैं तौ उत्कर्ष होवै ते अल्पश्रुत है. इसरीतिसैं भावरूप अज्ञान है, उत्पत्तिरहित होनेतैं अनादि है औ घटकी नाईं अवयवसमवेतरूप सावयव नहीं है तथापि अंधकारकी नाईं सांश है.

जीव औ ईश्वरविषै विचार ।

माया अविद्यापूर्वक जीव ईश्वरके रूपमैं च्यारि पक्ष ॥ ६ ॥

शुद्धचेतनके आश्रित मलप्रकृतिमैं चेतनका प्रतिबिंब ईश्वर है अवारणशक्तिविशिष्ट मूलप्रकृतिके अंजनकूं अविद्या कहैं हैं. अविद्यारूप अनंत अंशनमैं चेतनके अनंत प्रतिबिंब जीव कहैं हैं औ तत्त्वविवेक ग्रंथनमैं इसरीतिसैं जीव ईश्वरका निरूपण है. जगत्का मूलभूतप्रकृतिके दो रूप कल्पित हैं इसीवास्तै मूलप्रकृतिके प्रसंगमैं "मया चाविद्या च स्वयमेव भवति" यह श्रुति है "स्वयमेव" कहिये जगतका मूलप्रकृति आपही मायारूप अविद्यारूप होवै है शुद्धसत्त्वप्रधान माया है, मलिनसत्त्ववाली अविद्या है. रजोगुणतमोगुणसैं अभिभूत सत्त्वकूं मलिनसत्त्व कहैं हैं, जासैं रजोगुण तमोगुण अभिभूत होवैं ताकूं शुद्धसत्त्व कहैं हैं,

तिरस्कृतकूं अभिभूत कहैं हैं. उक्तरूपमायामैं प्रतिबिंब ईश्वर है औ अविद्यामैं प्रतिबिंब जीव है. ईश्वरकी उपाधि मायाका सत्त्व शुद्ध होनेतैं ईश्वर सर्वज्ञ है. जीवकी उपाधि अविद्याका सत्त्व मलिन है, यातैं जीव अल्पज्ञ है. कोई ग्रन्थकार इसरीतिसैं कहैं हैंः—उक्त श्रुतिमैं दोरूपवाली प्रकृति कही है, तामैं यह हेतु हैः—विक्षेपशक्तिकी प्रधानतासैं माया कहैं हैं, आवरण शक्तिकी प्रधानतासैं अविद्या कहै हैं, ईश्वरकी उपाधि मायामैं आवरण शक्ति नहीं; यातैं मायामैं प्रतिबिंब ईश्वरकूं अज्ञता नहीं औ आवरणशक्तिमती अविद्यामैं प्रतिबिंब जीवकूं अज्ञता है. औ संक्षेपशारीरकमैं यह कह्या हैः—जीवकी उपाधि कार्य है औ ईश्वरकी उपाधि कारण है, इसप्रकारसैं श्रुति कहै है; यातैं मायामैं प्रतिबिंब ईश्वर है, अन्तःकरणमैं प्रतिबिंब जीव है-या प्रसंगमैं प्रतिबिंबकूं जीव कहैं अथवा ईश्वर कहैं, तहां केवल प्रतिबिंबकूं जीवता अथवा ईश्वरता इष्ट नहीं है, किंतु प्रतिबिंबत्वविशिष्ट चेतनकूं जीवता औ ईश्वरता जाननी. काहेतैं ? केवलप्रतिबिंबकूं जीवता ईश्वरता होवै तौ जीववाचक पद औ ईश्वरवाचकपदमैं भागत्यागलक्षणाका असंभव होवैगा. औ परमार्थ तौ यह हैः—पूर्वउक्त च्यारिही पक्षनमैं बिंबप्रतिबिंबका अभेदवाद है,या वादमैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं है किंतु ग्रीवास्थ मुखमैंही प्रतिबिंबत्वप्रतीति होवै है, सो भ्रमरूपप्रतीति होवै है; यातैं प्रतिबिंबत्व धर्म तौ मिथ्या है औ स्वरूपसैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं. यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा.

उक्तच्यारिपक्षनमैं मुक्त जीवनका शुद्धब्रह्मसैं अभेद ॥ ७ ॥

उक्त च्यारि पक्षनमैं जीव ईश्वर दोनूंकूं प्रतिबिंब मानैं हैं, यातैं मुक्तजीवनका प्राप्य शुद्ध ब्रह्म है ईश्वर नहीं. काहेतैं ? एक उपाधिका विनाश होवै तब तिस उपाधिके प्रतिबिंबका अपरप्रतिबिंबसैं अभेद होवै नहीं, किंतु अपने बिंबसैं अभेद होवै है. ईश्वरभी प्रतिबिंब है, यातैं जीवरूप प्रतिबिंबकी उपाधिका नाश हुयें प्रतिबिंब रूप ईश्वरसैं अभेद संभवै नहीं; किंतु बिंबभूत शुद्ध ब्रह्मसैं ही अभेद होवै है.

उक्त च्यारि पक्षनमैं षट् अनादिपदार्थ कहिके त्रिविध चेतनका अंगीकार ॥ ८ ॥

इसरीतिसैं उक्त पक्षनमैं जीव ईशशुद्ध ब्रह्मभेदसैं त्रिविधचेतनका अंगीकार है; इसीवास्तैं वार्तिकमैं षट् पदार्थ अनादि कहे हैंः—शुद्धचेतन १, ईश्वरचेतन २, जीवचेतन ३, अविद्या ४, अविद्याचेतनका परस्पर संबंध५, औ इन पांचोंका परस्पर भेद ६, ये षट् पदार्थ उत्पत्तिशून्य होनेतें अनादि हैं, इनमैं चेतनके तीनिही भेद कहैं हैं.

चित्रदीपमैं विद्यारण्यस्वामीके कहे उक्तचेतनके च्यारि भेद ॥ ९ ॥

चित्रदीपमैं विद्यारण्यस्वामीनैं चेतनके च्यारि भेद कहे हैं,तथापि जैसैं घटाकाश, महाकाश, जलाकाश, मेघाकाश भेदसैं आकाशके च्यारि भेद हैं. घटावच्छिन्न आकाशकूं घटाकाश कहैं हैं; निरवच्छिन्न आकाशकूं महाकाश कहैं हैं; घटजलमैं आकाशके प्रतिबिंबकूं जलाकाश कहैं हैं. मेघमैं जलके सूक्ष्म कण हैं तिनमैं आकाशके प्रतिबिंबकूं मेघाकाश कहैं हैं. तैसैं चेतनभी कूटस्थ १, ब्रह्म २, जीव ३, ईश्वर ४, भेदसैं च्यारिप्रकारका है. स्थूलसूक्ष्म शरीरके अधिष्ठानचेतनकूं कूटस्थ कहैं हैं, निरवच्छिन्नचेतनकूं ब्रह्म कहैं हैं, शरीररूप घटमैं बुद्धिस्वरूपजलमैं जो चेतनका प्रतिबिंब ताकूं जीव कहैंहैं, मायारूप अन्धकारस्थ जो जलकणसमान बुद्धिवासना तिनमैं प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहैं हैं.सुषुप्त्यवस्थामैं जो बुद्धिकी सूक्ष्म अवस्था ताकूं वासना कहैं हैं, केवल बुद्धिवासनामैं प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहैं तौ बुद्धिवासनाकूं अनंतता होनेतैं ईश्वरभी अनंत हुयें चाहियें यातैं बुद्धिवासना विशिष्ट अज्ञानमैं प्रतिबिम्बकूं ईश्वर कहैं हैं. इसरीतिसैं विज्ञानमयकोश जीव है.जाग्रत्स्वप्नअवस्थामैं स्थूल अन्तःकरणकूं विज्ञान कहैं हैं;तामैं प्रतिबिंबकूं विज्ञानमय कहैं हैं. “मैं कर्ता, भोक्ता, स्थूल,दुर्बल, काण, बधिर हूँ” इसरीतिसैं विशेष विज्ञानवाला जीव है, औ सुषुप्त्यवस्थामैं बुद्धिवासनासहित अज्ञानरूप आनंदमयकोश ईश्वर है. आनंदमय-

कोशकूं ईश्वरता मांडूक्य उपनिषद्‌मैं प्रसिद्ध है. इसरीतिसैं चेतनके च्यारि भेद चित्रदीपमैं कहे हैं.

बिंबप्रतिबिंबवादसैं आभासवादका भेद ॥ १० ॥

औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं प्रतिबिंब मिथ्या है. पूर्व उक्त पक्षनमैं बिंबप्रतिबिंबका अभेद होनेतैं प्रतिबिंब सत्य है, एकही पदार्थमैं उपाधिके सन्निधानतैं बिंबत्वप्रतिबिंबत्वभ्रम होवै है औ बिंबका स्वरूपही प्रतिबिंब है. औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं दर्पणादिकनमैं बिंबके सन्निधानतैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबकी उत्पत्ति होवै है, यातैं जीवईश्वरका स्वरूप मिथ्या है.

आभासवादकी रीतिसैं जीवब्रह्मके अभेदके वाक्यनमैं बाधसमानाधिकरण ॥ ११ ॥

जीवका ब्रह्मसैं अभेदप्रतिपादक वाक्यनमैं बाधसमानाधिकरण है, अभेदसमानाधिकरण नहीं है. जैसैं पुरुषमैं स्थाणुभ्रम होयकै पुरुषका ज्ञान हुयें "यह स्थाणुपुरुष है" इसरीतिसैं पुरुषतैं स्थाणका अभेद कहैं, तहां स्थाणुके अभाववाला पुरुष है अथवा स्थाणुका अभाव पुरुष है; इसरीतिसैं बोध होवै है. अधिकरणतैं अभाव पृथक् है या मतमैं स्थाणुके अभाववाला पुरुष है ऐसा बोध होवै है. कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप है; या मतमैं स्थाणुका अभाव पुरुष है ऐसा बोध होवै है. इसरीतिसैं अयंशब्दका अर्थ "जीव ब्रह्म" है या वाक्यका जीवके अभाववाला ब्रह्म है यह अर्थ है अथवा जीवका अभाव ब्रह्म है यह अर्थ है ? अभावकूं बाध कहैं हैं. उक्त रीतिसैं कल्पितपदार्थका सत्यअधिष्ठानसैं अभेद कहैं; तहां बाधसमानाधिकरणही विवक्षित होवै है.

कूटस्थ औ ब्रह्मके अभेदस्थलमैं अभेद (मुख्य) समानाधिकरण ॥ १२ ॥

जहां कूटस्थका ब्रह्मसैं अभेद कहैं तहां अभेद समानाधिकरण है. जैसैं जलाकाशका महाकाशतैं अभेद कहैं, तहां जलाकाशका महाकाशतैं

बाधसमानाधिकरण है, औ घटाकाशका महाकाशतैं अभेद कहैं तहां अभेदसमानाधिकरण है; याहीकूं मुख्यसमानाधिकरण कहैं हैं. इसरीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं जीवका ब्रह्मसैं बाधसमानाधिकरणही लिख्या है.

उक्त बाधसमानाधिकरणमैं विवरणकारके वचनतैं अविरोध ॥१३॥

औ विवरण ग्रंथमैं "अहं ब्रह्मास्मि" या वाक्यमैं अहं शब्दके अर्थ जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण लिख्या है औ बाधसमानाधिकरणका महावाक्यनमैं खंडन लिख्या है; ताका समाधान विद्यारण्यस्वामीनैं इसरीतिसैं लिख्या हैः—बुद्धिस्थ चिदाभास औ कूटस्थका अन्योन्याध्यास है. काहेतैं ? चिदाभासविशिष्ट बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ है; अहंप्रतीतिका विषय चिदाभासविशिष्ट बुद्धि है; औ स्वयंप्रतीतिका विषय कूटस्थ है. "अहं स्वयं जानामि । त्वं स्वयं जानासि । स स्वयं जानाति" इसरीतिसैं सकल प्रतीतिमैं अनुगत स्वयंशब्दका अर्थ है; औ अहं त्वं आदिक शब्दनका अर्थ व्यभिचारी है. स्वयंशब्दका अर्थ कूटस्थ सारै अनुगत होनेतैं अधिष्ठान है;औ अहं त्वं आदिक शब्दनका अर्थ चिदाभासविशिष्ट बुद्धिरूप जीव व्यभिचारी होनेतैं अध्यस्त है. कूटस्थमैं जीवका स्वरूपाध्यास है, औ जीवमैं कूटस्थका संबंधाध्यास है, यातैं कूटस्थजीवका अन्योन्याध्यास होनेतैं परस्पर विवेक होवै नहीं, यातैं ब्रह्मसैं कूटस्थके मुख्यसमानाधिकरणका जीवमैं व्यवहार करैं हैं. औ जीवमैं कूटस्थधर्मके आरोपविना मिथ्या जीवका सत्यब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण संभवै नहीं, यातैं स्वाश्रय अंतःकरणका अधिष्ठान जो कूटस्थ, ताके धर्मकी विवक्षासैं जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण कह्या है; इसरीतिसैं चित्रदीपमैं विद्यारण्यस्वामीनैं विवरणकारके वचनतैं अविरोधका प्रकार लिख्या है.

विवरणोक्त जीवका ब्रह्मसैं मुख्यसमानाधिकरण औ विद्यारण्यके वाक्यकी प्रौढिवादता ॥ १४ ॥

औ विवरण ग्रंथकूं पूर्व उत्तर देखैं तौ यह प्रकार संभवै नहीं. काहेतैं ?

विवरणग्रंथमैं बिंबका स्वरूपही प्रतिबिंब मान्या है, यातैं ताके मतमैं प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व तौ मिथ्या है, औ प्रतिबिंबरूप जीवका स्वरूप मिथ्या नहीं किंतु ताका स्वरूप सत्य है, यातैं जीवका ब्रह्मम मुख्य समानाधिकरण संभवै है. औ विद्यारण्यस्वामीनैं जो विवरणग्रंथका उक्त अभिप्राय कह्या सो प्रौढिवादसैं कह्या है. तथाहिः—प्रतिबिंबकूं मिथ्यात्व मानभी जीवमैं कूटस्थत्व विवक्षातैं महावाक्यनमैं विवरणउक्त मुख्यसमानाधिकरण संभवै है, यातैं "मुख्य समानाधिकरणकी अनुपपत्तिसैं प्रतिबिंबकूं सत्यत्व अंगीकरणीय नहीं" इस प्रौढिवादसैं विद्यारण्यस्वामीनैं उक्त अभिप्राय विवरणका लिख्या है औ विवरणग्रंथका उक्त अभिप्राय है नहीं. प्रौढि कहिये उत्कर्षसैं जो वाद कहिये कथन, ताकूं **प्रौढिवाद** कहैं हैं. प्रतिबिंबकूं मिथ्यात्व मानिकै महावाक्यनमैं मुख्य समानाधिकरणभी प्रतिपादन करि सकैं हैं. इसरीतिसैं अपना उत्कर्ष बोधन किया है.

विद्यारण्योक्त चेतनके च्यारिभेदका अनुवाद ॥ १५ ॥

इसरीतिसै अंतःकरणमैं आभास **जीव** है, सो विज्ञानमय कोशरूप है. बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं आभास ईश्वर है, सो आनंदमयकोशरूप है. दोनूंका स्वरूप मिथ्या है, कूटस्थ औ जीवका अन्योन्याध्यास है, औ ब्रह्मचेतन ईश्वरका अन्योन्याध्यास है; यातैं जीवमैं कूटस्थ धर्मनके आरोपतैं कहूं पारमार्थिक ब्रह्मता कही है. तैसैं ईश्वरमैं आध्यासिक ब्रह्मत्वकी विवक्षातैं कहूं वेदांतवेद्यत्वादिक धर्म कहे हैं, यातैं चेतनके चारि भेद हैं; यह किंवा चित्रदीपमैं कही है. परंतु—

विद्यारण्यस्वामीउक्त बुद्धिवासनामैं प्रतिबिंबकी ईश्वरताका खंडन ॥ १६ ॥

बुद्धिवासनामैं प्रतिबिंबकूं ईश्वरता संभवै नहीं तैसैं आनंदमयकोशकूं ईश्वरता कथनभी संभवै नहीं. तथाहिः—बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहै ताकूं यह पूछ्या चाहिये. ईश्वरभावकी उपाधि केवल अज्ञान है अथवा वासनासहित अज्ञान है अथवा केवल वासना है ? जो प्रथमपक्ष

कहै तौ बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमैं प्रतिबिंबकूं ईश्वरताकथनसैं विरोध होवैगा. जो द्वितीयपक्ष कहै तौ केवल अज्ञानकूंही ईश्वरभावकी उपाधि मानना चाहिये. बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानकूं ईश्वरकी उपाधि कहना निष्फल है. जो विद्यारण्यस्वामीका भक्त इसरीतिसैं कहै, केवल अज्ञानकूं ईश्वरकी उपाधि मानैं तौ ईश्वरमैं सर्वज्ञतासिद्ध होवै नहीं, यातैं सर्वज्ञताके लाभार्थ बुद्धिवासनाभी अज्ञानकी विशेषण मानी है; यह कथनभी असंगत है. काहेतैं ? अज्ञानस्थ सत्त्वांशकी सर्वगोचर वृत्तिसैंही सर्वज्ञताका लाभ होनेतैं बुद्धिवासनाकूं अज्ञानकी विशेषणता मानना निष्फल है; औ अज्ञानस्थ सत्त्वांशकी वृत्तिसैंही सर्वज्ञता संभवै है, बुद्धिवासनातैं सर्वज्ञता सिद्ध होवै नहीं. काहेतैं ? एक एक बुद्धिवासनाकूं तौ निखिल पदार्थगोचरता संभवै नहीं. सर्वज्ञतालाभके अर्थ सकलवासनाकूं अज्ञानविशेषणता मानना चाहिये, सो प्रलयकालविना एक कालसैं सर्ववासनाका सद्भाव संभवै नहीं, यातैं सर्वज्ञताकी सिद्धिवासनातैं होवै नहीं; इसरीतिसैं धीवासनासहित अज्ञान ईश्वरकी उपाधि है, यह द्वितीयपक्षभी संभवै नहीं; जो केवल वासना ईश्वरकी उपाधि है, यह तृतीय पक्ष कहै—तथापि यह पूछ्या चाहियेः—एक एक वासनामैं प्रतिबिंब ईश्वर है अथवा सकल वासनामैं एक प्रतिबिंब ईश्वर है ? जो प्रथमपक्ष कहै तौ जीवजीवकी बुद्धिकी वासना अनंत होनेतैं तिनमैं प्रतिबिंब ईश्वरभी अनंत होवैंगे; और एक एक वासनाकूं अल्पगोचरता होनेतैं तिनमैं प्रतिबिंब रूप अनंत ईश्वरभी अल्पज्ञही होवैंगे. सर्व वासनामैं एक प्रतिबिंब मानैं तौ सर्व वासना प्रलयविना युगपत् होवैं नहीं. औ अनेक उपाधिमैं अनेकही प्रतिबिंब होवैं हैं; यातैं सर्ववासनामैं एक प्रतिबिंब संभवै नहीं, इसरीतिसैं केवल अज्ञानही ईश्वरकी उपाधि है.

विद्यारण्यस्वामीउक्त आनंदमयकोशकी ईश्वरताका खंडन ॥ १७ ॥

विद्यारण्यस्वामीनैं चित्रदीपमैं वासनाका निष्फल अनुसरण कऱ्या है तैसैं आनंदमयकोशकूं ईश्वरता कथनभी असंगत है. काहेतैं ? जाग्रत स्वप्नमैं

स्थूलावस्थाविशिष्ट प्रतिबिंबसहित अंतःकरणकूं विज्ञानमय कहैं हैं. विज्ञानमय जीवही सुषुप्तिकालमैं सूक्ष्मरूपतैं भी लीन हुया आनंदमय कहिये है, तिसकूं ईश्वर मानैं तौ जाग्रत् स्वप्नमैं अंतःकरणकी विलीन अवस्थारूप आनंदमयके अभावतैं ईश्वरकाभी अभाव हुया चाहिये. अनंतपुरुषनकी सुषुप्तिमैं अनंत ईश्वर हुये चाहियें. जीवके पंचकोश सकल ग्रंथकारोंनैं कहै हैं, औ पंचकोशविवेकमैं विद्यारण्यस्वामीनैं आपभी जीवके पंचकोश कहेहैं. आनंदमयकूं ईश्वरता मानैं तौ सकलवचन असंगत होवैंगे, यातैं आनंदमयकूं ईश्वरता संभवै नहीं.

मांडूक्योपनिषदुक्त आनंदमयकी सर्वज्ञता आदिकका अभिप्राय ॥ १८ ॥

औ मांडूक्यउपनिषद्मैं आनंदमयकूं सर्वज्ञता सर्वेश्वरता कही है, तासैं भी आनंदमयकूं ईश्वरता सिद्ध होवै नहीं. काहेतैं ? मांडूक्यमैं यह अर्थ हैः— विश्व तैजस प्राज्ञभेदसैं जीवके तीन स्वरूप हैं. विराट् हिरण्यगर्भ अव्याकृतभेदसैं ईश्वरकेभी तीन भेद हैं. यद्यपि हिरण्यगर्भकूं जीवता सकल उपनिषद्मैं प्रसिद्ध है. हिरण्यगर्भरूपकी प्राप्तिकी हेतु उपासना उपनिषद्मैं प्रसिद्ध है, औ उपनिषदुपासना कर्ता जीवही कल्पांतरमैं हिरण्यगर्भपदवीकूं प्राप्त होवै है तैसैं विराट्भावकी प्राप्तिकी उपासनातैं कल्पांतरमैं जीवकूंही विराट्रूपकी प्राप्ति होवै है औ हिरण्यगर्भके ऐश्वर्यतैं विराट्का ऐश्वर्य न्यून है; औ ऐश्वर्यका ऐश्वर्य सर्वसैं उत्कृष्ट है, तामैं अपकृष्ट ऐश्वर्य संभवै नहीं, तैसैं हिरण्यगर्भका पुत्र विराट् होवै है, ताकूं क्षुधापिपासाकी बाधा होवै है; यह गाथा पुराणमैं प्रसिद्ध है, यातैं हिरण्यगर्भ औ विराट्कूं ईश्वरताकथन संभवै नहीं; तथापि सत्यलोकवासी सूक्ष्मसमष्टिका अभिमानी सुखभोक्ता हिरण्यगर्भ तौ जीव है, औ स्थूलसमष्टिका अभिमानी विराट् जीव है, औ सूक्ष्म प्रपंचका प्रेरक अंतर्यामीभी हिरण्यगर्भ शब्दका अर्थ है, तैसैं प्रेरक स्थूलप्रपंचका अंतर्यामी विराट्शब्दका अर्थ

है. चेतन प्रतिबिंबगर्भ अज्ञानरूप अव्याकृतही सूक्ष्मसृष्टिकालमैं ताका प्रेरक होवै तब हिरण्यगर्भ संज्ञक होवै है, स्थूल सृष्टिकालमैं ताका प्रेरक होवै, तब विराट् संज्ञक होवै है. इसरीतिसैं जीवमैं औ ईश्वरमैं हिरण्यगर्भ शब्दकी औ विराट्शब्दकी प्रवृत्ति होवै है परन्तु सूक्ष्मस्थूलके अभिमानी जीवमैं तौ हिरण्यगर्भ शब्द औ विराट्शब्दकी शक्तिवृत्ति है औ द्विविध प्रपंचके प्रेरक ईश्वरमैं तिन शब्दनकी गौणीवृत्ति है. जैसैं जीवरूप हिरण्य-गर्भका औ विराट्का स्वीयतासंबंध सूक्ष्मस्थूल प्रपंचसैं है, तैसैं ईश्वरकाभी सूक्ष्मस्थूल प्रपंचसैं प्रेर्यतासंबंध है, यातैं सूक्ष्मसृष्टि संबंधित्वरूप हिरण्यगर्भ वृत्तिगुणके योगतैं ईश्वरमैं हिरण्यगर्भशब्दकी गौणी वृत्ति है, तैसैं स्थूल-सृष्टिसंबंधित्वरूप विराट्वृत्तिगुणके योगतैं ईश्वरमैं विराट्शब्दकी गौणी वृत्ति है इसरीतिसैं हिरण्यगर्भ विराट्शब्दके जीव ईश्वर दोनूं अर्थ हैं जिस प्रसंगमैं जो अर्थ संभवै ताका ग्रहण करै औ गुरु संप्रदायविना वेदांतग्रंथकूं अवलोकन करै तिनकूं पूर्व उक्त व्यवस्थाका ज्ञान होवै नहीं, यातैं हिरण्यगर्भ विराट् शब्दनतैं कहूं जीवका कहूं ईश्वरका संभवै देखि-कै मोहकूं प्राप्त होवै है. मांडूक्यउपनिषदमैं त्रिविध जीवका त्रिविध ईश्वरतैं अभेदचिंतन लिख्या है. जिस मंदबुद्धिपुरुषकूं महावाक्यविचा-रतैं तत्त्वसाक्षात्कार होवै नहीं ताकूं प्रणवचिंतन मांडूक्यमैं कह्या है. ताका प्रकार विचारसागरके पंचमतरंगमैं स्पष्ट है, तहां विश्वविराट्का औ तैजस हिरण्यगर्भका तथा प्राज्ञ ईश्वरका अभेदचिंतन लिख्या है,यातैं ईश्वरके धर्म सर्वज्ञतादिक प्राज्ञरूप आनन्दमयमैं अभेदचिंतनके अर्थ कहे हैं.औ आनंद-मयकूं ईश्वरताविवक्षासैं नहीं कहैं हैं. जैसैं विश्वविराट्के अभेदचिन्तनके अर्थ वैश्वानरके उन्नीस मुख कहैं हैं, चतुर्दश त्रिपुटी औ पंचप्राण ये उन्नीस विश्वके भोगसाधन होनैतैं विश्वका मुख हैं. औ वैश्वानर ईश्वर है ताकूं भोग होवै नहीं, यातैं विश्वविराट्के अभेदचिंतनके अर्थही विश्वके भोगसाधन पदार्थनकूं वैश्वानरकी भोगसाधनता कही है, विराट्कूं वैश्वानर कहैं हैं. मांडूक्यवचनका अभेदचिंतनमैं तात्पर्य है, वस्तुके स्वरूपके अनुसारही चिंतन

होवै है, यह नियम नहीं है;किंतु अन्यरूपतैं भी चिंतन होवै है, यह अर्थभी विचारसागरमैं स्पष्ट है, यातैं मांडूक्यवचनतैं आनंदमयकूं ईश्वरता सिद्ध होवै नहीं.

आनंदमयकी ईश्वरतामैं विद्यारण्य स्वामीके तात्पर्यका अभाव ॥ १९ ॥

औ विद्यारण्यस्वामीनैंभी ब्रह्मानंदनामग्रंथनमैं "जीवकी अवस्थाविशेष आनंदमयकोश है" यह लिख्या है, तहां यह प्रसंग हैः-जाग्रत्स्वप्नमैं भोगदेनेवाले कर्मसमुदायका नाश हुयें निद्रारूपतैं विलीन अंतःकरणका भोग देनेवाले कर्मके वशतैं घनीभाव होवै है, ताकूं विज्ञानमय कहैं हैं;सोई विज्ञानमय सुषुप्तिमैं विलीन अवस्थावाला अंतःकरणरूपउपाधिके संबंधतैं आनंदमय कहियेहै;इसरीतिसैं विज्ञानमयकी अवस्थाविशेषही आनंदमय कह्या है;यातैं विद्यारण्यस्वामीकूंभी आनंदमयकोशमैं जीवत्वही इष्ट है.यद्यपि विलक्षण लेख देखिकै औ परंपरावचनमैं परंपरातैं यह कहैं हैं;पांच विवेक औ पांच दीप तौ विद्यारण्यकृत हैं, और पांच आनंद भारतीतीर्थकृत हैं,तथापि एकही ग्रंथमैं पूर्व उत्तरका विरोध संभवै नहीं;यातैं पंचदशीग्रंथमैं आनंदमयकूं ईश्वरता विवक्षित नहीं, औ चित्रदीपमैं तिसकूं ईश्वरता कही है, सो मांडूक्यवचनकी नाईं चिंतनीय ईश्वरभेदमैं तात्पर्यसैं कही है; आनंदमयकूं ईश्वरतामैं विद्यारण्यस्वामीका तात्पर्य नहीं, इसरीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं चेतनके च्यारि भेद चित्रदीपमैं कहे हैं, तथापिः-

चेतनके तीनिभेदका विद्यारण्यस्वमीसहित सर्वकूं स्वीकार ॥ २० ॥

दृग्दृश्यविवेक नाम ग्रंथमैं विद्यारण्यस्वामीनैं कूटस्थका जीवमैं अंतर्भाव लिख्या है, तथापि पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसैं जीव तीन प्रकारका है.स्थूलसूक्ष्म भेदद्वयावच्छिन्न कूटस्थचेतन पारमार्थिक जीव है, तिसका ब्रह्मसैं मुख्य अभेद है, मायासैं आवृत कूटस्थमैं कल्पित

अंतःकरणमैं चिदाभास है. सो देहद्वयमैं अभिमानकर्ता व्यावहारिक जीव है ब्रह्मज्ञानसैं पूर्व ताका बाध होवै नहीं,यातैं व्यावहारिक है. निद्रारूपमायासैं आवृतव्यावहारिक जीवरूप अधिष्ठानमैं कल्पित प्रातिभासिक जीव है, स्वप्न अवस्थामैं प्रातिभासिक प्रपंचका अहंममाभिमानी प्रातिभासिकजीव है.ब्रह्मज्ञानसैं विनाही जाग्रत्प्रपंचके बोधसैं प्रातिभासिक प्रपंचकी निवृत्तिकालमैं व्यावहारिक जीवके बोधसैं प्रातिभासिक जीवकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसैं कूटस्थका जीवमैं अंतर्भाव है, यातैं जीवईश्वर शुद्धचेतनभेदसैं त्रिविधचेतन है, यही पक्ष सर्वकूं संमत है औ वार्तिकवचनके अनुकूल है.

जीवका मोक्षदशामैं उक्तपक्षनविषै शुद्ध ब्रह्मसैं औ विवरणपक्षविषै ईश्वरसैं अभेद ॥ २१ ॥

पूर्व उक्त सकलपक्षमैं जीवकी नाईं ईश्वरभी प्रतिबिंबरूप है; यातैं ईश्वरतैं मोक्षदशामैं जीवका अभेद इनके मतमैं होवै नहीं. काहेतैं ? उपाधिके अपसरणतैं एक प्रतिबिंबका अन्यप्रतिबिंबसैं अभेद अनुभवगोचर नहीं; किंतु बिंबसैंही अभेद होवैहै; तैसैं शुद्धचेतनसैंही प्रतिबिंबरूप जीवका मोक्षमैं अभेद होवै है औ विवरणकारके मतमैं बिंबचेतन ईश्वर है; ताके मतमैं ईश्वरसैं ही जीवका अभेद होवैहै.

वेदांतके सिद्धांतमैं प्रक्रियाके भेद.
विवरणकारके मतमैं अज्ञानविषै प्रतिबिंब जीव औ बिंब ईश्वरका निरूपण ॥ २२ ॥

विवरणकारके मतमैं जीव ईश्वरकी उपाधि एकही अज्ञान है. अज्ञानमैं प्रतिबिंब जीव है, बिंब ईश्वर है जहां दर्पणमैं मुखका प्रतिबिंब प्रतीत होवै वहां दर्पणमैं मुखकी छाया नहीं और दर्पणमैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबकी उत्पत्ति नहीं.तैसैं व्यावहारिक प्रतिबिंबकी भी उत्पत्ति नहीं;किंतु दर्पणगोचर चाक्षुषवृत्ति दर्पणसैं प्रतिहत होयकै ग्रीवास्थमुखकूंही विषय करै है. इसरी-

तिसैं ग्रीवास्थमुखमैंही बिंबप्रतिबिंब भाव प्रतीत होवै है. सो ग्रीवास्थ मुख सत्य है, यातैं बिंबप्रतिबिंबका स्वरूपभी ग्रीवास्थमुखरूप होनेतैं सत्य है, परन्तु ग्रीवास्थमुखमैं बिंबत्व प्रतिबिंबत्व धर्म मिथ्या है. अनिर्वचनीय मिथ्या बिंबत्वप्रतिबिंबत्वका अधिष्ठान मुख है. इसरीतिसैं बिंबकी नाईं प्रतिबिंबकाभी स्वरूप सत्य होनेतैं दर्पणस्थानी अज्ञानके सन्निधानसैं शुद्धचेतनमैं बिंबस्थानी ईश्वरकी नाईं प्रतिबिंबस्थानी जीवकाभी स्वरूप सत्य है, यातैं महावाक्यनमैं मुख्यसमानाधिकरण संभवै है, परंतु बिंबत्वरूप ईश्वरत्व औ प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व दोनूं धर्म मिथ्या हैं, तिनका अधिष्ठान शुद्धचेतन है. यद्यपि उक्तरीतिसैं जीवईश्वरकी उपाधि एक अज्ञान है, यातैं दोनूंकूं अज्ञता वा सर्वज्ञता हुई चाहिये,तथापि दर्पणादिक उपाधिके लघुत्वपीतत्वादिक धर्मका आरोप प्रतिबिंबमैं होवै है, बिंबमैं नहीं; यातैं आवरणस्वभाव अज्ञानकृत अल्पज्ञता जीवमैं है, बिंबरूप ईश्वरमैं स्वरूपप्रकाशतैं सर्वज्ञत्व है. यद्यपि बिंब प्रतिबिंबका उक्तरीतिसैं अभेद है; यातैं बिंबप्रतिबिंबके धर्मनका भेद कथन संभवै नहीं. जो बिंबप्रतिबिंबका भेद होवै तौ उक्त व्यवस्था संभवै तथापि दर्पणस्थत्वरूप प्रतिबिंबत्वका ग्रीवास्थमुखमैं भ्रम होवैहै, भ्रमसिद्ध प्रतिबिंबत्वकी अपेक्षासैं बिंबत्व व्यवहार होवै है, यातैं एक मुखमैं बिंबत्वप्रतिबिंबत्व दोनूं आरोपित हैं.तैसैं एकही मुखमैं बिंबत्वप्रतिबिंबत्वरूपतैं धर्मीके भेदका भ्रम होवै है. भ्रांतिसैं प्रतीत जो बिंबप्रतिबिंबका भेद तासैं उक्त व्यवस्था संभवै है इसरीतिसैं विवरणकारके मतमैं अज्ञानमैं प्रतिबिंब जीव है औ बिंबचेतन ईश्वर है अज्ञान अनिर्वचनीय है, यातैं अज्ञानसद्भावकालमैंभी अज्ञानका परमार्थसैं अभाव होनेतैं बिंबप्रतिबिंबरूप चेतनही परमार्थसैं शुद्धचेतन है, यातैं ईश्वरभावकी प्राप्तिभी शुद्धहीकी प्राप्ति है.

अवच्छेदवादीकरि आभासवादका खंडन औ स्वमतका निरूपण ॥ २३ ॥

कोई आचार्य यह कहैं हैं:-अंतःकरणावच्छिन्नचेतन जीव है; औ अंतःकरणसैं अनवच्छिन्नचेतन ईश्वर है; नीरूपचेतनका प्रतिबिंब संभवै

नहीं यद्यपि कूपतडागादिक जलगत आकाशमैं नीलता विशालताके अभाव होनेतैं "नीलं नभः। विशालं नभः" ऐसी प्रतीति होवै है, यातैं विशालता विशिष्ट औ अरोपितनीलताविशिष्ट आकाशका प्रतिबिंब मानना चाहिये औ आकाशमैं रूप है नहीं, यातैं नीरूपकाभी प्रतिबिंब संभवै है; तथापि आकाशमैंभी भ्रांतिसिद्ध आरोपित नीलरूप है. चेतनमैं आरोपित रूपकाभी अभाव होनेतैं ताका प्रतिबिंब संभवै नहीं, जा पदार्थमैं आरोपित वा अनारोपितरूप होवै, ताका प्रतिबिंब होवै है. सर्वथा रूपरहितका प्रतिबिंब होवै नहीं; औ निरूपाधिमैं तौ सर्वथा प्रतिबिंब संभवै नहीं. काहेतैं ? स्वरूप वाले दर्पणादिकनमैं ही प्रतिबिंब देख्या है; यातैं नीरूप अन्तःकरणमैं वा नीरूप अविद्यामैं नीरूपचेतनका प्रतिबिंब संभवै नहीं औ रूपरंहित शब्दका नीरूप आकाशमैं जैसैं प्रतिध्वनिरूप प्रतिबिंब कहैहैं सोभी असंगत है. काहेतैं ? उक्तरीतिसैं आकाश रूपरहित नहीं. और आकाशमैं जो प्रतिध्वनि होवैहै सो शब्दका प्रतिबिंब नहीं. काहेतैं ? जो प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिम्ब मानैं तौ आकाशवृत्ति शब्दका अभाव होवैगा. भेरीदंडादिकनके संयोगतैं पार्थिव शब्द होवैहै; तिस पार्थिवशब्दतैं ताके सन्मुखदेशमैं पाषाणादिक अवच्छिन्न आकाशमैं प्रतिध्वनिरूप शब्द होवैहै; तिस प्रतिध्वनिशब्दका पार्थिव शब्द निमित्तकारण है, यातैं पार्थिवध्वनिके समानही प्रतिध्वनि होवैहै. जो प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिम्ब मानै तौ प्रतिबिम्बकूं अनिर्वचनीय मानैहै, औ विवरणकारके अनुसारी बिम्बस्वरूपही प्रतिबिम्बकूं मानैं हैं इन दोनूं मतमैं आकाशका गुण प्रतिध्वनि नहीं होवैगा. काहेतैं? व्यावहारिक आकाशका गुण प्रातिभासिक संभवै नहीं यातैं अनिर्वचनीय प्रतिबिम्बवादमैं प्रतिध्वनिकूं पार्थिवशब्दका प्रतिबिम्ब मानैं तौ आकाशका गुण कहना संभवै नहीं. औ बिम्बप्रतिबिम्बके अभेदवादमैं पार्थिवशब्दका प्रतिबिम्बरूप प्रतिध्वनिका अपने बिम्बसैं अभेद होनेतैं पृथिवीका गुण प्रतिध्वनि होवैगा; यातैं प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिम्ब मानैं तौ किसी प्रकारतैं आकाशका गुणप्रतिध्वनि है, यह कथन संभवै नहीं. औ प्रतिध्वनिसैं भिन्न शब्द पृथिवी जल

अग्निवायुके हैं, आकाशमैं अन्यप्रकारका शब्द है नहीं; यातैं शब्दरहितही आकाश होवैगा. औ शब्दरहित आकाश है यह मत अशास्त्रीय है. भूतविवेकमैं विद्यारण्यस्वामीनैं यह कह्या है:—कटकटा शब्द पृथिवीका है. चुलचुल शब्द जलका है, भुकूभुकू शब्द अग्निका है, सी सी शब्द वायुका है, प्रतिध्वनिरूपशब्द आकाशका है; तैसैं अन्यग्रंथकारोंनैं भी आकाशका गुणही प्रतिध्वनि कह्या है;यातैं शब्दका प्रतिबिम्ब प्रतिध्वनि नहीं; किंतु आकाशका स्वतंत्र शब्द प्रतिध्वनि है. ताका उपादानकारण आकाश है. औ भेरी आदिकनमैं जो पार्थिव ध्वनि होवै, सो प्रतिध्वनिका निमित्तकारण है,यातैं रूपरहित प्रतिबिम्ब संभवै नहीं. जो प्रतिबिम्बवादी इसरीतिसैं कहै कूपादिकनके आकाशमैं "विशालमाकाशम्" यह प्रतीति होवै है. औ कूपदेशके आकाशमैं विशालता है नहीं, यातैं बाह्यदेशस्थ रूपरहित विशाल आकाशका कूपजलमैं प्रतिबिंब होनेतैं रूपरहित चेतनका प्रतिबिम्ब संभवै है; तथापि रूपवाले उपाधिमैंही प्रतिबिम्ब होवै है. रूपरहित उपाधिमैं प्रतिबिम्ब संभवै नहीं. आकाशके प्रतिबिम्बका उपाधि कूपजल है, तामैं रूप है औ अविद्या अन्तःकरणादिक रूपरहित हैं. तिनमैं चेतनका प्रतिबिम्ब संभवै नहीं, यातैं अन्तःकरणावच्छिन्नचेतन जीव है औ अन्तःकरणसैं अनवच्छिन्न चेतन ईश्वर है. अथवा—

अवच्छेदवादका कथन ॥ २४ ॥

अविद्यावच्छिन्न चेतन जीव है औ मायावच्छिन्न चेतन ईश्वर है, अन्तःकरणसैं अवच्छिन्नचेतन जीव और अनवच्छिन्नचेतन ईश्वर है इस पक्षका खंडन ॥ २५ ॥

अन्तःकरणावच्छिन्नकूं जीव मानैं औ अनवच्छिन्नकूं ईश्वर मानैं तौ ब्रह्मांडसैं बाह्य देशस्थचेतनमैं ईश्वरता होवैगी. काहेतैं ? ब्रह्मांडमैं अनंत जीवनके अनंत अन्तःकरण व्याप्त हैं, यातैं अन्तःकरणानवच्छिन्नचेतनका ब्रह्मांडके मध्यलाभ संभवै नहीं. जो ब्रह्मांडसैं बाह्य देशमैं ही ईश्वरका सद्-

भाव मानैं तौ अंतर्यामिप्रतिपादक वचनसैं विरोध होवैगा, "यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानमंतरो यमयति" इसवचनमैं विज्ञानपदबोध्य जीवदेशमैं ईश्वरका सद्भाव कह्या है, यातैं अन्तःकरणसैं अनवच्छिन्न ईश्वर नहीं; किंतु मायावच्छिन्नचेतनही ईश्वर है औ अन्तःकरणसैं अनवच्छिन्नकूं ईश्वरता मानैं तौ अन्तःकरणसैं संबंधाभावही ईश्वरताकी उपाधि सिद्ध होवै है. औ ईश्वरमैं सर्वज्ञतादिक उपाधिकृत हैं; अभावरूप उपाधिसैं सर्वज्ञतादिक धर्मनकी सिद्धि होवै नहीं. औ—

तृप्तिदीपमैं विद्यारण्यस्वामी उक्त अन्तःकरणके सम्बन्ध औ ताके अभावके उपाधिपनेका अभिप्राय ॥ २६ ॥

विद्यारण्यस्वामीनैं तृप्तिदीपमैं यह कह्या है:—जैसैं अन्तःकरणका संबन्ध उपाधि है, तैसे अन्तःकरणके संबंधका अभावभी उपाधि है. जैसैं लोहकी शृंखलासे संचारका निरोध होवै है, तैसैं सुवर्णकी शृंखलासैंभी संचारका निरोध होवै है. इसरीतिसे अन्तःकरके सम्बन्धरूप भाव उपाधिसैं जीवस्वरूपका बोध होवै है औ उक्त सम्बन्धके अभावतैं परमात्मस्वरूपका बोध होवै है; इसरीतिसैं विद्यारण्यस्वामीनैं अन्तःकरणराहित्यभी उपाधि कह्या है. ताका यह अभिप्राय है:—जैसे अन्तःकरणसम्बन्धसैं जीवस्वरूपका बोध होवै है, तैसैं अन्तःकरणराहित्यसैं ब्रह्मस्वरूपका बोध होनैतैं ब्रह्मके बोधका उपयोगी अन्तःकरणराहित्यभी है, यातैं विद्यारण्यस्वामीके वचनतैंभी अभावरूप उपाधिसैं ईश्वरमैं सर्वज्ञतादिकनकी सिद्धि प्रतीत होवै नहीं.

अवच्छेदवादके भेद पूर्वकताकी समाप्ति ॥ २७ ॥

यातैं मायावच्छिन्न चेतनही ईश्वर है, ईश्वरका उपाधि माया सर्व देशमैं है, यातैं ईश्वरमैं अंतर्यामिताभी संभवै है. औ अन्तःकरण अवच्छिन्नकं जीव मानै तौ कर्ता भोक्ता चेतनके प्रदेशभिन्न होवैंगे; यातैं कृतका नाश औ अकृतकी प्राप्ति होवैगी. यातैं अविद्यावच्छिन्नचेतनही जीव है

अन्तःकरणावच्छिन्नचेतन जीव नहीं. इसरीतिसें कितने ग्रन्थकार अव-च्छेदवादकूं ही मानैहैं औ प्रतिबिंबके प्रतिपादक श्रुतिस्मृतिवचनोंका विरोधपरिहार तिनके ग्रंथनमैं स्पष्ट है. औ-

सिद्धांतमुक्तावलिआदिक विषै उक्त एक जीव (दृष्टिसृष्टि) वादका निरूपण ॥ २८ ॥

सिद्धांतमुक्तावलीकारादिकनका यह मत हैः-

दोहाः-ज्यूं अविकृत कौंतेयमैं, राधापुत्र प्रतीति ॥
चिदानंदघन ब्रह्ममैं, जीवभाव तिहँरीति ॥ १ ॥

सदा असंग नित्यमुक्त चिदानंद ब्रह्ममैं कल्पित अविद्यादिकनके संबंधसैं प्रतिबिंबितता तथा अवच्छिन्नता संभवै नहीं. जैसे मृगतृष्णाके जलसैं पूरित वंध्यासुतकुलालने शशशृङ्गके दंडसैं रचितघटके संबंधसैं आकाशमैं प्रतिबिंबितता वा अवच्छिन्नता होवै नहीं; किंतु आकाशके समानसत्तावाले जलपूरित घटतडागादिकनके संबंधसैं ही आकाशमैं प्रतिबिंबितता औ अवच्छिन्नता होवैहै. अविद्या औ ताका कार्य ब्रह्मचेतनके समानसत्तावाले नहीं किंतु स्वतःसत्ताशून्य है औ ब्रह्मकी सत्तासैं सत्तावाले अविद्यादिक हैं. यातैं शशशृङ्गादिकनकी नाईं अत्यंत अलीक अविद्यादिकनतैं चेतनका संबंध कथनही संभवै नहीं; विनके संबन्धसैं प्रतिबिंबिततादिक तौ अत्यंत दूरहैं यातैं सदा एकरस ब्रह्म है, ताके विषै अवच्छिन्नता वा प्रतिबिंबितता रूप जीवता संभवै नहीं, किंतु कल्पित अज्ञानके कल्पितसंबंधसैं ब्रह्ममैं विना हुया जीवत्व प्रतीत होवैहै. जैसे अविकारी कुंतीपुत्रमैं राधापुत्रताकी प्रतीति भ्रमरूप हुई है, तैसैं प्रतिबिंबादिक विकारविनाही ब्रह्ममैं जीवत्व भ्रम होवैहैं. औ प्रतिबिम्बरूप वा अवच्छेदरूप जीवभावकी प्राप्ति होवै नहीं. स्वाविद्यासैं जीवभावापन्न ब्रह्महीं प्रपंचका कल्पक होनेतैं सर्वज्ञत्वादिक धर्मसहित ईश्वरभी या पक्षमैं जीव कल्पित है. जैसैं स्वप्नकल्पित राजाकी सेवातैं स्वप्नमैं फलकी प्राप्ति होवैहै, तैसैं स्वप्नकल्पित ईश्वरभजनतैं फलकी प्राप्तिभी

संभवैहै; इसरीतिसैं अनादि अविद्याके बलतैं स्वकीय ब्रह्मभावके आवरणतैं जीवत्व भ्रम होवैहै. "तत्त्वमस्यादि" वाक्यजन्य साक्षात्कारतैं जीवत्वभ्रमकी निवृत्ति होवैहै, भ्रमकालमें भी जीवत्व है नहीं; किंतु नित्यमुक्त चिदानंदस्वरूप ब्रह्मही है. यह पक्षही भाष्यकार वार्तिककारनैं बृहदारण्यके व्याख्यानमैं कर्णके दृष्टांतसैं प्रतिपादन कियाहै. जैसे कुंतीपुत्रकर्णकूं हीनजातिके संबंधसैं निकृष्टता भ्रम हुया है औ अनेकविध तिरस्कारजन्य दुःखका अनुभव करता हुवा स्वतःसिद्ध कुन्तीपुत्रतानिमित्तक उत्कर्षसैं प्रच्युत हुयाहै.

कदाचित् एकांतमैं सूर्य भगवाननैं कह्या "तू राधापुत्र नहीं, किंतु मेरे संबंधसे कुन्तीउदरसैं उत्पन्न हुयाहै" इसप्रकारके सूर्यवचनतैं अपनेमैं हीन जातिके भ्रमकूं त्यागिकै स्वतःसिद्धकुंतीपुत्रतानिमित्तक उत्कर्षकूं जानता हुया. तैसैं चिदानन्द ब्रह्मभी अनादि अविद्याके संबंधसैं जीवत्वभ्रमकूं प्राप्तहुवा स्वतःसिद्ध ब्रह्मभावका विस्मरण करिकै अनेकविध दुःखकूं अनुभव करैहै.

कदाचित् अपने अज्ञानतैं कल्पितस्वप्न कल्पितआचार्यके तुल्य आचार्यद्वारा महावाक्यश्रवणतैं स्वगोचरविद्यासे अविद्याकी निवृत्ति हुयां नित्य परमानंदका स्वरूप चैतन्य अनुभव करैहै. इसरीतिसैं बृहदारण्यके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं औ वार्तिककारनैं लिख्याहै. जैसे जीवकी अविद्याकल्पित आचार्य वेदोपदेशके हेतु हैं. तैसैं ईश्वरभी स्वप्नकल्पित राजाकी नाईं जीवकल्पितही भजनतैं फलका हेतु; या मतमें एक जीववाद है यातैं एक जीवकल्पित ईश्वरभी एकही है; नाना ईश्वरकी आपत्ति नहीं. शुक वामदेवादिकनकी मुक्ति प्रतिपादक शास्त्रसभी स्वप्नकल्पित नाना पुरुषनकी नाईं जीवाभासही नानासिद्ध होवैं हैं. नानाजीववादकी सिद्धि होवै नहीं. जैसे स्वप्नमें एक द्रष्टाकूं नाना पुरुष प्रतीत होवैं, तिनमैं कोई महावनमैं उत्पथगामी हुये व्याघ्रादिजन्य दुःखकूं अनुभव करैहैं; कोई राजमार्गमैं आरूढ होयकैं स्वनगरकूं प्राप्त होवैंहैं, तहां वनमैं भ्रमण औ स्वनगरकी प्राप्ति स्वप्न द्रष्टाकूं नहीं किंतु आभास पुरुषनकूं होवैं हैं. तैसैं अविद्यासहित ब्रह्मरूप जीवकूं बंधमोक्षकी प्राप्ति नहीं; किंतु आभासरूप जीवनकूं बन्धमोक्ष प्रतीत होवैंहैं.

या पक्षमैं किसके ज्ञानतैं अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवैगा, यह प्रश्न करै तौ तेरे ज्ञानतैं होवैगा, यह उत्तर है:-अथवा किसीके ज्ञानतैं मोक्ष होवै नहीं, यह उत्तर है काहेतें ? या मतमैं बंधका अत्यन्त असद्भाव आत्मामैं है. नित्यमुक्त आत्माका मोक्ष होवैगा अथवा हुवा है; यह कथन संभवै नहीं. इस अभिप्रायतैं मोक्षप्रतिपादक वाक्यनकूं अर्थवाद कहैं हैं. औ बंध है अद्यपर्यंत कोई मुक्त हुवा नहीं, आगै पुरुषार्थसैं मोक्ष होवैगा इस अभिप्रायतैं वामदेवादिकनकी मुक्तिप्रतिपादक वाक्यनकूं अर्थवाद नहीं कह्या. काहेतैं ? जो बंध होतें वामदेवादिकनका मोक्ष नहीं हुया तौ आगेभी मोक्षकी आशा निष्फल है; या बुद्धिसैं श्रवणमैं प्रवृत्तिकाही अभाव होवैगा, यातैं आत्मामैं बंधका अत्यंत सद्भाव है, नित्यमुक्त ब्रह्मरूप आत्मा है ताका मोक्ष संभवै नहीं; यह उत्तमभूमिकारूढ विद्वान्‌का निश्चय है.

वेदांतसिद्धांतकी नाना प्रक्रियाका तात्पर्य सकल अद्वैतग्रन्थनके तात्पर्यका विषय ॥ २९ ॥

नित्यमुक्त आत्मस्वरूपके ज्ञानतैं दुःखपरिहार औ सुखकी प्राप्तिके निमित्त अनेकविध कर्तव्य बुद्धिजन्य क्लेशकी निवृत्ति वेदांत श्रवणका फल है, आत्मस्वरूपमैं बंधका नाशरूप वा परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष वेदांत श्रवणका फल नहीं वेदांत श्रवणतैं पूर्वही आत्मामैं बंधका लेश नहीं तथापि अत्यंत असत् बंधकी प्रतीति होवै है; यातैं भ्रमतैंही वेदांतश्रवणमैं प्रवृत्ति होवै है जाकूं बंधभ्रम नहीं होवै ताकी प्रवृत्ति होवै नहीं सकल अद्वैतशास्त्रका इसपक्षमैं ही तात्पर्य है.

जीवईश्वर विषै सर्वग्रन्थकारनकी संमतिका एकत्र निर्णय ॥ ३० ॥

इसरीतिसैं जीवईश्वरका स्वरूपनिरूपण ग्रंथकारोंनैं बहुत विस्तारसैं लिख्या है, तहां जीवके स्वरूपमैं तौ एकत्व अनेकत्वका विवाद है; औ सर्वमतमैं ईश्वर एक है, सर्वज्ञ है, नित्यमुक्त है, ईश्वरमैं आवरणका अंगीकार किसी अद्वैतवादके ग्रंथमैं नहीं. जो ईश्वरमैं आवरण कहै, सो वेदांतसंप्रदायतैं बहिर्भूत है.

परंतु नाना अज्ञानवादमैं जीवाश्रित ब्रह्मविषयक अज्ञानहै. यह वाचस्पतिका मत है. तहां जीवके अज्ञानतैं कल्पित ईश्वर औ प्रपंच नाना मानें हैं, तथापि जीवके अज्ञानसैं कल्पित ईश्वरभी सर्वज्ञही मानें हैं ईश्वरमैं आवरणका अंगीकार नहीं.

विवरणकारकी रीतिसैं प्रतिबिंबके स्वरूपका निरूपण ॥ ३१ ॥

जीवईश्वरके स्वरूपनिरूपणमैं प्रतिबिंबका स्वरूप निरूपण करैं हैं. विवरणकारके मतमैं दर्पणादिक उपाधिस प्रतिहत नेत्रकी रश्मि ग्रीवास्थमुखकूं विषय करै है. जहां द्रष्टासैं भिन्नपदार्थकाभी दर्पणसैं अभिमुखतारूपसंबंध होवै, तहां दर्पणसैं संबंधी होयक प्रतिहतनेत्रका द्रष्टासैं भिन्नभी दर्पणाभिमुख पदार्थस संबंध होयकै स्वस्थानमैं ही ताका साक्षात्कार होवै है. जहां अनेक पदार्थ दर्पणके अभिमुख होवैं तहां प्रतिहत नेत्रस अनेकपदार्थनका साक्षात्कार होवैहै दर्पणाभिमुख उद्भूतरूपवान् होवै ताम प्रतिहत नेत्रजन्य साक्षात्कारकी योग्यता है; यातैं दर्पणाभिमुख पदार्थके सन्मुख नेत्रकी वृत्ति जावै है, स्वगोलकमही नेत्रकी वृत्ति आवै. यह नियम नहीं, इसरीतिसैं विवरणकारके मतमैं ग्रीवास्थमुखकाही साक्षात्कार होवै है; परंतु पूर्वाभिमुख ग्रीवास्थ मुखमैं प्रत्यङ्मुखत्व दर्पणस्थत्व स्वभिन्नत्व भ्रम होवैहै; यातैं दर्पणमैं पूर्वाभिमख प्रतिबिंब है औ मेरे मुखसैं भिन्न है ऐसा व्यवहार होवै है.

या पक्षमैं यह शंका है:—जो बिंबभूत मुखादिकनकाही प्रतिहत नेत्रसैं साक्षात्कार होवैं तौ सूर्यके प्रकाशतैं नेत्रका प्रतिरोध होवै, यातैं जलसैं प्रतिहत नेत्रसभी सूर्यके साक्षात्कारके असंभवतैं जलदेशमैं सूर्यतैं भिन्नताके प्रतिबिंबकी उत्पत्ति माननी चाहिये. औ बिंबके साक्षात्कारके अर्थ उपाधिसैं सबधी होयक नेत्रकी रश्मिकी प्रतिहति मानैं तौ जलके अंतर्गत सिकताका साक्षात्कार नहीं हुया चाहिये इन दोनूं शंकाके ये समाधान हैं:—केवल नेत्रका आकाशस्थ सूर्यके प्रकाशतैं अवरोध होवै है औ जलादिक उपाधिसैं प्रतिहित नेत्रका सूर्यप्रकाशतैं अवरोध

होवै नहीं. तैसैं कोई नेत्ररश्मिजलमैं प्रविष्ट होयकै तिसके अंतर्गत सिकताकूं विषय करैहै. तिसी नेत्रकी अन्य रश्मि प्रतिहत होयकै बिम्बकूं विषय करै है; यह दृष्टके अनुसार कल्पना है; यातैं बिम्बसैं भिन्न प्रतिबिंब नहीं; यह ही विवरणकारका मत है.

विद्यारण्यस्वामीके औ विवरणकारके मतकी विलक्षणता ॥ ३२ ॥

विद्यारण्यस्वामी आदिकोंनैं पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसैं त्रिविध जीव कह्याहै. व्यावहारिक अंतःकरणमैं प्रतिबिंबकूं व्यावहारिक जीव कहैहैं, स्वप्न अवस्थाके प्रातिभासिक अंतःकरणमैं प्रतिबिंबकूं प्रातिभासिक जीव कहै हैं, विवरणकारकी रीतिसैं बिम्बसैं पृथक् प्रतिबिम्बके अभावतैं जीवके तीनि भेद संभवैं नहीं; यातैं त्रिविध जीववादके अनुसारी बिम्बप्रतिबिम्बका भेद मानैं हैं; तिनके मतमैं दर्पणादिक उपाधिमैं अनिर्वचनीयप्रतिबिम्बकी उत्पत्ति होवैहै. प्रतिबिम्बका अधिष्ठान दर्पणादिक हैं, औ बिंबका सन्निधान निमित्तकारण है. यद्यपि निमित्तकारणके अभावतैं कार्यका अभाव होवै नहीं, औ बिम्बके अपसरणतैं प्रतिबिंबका अभाव होवै है; तथापि निमित्तकारणके दो भेद हैं. कोई तौ कार्यतैं अव्यवहित पूर्वकालवृत्ति निमित्तकारण होवै है, कोई कार्यकालवृत्ति निमित्तकारण होवैहै. घटादिकनके दंडकुलालादिक निमित्तकारण हैं, सो कार्यतैं पूर्वकाल वृत्ति चाहिये. घटादिकनकी सत्ता हुयां तिनकी अपेक्षा नहीं; तैसैं प्रत्यक्षज्ञानमैं स्वविषय निमित्तकारण है; तहां विषयकी सत्ता ज्ञानकालमैं अपेक्षित है, विनाशाभिमुख घटसैं नेत्रका संयोग हुयां भी घटका साक्षात्कार होवै नहीं, यातैं ज्ञानकालमैं वर्तमान घटादिकही अपने साक्षात्कारके निमित्तकारण हैं; औ दूरस्थ नानापदार्थनमैं एकत्व भ्रम होवैहै, मंदांधकारस्थ रज्जुमैं सर्पभ्रम होवैहै; यातैं एकत्व भ्रमका निमित्तकारण दूरस्थत्वदोष है रज्जुमैं सर्पभ्रमका निमित्तकारण मन्दांधकारहै दूरस्थत्व औ मन्दांधकारका अभाव हुयां एकत्वभ्रम औ सर्पभ्रमका अभाव होनेतैं कार्यकालमैं

वर्तमान दूरस्थत्व औ मंदांधकार, उक्त विविध अध्यासके निमित्तकारण हैं. तिसरीतिसैं बिम्बका सन्निधानभी कार्यकालमैं वर्तमानही प्रतिबिम्ब अध्यासका हेतु होनेतैं बिम्बके अपसरणतैं प्रतिबिम्बका अभाव संभवै है; यातैं सन्निहित बिम्ब तौ प्रतिबिम्बका निमित्तकारण है. भ्रमका अधिष्ठानही उपादानकारण कहिये है, यातैं प्रतिबिम्बके उपादानकारण दर्पणादिक है. औ विवरणकारके मतमैं प्रतिबिम्बका स्वरूप तौ बिम्बसैं भिन्न नहीं परंतु दर्पणस्थत्व विपरीतदेशाभिमुखत्व बिम्बभिन्नत्व धर्मकी उत्पत्ति ग्रीवास्थ मुखमैं होवैहै, सोभी तीनूं धर्म अनिर्वचनीय हैं. तिनका अधिष्ठानरूप उपादानकारण ग्रीवास्थमुख है, सन्निहित दर्पणादिक निमित्त कारण है; इसरीतिसैं चेतनके प्रतिबिंबवादमैं दो मत हैं. विवरणकारके मतमैं प्रतिबिम्बका बिम्बसैं अभेद होनेतैं प्रतिबिंबका स्वरूप सत्य है औ विद्यारण्यस्वामी आदिकनके मतमैं दर्पणादिकनमैं अनिर्वचनीयमुखाभासकी उत्पत्ति होवै है. याकूंही आभासवाद कहैं हैं विवरणउक्तपक्षकूं प्रतिबिम्बवाद कहैहै. दोनूं पक्षनका परस्पर खंडन औ स्वपक्षका मंडन बृहद्ग्रन्थनमैं स्पष्ट है. विस्तारभयतैं लिख्या नहीं.

दोनूंके पक्षनकी उपादेयता ॥ २३ ॥

प्रतिबिम्बवादमैं अथवा आभासवादमैं आग्रह नहीं, चेतनमैं संसारधर्मका संभव नहीं औ जीव ईशका परस्पर भेद नहीं, इस अर्थके बोधके अर्थ अनेक रीति कही हैं जिस पक्षसैं असंग ब्रह्मात्मबोध होवै सोई पक्ष आदरणीय है.

बिम्बप्रतिबिंबके अभेद पक्षकी रीतिकी अभेदके बोधनमैं सुगमता ॥ २४ ॥

तथापि बिम्बप्रतिबिम्बके अभेदपक्षकी रीतिसैं असंगब्रह्मात्मबोध अनायासतैं होवै है. काहेतैं ? दर्पणादिकनमैं मुखादिकनका लौकिक प्रतिबिंब होवैहै, तहांभी बिम्बका स्वरूप तौ सदा एकरस है, उपाधिके सन्निधा-

नतैं बिंबप्रतिबिम्बका भेदभ्रम होवै है, तैसे ब्रह्म चेतन तौ सदा एकरस है. अज्ञानादिक उपाधिके संबंधतैं जीवभाव ईशभावकी प्रतीतिरूप भ्रम होवै है. इसरीतिसैं असंगचेतनमैं जीवईशभेदका सर्वथा अभाव है. जीवत्व ईश्वरत्व धर्म तौ परस्पर भिन्न कल्पित हैं औ परस्पर भिन्नधर्मी कल्पितभी नहीं; यातैं बिंबप्रतिबिंबका अभेदवाद अद्वैतमतके अत्यंत अनुकूल है.

प्रतिबिंबविषे विचार

आभासवाद औ प्रतिबिंबवादसैं किंचिद्भेद ॥ ३५ ॥

आभासवादमैं जैसैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंब है ताका अधिष्ठान दर्पणादिक उपाधि है तैसैं विवरणोक्त प्रतिबिंबवादमैंभी दर्पणस्थत्वविपरीतदेशाभिमुखत्वादिक धर्म अनिर्वचनीय हैं तिनका अधिष्ठान मुखादिक बिंब हैं, यातैं दोनूंपक्षनमैं अनिर्वचनीयका परिणामी उपादान अज्ञान कह्या चाहिये.

प्रतिबिंबकी छायारूपताका निषेध ॥ ३६ ॥

औ कोई ग्रन्थकार छायाकूं प्रतिबिंब मानैं है सो संभवै नहीं. काहेतैं ? शरीरवृक्षादिकनतैं जितने देशमैं आलोकका अवरोध होवै, उतने देशमैं आलोकविरोधी अंधकार उपजै है; तिस अंधकारकूं छाया कहैं हैं. अंधकारका नीलरूप होनेतैं छायाकाभी नियमतैं नीलरूप होवै है. औ स्फटिक मौक्तिकका प्रतिबिम्ब श्वेत होवैहै. सुवर्णका प्रतिबिम्ब पीतरूपवाला होवै है, रक्तमाणिक्यके प्रतिबिम्बमैं रक्तरूप होवै है. प्रतिबिम्बकूं छायारूप मानैं तौ सकल प्रतिबिम्बनका नीलरूप चाहिये. यातैं छायारूप प्रतिबिम्ब नहीं.

प्रतिबिंबकी बिंबसैं भिन्न व्यावहारिक द्रव्यरूपताका निषेध ॥ ३७ ॥

और जो कोई इसरीतिसैं कहैः—यद्यपि अंधकारस्वरूप छायासैं प्रतिबिम्बका भेद है, तथापि मीमांसाके मतमैं जैसैं आलोकाभावकूं अंधकार नहीं मानैं है. किन्तु आलोकविरोधी भावरूप अंधकार है, तामैं क्रिया होनेतैं औ नीलरूप होनेतैं अंधकार द्रव्य है, क्रिया औ गुण द्रव्यमैंही होवै है.

जैसैं दशमद्रव्य अंधकार है, तैसैं प्रतिबिम्बभी पृथिवी जलादिकनतैं भिन्नद्रव्य है. इसरीतिसैं प्रतिबिम्बकूं स्वतंत्र द्रव्य मानैं ताकूं यह पूछ्या चाहियेः–सो प्रतिबिम्ब नित्यद्रव्य है अथवा अनित्यद्रव्य है? जो नित्यद्रव्य होवै तौ आकाशादिकनकी नाईं उत्पत्तिनाशहीन होनेतैं प्रतिबिम्बके उत्पत्ति नाश प्रतीत नहीं हुये चाहियें? यातैं प्रतिबिम्बकूं अनित्यद्रव्य कहै तौ उपादानके देशमैं कार्य द्रव्य रहैहै; यातैं प्रतिबिम्बके उपादानकारण दर्पणादिकही माननें होवैंगे औ दर्पणादिकनकूं प्रतिबिंबकी उपादानता संभवै नहीं. काहेतैं? दर्पणादिक उपादानमैं जो प्रतिबिम्बरूप द्रव्यका सद्भाव मानैं ताकूं यह पुछ्या चाहियेः–प्रतिबिंबमैं जो रूप और ह्रस्वदीर्घादिक परिणामस्वरूपगुण, तथा बिम्बसैं विपरीताभिमुखत्वादिक धर्म, औ हस्तपादादिक अवयव जो प्रतिबिम्बमैं प्रतीत होवैहैं; सो प्रतिबिम्बमैं व्यावहारिक हैं अथवा नहीं हैं। किंतु मिथ्या प्रतीत होवै हैं? जो रूप परिमाणादिकनका प्रतिबिम्बमैं व्यावहारिक अभाव मानैं औ प्रतिबिम्बके रूपादिकनकूं प्रातिभासिक मानैं तौ व्यावहारिक द्रव्यस्वरूप प्रतिबिम्बका अंगीकार निष्फल है. औ प्रतिबिम्बके रूपपरिमाणादिकनकूं व्यवहारिक मानैं तौ अल्पपरिमाणवाले दर्पणमैं महापरिमाणवाले अनेक प्रतिबिम्बनकी उत्पत्ति संभवै नहीं. औ प्रतिबिम्बमिथ्यात्वमैं तौ शरीरके मध्यसंकुचितदेशमैं स्वप्नके मिथ्याहस्ती आदिकनकी उत्पत्ति होनेतैं उक्त दोषका संभव नहीं. तैसैं प्रतिबिम्बकूं व्यावहारिक द्रव्य कहैं तौ एकविधरूपवाले दर्पणमैं दर्पणके समानरूपवाले प्रतिबिम्बकी ही उत्पत्ति हुई चाहिये औ अनेकविधरूपवाले अनेक प्रतिबिम्बनकी एकदर्पणमैं उत्पत्ति होवैहै. एक रूपवाले उपादानसैं अनेकविधरूपवाले अनेक उपादेयकी उत्पत्ति होवै नहीं, औ दर्पणके मध्य वा दर्पणके अतिसमीप अन्यपदार्थ कोई प्रतीत होवै नहीं; जासैं अनेकविधरूपवाले प्रतिबिम्बनकी उत्पत्ति संभवै, यातैं व्यावहारिक द्रव्यरूप कहना प्रतिबिम्बकूं संभवै नहीं. किंवा दर्पणके अतिसमीप और कोई प्रतिबिम्बका उपादान दीसै नहीं, दर्पणही

उपादान मानना होवैगा सो संभवै नहीं. काहेतैं ? सघनअवयवसहित पूर्व- की नाईं अविकारी प्रतीत होनेतैं दर्पणमैं निम्न उन्नत हनु नासिकादिक अनेकविध अवयववाले द्रव्यांतर प्रतिबिम्बकी उत्पत्ति कहना सर्वथा युक्ति- हीन है, यातैं बिम्बसैं पृथक् व्यावहारिक द्रव्यस्वरूप प्रतिबिंब है, यह पक्षभी छायावादकी नाईं असंगत है.

आभासवाद औ प्रतिबिम्बवादकी युक्तिसहितता कहिके दोनूं पक्षनमैं अज्ञानकी उपादानता ॥ ३८ ॥

इसरीतिसे सन्निहित दर्पणादिकनतैं मुखादिक अधिष्ठानमें प्रतिबिम्ब- त्वादिक अनिर्वचनीय धर्म उपजै है अथवा सन्निहित मुखादिकनतैं दर्पणादिक अधिष्ठानमैं अनिर्वचनीय प्रतिबिम्ब उपजै है । यह दोही पक्ष युक्तिसं[illegible]त हैं, यातैं अनिर्वचनीय धर्मका वा अनिर्वचनीय प्रतिबिम्बका उपादानकारण अज्ञान कह्या चाहिये.

मूलाज्ञानकूं वा तूलाज्ञानकूं प्रतिबिम्ब वा ताके धर्मनकी उपादानताके असंभवकी शंका ॥ ३९ ॥

तहां जगत्का साधारण कारण मूलाज्ञानही प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनका वा धर्माका उपादानकारण कहैं तौ आकाशादिकनकीनाईं मूलाज्ञानके कार्य होनेतैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्म वा धर्मी प्रतिबिंबभी सत्य हुये चाहियें औ उक्त रीतिसैं अनिर्वचनीय माने हैं, यातैं मूलाज्ञानकूं अनिर्वचनीयकी उपादानता संभवै नहीं; तैसैं विवरणकारके मतमैं मुखावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकं प्रति- बिंबत्वादि धर्मनका उपादान मानैं, औ विद्यारण्यस्वामी आदिकनके मतमैं दर्पणावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं प्रतिबिंबका उपादान मानैं तौ अवस्था अज्ञानके कार्यकूं अनिर्वचनीयता होनेतैं सत्यताकी आपत्ति तौ यद्यपि नहीं है, तथापि अधिष्ठानसैं अनिर्वचनीयकी निवृत्ति होवै है; औ प्रतिबिम्बा- ध्यासका अधिष्ठान उक्तरीतिसैं मुखावच्छिन्न चेतन वा दर्पणावच्छिन्न चेतन है; औ मखका ज्ञान वा दर्पणका ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञान है; तिसतैं उत्तर

कालमैंभी प्रतिबिम्बकी प्रतीति सर्वके अनुभवसिद्ध है; यातैं मुखावच्छिन्न चेतनका वा दर्पणावच्छिन्नचेतनका आवरक अवस्थाज्ञानभी प्रतिबिम्बाध्यासका उपादान संभवै नहीं.

उक्त शंकाका कोईक ग्रन्थकारकी रीतिसैं समाधान ॥ ४० ॥

या स्थानमैं कोई ग्रन्थकार इसरीतिसैं समाधान करैं हैं:—यद्यपि शुक्तिरजतादिक अध्यासमैं अधिष्ठानके विशेष ज्ञानमें आवरणशक्ति औ विक्षेपशक्तिरूप अज्ञानके दोनूं अंशनकी निवृत्ति होवै है; तथापि अनुभवके अनुसारतैं प्रतिबिंबाध्यासके अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञानके आवरणशक्तिअंशकीही निवृत्ति होवै है, यातैं अधिष्ठानज्ञानतैं आवरणशक्तिरूप अंशकी निवृत्ति हुयेभी प्रतिबिम्बादिक औ तिनका ज्ञानरूप विक्षेपका हेतु अज्ञानका अंश रहनेतैं अधिष्ठानज्ञानतैं उत्तरकालमैं भी प्रतिबिम्बादिक प्रतीत होवैं हैं; यातैं **उपाधिअवच्छिन्न चेतनस्थ तूलाज्ञानका कार्य प्रतिबिम्बाध्यास है** यह पक्ष संभवै है.

उक्त शंकाका अन्यग्रंथकारोंकी रीतिसैं समाधान ॥ ४१ ॥

अन्य ग्रन्थकारोंका यह मत है—दर्पणादिकनका उपादान मूलाज्ञान ही प्रतिबिम्बाध्यासका उपादान है, यातैं दर्पणादिकनके ज्ञान हुयेंभी प्रतिबिम्बकी प्रतीति होवैहै. ब्रह्मके ज्ञानतैं ब्रह्मचेतनके आवरक अज्ञानकी औ ताके कार्यकी निवृत्ति होवै है दर्पणादिकनके ज्ञानतैं दर्पणादिक अवच्छिन्न चेतनके आवरक अज्ञानकी निवृत्ति हुयेंभी ब्रह्मस्वरूप आवरक अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं. ब्रह्मात्मस्वरूपके आच्छादक अज्ञानकूं **मूलाज्ञान** कहैं हैं, उपाधिअवच्छिन्नचेतनके आच्छादक अज्ञानकूं **अवस्थाज्ञान** कहैं हैं, ताहीकूं **तूलाज्ञान** कहैं हैं; मूलाज्ञानसैं लाज्ञानका भेद है वा अभेद है, यह विचार आगे लिखैंगे.

मूलाज्ञान औ तूलाज्ञानके भेदविषै किंचित् विचार ॥ ४२ ॥

यद्यपि मूलाज्ञानकूं प्रतिबिम्बाध्यासकी उपादानता मानैं तौ दर्पणादिकन

की नाईं व्यावहारिकही प्रतिबिम्बादिकभी हुये चाहियें; औ ब्रह्मज्ञानसैं विना-ही प्रतिबिम्बत्वादिक धर्मनमैं तथा प्रतिबिम्बमैं मिथ्यात्व बुद्धि होनेतैं प्राति-भासिक हैं. मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तौ प्रातिभासिक-ता संभवै नहीं, तथापि ब्रह्मज्ञानसैं निवर्तनीय अज्ञानका कार्य व्यावहारिक है, औ ब्रह्मज्ञानसैं विनाही निवर्तनीय अज्ञानका कार्य प्रातिभासिक है. इसरीतिसैं व्यावहारिक प्रातिभासिकका भेद कहै तौ उक्त शंका होवै है. औ अज्ञानसैं अतिरिक्त दोषजन्य नहीं होवै; किंतु केवल अज्ञानजन्य होवै ताकूं व्यावहारिक कहैंहैं. अज्ञानसैं अतिरिक्त दोषजन्य होवै ताकूं प्रातिभासिक कहैं हैं. इसरीतिसैं व्यावहारिक प्रातिभासिक भेद कहे उक्त शंका संभवै नहीं. काहेतैं ? दर्पणादिक उपाधिसैं मुखादिकनका संबन्ध हुयें ब्रह्मचेत-नस्थ मूलाज्ञानका प्रतिबिम्बादिक धर्मरूप वा प्रतिबिम्बत्वादिक धर्मी-रूप परिणाम होवैहै. औ दोनूं पक्षमैं अधिष्ठान ब्रह्मचेतन है.

आभासवाद औ प्रतिबिंबवादमैं धर्मी वा धर्मके अध्यासकी उत्पत्तिका उपादान मूलाज्ञानकूं मानिकै अधिष्ठानका भेद ॥ ४३ ॥

पूर्व जो कह्या हैः—विद्यारण्यस्वामीके मतमैं प्रतिबिम्बकी उत्पत्ति मानै तौ दर्पणादिक अवच्छिन्नचेतन अधिष्ठान है, औ दर्पणादिक अविच्छिन्नचेत-नस्थ अज्ञान उपादान है. तैसैं विवरणकारके मतसैं प्रतिबिम्बत्वादिक धर्मनकी ही उत्पत्ति मानैं, बिम्बावच्छिन्नचेतन अधिष्ठान है औ बिंबावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञान उपादान है; इसरीतिसैं धर्माध्यासपक्ष औ धर्मीअध्यास पक्षमैं अधिष्ठानका औ उपादानका भेद है; सो अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्या-सकी उपादानता मानिकै कह्या है.

दोनूं पक्षनमैं मूलाज्ञानकी उपादानता मानैं तौ अधिष्ठानका भेद और मूलज्ञानकूं उक्त अध्यासके उपादानताकी योग्यता ॥ ४४ ॥

मूलाज्ञानकूं उपादानता मानैं तौ दोनूं मतनमैं अधिष्ठानका भेद संभवै

नहीं औ मूलाज्ञानकूंही उक्त अध्यासकी उपादानता माननी चाहिये. काहेतैं ? अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तौ दर्पणादिकनके ज्ञानतैं वा मुखादिकनके ज्ञानतैं अज्ञानकी आवरणशक्त्यंशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपशक्त्यंशकी स्थिति मानैं तौ ब्रह्मज्ञानसैं ब्रह्मस्वरूपका आवरक मूलाज्ञानांशही नष्ट होवैगा; तैसैं शुक्त्यादिकनके ज्ञानसैं शुक्त्याद्यवच्छिन्नचेतनका आवरक तूलाज्ञानांशही नष्ट होवैगा औ व्यावहारिक प्रातिभासिक विक्षेपका हेतु द्विविध अज्ञानांशके शेष रहनेतै विदेहकैवल्यमैंभी व्यावहारिक प्रातिभासिक विक्षेपके सद्भावतैं सर्व संसारका अनुच्छेद होवैगा, यातैं आवरण हेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां विक्षेप हेतु अज्ञानांशका शेष कहना संभवै नहीं.

तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानताके वादीका मत ॥ ४९ ॥

औ तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता वादी ऐसैं कहैः—आवरण हेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी शेष स्वाभाविक नहीं है, किंतु विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्तिका प्रतिबंधक होवै तहां विक्षेप हेतु अज्ञानांशका शेष रहै है. ब्रह्मज्ञानसैं आवरण हेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां भी विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्तिमैं प्रतिबंधक प्रारब्धकर्म रह, उतने काल विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष रहै है. प्रारब्धरूप प्रतिबंधकके अभाव हुयां, विक्षेपहेतु अज्ञानांशकीभी निवृत्ति होवै है परंतु इतना भेद हैः—आवरकअज्ञानांशकी निवृत्ति तौ महावाक्यजन्य अंतःकरणकी प्रमारूप वृत्तिसैं होवै है. प्रारब्धबलसैं कितने वर्ष जीवै तवपर्यंत पूर्ववृत्ति तौ रहै नहीं औ विक्षेपनिवृत्तिके अर्थ मरणके अव्यवहित पूर्व कालमैं महावाक्यविचारका विद्वानकूं विधान नहीं औ मरण मूर्च्छाकालमैं महावाक्य विचारका संभवभी नहीं; यातैं विक्षेपशक्तिके नाशका हेतु तत्त्वज्ञानके संस्कारसहित चेतन है औ आवरणशक्तिके नाशका हेतु तत्त्वज्ञान है।

जैसैं मूलाज्ञानकी विक्षेपशक्तिकी निवृत्तिसैं प्रतिबंधक प्रारब्धकर्म है, तैसैं प्रतिबिंबाध्यासमैं विक्षेपशक्तिकी निवृत्तिमैं मुखादिकबिंबसैं दर्पणादिक उपाधिका संबंधही प्रतिबंधक है ताके सद्भावमैं आवरणांशकी निवृत्ति हुयांभी प्रतिबिंबादिक विक्षेपकी निवृत्ति होवै नहीं बिंबउपाधिका संबंधरूप प्रतिबन्धककी निवृत्ति हुयां विक्षेपकी निवृत्ति होवै है. शुक्तिरजतादिक अध्यास होवै तहां आवरणके नाशतैं अनंतर विक्षेपकी निवृत्तिसैं प्रतिबंधकके अभावतैं विक्षेप शेष रहै नहीं. इसरीतिसैं विक्षेपनिवृत्तिसैं प्रतिबंधकाभावसहित अधिष्ठानज्ञानकूं हेतुता होनेतैं औ मोक्षदशामैं प्रारब्धरूप प्रतिबन्धकके अभावतैं संसारका उपलंभ संभवै नहीं, यातैं आवरणशक्तिके नाशतैं उत्तरभी विक्षेपशक्तिका सद्भाव मानैं तौ उक्त दोषके अभावतैं अवस्थाज्ञानकूं भी प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानना उचित है.

उक्तमतके निषेधपूर्वक मूलाज्ञानकूंही प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता ॥ १४ ॥

यह कथनभी अयुक्त है. काहेतैं ? जहां देवदत्तके मुखका औ दर्पणादिक उपाधिका यज्ञदत्तकूं यथार्थ साक्षात्कार होवै तिसतैं उत्तरकालमैं भी देवदत्तमुखका दर्पणसैं संबंध हुयां यज्ञदत्तकूं देवदत्तमुखसैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनका अध्यास विवरणके मतमैं होवै है, तैसैं विद्यारण्यस्वामीके मतमैं देवदत्तमुखके प्रतिबिंबका अध्यास दर्पणमैं होवैहै सो नहीं हुया चाहिये. काहेतैं ? उक्त अध्यासकी निवृत्तिमैं बिंबउपाधिका संबंधही प्रतिबंधक है मुख वा दर्पणरूप अधिष्ठानके ज्ञानकालमैं तिस प्रतिबंधकका अभाव होनेतैं प्रतिबंधकका अभावसहित अधिष्ठान होवैहै. विवरणकारके मतमैं "देवदत्तमुखे दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वादिकं नास्ति" ऐसा ज्ञान अध्यासका विरोधी है; औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं "दर्पणे देवदत्तमुखं नास्ति" ऐसा ज्ञान उक्त अध्यासका विरोधी है. काहेतैं ? दोनूं मतनसैं क्रमतैं "देवदत्तमुखे दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वं दर्पणे देवदत्तमुखम्" इसरीतिसैं अध्यासके आकारका भेद है. ताकी

हेतु विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानअंशकीभी निवृत्ति हुईहै यातैं उपादानके अभावतैं उक्त स्थलमैं यज्ञदत्तकूं देवदत्तमुखका प्रतिबिंबभ्रम नहीं हुया चाहिये औ ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानकूंही प्रतिबिम्बाध्यासकी उपादानता मानैं तौ उक्त उदाहरणमैं देवदत्तके मुखका औ दर्पणका ज्ञान हुयेंभी ब्रह्मरूप अधिष्ठानज्ञानके अभावतैं उपादानके सद्भावतैं उक्त अध्यास संभवै है. यातैं मूलाज्ञानही प्रतिबिंबाध्यासका उपादान है यह पक्षही समीचीन है.

मूलाज्ञानकी उपादानताके पक्षमैं शंका ॥ ४७ ॥

परंतु या पक्षमैं यह शंका हैः-ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानै तौ ब्रह्मज्ञानसैं विना प्रतिबिम्बभ्रमकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? अधिष्ठानके यथार्थज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा भ्रमकी निवृत्ति होवै है. औ प्रतिबिम्बाध्यासका अधिष्ठान उक्त पक्षमैं ब्रह्म चेतन है, दर्पणावच्छिन्न चेतन वा मुखावच्छिन्न चेतन अधिष्ठान नहीं मुखदर्पणादिज्ञानतैं मूलाज्ञानकी निवृत्ति मानैं तौ उपादानके नाशतैं मुखदर्पणादिक व्यावहारिक पदार्थनकाभी अभाव हुया चाहिये; यातैं मूलाज्ञानकूं उपादानता मानैं तौ मुखादिकनतैं बिम्बउपाधिके वियोगकालमैंभी प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं.

उक्तशंकाका समाधान ॥ ४८ ॥

या शंकाका यह समाधान हैः—आवरण शक्ति औ विक्षेपशक्तिके भेदतैं दो अंशवाला अज्ञान है. प्रतिबंधरहित अधिष्ठानज्ञानतैं अशेष अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. प्रारब्ध कर्म प्रतिबंधक होते ब्रह्मरूप अधिष्ठानज्ञान हुयें भी विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति होवै नहीं, औ घटादिक अनात्मपदार्थगोचर ज्ञान होवै तिनतैं अज्ञानकी निवृत्ति तो होवै नहीं परंतु जितनेकाल घटादिकनका स्फुरण रहै उतने काल अन्धकारसैं आवृत गृहके एकदेशमैं प्रभाप्रकाशतैं अंधकारके संकोचकी नांई अज्ञान-

जन्य आवरणका संकोच होवै है; तैसैं मुखदर्पणादिकनके साक्षात्कारतैं ब्रह्मके आच्छादक मूलाज्ञानकी निवृत्ति तौ यद्यपि नहीं होवै है, तथापि अज्ञानजन्यप्रतिबिंबाध्यासरूप विक्षेपका मुखदर्पणादिज्ञानतैं उपादानमैं विलयरूप संकोच होवै है. उपादानमैं विलयकं ही कार्यकी सूक्ष्म अवस्था कहैं हैं. इसरीतिसैं अधिष्ठानज्ञानके अभावतैं अज्ञानकी निवृत्तिविना प्रतिबिम्बाध्यासकी बाधरूप निवृत्तिका यद्यपि संभव नहीं है, तथापि मुखदर्पणादिकनके ज्ञानतैं प्रतिबन्धनका अभाव हुयां कार्यका उपादानमैं विलयरूप निवृत्ति होवै है.

एकदेशीकी रीतिसैं बाधका लक्षण ॥ ४९ ॥

इसरीतिसैं संसारदशामैं प्रतिबिम्बाध्यासका बाध होवै नहीं; यह कोई एकदेशी मानैं हैं. या मतमैं अभावनिश्चयकूं बाध नहीं कहैं हैं. काहेतैं ? "मुखे दर्पणस्थत्वं नास्ति, दर्पणे मुखं नास्ति" इसरीतिसैं विवरणकार विद्यारण्यस्वामीके मतभेदसैं उभयविध अध्यासका अभावनिश्चय सर्व अविद्वान्केभी अनुभवसिद्ध है. ताका संसारदशामैं अभाव कहना संभवै नहीं यातैं ब्रह्मज्ञानविना प्रतिबिम्बाध्यासका बाध नहीं मानै ताके मतमैं केवल अधिष्ठानशेषकूं बाध कहैं हैं. प्रतिबिम्बाध्यासका अभावनिश्चय उक्तरीतिसैं हुयांभी संसारदशामैं अज्ञानकी सत्ता होनेतैं केवल अधिष्ठान शेष नहीं है; किन्तु अज्ञानविशिष्ट अधिष्ठान है इसरीतिसैं प्रतिबन्धकरहित-मुखदर्पणादिक साक्षात्कारतैं अधिष्ठानज्ञानविना बाधरूप अज्ञाननिवृत्तिका अभाव हुयांभी अपने उपादानमैं विलयरूप कार्यका संकोच होवैहै उपादानरूपसैं कार्यकी स्थितिकूंही सूक्ष्मावस्था कहैं हैं.

बहुत ग्रंथकारनकी रीतिसैं बाधका लक्षण औ ब्रह्मज्ञान विना प्रतिबिंबाध्यासके बाधकी सिद्धि ॥ ५० ॥

बहुत ग्रन्थकारोंके मतमैं ब्रह्मज्ञानसैं विना मूलाज्ञानके नाशविनाभी मूलाज्ञानजन्य प्रतिबिम्बाध्यासका बाध होवै है, यह तिनका अभिप्राय है.

मिथ्यात्वनिश्चय वा अभावनिश्चय बाध कहिये है; यह सर्व ग्रंथनका निष्कर्ष है. बहुत स्थानमैं मिथ्यात्वनिश्चयभी अभावविश्चय पदार्थ होवै, तहां अधिष्ठानमात्र शेष रहै है; अज्ञान शेष रहै नहीं. इस अभिप्रायतैं किसी ग्रंथकारनैं अधिष्ठानमात्रका शेषही बाधका स्वरूप कह्या है; औ अधिष्ठानमात्रका शेष बाधका लक्षण नहीं. जो बाधका यही लक्षण होवै तौ स्फटिकमैं लौहित्यभ्रमादिक सोपाधिक अध्यास होवै, तहां अधिष्ठानज्ञानसैं उत्तरकालमैंभी जपाकुसुम औ स्फटिकका परस्परसंबन्धरूप प्रतिबन्धक होनेतैं लौहित्यअध्यासकी निवृत्ति नहीं होवै है. तैसैं विद्वानूकूं प्रारब्धकर्म प्रतिबन्धक होनेतैं शरीरादिकनकी निवृत्ति नहीं होवै है, यातैं अज्ञानकार्य-विशिष्ट अधिष्ठान दोनूं स्थानमैं होनेतैं केवल अधिष्ठानशेषके अभावतैं बाधव्यवहार नहीं हुया चाहिये. औ श्वेत स्फटिकके साक्षात्कारतैं लौहित्य-अध्यासका बाध होवैहै. ब्रह्मसाक्षात्कारतैं जीवन्मुक्त विद्वानूकूं संसारका बाध होवैहै; इसरीतिसैं विक्षेपस ित अधिष्ठानमैं बाधव्यवहार सकल ग्रंथकारोंनैं लिख्या है, तहां अध्यस्त पदार्थमैं मिथ्यात्वनिश्चय वा ताका अभावनिश्चयही बाधका स्वरूप संभवै है, औ प्रतिबन्धकरहित मुखदर्पणादिकनके ज्ञानतैं मुखमैं प्रतिबिम्बत्वादिक धर्मनका तथा दर्पणमैं प्रतिबिम्बादिक धर्मीका मिथ्यात्वनिश्चय होवै है, तैसैं अभावनिश्चय होवै है, यातैं ब्रह्मज्ञानसैं विना प्रतिबिम्बाध्यासका बाध होवै नहीं, यह कथन अयुक्त है.

मुखदर्पणादि अधिष्ठानके ज्ञानकूं प्रतिबिम्बाध्यासकी निवृत्तिकी हेतुता ॥ ५१ ॥

जैसैं अधिष्ठानज्ञानतैं अध्यासकी बाधरूप निवृत्ति होवै, तैसैं मुखदर्पणा-दिकनके अपरोक्षज्ञानतैं भी प्रतिबन्धकरहितकालमैं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति अनुभवसिद्ध है, यातैं प्रतिबन्धकाभावसहित मुखदर्पणादि ज्ञानभी अधिष्ठानकी नाईं अध्यासनिवृत्तिका हेतु है इसरीतिसैं मानना योग्य है; औ मुखदर्पणादि ज्ञानकूं प्रतिबिम्बाध्यासनिवृत्तिकी कारणता संभवै भी

है. काहेतैं ? समानविषयक ज्ञानतैं अज्ञानका विरोध है. भिन्नविषयक ज्ञान अज्ञानका विरोध नहीं; यातैं मुखदर्पणादिक ज्ञानका मुखदर्पणादिक अवच्छिन्नचेतनस्थ अवस्थाज्ञानसैंही विरोध है. ब्रह्माच्छादक मूलाज्ञानसैं ब्रह्मज्ञानविना अन्यज्ञानका विरोध नहीं याते ब्रह्मज्ञानविरोधी मूलाज्ञानसैं दर्पणादिकज्ञानके विरोधाभावत प्रतिबिंबाध्यासके उपादान मूलाज्ञानकी निवृत्ति तौ यद्यपि नहीं होवैहै; तथापि अज्ञाननिवृत्तिसैं विनाभी विरोधीज्ञानसैं पूर्वज्ञानकी निवृत्ति अनुभवसिद्ध है.

मुखदर्पणादिकके ज्ञानकूं मूलाज्ञानकी निवृत्तिविना प्रतिबिम्बाध्यासकी नाशकता ॥ ८२ ॥

जहां रज्जुके अज्ञानतैं सर्पभ्रमतैं उत्तर दंडभ्रम होवै तहां दंडज्ञानतैं सर्पके उपादान अवस्थाज्ञानकी निवृत्ति तौ होवै नहा. काहेतैं ? अधिष्ठानके तत्त्वज्ञानतही अज्ञानकी निवृत्ति होवै, यातैं रज्जुज्ञानविना रज्जुचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति संभवै नहीं. औ दंडभ्रमसही रज्जुचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै तौ उपादानके अभावत दंडअध्यासका स्वरूपही सिद्ध नहीं होवैगा, यातैं दंडज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिविना जैसैं सर्पाध्यासकी निवृत्ति होवैहै तैसैं " मुखे प्रतिबिम्बत्वे नास्ति । दर्पणे मुखं नास्ति" इस प्रकारसैं मुखदर्पणका ज्ञान प्रतिबिंबाध्यासका विरोधी होनेतैं तासैंभी प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवै है. औ प्रतिबिंबका अध्यासके उपादान मूलाज्ञानकी उक्तज्ञानसैं निवृत्ति संभवै नहीं.जो उक्त ज्ञानसैं मूलाज्ञानकी निवृत्ति कहै, तौ मूलाज्ञानके कार्य मुखदर्पणादिक व्यावहारिक पदार्थभी नष्टहुये चाहियें; यातैं मुखदर्पणादिकज्ञानकूं विरोधिविषयक होनेतैं अज्ञाननिवृत्तिविनाभी प्रतिबिंबाध्यासकी नाशकता है. भावअभावका परस्पर विरोध होवै है, यातैं तिनके ज्ञानभी परस्पर विरोधी होवैं हैं. जहां स्थाणुमैं स्थाणुत्वज्ञानतैं उत्तर पुरुषत्वभ्रम होवै तहां "स्थाणुत्वं नास्ति" ऐसे विरोधी भ्रमज्ञानतैं पूर्व प्रमाज्ञानकी निवृत्ति होवै है. घटवाले भूतलमैं घटाभावके भ्रमज्ञानतैं उत्तर घटसैं इंद्रियके संयोग हुयां "घटवद्भूतलम्"

ऐसैं विरोधी प्रमाज्ञानतैं पूर्वभ्रमज्ञानकी निवृत्ति होवै है. जहां रज्जुमैं सर्पभ्रमतैं उत्तर दंडभ्रम होवै तहां दंडभ्रमतैं सर्पभ्रमकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसैं कहूं भ्रमज्ञानतैं प्रमाज्ञानकी निवृत्ति, कहूं प्रमाज्ञानतैं भ्रमज्ञानकी निवृत्ति, कहूं भ्रमज्ञानतैं भ्रमज्ञानकी निवृत्ति होवैहै. जहां भ्रमतैं प्रमाकी निवृत्ति औ भ्रमतैं भ्रमकी निवृत्ति होवै तहां भ्रमका उपादान अज्ञानके सद्भावमैं ही पूर्व ज्ञानकी निवृत्ति होवैहै. जहां प्रमाज्ञानतैं भ्रमकी निवृत्ति होवै तहां अधिष्ठानका यथार्थ ज्ञान प्रमा होनेतैं अज्ञानसहित भ्रमकी निवृत्ति होवैहै; या प्रकारतैं अधिष्ठानज्ञानविना मूलाज्ञानकी निवृत्तिविनाभी मुखदर्पणादिज्ञानतैं प्रतिबिम्बाध्यासकी निवृत्ति संभवै है.

विरोधी ज्ञानतैं पूर्वज्ञानकी निवृत्ति होवैहै यह नियम है, और अधिष्ठानके यथार्थज्ञानतैं ही पूर्व भ्रमकी निवृत्ति होवै; यह नियम नहीं; परंतु अधिष्ठानके यथार्थज्ञानविना अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं; यातैं अज्ञानकी निवृत्ति केवल अधिष्ठानकी विशेष प्रमातैं होवै है यह नियम है. विवरणकारके मतमैं "मुखे प्रतिबिंबत्वं दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वम्" ऐसा अध्यास होवै है; ताका विरोधी "मुखे प्रतिबिम्बत्वादिकं नास्ति" ऐसा ज्ञान है, औ विद्यारण्यस्वामीके मतमैं "दर्पणे मुखम्" ऐसा अध्यास होवै है; "दर्पणे मुखं नास्ति" ऐसा ज्ञान ताका विरोधी है. नैयायिकमतनमैंभी भावअभावका परस्पर विरोध मानिकै तिनके ज्ञानोंकाभी विषयविरोधसैं विरोध मान्याहै; या प्रकारतैं मूलाज्ञानकूं प्रतिबिम्बाध्यासकी उपादानता मानैं तौ बिम्बउपाधिका सन्निधानरूप प्रतिबंधकरहित कालमैं मुखदर्पणादिक ज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिविनाभी उक्त अध्यासकी निवृत्ति संभवै है.

उक्त पक्षमैं पद्मपादाचार्यकृत पंचपादिकाकी रीतिसैं तूलाज्ञानकूं अध्यासकी हेतुताके वादीकी शंका ॥ ९२ ॥

या पक्षमैं यह शंका है:—शारीरकभाष्यकी टीका पंचपादिका नाम पद्मपादाचार्यने किया है, ताकूं भाष्यकारके वचनतैं सर्वज्ञता हुई है, तिस

सर्वज्ञवचन पंचपादिकामैं यह लिख्याहैः—जहां सर्परजतादिक भ्रम होवै तहां रज्जुशुक्तिके ज्ञानतैं सर्परजतादिकनके उपादान अज्ञानकी निवृत्ति होवै है, औ अज्ञानकी निवृत्तिसैं सर्परजतादिक अध्यासकी निवृत्ति होवै है रज्जु शुक्ति आदिकनके ज्ञानकूं सर्परजतादिकनकी निवृत्तिस साक्षात्कारण मानैं तौ उपादानके नाशतैं भावकार्यका नाश होवै है. या नियमकी हानि होवैगी, औ अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञानका नाश होवै है. अज्ञाननाशतैं अध्यासका नाश होवै है. इसरीतिसैं मानैं तौ उक्त नियमका व्यभिचार होवै नहीं यद्यपि अंधकारकी नाईं अज्ञानभी भावरूप है; तथापि अज्ञान अनादि होनेतैं कार्य नहीं, यातैं अज्ञानकी निवृत्ति तौ अधिष्ठानज्ञानतैं भी संभवै है, परंतु भावकार्य सर्पादिक अध्यासकी निवृत्ति उपादानके नाशविना होवै नहीं. घटध्वंसकी निवृत्तिभी वेदांतमतमैं होवै है औ अभाव पदार्थका उपादानकारण होवै नहीं. यातैं उपादानके नाशविनाभी घटध्वंसरूप कार्यका नाश होवै है, परंतु घटध्वंस भाव नहीं; यातैं उपादान नाशकूं भावकार्यके नाशमैं नियत हेतुताके संरक्षणकूं पंचपादिकामैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिकी हेतुता कही है. अज्ञाननिवृत्तिकूं त्यागिकै अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिकी साक्षात् हेतुताका निषेध कऱ्या है; औ मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैंतौ उक्त रीतिसैं अज्ञाननिवृत्तिसैं विनाही प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति माननी होवै है; यातैं पंचपादिकावचनतैं विरोध होवैगा. अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तौ विरोध नहीं. काहेतैं? अवस्थाज्ञानकूं उक्तअध्यासकी उपादानता कहै ताके मतमैं विवरणकारकी रीतिसैं मुखावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं धर्मीध्यासकी उपादानता सिद्ध होवै है. विद्यारण्यस्वामीकी रीतिसैं दर्पणावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं धर्मीअध्यासकी हेतुता सिद्ध होवै है औ प्रतिबंधकरहितकालमैं मुखज्ञानतैं वा दर्पणज्ञानतैं तिन अज्ञानोंकी क्रमतैं निवृत्ति होवै है. अज्ञान निवृत्तिद्वारा प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवै है, यातैं अवस्थाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानना पंचपादिकाव-

चनके अनुकूल है. औ मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता कहना पंचपादिकावचनसैं विरुद्ध है. इस रीतिसैं उक्त अध्यासकी हेतुता अवस्थाज्ञानकूं मानैं तौ ताका यह पूर्वपक्ष है.

उक्तशंकाकी अयुक्तता ॥ ८४ ॥

परंतु अवस्थाज्ञानकूं हेतुता मानेंभी पंचपादिकावचनसैं विरोधपरिहार होवै नहीं. तथाहिः—जहां दर्पणसंबंधरहित देवदत्तमुखका वा देवदत्तमुखवियुक्त दर्पणका यज्ञदत्तकूं साक्षात्कार होवै, औ उत्तरक्षणमैं देवदत्तमुखका दर्पणसैं संबंध होवै है, तहांभी प्रतिबिम्बाध्यास होवै है. मूलज्ञानकूं उपादानता मानैं तौ मुखदर्पणादि साक्षात्कारसैं ताकी निवृत्ति होवै नहीं. औ मुखज्ञानतैं मुखावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकी तैसैं दर्पणज्ञानतैं दर्पणावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति अवश्य होवै है. औ मुखदर्पणसाक्षात्कारतैं उत्तरकालमैंभी मुखदर्पणसन्निधानसैं प्रतिबिम्बाध्यास होवै है; यातैं मुखदर्पणसाक्षात्कारतैं अवस्था अज्ञानके आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका नाश नहीं होनेतैं विशेषरूपतैं ज्ञानाधिष्ठानमैंभी अध्यास संभवै है;तहां दर्पणमुखका परस्पर वियोग हुयां प्रतिबन्धकाभावसहित अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति कहना अवस्थाज्ञानवादीकूंभी संभवै नहीं; किन्तु ज्ञानतैं साक्षात अध्यासकी निवृत्ति कहनाही संभवै है. काहेतैं ? रज्जुज्ञानतैं शुक्तिके अज्ञानका नाश नहीं होवै है, यातैं ज्ञानतैं अज्ञानमात्रका नाश नहीं होवै है; किन्तु समानविषयक अज्ञानका ज्ञानतैं नाश हुये भी विक्षेपशक्ति विशिष्ट अज्ञानांशका नाश होवै है. ज्ञानतैं जाका प्रकाश होवै सो ज्ञानका विषय कहिये है, अज्ञानसैं आवृत होवै सो अज्ञानका विषय कहिये है. यज्ञदत्तकूं अध्यासतैं पूर्वकालमैं हुया जो मुखदर्पणका साक्षात्कार तासैं आवरणका नाश होनेतैं अज्ञानकृत आवरणरूप अज्ञानके विषयका मुखदर्पणमैं अभाव है, यातैं ज्ञान अज्ञानके विरोधका संपादक समानविषयत्वके उक्तस्थलमैं अज्ञाननिवृत्तिविना अध्यासमानकी निवृत्ति अवस्था ज्ञानवादीकूंभी

माननी होवै है, इसरीतिसैं अवस्थाऽज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानें पंचपादिकावचनसैं विरोधपरिहार होवै नहीं.

तूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी हेतुता मानैं तौ पंचपादिकाके वचनसैं विरोध औ मूलाज्ञानकूं हेतुता मानैं तौ अविरोध ॥ ९९ ॥

औ सूक्ष्म विचार करै तौ अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी हेतुता मानैं तौ पंचपादिकावचनसैं विरोध है, मूलाज्ञानकूं हेतुता मानैं तौ विरोध नहीं तथाहिः—ज्ञानसैं केवल अज्ञानकी निवृत्ति होवै है, औ अज्ञानरूप उपादानकी निवृत्तिसैं अज्ञानकार्यकी निवृत्ति होवै है; इसरीतिसैं पंचपादिकावचन है; ताका यह अभिप्राय नहीं. भावकार्यके नाशमैं उपादानका नाश नियत हेतु होनेतैं ज्ञान अध्यासनिवृत्ति संभवै नहीं. काहेतैं? उपादानके नाश विना भावकार्यका नाश होवै नहीं तौ भावकार्यके नाशमैं उपादानके नाश नियतहेतु होवै; औ भावकार्य द्व्यणुक है, ताके उपादान परमाणु हैं, तिनकूं नित्यता होनेतैं नाश संभवै नहीं; यातैं परमाणसंयोगके नाशतैं द्व्यणुकका नाश होवै है, तहां भावकार्यके नाशमैं उपादान नाशकी हेतुताका व्यभिचार है; यातैं भावकार्यके नाशमैं उपादान नाशकी हेतुता नियमके संरक्षण अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति नहीं है; औ केवल आग्रहतैं पंचपादिकावचनका उक्त नियमसंरक्षणमैं अभिप्राय कहै तौ दंडभ्रमसैं सर्पाध्यासकी निवृत्ति नहीं होवैगी; औ नैयायिक मतमभी द्व्यणुकभिन्नद्रव्यके नाशमैं उपादानके नाशकूं हेतुता मानी है. सकल भावकार्यके नाशमैं उपादान नाशकूं हेतुता कहैं तौ परमाणु औ मन नित्य हैं; तिनके नाशके असंभवतैं तिनकी क्रियाका नाश नहीं होवैगा, तैसे नित्यआत्माके ज्ञानादिगुणका औ नित्य आकाशके शब्दादिगुणका नाश नहीं होवैगा; यातैं भावकार्यके नाशमैं उपादानका नाश नियतहेतु है, यह कथन असंगत है, परंतु किसी स्थानमैं आश्रयका नाश हुयां कार्यकी स्थिति होवै नहीं, तहां उपादानका नाशभी कार्यनाशका हेतु है, तथापि कार्यनाशमैं उपादानका

नाश नियत हेतु नहीं. उपादानके सद्भावमैं अन्यकारणतैं भी कार्यका
नाश होवै है. इसरीतिसैं उक्त नियम संरक्षणमैं अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी
उक्ति नहीं है; किंतु अधिष्ठानज्ञानतैं अध्यासकी निवृत्ति होवै तहां अधि-
ष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिमैं कारणता नहीं है, अधिष्ठान ज्ञान तौ अज्ञान-
निवृत्तिका कारण है. औ अज्ञाननिवृत्ति अध्यासनिवृत्तिका कारण है.
जैसैं कुलालका जनक घटमैं अन्यथासिद्ध होनेतैं कारण नहीं तैसैं अध्या-
सनिवृत्तिमैं अधिष्ठानका ज्ञान अन्यथासिद्ध होनेतैं कारण नहीं
इसरीतिसैं अधिष्ठानज्ञानसैं अध्यासकी निवृत्ति होवै तहां ज्ञानसैं
अज्ञानमात्रकी निवृत्ति होवै है. अध्यासकी निवृत्ति उपादान
अज्ञानके नाशतैं होवै है; यह पंचपादिकावचनका अभिप्राय है. औ
सर्वत्र अध्यासकी निवृत्तिमैं अज्ञाननिवृत्तिकूं हेतुता है; इस अभिप्रा-
यतैं पंचपादिकाकी उक्ति होवै तौ दण्डभ्रमसैं अज्ञाननिवृत्तिके अभावतैं
सर्पभ्रमकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये, यातैं अधिष्ठानके यथार्थ ज्ञानसैं अ-
ध्यासकी निवृत्ति होवै है. तहां अज्ञानकी निवृत्तिही अध्यासनिवृत्तिका
हेतु है; यह नियम पंचपादिकाग्रंथमैं विवक्षित है; औ अवस्थाऽज्ञानकूं प्रति-
बिंबाध्यासकी हेतुता मानै ताके मतमैं मुखदर्पणादिक ज्ञानही अधिष्ठानका
ज्ञान है;तासैं अज्ञान निवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति मानना पंचपादिका-
नुसार है औ यज्ञदत्तकूं पूर्वज्ञानसैं आवरणनाशस्थलमैं देवदत्तमुखका
उपाधिसन्निधान हुयां प्रतिबिंबाध्यास होवै है. उपाधिवियोगकालमैं
अधिष्ठानज्ञानसैं अध्यासनिवृत्ति होवै, तहां अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यास-
की निवृत्ति संभवै नहीं; किन्तु अधिष्ठानज्ञानसैं साक्षात् अध्यासकी निवृत्ति
होवै है; यातैं पंचपादिकासैं विरुद्ध है. औ मलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी
उपादानता मानैं तौ मुखदर्पणादिक ज्ञानतैं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवै,
तहां मुखदर्पणादिकनकूं या पक्षमैं अधिष्ठानताके अभावतैं अधिष्ठानज्ञान-
जन्य अध्यासकी निवृत्ति नहीं है, किंतु विरोधी विषयके ज्ञानकूं विरोधी

होनेतैं मुखदर्पणादिकनके ज्ञानकूं अध्यासनिवर्तकता है. औ पंचपादिकामैं अधिष्ठानजन्य अध्यासकी निवृत्तिही अज्ञाननिवृत्तिद्वारा विवक्षित है, औ अधिष्ठानज्ञानविना प्रकारान्तरसैं अध्यासकी निवृत्तिमैं अज्ञान निवृत्तिकूं द्वारता विवक्षित नहीं है इसरीतिसे मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ मुखदर्पणादिकज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानजन्यनहीं औ अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासके उपादान मानैं तौ मुखदर्पणादिज्ञान-जन्य अध्यासकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानजन्य है, औ अधिष्ठानसैं अध्यासकी निवृत्ति होवै सो अज्ञाननिवृत्तिद्वाराही पंचपादिकामैं विवक्षित है, औ पूर्वज्ञात अधिष्ठानमैं अध्यास होयकै निवृत्ति होवै तहां उक्तरीतिसैं अज्ञान-निवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं; यातैं अवस्थाज्ञानकूं प्रति-बिंबाध्यासकी उपादनता मानैं तौ पंचपादिका वचनसैं विरोध है. मूला-ज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तौ विरोध नहीं.

प्रतिबिम्बाध्यासकी व्यावहारिकता औ प्रातिभासिकताके विचारपूर्वक स्वप्नाध्यासके उपादानके विचारकी प्रतिज्ञा ॥ ५६ ॥

इसरीतिसैं आकाशादि प्रपंचकी नाई मूलाज्ञानजन्य प्रतिबिंबाध्यास है, परंतु एकदेशीकी रीतिसैं ब्रह्मज्ञानविना ताकी बाधरूप निवृत्ति नहीं होनेतैं प्रतिबिंबाध्यासमैं व्यावहारिकत्व शंका होवै है, तथापि बिंबउपाधिका संबंध-रूप आगंतुक दोषजन्य है, यातैं प्रातिभासिक है. आकाशादिक प्रपंचका अध्यास है सो अविद्यामात्रजन्य है, यातैं व्याहारिक है. औ अनंतर उक्तरीतिसैं तौ अधिष्ठानविना विरोधीज्ञानसैं बाधरूपनिवृत्तिका संभव होनेतैं संसारदशामैं बाध्यत्वरूप प्रातिभासिकत्वभी संभवै है;जैसैं प्रति बिंबा-ध्यासमैं मतभेदसैं अवस्थाऽज्ञान औ मूलाज्ञान उपादान कह्या तैसैं स्वप्नाध्या-सभी किसीके मतमैं अवस्थाज्ञानजन्य है, औ मतांतरमैं मूलाज्ञानजन्य है.

स्वप्नविषै विचार

तूलाज्ञानकूं स्वप्नके उपादानताकी रीति ॥ ५७ ॥

अवस्थाज्ञानकूं स्वप्नकी उपादानता इसरीतिसैं कहैं हैं—अज्ञानकी अव-

स्था शेष निद्रा है. काहेतैं ? आवरणविक्षेपशक्तियुक्तता अज्ञानका लक्षण है. औ स्वप्नकालमैं जाग्रत् द्रष्टा दृश्यका आवरण अनुभवसिद्ध है. देवदत्त-नाम ब्राह्मणजाति जाग्रतकालमैं पितापितामहादिकनके मरणतैं उत्तर दाह श्राद्धादि करिकै धनपुत्रादिसंपदासहित सो बना हुआ आत्माकूं यज्ञदत्तनाम क्षत्रिय जाति बाल्यावस्थाविशिष्ट अन्नवस्त्रके अलाभतैं क्षुधाशीतसैं पीडित हुवा स्वपितापितामहके अंकमैं रोदनकर्ता अनुभव करै है. तहां जाग्रत कालके व्यावहारिकद्रष्टादृश्यका मलाज्ञानसैं आवरणकहैं तौ जाग्रतकालमभी तिनका आवरण हुया चाहिये, अन्य कोई आवरणकर्ता प्रतीत होवै नहीं; यातैं स्वप्नकालमैं निद्राही आवरण करै है. औ स्वप्नके पदार्थाकार परिणामभी निद्राकाही होवै है. इसरीतिसैं आवरणविक्षेपशक्तिविशिष्ट निद्रा है, यातैं अज्ञान लक्षण निद्रामैं होनेतैं अज्ञानकी अवस्थाविशेष निद्रा है परंतु अवस्थाज्ञान सादि है. काहेतैं ? मूलाज्ञानही आगंतुक आकारविशिष्ट हुवा किंचित् उपाध्यवच्छिन्न चेतनका आवरण करै ताकूं अवस्था अज्ञान और तूला अज्ञान कहै हैं. इसरीतिसैं आगंतुक आकार-विशिष्ट होनेतैं अवस्थाज्ञान सादि है ताकी उत्पत्तिमैं निमित्तकारण जाग्र-द्भोगहेतु कर्मनका उपराम है औ मूलाज्ञानकाही आकार विशेष होनेतैं मूलाज्ञान उपादानकारण है निद्रारूप अवस्थाज्ञानसैं आवृत व्यावहारिक द्रष्टामैं प्रातिभासिक द्रष्टा अध्यस्त है. तिस निद्रासे आवृत व्यावहारिक दृश्यमैं प्रातिभासिक दृश्य अध्यस्त है; यातैं प्रातिभासिक द्रष्टाका अधिष्ठान व्यावहारिक द्रष्टा है, औ प्रातिभासिक दृश्यका अधिष्ठान व्यावहारिक दृश्य-है; भोगके अभिमुख कर्म होवै तब जाग्रत् होवै है, तिसकालमैं ब्रह्मज्ञान-रहित पुरुषनकूं भी व्यावहारिक द्रष्टादृश्यका ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञान है तासैं अवस्थाज्ञानरूप उपादानकी निवृत्तिद्वारा प्रातिभासिक द्रष्टादृश्यकी निवृत्ति होवै है. व्यावहारिक द्रष्टाके ज्ञानतैं प्रातिभातिक द्रष्टाकी औ व्यावहारिक दृश्यके ज्ञानतैं प्रातिभासिक दृश्यकी निवृत्ति होवै है.

उक्तपक्षमैं शंका ॥ ५८ ॥

या पक्षमैं यह शंका हैः—उक्तरीतिसैं जाग्रत्‌द्रष्टाका औ स्वप्नद्रष्टाका भेद है. औ अन्यद्रष्टाके अनुभूतकी अन्यकं स्मृति होवै तौ देवदत्तके अनुभूतकी यज्ञदत्तकूं स्मृति हुई चाहिये; यातैं स्वप्नके अनुभूतकी जाग्रत्‌-कालमैं स्मृति होवै है, द्रष्टाका भेद मानै तौ स्मृतिका असंभव होवैगा.

उक्त शंकाका समाधान ॥ ५९ ॥

ताका यह समाधान हैः—यद्यपि अन्यके अनुभूतकी अन्यकूं स्मृति होवै नहीं, तथापि स्वानुभूतकी स्वकूं स्मृति होवैहै तैसैं स्वतादात्म्यवालेके अनुभूतकीभी स्वकूं स्मृति होवै है, यातैं देवदत्तयज्ञदत्तका परस्पर तादात्म्य नहीं है, औ जाग्रतके द्रष्टामैं स्वप्नद्रष्टाकूं अध्यस्तता होनैतैं तामैं ताका तादात्म्य है, अध्यस्तपदार्थका अधिष्ठानमैं तादात्म्य होवैहै. इस रीतिसैं जाग्रतद्रष्टाके तादात्म्यवाला स्वप्नद्रष्टा है, ताके अनुभूतकी जाग्रत्‌ द्रष्टाकूं स्मृति होवै है. यज्ञदत्तमैं देवदत्तके तादात्म्यके अभावतैं देवदत्तके अनुभूतकी यज्ञदत्तकूं स्मृतिकी आपत्ति नहीं; इसरीतिसैं स्वप्नाध्यासका उपादान निद्रारूप अवस्था अज्ञान है.

व्यावहारिक जीव औ जगतकूं स्वप्नके प्रातिभासिक जीव औ जगत्का अधिष्ठानपना ॥ ६० ॥

स्वप्नकालमैं दृश्यमात्रकी अज्ञानसैं उत्पत्ति मानैं औ व्यावहारिक जाग्रत्‌कालके जीवकूं द्रष्टा मानैं तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? व्यावहारिक जीवका स्वरूप निद्रारूप अज्ञानसैं आवृत है. औ अज्ञानावृत जीवके संबन्धसैं विषयका अपरोक्ष होवै है, यातैं स्वप्नप्रपंचके अपरोक्षज्ञानका असंभव होवैगा, यातैं दृश्यकी नाईं द्रष्टाभी व्यावहारिक जीवमैं अध्यस्त है; सो अनावृत है, ताके संबन्धसैं प्रातिभासिक दृश्यका अपरोक्षज्ञान संभवै है. इसरीतिसैं पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसैं

जीव त्रिविधवादी ग्रंथकारोंनैं स्वप्नका अधिष्ठान व्यावहारिक जीव जगत् कह्या है, परंतु—

उक्तपक्षकी अयुक्ततापूर्वकचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठानपना ॥ ६१ ॥

यह मत अयुक्त है. काहेतैं ? व्यावहारिक द्रष्टाभी दृश्यकी नाईं अनात्मा होनेतैं जड है यातैं सत्तास्फूर्तिप्रदानरूप अधिष्ठानता व्यावहारिक द्रष्टादृश्यमैं संभवै नहीं, किन्तु चेतनकूं स्वप्नप्रपंचकी अधिष्ठानता कहना उचित है, इसीवास्तै रज्जुशुक्तिकूं सर्परूप्यकी अधिष्ठानतावचनका रज्ज्वविच्छिन्नचेतन अधिष्ठानमैं तात्पर्य कह्या है, बहुत ग्रंथनमैंभी चेतनही स्वप्नप्रपंचका अधिष्ठान कह्या है, यातैं अहंकारावच्छिन्न चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है, ये दो मत समीचीन हैं.

अहंकारावच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानिकै तूलाज्ञानकूं ताकी उपादानता औ जाग्रत्के बोधसैं ताकी निवृत्ति ॥ ६२ ॥

तिनमैं अहंकारावच्छिन्न चेतनकूं अधिष्ठानता मानैं तौ मूलाज्ञानसैं ताका आवरण संभवै नहीं, यातैं अहंकारावच्छिन्नका आच्छादक अवस्था अज्ञानही स्वप्नका उपादान संभवै है. जाग्रत्के बोधसैं ब्रह्मज्ञानविना ताकी निवृत्ति भी संभवै है.

अहंकाराऽनवच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानिकै मूलाज्ञानकूं ताकी उपादानता औ उपादानमैं विलयरूपताकी निवृत्ति ॥ ६३ ॥

अविद्यामैं प्रतिबिंबचेतन वा बिंबरूपईश्वरचेतन अहंकाराऽनवच्छिन्न चेतन है, ताकूं अधिष्ठानतामैं तो ताका आच्छादक मूलाज्ञानही स्वप्नका उपादान मानना होवै है. जाग्रत्बोधसैं ताकी बाधरूप निवृत्ति होवै नहीं. किन्तु उपादानमैं विलयरूप निवृत्ति स्वप्नकी जाग्रत्मैं होवै है.

...ही अधिष्ठानमानिके विरोधीज्ञानतैं ...शक्तिके नाशका अंगीकार ॥ ६४ ॥

...पणमैं उक्तरीतिसैं जाग्रत्‌बोधविरोधीज्ञान ...कहैं, परंतु विरोधीज्ञानतैं आवरणहेतु अज्ञान ...न्तु विक्षेपहेतु अंशकी निवृत्ति होवै है. विरोधी ... कहैं,तौ दंडभ्रमसैं सर्पभ्रमकी निवृत्तिस्थलमैं ...काही असंभव होवैगा. विक्षेप अंशभी अशेष ...प है; ताका उपलंभ नहीं हुया चाहिये; यातैं ...-एक अज्ञानमैं अनंतविक्षेपकी हेतु अनंत ...वक्षेपकी हेतु शक्तिका नाश होवै है, अपर ...कालांतरमैं तिसी अधिष्ठानमैं फेरि अध्यास ...नका जाग्रत्‌बोधसैं बाध हुयें भी आगामी ... अवशेष होनेतैं दिनांतरमैं स्वप्नाध्यास होवै ...नता स्वप्नकी अधिष्ठानताभी संभवैहै परन्तुः-

...अधिष्ठानवादमैंभी शरीरके अन्तर्दे- ...अधिष्ठानताका संभव ॥ ६५ ॥

...धिष्ठानता वादमैंभी शरीरके अंतर्देशस्थ चेत- ...ह्य देशस्थकूं अधिष्ठान मानै तौ घटादिकनकी ...ति सबकूं हुई चाहिये. औ घटादिकनकी ...की अपरोक्षतामैं जैसैं इंद्रियव्यापारकी अपेक्षा ...मैंभी इंद्रियव्यापारकी अपेक्षा चाहिये. औ ...स्वप्नका अध्यास मानैं तौ प्रमातासैं संबन्धी ...इंद्रियव्यापारसैं विनाही अपरोक्षता संभवै है. ...वा अहंकाराऽनवच्छिन्न चेतनही स्वप्नका ...प्रामाणिक हैं.

शरीरके अंतर्देशस्थ अहंकाराऽनवच्छिन्न चेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानताकी योग्यता ॥ ६६ ॥

अहंकाराऽनवच्छिन्नकूं कहैं, तामैंभी दो भेद हैं. अविद्यामैं प्रतिबिम्ब जीव चेतन वा अविद्यामैं बिम्ब ईश्वरचेतन दोनूं अहंकारानवच्छिन्न हैं. औ दोनूं व्यापक होनेतैं शरीरके अन्तर हैं. काहेतें ? चेतनमैं बिम्बप्रतिबिंब भेद स्वाभाविकहोवै तौ विरुद्धधर्माश्रयता अंतरदेशस्थ एकचेतनमैं संभवै नहीं. सो बिंबप्रतिबिंबतारूप ईश्वरजीवता उपाधिकृत है, एकही चेतनमैं अज्ञानसंबंधसैं बिम्बता प्रतिबिम्बता कल्पित है; यातैं शरीरस्थ एकचेतनमैं ही उभयविध व्यवहार होवै है, तैसैं अंतरदेशस्थमैं ही स्वप्नाध्यासकी अधिष्ठानताका अन्तःकरणकूं अवच्छेदक मानैं तौ अहंकारावच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवै है. तिसी चेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानताका अन्तःकरणकूं अवच्छेदक नहीं मानैं तौ अहंकारानवच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवै है. एकही देवदत्तमैं पुत्रदृष्टिसैं विवक्षा होवै तौ पिता कहैं हैं; देवदत्तके जनककी दृष्टिसैं विवक्षा होवै तौ पुत्र कहैं हैं. विवक्षाभेदसैं एक देवदत्तमैं पितृता पुत्रतारूप विरुद्ध धर्मके व्यवहारकी नाईं शरीरके अन्तर्देशस्थ एक चेतनमैं अवच्छिन्नत्व अनवच्छिन्नत्व बिम्बत्व प्रतिबिम्बत्वरूप विरुद्ध धर्मके व्यवहारका असंभव नहीं. इसरीतिसैं अविद्या जीवचेतनमैं वा बिम्बरूप ईश्वरचेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानता मानिकै अहंकारानवच्छिन्नमैं स्वप्नाध्यास मानैंभी शरीरदेशस्थ अन्तरचेतनप्रदेशमैंही स्वप्नकी अधिष्ठानता उचित है.

बाह्यांतरसाधारणदेशस्थ चेतनमैं स्वप्नकी अधिष्ठानताके कथनमैं गौडपाद औ भाष्यकारआदिकनके वचनसैं विरोध ॥ ६७ ॥

बाह्यांतरसाधारण देशस्थमैं स्वप्नकी अधिष्ठानता कहै तौ गौडपादाचार्यके वचनतैं औ भाष्यकारादिकनके वचनसैं विरोध होवैगा. काहेतैं ? मांडूक्यकारिकाके वैतथ्य प्रकरणमैं गौडपादाचार्यनैं यह कह्याहैः—स्वप्नके

हस्ती पर्वतादिकनकी उत्पत्तिके योग्य देशकालका अभाव होनेतैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. इस प्रकारसैं गौडपादाचार्यकी उक्तिके व्याख्यानमैं भाष्यकारादिकोंनैं यह कह्या है: क्षणघटिकादिकालमैं सूक्ष्म नाडीदेशमैं व्यावहारिक हस्ती आदिकनकी उत्पत्ति संभवै नहीं. यातैं स्वप्नके पदार्थ वितथ हैं; इसरीतिसैं शरीरके अन्तरदेशमैं स्वप्नकी उत्पत्ति कहीहै. साधारणचेतनमैं अधिष्ठानता मानैं तौ सूक्ष्मदेशमैं उत्पत्तिकथन असंगत होवैगा. यातैं शरीरकै अंतरदेशस्थ अहंकारानवच्छिन्न चेतनमैं स्वप्नाध्यासहै.

अहंकारानवच्छिन्न चेतनभी अविद्यामैं प्रतिबिंब औ बिंब दोनूं हैं तिनसैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनकूं अधिष्ठानताका सम्भव ॥ ६८ ॥

अहंकारानवच्छिन्नचेतनभी अविद्याप्रतिबिंब औ बिंब दोनूं हैं. औ मतभेदसैं दोनूंकूं स्वप्नकी अधिष्ठानता है, तथापि अविद्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनकूं अधिष्ठानता कहना ही समीचीन है. काहेतैं ? अपरोक्ष अधिष्ठानमैं अपरोक्ष अध्यास होवै है, औ शुद्धब्रह्मकी नाई ईश्वरचेतनका ज्ञान केवल शास्त्रसैं होवै है. स्वप्नाध्यासका ईश्वरचेतनकूं अधिष्ठान मानैं तौ शास्त्ररूप प्रमाणके अभावतैं अधिष्ठानकी अपरोक्षता विना अध्यासकी अपरोक्षताका असंभव होवैगा. औ अविद्यामैं प्रतिबिंब जीवचेतन अहंकारावच्छिन्न तौ अहमाकारवृत्तिका गोचर होवै है. औ अहंकारानवच्छिन्न अविद्यामैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतनभी अहमाकारवृत्तिका गोचर तौ नहीं है, परंतु जीवचेतन आवृत नहीं: यातैं स्वतःअपरोक्षतामैं अपरोक्ष अध्यास संभवै है.

उक्त पक्षविषै संक्षेपशारीरकमैं उक्त अध्यासकी अपरोक्षतावास्तै अधिष्ठान त्रिविध अपरोक्षता ॥ ६९ ॥

संक्षेपशारीरकमैं अध्यासकी अपरोक्षतावास्तै अधिष्ठानकी अपरोक्षता तीनि प्रकारसैं कहीहै, सर्प रजतादिकनकी अपरोक्षताका उपयोगी रज्जुशुक्ति आदिकनकी अपरोक्षता इंद्रियसैं होवै है, गगनमैं नीलतादिक अध्यासकी अपरोक्षताका उपयोगी गगनकी अपरोक्षता मनसैं होवै है,

स्वप्नकी अपरोक्षताकी उपयोगी अधिष्ठानकी अपरोक्षता स्वभावसिद्ध है; इस रीतिसैं संक्षेपशारीरकमैं सर्वज्ञात्ममुनिनैं स्वतः अपरोक्षमैं स्वप्नाध्यास कह्याहै यातैं जीवचेतनही स्वप्नका अधिष्ठान है.

उक्त पक्षमैं शंकासमाधानपूर्वक जीवचेतनरूप अधिष्ठानके स्वरूपप्रकाशतैं स्वप्नका प्रकाश ॥ ७० ॥

यद्यपि जीवचेतनकूं अनावृत होनेतैं स्वतः प्रकाशस्वभाव मानैं तौ अविद्याकूं व्यापकता होनेतैं तिसमैं प्रतिबिंबरूप जीवचेतन भी व्यापक है; ताका घटादिकनसैं सदा संबंध है, यातैं नेत्रादिजन्यवृत्तिकी अपेक्षा विनाहीं घटादिकनकी अपरोक्षता हुई चाहिये औ जीवचेतनसैं संबंधीकी अपरोक्षतामैं भी वृत्तिकी अपेक्षा मानैं तौ स्वतः अपरोक्ष जीवचेतनसैं स्वप्नाध्यासकी अपरोक्षता कही असंगत होवैगी, तथापि स्वप्नाध्यासका जीवचेतन अधिष्ठान है औ घटादिकनका अधिष्ठान जीवचेतन नहीं; किंतु ब्रह्मचेतनहै, यातैं स्वप्नके पदार्थनका तौ अपने अधिष्ठान जीवचेतनमैं तादात्म्य संबंध है. औ घटादिकनका अधिष्ठान ब्रह्मचेतन होनेतैं तिनका तादात्म्यसंबंध ब्रह्मचेतनसैं है; जीवचेतनसैं नहीं. नेत्रादिजन्य वृत्तिद्वारा जीवचेतनका घटादिकनसैं संबंध होवै है, वृत्तिसैं पूर्वकालमैं जो घटादिकनका संबंध सो अपरोक्षताका संपादक नहीं, यातैं घटादिकनसैं जीवचेतनके विलक्षण संबंधकी हेतु वृत्तिकी अपेक्षातैं अपरोक्षता होवै है; औ स्वप्नाध्यासमैं अधिष्ठानतारूप संबंधसैं जीवचेतनके सदासंबंधी पदार्थनका वृत्तिविनाही प्रकाश होवै है. इसरीतिसैं प्रकाशात्मश्रीचरण नाम आचार्यनैं कह्या है; औ मतभेदसैं वृत्तिका प्रयोजन आगे कहैंगे. या प्रकारतैं अविद्यामैं प्रतिबिंब जीवचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है औ ताके स्वरूपप्रकाशतैं स्वप्नका प्रकाश होवै है, परंतुः—

अद्वैतदीपिकामैं नृसिंहाश्रमाचार्योक्त आकाशगोचर चाक्षुषवृत्तिके निरूपणपूर्वक संक्षेपशारीरकोक्त आकाशगोचर मानसवृत्तिका अभिप्राय ॥ ७१ ॥

या प्रसंगमैं आकाशगोचर मानसवृत्ति कही. तहां नृसिंहाश्रम आचार्यनें अद्वैतदीपिकामैं यह कह्याहैः—यद्यपि नीरूप आकाशगोचर चाक्षुषवृत्ति संभवै नहीं, तथापि आकाशमैं प्रसृत आलोकरूपवाला होनेतैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्ति होवै है. औ आलोकावच्छिन्नचेतनका जैसैं वृत्तिद्वारा प्रमातासैं अभेद होवै है, तैसैं आलोकदेश वृत्ति आकाशावच्छिन्न चेतनकाभी अभेद होवै है. इसरीतिसैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्तिका विषय होनेतैं आकाशकी अपरोक्षताभी नेत्रइंद्रियजन्यही कहीहै. औ संक्षेपशारीरकमैं मानस अपरोक्षता कही ताका यह अभिप्राय हैः—आकाश तौ नीरूप है, यातैं आकाशाकार तौ वृत्ति संभवै नहीं; अन्याकारवृत्तिसैं समान देशस्थ अन्यका प्रत्यक्ष मानैं तौ घटके रूपाकार वृत्तिसैं घटके ह्रस्वदीर्घ परिमाणका प्रत्यक्ष हुया चाहिये; औ आलोकाकारवृत्तिसैं आलोकदेशस्थवायुकाभी चाक्षुष प्रत्यक्ष हुया चाहिये, यातैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्तिसैं आकाशकी अपरोक्षताके असंभवतैं मानस अपरोक्षताही संभवै है.

उभयमतके अंगीकारपूर्वक अद्वैतदीपिकोक्त रीतिकी समीचीनता ॥ ७२ ॥

सूक्ष्मविचार करैं तौ अद्वैतदीपिकाकी रीतिसैं अन्याकारवृत्तिसैं अन्यकी अपरोक्षता अप्रसिद्ध है, ताका अंगीकार दोष है, तथापि फलबलतैं कहूं अन्याकारवृत्तिसैं अन्यकी अपरोक्षता मानैं तौ उक्त दोषका उद्धार होवै है औ संक्षेपशारीरक रीतिसैं बाह्यपदार्थमैं अंतःकरणगोचरता अप्रसिद्धहै, ताका अंगीकार दोष है, औ फलबलतैं अन्याकार नेत्रकी वृत्ति सहकृत अंतःकरणकी वृत्तिकी गोचरता बाह्यपदार्थमैं मानैं तौ केवल अंतःकरणकूं बाह्यपदार्थगोचरता नहीं; या नियमका भंगरूप दोष नहीं इस प्रकारसैं उभयथालेख संभवै है, तथापि अद्वैतदीपिकारीतिही समीचीन है. काहेतैं? आलोकाकारवृत्तिकूं सहकारितारूप कारणता मानिकै अंतःकरणमैं बाह्यपदार्थगोचरसाक्षात्कारकी करणता अधिक माननी होवै है, अद्वैतदीपिकारीतिसैं अंतःकरणकूं बाह्यसाक्षात्कारकी करणता नहीं

ज्ञानकी होवै है. यातैं लाघव है, औ नेत्रकूं सहकारिता नहीं मानिकै केवल अंतःकरणकूं आकाशप्रत्यक्षका हेतु मानैं निमीलित नेत्रकूं भी आकाशका मानसप्रत्यक्ष हुया चाहिये. औ अंतःकरणकूं ज्ञानकी उपादानता होनेतैं करणताकथन सर्वथा अयुक्त है, यातैं संक्षेपशारीरकमैं आकाशके प्रत्यक्षकं मानसता कथन प्रौढिवाद है. इसरीतिसैं अध्यासकी अपरोक्षताका हेतु अधिष्ठानकी अपरोक्षता इंद्रियसैं अथवा स्वरूपप्रकाशतैं होवै है, इतनाही कहना उचित है, इसरीतिसैं मतभेदसैं स्वप्नका उपादान अवस्थाज्ञान है अथवा मूलाज्ञान है.

रज्जुसर्पादिकनकी सर्वमतमैं तूलाज्ञानकूंही उपादानता ॥ ७३ ॥

रज्जु सर्पादिकनका तौ सर्वमतमैं अवस्थाज्ञानही उपादान कारण है. औ रज्जु आदिकनके ज्ञानतैं तिनकी निवृत्ति होवै है, रज्जुके ज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा सर्पकी निवृत्ति होवै है यातैं एकबार ज्ञात रज्जुमैं कालांतरमैं उपादानके अभावतैं सर्पभ्रम नहीं हुया चाहिये. या शंकाका समाधान वृत्तिके प्रयोजननिरूपणमैं कहैंगे.

स्वप्नके अधिष्ठान आत्माकी स्वयंप्रकाशतामैं प्रमाणभूत बृहदारण्यककी श्रुतिका अभिप्राय ॥ ७४ ॥

स्वप्नके अधिष्ठानकूं स्वतः अपरोक्षतासैं स्वप्नकी अपरोक्षता पूर्व कही है औ स्वयंज्योतिर्ब्राह्मणवाक्यमैं भी "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति" इसरीतिसैं स्वप्नके प्रसंगमैं कह्या है, ताका यह अभिप्राय हैः— यद्यपि तीनों अवस्थामैं आत्मा स्वयंप्रकाश है, तथापि अपने प्रकाशमैं अन्यप्रकाशकी अपेक्षारहित जो सकलका प्रकाशक ताकं स्वयंप्रकाश कहैं हैं जाग्रत्अवस्थामैं सूर्यादिक औ नेत्रादिक प्रकाशक होनेतैं अन्यप्रकाशकी अपेक्षारहित ता आत्मामैं निर्द्धारित होवै नहीं; औ स्थूलदर्शीकूं सुषुप्तिमैं कोई ज्ञान प्रतीत होवै नहीं; इसीवास्तै सुषुप्तिमैं ज्ञानसामान्यका अभाव नैयायिक मानैं हैं; यातैं आत्मप्रकाशका सुषुप्तिमैंभी निर्द्धार होवै नहीं. इस अभिप्रायतैं श्रुतिनैं स्वप्नअवस्थामैं आत्माकूं स्वयंप्रकाश कहा है.

स्वप्नमैं इंद्रिय औ अंतःकरणकूं ज्ञानकी असाधनता कहिकै स्वतः अपरोक्ष आत्मासैं स्वप्नकी अपरोक्षता ॥ ७५ ॥

स्वप्नअवस्थामैं भी नेत्रादिक इंद्रियका संचार होवै, तौ स्वप्नमैंभी आत्माकूं प्रकाशांतर निरपेक्षताके अभावतैं स्वयंप्रकाशताका निर्द्धार अशक्य होवैगा. इसरीतिसैं इंद्रियव्यापारतैं विना स्वप्नमैं आत्मप्रकाश है, स्वप्नमैं हस्तमैं दंडकूं लेकै उष्ट्रमाहिषादिकनकूं ताडनकर्ता नेत्रसैंआम्रादिकनकूं देखता भ्रमण करै है; औ हस्तनेत्रपादके गोलक निश्चल प्रतीत होवै हैं, यातैं स्वप्नमैं व्यावहारिक इंद्रियका व्यापार नहीं, औ प्रातिभासिक इंद्रियका अंगीकार नहीं.जो स्वप्नमैं प्रातिभासिक इंद्रिय होवै तौ स्वप्नमैं प्रकाशांतरके अभावतैं स्वयंप्रकाशता श्रुतिमैं कही है ताका बाध होवैगा. औ विचारसागरमैं स्वप्नमैं इंद्रिय प्रातिभासिक कहेहैं सो प्रौढिवाद है.स्वप्नमैं प्रातिभासिक इंद्रिय मानिकै भी ज्ञानके समानकालमैं तिनकी उत्पत्ति होनेतैं ज्ञानकी साधनता तिनकूं संभवै नहीं. इसरीतिसैं अपना उत्कर्ष बोधन करनेकूं पूर्ववादीकी उक्ति मानिकै समाधान है, यातैं स्वप्नमैं ज्ञानके साधन इंद्रिय नहीं. औ इंद्रियव्यापार विना केवल अंतःकरणकूं ज्ञानसाधनताके अभावतैं तत्त्वदीपिकाके मतसैं अंतःकरणका स्वप्नमैं गजादिरूप परिणाम होनेतैं ज्ञानकर्मकूं ज्ञानसाधनताके असंभवतैं अंतःकरणव्यापारविना आत्मप्रकाश है. यातैं स्वतः अपरोक्ष आत्मासैं स्वप्नकी अपरोक्षता होवै है, औ स्वप्नअवस्थामैं गजादिकनमैं चाक्षुषता प्रतीत होवै है, सोभी गजादिकनकी नाईं अध्यस्त है, जाग्रत्‌मैं घटादिकनकी चाक्षुषता व्यावहारिक है औ रज्जुसर्पादिकनकी चाक्षुषता अध्यस्त होनेतैं प्रातिभासिक है.

दृष्टिसृष्टि औ सृष्टिदृष्टिवादका भेद दृष्टिसृष्टिवादमैं सकल अनात्माकी ज्ञानसत्ता (साक्षीभास्यता) कहिकै दृष्टिसृष्टिपदके दो अर्थ ७६

दृष्टिसृष्टिवादमैं तौ किसी अनात्मपदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं किंतु ज्ञातसत्ता है, यातैं रज्जुसर्पकी नाईं सकल अनात्मवस्तु साक्षिभास्य

तिनमैं इंद्रियजन्यज्ञानकी विषयता प्रतीत होवै है; सो अध्यस्त है. दृष्टिसृष्टिवादमैं दो भेद हैंः—सिद्धांतमुक्तावली आदिग्रंथनमैं तौ यह कह्या हैः—दृष्टि कहिये ज्ञानस्वरूपही सृष्टि है, ज्ञानतैं पृथक् सृष्टि नहीं औ आकरग्रंथनमैं यह कह्या हैः—दृष्टिज्ञानसमय अनात्मपदार्थकी सृष्टि है, ज्ञानतैं पूर्व अनात्मपदार्थ होवै नहीं; यातैं सकलदृश्यकी ज्ञातसत्ता है अज्ञातसत्ता नहीं; इसरीतिसैं द्विविध दृष्टिसृष्टिवाद है सकल अद्वैत शास्त्रकूं यही अभिमत है.

सृष्टिदृष्टिवाद (व्यावहारिकपक्ष) का कथन ॥ ७७ ॥

कितने ग्रंथकारोंनैं स्थूलदर्शी पुरुषनके अनुसारतैं **सृष्टिदृष्टिवाद** मान्या है. प्रथम सृष्टि होवै है उत्तरकालमैं प्रमाणके संबंधतैं दृष्टि होवै है. सृष्टिसैं उत्तर दृष्टि होवै यह सृष्टिदृष्टिपदका अर्थ है. यापक्षमैं अनात्मपदार्थकीभी अज्ञातसत्ता है, औ अनात्म घटादिकनकी रज्जुसर्पादिकनसैं विलक्षण व्यावहारिकसत्ता है औ दृष्टिसृष्टिवादमैं कोई अनात्मवस्तु प्रमाणका विषय नहीं किंतु ब्रह्महीं वेदांतरूप शब्दप्रमाणका विषय है. अचेतन पदार्थ सारै साक्षीभास्य हैं, तिनमैं चाक्षुषतादिकप्रतीति भ्रमरूप है. प्रमाणप्रमेयविभागभी स्वप्नकी नाईं अध्यस्त है. औ सृष्टिदृष्टिवादमैं अनात्मपदार्थ घटादिक प्रमाणके विषय हैं. तैसैं गुरुशास्त्रादिकभी व्यावहारिक हैं. शुक्तिरजतादिकनतैं विलक्षण हैं व्यावहारिक रजतादिक पदार्थनसैं कटकादिरूप प्रयोजनसिद्धि होवै है, प्रातिभासिकसैं प्रयोजनसिद्धि होवै नहीं; तथापि अधिष्ठानज्ञानसैं निवृत्ति दोनूंकी समान होवैहै, औ सदसद्विलक्षणस्वरूप अनिर्वचनीयत्वभी दोनूंमैं समान है. तैसैं स्वाधिकरणमैं त्रैकालिक अभावभी दोनूंका समान है, यातैं प्रातिभासिककी नाईं व्यावहारिक पदार्थभी मिथ्या हैं, यातैं सृष्टिदृष्टिवादमैंभी अद्वैतकी हानि नहीं.

मिथ्याप्रपंचके मिथ्यात्वमैं शंकासमाधान. उक्त दोनूं पक्षविषै मिथ्यापदार्थनके मिथ्यात्व धर्ममैं द्वैतवादिकनका आक्षेप ॥ ७८ ॥

या प्रसंगमैं यह शंका है:—दृष्टिसृष्टिवादतैं तथा सृष्टिदृष्टिवादमैं सकल
अनात्म मिथ्या हैं, यामैं विवाद नहीं, परंतु मिथ्या पदार्थनसैं मिथ्यात्वधर्म
है, तामैं द्वैतवादी यह आक्षेप करैहैं:—प्रपंचमैं मिथ्यात्वधर्म सत्य है अथवा
मिथ्याहै? सत्य कहै तौ चेतनभिन्न अनात्म धर्मकूं सत्यता होनेतैं अद्वैतकी
हानि होवैगी. औ मिथ्यात्वकूं मिथ्या कहै तौ भी अद्वैतकी हानि होवैगी.
तथाहि:—मिथ्या पदार्थकूं स्वविरोधी पदार्थकी प्रतिक्षेपता होनेतैं प्रपंचके
मिथ्याभूत मिथ्यात्वतैं ताकी सत्यताका प्रतिक्षेप नहीं होवैगा जैसैं एकही
ब्रह्ममैं सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व धर्म है. मिथ्याभूतसप्रपंचत्व धर्मतैं निष्प्र-
पंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं; किंतु सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व दोनूं धर्मवाला
ब्रह्म है. कल्पित सप्रपंचत्व है और पारमार्थिक निष्प्रपंचत्व है, तैसैं प्रपंचमैं
कल्पित मिथ्यात्व है औ पारमार्थिक सत्यत्व है; इसरीतिसैं प्रपंचके पार-
मार्थिक सत्यत्वधर्मके सद्भावतैं अद्वैतकी हानि होवैगी.

उक्त आक्षेपका अद्वैत दीपिकोक्त समाधान ॥ ७९ ॥

इस आक्षेपका अद्वैतदीपिकामैं यह समाधान लिख्या है:—"सन्
घटः" इसरीतिसैं घटादिकनमैं सत्यता प्रतीत होवै है, सो अधिष्ठानगत
सत्यताका घटादिकनमैं भान होवै है अथवा अधिष्ठानगत सत्यताका घटा-
दिकनमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है. घटादिकनमैं सदसद्विलक्षणतारूप
मिथ्यात्व धर्म श्रुतिसिद्ध है. सद्विलक्षणमैं मिथ्यात्व होनेतैं मिथ्यात्वका
सत्यत्वसैं विरोध है यातैं घटादिकनमैं अपनी सत्यता नहीं. ताका
मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवै है. और जो द्वैतवादी कहै हैं; मिथ्यात्वधर्मकूं
सत्यता माने विना मिथ्याभूत मिथ्यात्वसैं प्रपंचकी सत्यताका प्रतिक्षेप
संभवै नहीं. जो मिथ्याभूत धर्मसैं भी स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप कहैं तौ
मिथ्याभूत सप्रपंचत्वतैं ब्रह्मकी निष्प्रपंचताकाभी प्रतिक्षेप हुया चाहिये.
यह कथन अयुक्त है. काहेतैं? यह नियम है:— प्रमाणसिद्ध एक धर्मतैं
स्वसमानसत्तावाले धर्मीके स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवैहै. जहां धर्मीकी

विषमसत्ता होवै ताके विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं, ब्रह्मका सप्रपंचत्व व्यावहारिक है. औ ब्रह्म पारमार्थिक है यातैं सप्रपंचत्वके समानसत्तावाला धर्मी ब्रह्म नहीं ताके निष्प्रपंचत्वका सप्रपंचत्वसें प्रतिक्षेप होवै नहीं. औ व्यावहारिक प्रपंचमैं मिथ्यात्वभी व्यावहारिक है. काहेतैं ? आगंतुक दोषरहित केवल अविद्याजन्य प्रपंच औ मिथ्यात्व हैं, यातैं दोनूं व्यावहारिक होनेतैं समानसत्तावाला प्रपंच है, ताके सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवैहै. औ सत्यधर्मतैं ही विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप मानैं तौ "रजतं सत्" इसरीतिसैं शुक्तिरजतमैं सत्यत्व प्रतीत हुयेका रजतके मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप नहीं हुया चाहिये. काहेतैं ? कल्पितरजतमैं मिथ्यात्व धर्मभी कल्पित है सत्य नहीं यातैं विरोधी धर्मके प्रतिक्षेपमैं प्रतिक्षेपक धर्मकी सत्यता अपेक्षित नहीं किंतु जा धर्मीके धर्म विरोधी होवैं सो धर्मी प्रतिक्षेपक धर्मके समानसत्तावाला चाहिये यातैं ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वके प्रतिक्षेपकी आपत्ति नहीं. औ प्रपंचके व्यावहारिक मिथ्यात्वतैं सत्यत्वका प्रतिक्षेप संभवै है.

मिथ्याप्रपंचके मिथ्यात्व धर्ममैं प्रकारांतरसैं द्वैतवादिनका आक्षेप ॥ ८० ॥

औ प्रकारांतरसैं द्वैतवादी आक्षेप करै है, तथाहिः—प्रपंचमैं मिथ्यात्व धर्मकं मिथ्या मानै तौभी प्रपंचके पारमार्थिक सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं. काहेतैं ? समानसत्तावाले धर्मनका विरोध होवै है, विषमसत्तावाले पदार्थनका विरोध होवै नहीं. जो विषमसत्तावाले पदार्थनका विरोध होवै तौ शुक्तिमैं प्रातिभासिक रजततादात्म्यतैं व्यावहारिक रजतभेदका प्रतिक्षेप हुया चाहिये; इसप्रकारतैं प्रपंचके व्यावहारिक मिथ्यात्वतैं पारमार्थिक सत्यत्वके प्रतिक्षेपका असंभव होनेतैं प्रपंच सत्य है यातैं अद्वैतका असंभव है.

उक्त आक्षेपके उक्तही समाधानकी घटता ॥ ८१ ॥

या शंकाकाभी उक्तही समाधान है. काहेतें ? पूर्वोक्त रीतिसैं सर्परजतादिकनके मिथ्यात्वतैं तिनके सत्यत्वका प्रतिक्षेप नहीं हुया चाहिये; यातैं प्रमाणनिर्णीत धर्मतैं विरोधी धर्मकी प्रतिक्षेपकतामैं प्रमाणनिर्णीतत्व प्रयोजक है. रजतका मिथ्यात्व प्रमाणनिर्णीत है, ताके विरोधी सत्यत्वका प्रतिक्षेपक है तैसैं प्रपंचका मिथ्यात्वभी श्रुत्यादि प्रमाणोंतैं निर्णीत है तासैं प्रपंचसत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै, शुक्तिमैं रजतका तादात्म्य भ्रमसिद्ध है, प्रमाणनिर्णीत नहीं; तासैं रजतभेदका प्रतिक्षेप होवै नहीं; उलटा शुक्तिमैं रजतभेदही प्रमाणनिर्णीत है; तासैं रजततादात्म्यका प्रतिक्षेप होवै है, औ प्रपंचके मिथ्यात्वके मिथ्यात्वकूं व्यावहारिक मानिकै ताके धर्मी प्रपञ्चकूं सत्य कहना सर्वथा विरुद्ध है. काहेतें ? व्यावहारिक धर्मका आश्रय व्यावहारिकही संभवै है. यातैं द्वैतवादीका द्वितीय आक्षेपभी असंगत है.

अद्वैतदीपिकोक्त समाधानका सत्ताके भेद मानैं तौ संभव औ एकसत्ता मानैं तौ असंभव ॥ ८२ ॥

इसरीतिसैं अद्वैतदीपिका ग्रंथकी रीतिसैं प्रतिक्षेपक धर्मके समान सत्तावाला धर्मी होवै, ताके विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै है ऐसा नियम मानैं तौ प्रपञ्चके मिथ्याभूतमिथ्यात्वतैं प्रपञ्चके सत्यत्वका प्रतिक्षेप संभवैहै; औ ब्रह्मके सप्रपञ्चत्वतैं निष्प्रपञ्चत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं; परंतु सत्ताभेद मानैं तौ अद्वैतदीपिकोक्त समाधान संभवै है. औ ब्रह्मरूपसत्ताकाही घटादिकनमैं भान होवै है, व्यावहारिक प्रातिभासिक पदार्थनमैं भिन्नसत्ता नहीं. या पक्षमैं एक सत्ता मानैं तौ उक्तसमाधान संभवै नहीं.

उक्त आक्षेपका निश्चलदासोक्त समाधान ॥ ८३ ॥

किंतु अस्मद्भावनासैं यह समाधान है:—प्रमाणनिर्णीतधर्मसैं स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै है औ दोनूं धर्म प्रमाणनिर्णीत होवैं, तहां अपरधर्मका प्रतिक्षेप होवैं नहीं. प्रपञ्चका मिथ्यात्व श्रुत्यादिप्रमाणसैं निर्णीतहै औ प्रपञ्चके

सत्यत्वमैं कोई श्रुतिवचन प्रमाण नहीं. उलटा श्रुतिवाक्यनतैं सत्यत्वका अभाव प्रतीत होवै है, यातैं प्रपञ्चके मिथ्यात्वतैं सत्यत्वका बाध होवै है. "घटःसन्" इस रीतिसे प्रत्यक्ष प्रमाणतैं यद्यपि प्रपंचमैं सत्यत्व प्रतीत होवै है, तथापि अपौरुषेय श्रुतिवचनतैं पुरुषप्रत्यक्ष दुर्बल है, यातैं प्रपंचका सत्यत्व प्रमाणसिद्ध नहीं. औ ब्रह्मका सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व दोनूं प्रमाणसिद्ध हैं, यातैं एकधर्मसैं अपरका बाध होवै नहीं, परंतु निष्प्रपंचत्वज्ञानतैं परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होवैहै, यातैं निष्प्रपंचत्व प्रतिपादनमैं श्रुतिका तात्पर्य है. औ अद्वैत निष्प्रपंच ब्रह्मके बोधका उपयोगी सप्रपंचका निरूपण है; यातैं सप्रपंचत्वनिरूपणमैं श्रुतितात्पर्यके अभावतैं सप्रपंचत्व पारमार्थिक नहीं; किंतु कल्पित है, परंतु दोषादिकरहित केवल अविद्याजन्य होनेतैं प्रातिभासिक नहीं; व्यावहारिक है. इसरीतिसैं निष्प्रपंचत्वतैं सप्रपंचत्वका बाध सिद्ध होवै है. काहेतैं ? सप्रपंचत्वप्रतिपादक वचनका व्यावहारिक सप्रपंचत्वमैं तात्पर्य कहनेतैं सप्रपंचत्वका संकोच होवै है ब्रह्मका सप्रपंचत्व सदा नहीं, किंतु विद्यासैं पूर्व अविद्याकालमैं है, यातैं निष्प्रपंचत्वधर्मसैं बाध्यसप्रपंचत्व है; तासैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप संभवै नहीं. यातैं द्वैतवादीका आक्षेप असंगत है.

उक्त आक्षेपका अन्य ग्रंथकारोक्त समाधान ॥ ८४ ॥

औ नृसिंहाश्रमाचार्यसैं अन्यग्रंथकारोंनैं उक्त आक्षेपका यह समाधान कह्याहैः--स्वाश्रयगोचर तत्त्वसाक्षात्कारतैं जिस धर्मका बाध नहीं होवै, तिसधर्मतैं विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै है. औ स्वाश्रयगोचरतत्त्वसाक्षात्कारतैं जिसधर्मका बाध होवै तिसतैं स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं. मिथ्यात्वका आश्रय जो प्रपंच ताके अधिष्ठान ब्रह्मगोचर तत्वसाक्षात्कारतैं प्रपंचके मिथ्यात्वका बाध होवै नहीं, उलटा ब्रह्मसाक्षात्कारतैं प्रपंचमैं दृढतरमिथ्यात्वबुद्धि होवैहै; यातैं प्रपंचके मिथ्यात्वसैं तिसके विरोधी सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै; औ सप्रपंचत्वका आश्रय ब्रह्म है; ताके साक्षात्कारतैं सप्रपंचत्वका बाध होवै है; यातैं ब्रह्मके निष्प्रपंचत्वतैं सप्रपंचत्वका बाध होवै

है. जैसैं शुक्तिमैं स्वतादात्म्य है, कल्पितकाभी स्वाधिष्ठानमैं तादात्म्य होनेतैं रजततादात्म्य है, तहांशुक्तिसाक्षात्कारतैं शुक्तितादात्म्यका बाध होवै नहीं; यातैं शुक्तितादात्म्यसैं स्वविरोधी शुक्तिभेदका प्रतिक्षेप होवै है. शुक्तिसाक्षात्कारतैं रजततादात्म्यका बाध होवै है; यातैं रजततादात्म्यसैं स्वविरोधिरजतभेदका प्रतिक्षेप होवै नहीं, तैसैं प्रपंचके मिथ्याभूत मिथ्यात्वतैं सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवै है औ ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं. इसरीतिसैं द्वैतवादीके आक्षेपके अनेक समाधान हैं. तिनके वचनोंसैं जिज्ञासुकूं विमुखता करनी योग्य है.

मतभेदसैं पांच प्रकारका प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप (तिरस्कार) ॥ ८५ ॥

तत्त्वशुद्धिकारकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप.

प्रपंचके मिथ्यात्वतैं ताके सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवै है यह कह्याः—तहां सत्यत्वका प्रतिक्षेप-मतभेदसैं पांच प्रकारका है, तत्त्वशुद्धिके मतमैं "घटः सन्" इत्यादिक प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय घटादिकनका अधिष्ठान सत्रूप चेतन है. औ सद्रूपचेतनमैं अध्यस्त घटादिक अपने अधिष्ठानसैं अभिन्न होयके भ्रमवृत्तिके विषय होवैं हैं. जैसैं शुक्तिरज्जुआदिकनकूं विषय करनेवाली इदमाकार चाक्षुष वृत्ति होवै है, औ रजत सर्पादिक चाक्षुषवृत्तिके विषय नहीं; किंतु भ्रमवृत्तिके विषय हैं, तैसैं नेत्रादिप्रमाणजन्य सकल ज्ञानोंका विषय अधिष्ठानसत्ता है, घटादिगोचर प्रमाणजन्यवृत्ति होवै नहीं; काहेतैं ? अज्ञातगोचर प्रमाण होवै है. औ जडपदार्थकूं अज्ञानकृत आवरणके असंभवतैं अज्ञातत्वके अभावतैं प्रमाणगोचरता संभवै नहीं; यातैं रजतसर्पादिकनकी नाई भ्रमके विषय घटादिक हैं, तिनका अधिष्ठान सत्रूप है, सोई नेत्रादिप्रमाणजन्यवृत्तिका विषय है. इसरीतिसैं सकल प्रमाणका विषय सत्रूप चेतन है. सत्रूपचेतनमैं तादात्म्यसैं अनेक भेदविशिष्ट घटादिकनकी प्रतीति भ्रमरूप है, यातैं घटादिकनमैं सत्ता किसी

प्रमाणका विषय नहीं, इसीवास्तै घटादिकनके मिथ्यात्वकूं अनेक श्रुतिस्मृति अनुवाद करैं हैं. तत्त्वशुद्धिकारनैं इसरीतिसैं नेत्रादिप्रमाणका गोचरअधिष्ठान सत्ता कही है, घटादिकनकी सत्ता नेत्रादिप्रमाणका गोचर नहीं, यातैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप कह्या है.

अन्यग्रंथकारनकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८६ ॥

औ कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैं हैं:—"घटोऽस्ति" इत्यादिक प्रतीतिका गोचर घटादिकनका सत्त्व है, औ श्रुतियुक्तिज्ञानीके अनुभवतैं घटादिकनमैं मिथ्यात्व है, तहां अबाधितत्वरूप सत्त्वका मिथ्यात्वसैं विरोध होनेतैं घटादिकनमैं जातिरूप सत्त्व है. जैसैं सकल घटनमैं अनुगत धर्म घटत्व है, तैसैं "सन् घटः सन् पटः" इस एकाकार प्रतीतिका गोचर सकल पदार्थनम अनुगत धर्म जातिरूप सत्त्व है; अथवा देशकालके संबंधविना तौ घटादिकनकी प्रतीति होवै नहीं, देशकालके संबंधविशिष्ट घटादिकनकी प्रतीति होवै है "इह घटोऽस्ति" "इदानीं घटोऽस्ति" इसरीतिसैं देशसंबंधकूं औ कालसंबंधकूं घटादिगोचरप्रतीति विषय करैं हैं, सो देशसंबंधरूप वा कालसंबन्धरूपही घटादिकनम सत्त्व है; अथवा घटादिकनकास्वरूपही "घटोऽस्ति" या प्रतीतिका विषय है. घटादिकनसैं पृथक् सत्त्वकूं उक्त प्रतीति विषय करैं नहीं. काहेतैं? नशब्दरहितवाक्यसैं जाकी प्रतीति होवै नशब्दसहितवाक्यसैं ताका निषेध होवै है; और "घटोनास्ति" या वाक्यतैं घटके स्वरूपका निषेध होवै है, यह सर्वकूं संमत है; यातैं "घटोऽस्ति" या नशब्दरहितवाक्यतैं घटके स्वरूपमात्रका बोध ही मानना उचित है; इसरीतिसैं "घटोऽस्ति" इसप्रतीतिका गोचर घटका स्वरूप है, यातैं स्वरूपसैं अतिरिक्त घटादिकनमैं सत्त्वके अभावतैं ताका प्रतिक्षेप कहैं हैं.

न्यायसुधाकारकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८७ ॥

औ न्यायसुधाकारके मतमैं अधिष्ठानगत सत्ताका संबंध घटादिकनमैं उक्त प्रतीतिका गोचर है, तत्त्वशुद्धिकारके मतमैं तौ घटादिक अनात्मगोचर

प्रतीति प्रमाणजन्य नहीं; केवल अधिष्ठानसत्ता गोचरप्रमाण है. औ या प्र-
तसैं अधिष्ठानसत्ताका संबंधविशिष्ट घटादिक प्रमाणके विषय हैं, इतना भेद
है. इसरीतिसैं घटादिकनमैं अधिष्ठानसत्ताका संबंध होनेतैं घटादिकनमैं सत्त्व
प्रतीत होवैहै. औ घटादिकनमैं सत्त्वके अभावतैं ताका प्रतिक्षेप कहिये है.
औ अधिष्ठानसत्ताकी प्रतीति घटादिकनमैं मानैं तौ अन्यथाख्यातिका
अंगीकार होवै है; यातैं अधिष्ठानसत्ताका अनिर्वचनीयसंबंध घटादिकतैं
उपजै है, यह कहनाही उचित है.

अन्यआचार्यकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८८ ॥

औ कोई आचार्य इसरीतिसैं सत्त्वका प्रतिक्षेप कहैं हैं:-श्रुतिमैं यह
कह्याहै:-"प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्" प्राण शब्दका अर्थ हिरण्य-
गर्भ है, प्राण कहिये हिरण्यगर्भ सत्य है, ताकी अपेक्षातैं परमात्मा उत्कृष्ट
सत्य है; यह श्रुतिका अर्थ है "सत्यस्य सत्यम्" इसरीतिसैं अन्य श्रुति है,
अनात्मसत्यतासैं आत्मसत्यता उत्कृष्ट है; यह श्रुतिका अर्थ है. जैसैं
अन्यराजाकी अपेक्षातैं उत्कृष्टराजाकूं राजराज कहैं हैं, तैसैं उत्कृष्ट सत्यकूं
"सत्यका सत्य" कह्या है. इसरीतिसैं श्रुतिवाक्यनमैं सत्यके उत्कर्ष अपकर्ष
कहैं हैं; तहां अन्यविध उत्कर्ष अपकर्ष तौ संभवै नहीं. सर्वदा अबाध्यत्व
औ किंचित्काल अबाध्यत्वरूपही सत्यत्वमैं उत्कर्ष अपकर्ष है. अनात्म-
पदार्थनमैं ज्ञानतैं पूर्वकालमैं अबाध्यत्वरूप सत्यत्व है औ परमात्मवस्तुमैं
सर्वदा अबाध्यत्वरूप सत्यत्व है; यातैं हिरण्यगर्भ तौ अपकृष्ट सत्य है
औ परमात्मा उत्कृष्ट सत्य है. इसरीतिसैं द्विविध सत्यत्व श्रुतिसंमत है; तिनमैं
किंचित्काल अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं विरोध नहीं; किंतु
सर्वदा अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं विरोध होनेतैं ताका प्रपंचके
मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवै है.

संक्षेप शारीरककी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप ॥ ८९ ॥

औ संक्षेप शारीरकमैं यह कह्याहै:-यद्यपि प्रत्यक्षादिप्रमाणसैं घटा-

दिकनमैं सत्यत्व प्रतीत होवै है तथापि ब्रह्मबोधक वाक्यनमैंही प्रमाणता है अनात्मग्राहक प्रत्यक्षादिक **प्रमाणाभास** हैं; प्रमाण नहीं. काहेतें ? अज्ञात अर्थके बोधका जनक प्रमाण होवै है. अज्ञानकृत आवरणका जडपदार्थमैं असंभव होनेतें चेतनभिन्नमैं अज्ञातत्वके अभावतें तिनके बोधक प्रत्यक्षादिकनकूं प्रमाणता संभवै नहीं. इसरीतिसैं प्रमाणाभासतें घटादिकनमैं सत्यत्वकी सिद्धि होवै है. औ श्रुतिरूप प्रमाणतें घटादिकनमैं मिथ्यात्वकी सिद्धि होवै है. मुख्यप्रमाणतें प्रमाणाभासके बाधद्वारा सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवै है. इसरीतिसैं प्रपंचमैं अत्यंत अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका पंचप्रकारसैं प्रतिक्षेप कह्या है यातैं प्रपंच मिथ्या है.

कर्मकूं ज्ञानकी साधनता विषै विचार

मिथ्या प्रपचकी निवृत्तिमैं कर्मके अनुपयोगके अनुवादपूर्वक सिद्धांतके द्विविध समुच्चयका निर्द्धार ॥ ९० ॥

मिथ्याकी निवृत्तिमैं कर्मका उपयोग नहीं, यातैं केवल कर्मतें वा कर्म समुच्चितज्ञानतें अनर्थनिवृत्ति संभवै नहीं, केवल ज्ञानतें अनर्थनिवृत्ति होवै है; यह अर्थ अद्वैतवादके ग्रन्थनमैं अतिप्रसिद्ध है, औ भाषामैंभी विचारसागरके षष्ठतरंगमैं स्पष्ट है; यातैं लिख्या नहीं. या स्थानमैं यह सिद्धांत है:—अनेक श्रुतिस्मृतिमैं कर्म समुच्चित ज्ञानसैं मोक्षप्राप्ति कही है, औ भाष्यकारनैं बहुत स्थानमैं समुच्चयवादका निषेध प्रतिपादन कऱ्या है तहां यह निर्द्धार है:—समसमुच्चय औ क्रमसमुच्चय भेदसैं समुच्चय दो प्रकारका होवैहै. ज्ञान औ कर्म दोनूं परस्पर मिलिकै मोक्षके साधन जानिकै एक कालसैं दोनूंका अनुष्ठान समुच्चय कहिये है. औ एकही अधिकारीकूं पूर्व कर्मानुष्ठान औ उत्तरकालमैं सकल कर्म त्यागिकै ज्ञानहेतु श्रवणादिकनका अनुष्ठान क्रमसमुच्चय कहिये है; तिनमैं समसमुच्चयका तो निषेध है औ श्रुतिस्मृतिमैं ज्ञानकर्मका जहां समुच्चय लिख्या है, ताका पूर्व उक्त क्रमसमुच्चयमैं तात्पर्य है.

भाष्यकारोक्तिकी साधनता ॥ ९१ ॥

भाष्यकारका यह सिद्धांत है:—मोक्षका साक्षात्साधन कर्म नहीं; किन्तु मोक्षका साक्षात्साधन ज्ञान है, औ ज्ञानका साधन कर्म है; परंतुः-

वाचस्पत्युक्तजिज्ञासाकी साधनता ॥ ९२ ॥

भामतीनिबंधमैं वाचस्पतिनैं तौ यह कह्या है:—ज्ञानके साक्षात्साधन कर्म नहीं; किन्तु जिज्ञासाके साधन कर्म हैं; काहेतैं? कैवल्यशाखामैं सकल आश्रमकर्म विविदिषाके साधन स्पष्ट कहेहैं, वेदनकी इच्छाकूं **विविदिषा** कहेहैं. औ तृतीयाध्यायमैं सर्व कर्मनकी अपेक्षा ज्ञानमैं सूत्रकारनें कही है. तहां सूत्रके व्याख्यानमैं भाष्यकारनैं यह कह्याहै:—शमदमादिक साधन तौ ज्ञानके साधन हैं; यातैं ज्ञानके समीप हैं, औ जिज्ञासाके साधन कर्म हैं, यातैं शमदमादिकनकी अपेक्षातैं ज्ञानके दूर हैं. इसरीतिसैं श्रुतिवचनतैं औ भाष्यवचनतैं जिज्ञासाके साक्षात्साधन कर्म हैं. औ जिज्ञासाद्वारा ज्ञानके साधन हैं. जो ज्ञानके साक्षात्साधनही कर्म कहैं, तौ ज्ञानके उदयपर्यंत कर्मानुष्ठानकी प्राप्ति होनेतैं साधनसहित कर्मत्यागरूप संन्यासका लोप होवैगा, यातैं जिज्ञासाके साधन कर्म हैं यह वाचस्पतिका मत है.

विवरणकारोक्त कर्मकूं ज्ञानकी साधनता ॥ ९३ ॥

औ विवरणकारका यह मत है:—यद्यपि "वेदानुवचनेन विविदिषंति" इसरीतिसैं श्रुतिमैं कह्या है; तहां अक्षरमर्यादासैं वेदाध्ययनादिक धर्मनकूं विविदिषाकी साधनता प्रतीत होवै है, तथापि इच्छाके विषयज्ञानकी साधनतामैंही श्रुतिका तात्पर्य है. कर्मनकूं इच्छाकी साधनतामैं श्रुतिका तात्पर्य नहीं. जैसैं "अश्वेन जिगमिषति" इसवाक्यतैं अक्षरमर्यादासैं गमनगोचर इच्छाकी साधनता अश्वकूं प्रतीत होवैहै, औ "शस्त्रेण जिघांसति" इसवाक्यतैं हननगोचर इच्छाकी साधनता शस्त्रकूं प्रतीत होवै है, तहां इच्छाका गोचर जो गमन ताकी साधनता अश्वसैं अभिमत है. औ इच्छाका विषय हननकी साधनता शस्त्रमैं अभिप्रेत है; तैसैं इच्छाके विषयज्ञानकी साधनता

कर्मनकूं अभिप्रेत है.औ या पक्षमैं दोष कह्याहै:—कर्मनकूं ज्ञानकी साधनता मानैं तौ ज्ञानउदयपर्यंत कर्मानुष्ठानकी आपत्ति होनेतैं संन्यासका लोप होवैगा;ताका यह साधन है:—जैसैं बीजप्रक्षेपतैं पूर्व तौ भूमिका कर्षण होवै है, औ बीजप्रक्षेपतैं उत्तरकालमैं भूमिका आकर्षण होयकै व्रीहि आदिकनकी सिद्धि कर्षण आकर्षणतैं होवैहै. तैसैं कर्म औ कर्मसंन्यासतैं ज्ञानकी सिद्धि होवैहै. अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा प्रत्यक्तत्त्वकी तीव्र जिज्ञासा वैराग्यसहित होवै तबपर्यंत कर्म कर्तव्य है; औ वैराग्यसहित तीव्र जिज्ञासाके उत्तरकालमैं साधनसहित कर्मका त्यागरूप संन्यास कर्तव्य है. इसरीतिसैं ज्ञानके साधन कर्म हैं, तथापि तीव्र जिज्ञासातैं पूर्वही कर्तव्य हैं. तीव्र जिज्ञासातैं उत्तरकालमैं संन्यासके अंग शमादिक ही कर्तव्य हैं. कर्म नहीं; यातैं कर्मकी अपेक्षातैं शमादिकनकूं अंतरंगताप्रतिपादक तृतीयाध्यायस्थ भाष्यवचनसैं विरोध नहीं. इसरीतिसैं विवरणकारके मतमैं ज्ञानके साधन कर्म हैं औ वाचस्पतिके मतमैं विविदिषाके साधन हैं.

औ दोनूं मतमैं विविदिषातैं पूर्वकालमैं कर्मका अनुष्ठान औ उत्तरकालमैं शमादिसहित संन्यासपूर्वक श्रवणादिकनका अनुष्ठान है; विविदिषातैं उत्तरकालमैं किसीके मतमैं कर्म कर्तव्य नहीं.

वाचस्पति औ विवरणकारके मतकी विलक्षणतामैं शंका ॥ ९४ ॥

या स्थानमैं यह शंका होवै है, दोनूं मतमैं विविदिषातैं पूर्वकालमैंही कर्म कर्तव्य होवै तौ मतभेदनिरूपण निष्फल होवैगा. काहेतैं वाचस्पतिके मतमैं कर्मका फल विविदिषा है औ विवरणकारके मतमैं कर्मका फल ज्ञान है. फलकी सिद्धि हुयां साधनका त्याग होवै है; यातैं वाचस्पतिके मतमैं विविदिषाकी सिद्धिपर्यंत कर्मका अनुष्ठान मानैं औ विवरणकारके मतमैं विविदिषातैं उत्तरकालमैंभी ज्ञानकी सिद्धिपर्यंत कर्मका अनुष्ठान मानैं तौ दोनूं मतनमैं विलक्षणता संभवै.वाचस्पतिके मतानुसारी जिज्ञासु कर्मका त्याग करैं औ विवरणकारके मतानुसारी जिज्ञासु ज्ञानसैं पूर्व कर्मका

अनुष्ठान करैं तौ मतभेदनिरूपण सफल होवै औ पूर्वोक्तरीतिसैं दोनूं मतमैं विविदिषाकी सिद्धिसैं कर्मका त्याग मानैं तौ परस्पर विलक्षणता प्रतीत होवै नहीं, यातैं मतभेद निरूपण निष्फल है.

उक्त शंकाका समाधान ॥ ९८ ॥

ताका यह समाधान हैः—यद्यपि दोनूं मतमैं विविदिषापर्यंतही कर्मका अनुष्ठान है, तथापि मतभेदसैं कर्मके फलमैं विलक्षणता है. तथाहिः—वाचस्पतिके मतमैं कर्मका फल विविदिषा है. विविदिषाकी उत्पत्ति हुयां कर्मजन्यअपूर्वका नाश होवै है, विविदिषा हुयां भी उत्तमगुरुलाभादिक सामग्री होवै तौ ज्ञान होवै, किसी साधनकी विकलता हुयां ज्ञान होवै नहीं, कर्मव्यापार विविदिषाकी उत्पत्तिमैं है, औ तत्त्वज्ञान कर्मका फल नहीं; यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिमैं कर्मका व्यापार नहीं. इसरीतिसैं वाचस्पतिके मतमैं विविदिषाहेतु कर्मका अनुष्ठान करेभी ज्ञानकी सिद्धि नियमतैं होवै नहीं; किंतु उत्तम भाग्यतैं सकल सामग्रीकी सिद्धि होवै तौ ज्ञान होवै है; यातैं ज्ञानकी प्राप्ति अनियत है. औ विवरणकारके मतमैं विविदिषातैं पूर्वकालमैं अनुष्ठित कर्मकाभी ज्ञान फल है; यातैं फलकी उत्पत्तिविना कर्मजन्य अपूर्वका नाश नहीं होनेतैं ज्ञानकी उत्पत्तिपर्यंत कर्मजन्य अपूर्व रहै है; जितनी सामग्री विना कर्मका फल ज्ञान होवै नहीं उतनी सामग्रीकूं कर्म संपादन करै है. इसरीतिसैं या पक्षमैं ज्ञानहेतु कर्मका अनुष्ठान करैं तौ वर्तमान शरीरमैं वा भाविशरीरमैं अवश्यज्ञान होवै है, यातैं ज्ञानकी उत्पत्ति नियत है. याप्रकारतैं वाचस्पतिके मतमैं शुभकर्मतैं विविदिषा नियमतैं होवै है; औ ज्ञानकी सिद्धि अनियत है. विवरणकारके मतमैं तिसी कर्मसैं ज्ञानकी उत्पत्ति नियमतैं होवै है, यातैं दोनूं मतका परस्पर भेद है संकर नहीं. विविदिषाके हेतु कर्म होवैं अथवा ज्ञानके हेतु होवैं, दोनूं रीतिसैं वेदाध्ययन यज्ञदान कृच्छ्रचांद्रायणादिक आश्रम कर्मनकाही विद्यामैं उपयोग है.

कोई आचार्यकी रीतिसैं वर्णमात्रके धर्मनका विद्यामैं उपयोग ॥९६॥

वर्णमात्रके धर्मनका विद्यामैं उपयोग नहीं,इसरीतिसैं कोई आचार्य कहैहैं.

कल्पतरुकारकी रीतिसैं सकल नित्यकर्मका विद्यामैं उपयोग ॥ ९७ ॥

औ कल्पतरुकारका यह मत हैः—सकल नित्यकर्मनका विद्यामैं उपयोग हैं. काहेतें ? सूत्रकारनैं औ भाष्यकारनैं आश्रमरहित पुरुषनकाभी विद्याहेतु कर्ममैं तथा श्रवणादिकनमैं अधिकार कह्या है, तैसैं रैक्र वाचक्नवी आदिक आश्रमरहितनसैंभी ब्रह्मविद्या श्रुतिमैं कही है. वाचक्नवीपुत्री गार्गीकूं वाचक्नवी कहैहैं; जो आश्रमधर्मनकाही विद्यामैं उपयोग होवै तौ आश्रमरहित पुरुषनमैं ज्ञानसंपादक कर्मके अभावतें ज्ञान नहीं चाहिये; यातैं जपगंगास्नान देवताध्यानादिसहित सकल शुभकर्मका विद्यामैं उपयोग है; यह कल्पतरु-कारका मत है, परंतु कल्पतरुकारके मतमैं भी काम्यकर्मका विद्यामैं उपयोग नहीं; किंतु नित्यकर्मकाही विद्यामैं उपयोग है. काहेतें ? अन्यप्रकारसैं तौ विद्यामैं कर्मका उपयोग संभवै नहीं. विद्याके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वा-राही विद्यामैं कर्मका उपयोग होवै है, औ काम्यकर्मतें स्वर्गपुत्रादिकनकी प्राप्तिरूप फल होवैहै. तिनतें पापकी निवृत्ति होवै नहीं, नित्यकर्मतें ही पाप-की निवृत्ति होवै है, यातैं सकल नित्यकर्मका विद्यामैं उपयोग है.

संक्षेपशारीरककर्ताकी रीतिसैं काम्य औ नित्य सकल शुभकर्मका विद्यामैं उपयोग ॥ ९८ ॥

औ संक्षेपशारीरककर्तानैं यह कह्या हैः—काम्य औ नित्य सकल शुभकर्मका विद्यामैं उपयोग है. काहेतें ? “यज्ञेन विविदिषंति” इसरीतिसैं कैवल्यशाखामैं कह्याहै, तहां नित्यकाम्यसाधारण यज्ञशब्द है. “धर्मेण पाप-मपनुदति” इत्यादिक वाक्यनतें सकलशुभकर्मकूं पापकी नाशकता प्रतीतहो-

वहै, यातैं ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा नित्यकर्मकी नाईं काम्य-कर्मका भी विद्यामैं उपयोग है यह संक्षेपशारीरिककर्ता सर्वज्ञात्ममुनिका मत है.

संन्यासकी ज्ञानसाधनताविषै विचार

पापनिवृत्तिद्वारा ज्ञानके हेतु होनेतैं क्रम करि कर्म औ संन्यास दोनूंकी कर्तव्यता ॥ ९९ ॥

यातैं तीव्र जिज्ञासापर्यंत सकल शुभकर्म कर्तव्य हैं.दृढतर वैराग्यसहित तीव्र जिज्ञासा हुयां साधनसहित कर्मका त्यागरूप संन्यास कर्तव्य है जैसैं शुभकर्मतैं पापकी निवृत्ति होवै, तैसैं संन्यासतैंभी ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्ति होवैहै.ज्ञानके प्रतिबंधक पाप अनेकविध होवैं हैं, तिनसैं किसी पापकी निवृत्ति कर्मतैं औ किसीकी निवृत्ति संन्यासतैं होवैहै; यातैं ज्ञानप्र-तिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा कर्म औ संन्यास दोनूं ज्ञानके हेतु होनेतैं क्रमतैं कर्तव्य हैं.

किसी आचार्यके मतमैं संन्यासकूं प्रतिबंधक पापकी निवृत्ति औ पुण्यकी उत्पत्तिद्वारा श्रवणकी साधनता ॥ १०० ॥

औ किसी आचार्यका यह मत है:—केवल पापनिवृत्तिद्वाराही संन्या-सकूं ज्ञानकी साधनता नहीं है, किंतु संन्यासजन्य अपूर्वसहित पुरुषकूं ही श्रवणादिकनतैं ज्ञान होवैहै, यातैं श्रवणका अंग संन्यास होनेतैं सर्वथा निष्पापकूंभी संन्यास कर्तव्य है.

विवरणकारके मतमैं संन्यासकूं ज्ञानप्रतिबंधक विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफलकी हेतुता ॥ १०१ ॥

औ विवरणकारका यह मत है:—संन्यासविना विक्षेपका अभाव होवै नहीं यातैं ज्ञानप्रतिबंधक विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफलही संन्यासका है. यातैं ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्ति वा ज्ञानहेतु धर्मकी उत्पत्तिरूप अदृष्ट फलका हेतु संन्यास है, यह कथन अयोग्य है. जहां दृष्टफल नहीं संभवै

तहां अदृष्टफलकी कल्पना होवैहै. औ विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफल संन्यासका संभवै है ताका अदृष्टफल कथन संभवै नहीं. औ किसी प्रधान पुरुषकूं आश्रमांतरमैंभी कामक्रोधादिरूप विक्षेपका अभाव होवै तौ कर्मच्छिद्रनमैं वेदांतका विचार संभवै तौ यद्यपि उक्त रीतिसैं संन्यास व्यर्थ है तथापि "आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदांतचिंतया" इस गौडपादीयवचनतैं "तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम्" इस भगवद्वचनतैं "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" इस श्रुतिवचनतैं, निरंतर क्रियमाण ब्रह्मश्रवणादिकनतैं ज्ञान होवै है, जिसकी ब्रह्मविषै संस्था कहिये अनन्यव्यापार तासैं स्थित होवै सो पुरुष ज्ञानद्वारा अमृतभावकूं प्राप्त होवै है, यह श्रुतिका अर्थ है. कर्मच्छिद्रकालमैं कदाचित् क्रियमाण श्रवणादिकनतैं ज्ञान होवै नहीं औ निरंतर श्रवणादिकनके अभ्यासका हेतु संन्यास है. यातैं अदृष्टविनाही दृष्टफलका हेतु संन्यास है, तौभी व्यर्थ नहीं.

क्षत्रिय औ वैश्यके संन्यास औ श्रवणमैं अधिकारका विचार

क्षत्रिय औ वैश्यके संन्यास औ श्रवणमैं अधिकारके विचारकी प्रतिज्ञा ॥ १०२ ॥

या प्रसंगमैं क्षत्रिय वैश्यका संन्यासमैं औ श्रवणमैं अधिकार है अथवा नहीं, यह विचार मतभेदसैं लिखैं हैं:—

कोइ ग्रन्थकारकी रीतिसैं संन्यासमैं तथा ब्रह्मश्रवणमैं ब्राह्मणकाही अधिकार औ क्षत्रिय वैश्यका अनधिकार ॥ १०३ ॥

कोई ग्रंथकार इसरीतिस कहैं हैं-संन्यासविधायक बहुवाक्यनमैं ब्राह्मणपद होनेतैं ब्राह्मणमात्रका संन्यासमैं अधिकार है औ संन्यासविना गृहस्थादिकनकूं ब्रह्मविचारका अवकाश नहीं यातैं संन्यासमैं तथा ब्रह्मश्रवणमैं क्षत्रिय वैश्यका अधिकार नहीं.

अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं संन्यासमैं केवल ब्राह्मणका अधिकार; क्षत्रिय और वैश्यका संन्यासकूं छोडिकै केवल ब्रह्मश्रवणमैं अधिकार ॥ १०४ ॥

अन्य ग्रंथकार इसरीतिसैं कहै हैंः—यद्यपि संन्यासमैं केवल ब्राह्मणका अधिकार है, तथापि ब्रह्मश्रवणमैं क्षत्रिय वैश्यकाभी अधिकार है; परंतु जन्मांतरसंस्कारतैं जिस उत्तम पुरुषकूं विषयनमैं दीनतादिक दोष नहीं होवै, ऐसे शुद्धबुद्धिवालेकूं संन्यासविना ज्ञान होवैहै; इसीवास्ते गृहस्थाश्रममैंही अनेक राजर्षि ब्रह्मवित् कहे हैं.

तिनसैं अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं क्षत्रिय वैश्यका ब्रह्मश्रवणादिककी नाईं विद्वत्संन्यासमैंभी अधिकार ॥ १०५ ॥

तिनसैं अन्यग्रंथकार इसरीतिसैं कहै हैंः-जैसे ब्रह्मश्रवणादिकनमैं क्षत्रिय वैश्यका अधिकार है; तैसैं संन्यासमैंभी क्षत्रिय वैश्यका निषेध नहीं; औ अज्ञानके उदयसैं कर्तृत्व भोक्तृत्व बुद्धिका तथा जातिआश्रमअभिमानका अभाव होवै है. कर्तृत्वभोक्तृत्वबुद्धिविना औ जाति आश्रमके अभिमान विना कर्माधिकारके असंभवतैं सर्वकर्मपरित्यागपूर्वक अक्रिय असंग आत्मारूपसैं स्थितिरूप विद्वत्संन्यासमैं भी क्षत्रिय वैश्यका अधिकार है, केवल विविदिषा संन्यासमैं तिनका अधिकार नहीं.

वार्तिककारके मतमैं विविदिषासंन्यासमैंभी क्षत्रिय वैश्यका अधिकार ॥ १०६ ॥

औ वार्तिककारका यह मत हैः-विविदिषासंन्यासमैंभी क्षत्रिय वैश्यका अधिकार है, औ बहुत श्रुतिवाक्यनमैं यद्यपि ब्राह्मणकूं संन्यास कह्या है; तथापि संन्यासविधायक जाबालश्रुतिमैं ब्राह्मणपद नहीं है; केवल वैराग्यसंपत्तिसैं संन्यास कह्या है, यातैं अनेक श्रुतिवाक्यनमैं द्विजका उपलक्षण ब्राह्मणपद है. औ स्मृतिमैं यह कह्या हैः—"ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो

वा प्रव्रजेद् गृहात् ॥ त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः" इसप्रकारके स्मृतिवचनतैंभी क्षत्रियवैश्यका संन्यासमैं अधिकार है, यह वार्तिककार सुरेश्वराचार्यका मत है.

औ कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं ब्राह्मणके ज्ञानमैं संन्यासकी अपेक्षा औ क्षत्रिय वैश्यकूं संन्यासमैं अनधिकार औ विद्याके उपयोगी कर्ममैं अरु वेदांतश्रवणमैं अधिकार ॥ १०७ ॥

और कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैहैंः—संन्यासविधायक श्रुतिवाक्यनमैं ब्राह्मणपद है, ताकूं द्विजमात्रका उपलक्षण कहनेमैं प्रमाण नहीं. जाबालश्रुतिमैं यद्यपि ब्राह्मणपद नहीं है, तथापि बहुतश्रुतिके अनुसारतैं तहांभी ब्राह्मणकर्ताका अध्याहार है, यातैं क्षत्रियवश्यका संन्यासमैं अधिकार नहीं, परन्तु अनेक स्थानमैं "गृहस्थराजा ज्ञानवान्"कहेहैं; यातैं यह माननाचाहियेः—ब्राह्मणकूं ब्रह्मविचारका अंग संन्यास है, संन्यास विना गृहस्थादिक आश्रमस्थ ब्राह्मणका ब्रह्मविचारमैं अधिकार नहीं संन्यासीब्राह्मणकाहीब्रह्मविचारमैं अधिकारहै,औ क्षत्रिय वैश्यका संन्यासविनाही ब्रह्मविचारमैं अधिकार है. काहेतैं ? संन्यासविधायक वचनमैं ब्राह्मणपद होनेतैं क्षत्रिय वैश्यकूं संन्यासकी विधि नहीं. औ आत्मकामकूं आत्मश्रवणका अभाव कहना संभवै नहीं; यातैं क्षत्रियवैश्यकूं ज्ञानका उपयोगी अदृष्ट केवल कर्मतैं ही होवै है; संन्यासजन्य अदृष्टकी क्षत्रिय वैश्यके ज्ञानमैं अपेक्षा नहीं; इसीवास्तै गीतामैं "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः" इसरीतिसैं परमेश्वरनैं कह्याहै या वाक्यमैं अंतःकरणकी शुद्धि अथवा ज्ञानसंसिद्धिशब्दका अर्थ है; यह भाष्यकारनैं लिख्या है. संन्यासरहित केवल कर्मतैं अंतःकरणकी शुद्धिकूं जनकादिक प्राप्त हुये अथवा संन्यासरहित केवल कर्मतैं ज्ञानप्रतिबंधक निवृत्तिद्वारा श्रवणतैं ज्ञानकूं प्राप्त हुये, यह गीतावाक्यका अर्थ है, दोनूं रीतिसैं क्षत्रिय वैश्यकूं संन्यास निरपेक्ष केवल कर्मही ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्तिका हेतु है. औ ब्राह्मणकूं संन्याससहित कर्मतैं ज्ञानप्रतिबंधक

पापकी निवृत्ति होवै है, औ श्रवणका अंग संन्यास है; यापक्षमैंभी ब्राह्मणके श्रवणका अंग संन्यास है, क्षत्रियवैश्यके श्रवणका अंग नहीं; किंतु फलाभिलाषारहित क्रोधादि दोषरहित ईश्वरार्पण बुद्धिसैं स्ववर्णाश्रमधर्मके अनुष्ठान सहित कर्मके अवकाशकालमैं श्रवणतैंही क्षत्रियवैश्यकूं ज्ञान होवै है. सर्वथा विद्याके उपयोगी कर्म औ श्रवणसैं क्षत्रियवैश्यकाभी अधिकार है. काहेतैं—ब्राह्मणकी नाईं ज्ञानार्थित्व क्षत्रियवैश्यकूंभी सम है, औ फलार्थीका साधनमैं अधिकार होवैहै, यातैं आत्मकाम क्षत्रियवैश्यका वेदांतश्रवणमैं अधिकार है.

किसी ग्रंथकारके मतमैं शूद्रकूं श्रवणमैं अधिकार ॥ १०८ ॥

यद्यपि मनुष्यमात्रकूं आत्मकामनाका संभव होनेतैं क्षत्रियवैश्यकी नाईं ज्ञानार्थित्वके सद्भावतैं शूद्रकूंभी उक्तरीतिसैं वेदांतश्रवणका अधिकार हुया चाहिये:—तथापि "न शूद्राय मतिं दद्यात्" इत्यादिक वचनतैं शूद्रकूं उपदेशका निषेध है और सर्वथा उपदेशरहित पुरुषकूं विवेकादिकनका असंभव होनेतैं ज्ञानार्थित्व संभवै नहीं. तैसैं शूद्रकूं यज्ञादिकर्मकाभी निषेध होनेतैं विद्योपयोगिकर्मके अभावतैं ताका ज्ञानहेतु श्रवणमैं अधिकार नहीं यह किसी ग्रंथकारका मत है.

अन्यग्रंथकारनकी रीतिसैं शूद्रकाभी वेदभिन्नपुराणइतिहासादिरूप अध्यात्मग्रंथनके श्रवणादिकमैं अधिकार ॥ १०९ ॥

अन्य ग्रंथकारोंका यह मत है:—उपनयनपूर्वक वेदका अध्ययन कह्या है औ शूद्रका उपनयन कह्या नहीं; यातैं वेदश्रवणमैं तौ शूद्रका अधिकार नहीं है, तथापि "श्रावयेच्चतुरो वर्णान्" इत्यादिक वचनतैं इतिहासपुराणादिकनके श्रवणमैं शूद्रकाभी अधिकार है; औ पूर्व उक्त वचनमैं शूद्रकूं उपदेशका निषेध कह्या है ताका यह अभिप्राय है:—वैदिक मंत्रसहित यज्ञादिक कर्मोपदेश शूद्रकूं नहीं करै, तैसैं वेदोक्त प्राणादिक सगुणउपासनाका

शूद्रकूं उपदेश नहीं करै, उपदेशमात्रका निषेध नहीं. जो उपदेशमात्रका निषेध होवै तौ धर्मशास्त्रमैं शूद्रजातिके धर्मका निरूपण निष्फल होवैगा. औ विद्योपयोगि कर्मके अभावतैं जो विद्यामैं अनधिकार कहैं हैं. ताका **यह समाधान** है—साधारण असाधारण सकल शुभकर्मनका विद्यामैं उपयोग है. औ सत्य, अस्तेय, क्षमा, शौच, दान, विषयतैं विमुखता, भगवत्‌नामोच्चारण, तीर्थस्नान, पंचाक्षरमंत्रराजादिकनका जप, इत्यादिक सकल वर्णके साधारण धर्मनमैं तथा शूद्रकमलाकरोक्त चतुर्वर्णके असाधारण धर्मनमैं शूद्रका अधिकार हैं, तिनकर्मनके अनुष्ठानतैं अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा विद्याकी प्राप्ति संभवै है; यातैं इतिहास पुराणादिकनके श्रवणतैं विवेकादिकनके संभवतैं शूद्रकूंभी ज्ञानार्थित्व होनेतैं वेदभिन्न अध्यात्मग्रंथनके श्रवणादिकनमैं शूद्रकाभी अधिकार है. औ भाष्यकारनैंभी प्रथमाध्यायके तृतीयपादमैं यह कह्या है:—उपनयनपूर्वक वेदका अध्ययन कह्या है; शूद्रकूं उपनयनके अभावतैं यद्यपि वेदमैं अधिकार नहीं, है; तथापि पुराणादिक श्रवणतैं शूद्रकूंभी ज्ञान होय जावै तौ ज्ञानसमयकालही शूद्रकाभी प्रतिबंधरहित मोक्ष होवै है. इसरीतिसैं भाष्यकारके वचनतैंभी वेदभिन्न ज्ञानहेतु अध्यात्मग्रंथनके श्रवणमैं शूद्रका अधिकार है.

मनुष्यमात्रकूं भक्ति औ ज्ञानका अधिकार

अंत्यजादिमनुष्यनकूं तत्वज्ञानका अधिकार ॥ ११० ॥

जन्मांतरसंस्कारतैं अंत्यजादिकनकूंभी जिज्ञासा होय जावै तौ पौरुषेयवचनतैं तिनकोभी ज्ञानहोयकै कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै है, यातैं देवअसुरनकी नाईं **सकलमनुष्यनकूं तत्त्वज्ञानका अधिकार** है. आत्मस्वरूपके यथार्थ ज्ञानकूं **तत्त्वज्ञान** कहैं हैं. आत्महीन कोई शरीर होवै तौ ज्ञानका अनधिकार होवै, यातैं आत्मज्ञानकी सामर्थ्य मनुष्यमात्रमैं है, परन्तुः—

तत्त्वज्ञानमैं दैवीसंपदाकूं अपेक्षा पूर्वक मनुष्यमात्रकूं भगवद्भक्ति औ तत्त्वज्ञानके अधिकारका निर्द्धार ॥ १११ ॥

जा शरीरमैं दैवीसंपदा होवै ताकूं तत्त्वज्ञान होवै है, आसुरीसंपदामैं तत्त्वज्ञान होवै नहीं. औ सर्वभूतनमैं दया, क्षमा, सत्य, आर्जव, संतोषादिक दैवी संपदाका संभव ब्राह्मणमैं है, औ क्षत्रियका प्रजापालनार्थ प्रवृत्ति धर्म होनेतैं ब्राह्मणसैं किंचित् न्यून दैवीसंपदा संभवै है; धर्मबुद्धिसैं प्रजासंरक्षणके अर्थ दुष्टप्राणीकी हिंसाभी अहिंसा है, यातैं दैवीसंपदाका असंभव नहीं. तथा वैश्यकाभी कृषिवाणिज्यादिक शारीरव्यापार क्षत्रियसैं अधिक होनेतैं, आत्मविचारमैं अवकाशका असंभव होनेतैं, ताकूं सामर्थ्यका असंभव है, तथापि कितने भाग्यशाली वैश्यनकूं शारीरव्यापारविनाही सकल व्यवहारका निर्वाह होवै है; तिनकूं दैवीसंपदाका लाभरूप सामर्थ्य संभवै है, औ जिन आचार्योंके मतमैं क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासका अधिकार है; तिनके मतमैं तौ अनायासतैं ही दैवी संपदा संभवै है; औ चतुर्थ वर्णनमैं तथा अंत्यजादिकनमैं यद्यपि दैवी संपदा दुर्लभ है; तथापि कर्मका फल अनंतविध है; किसकूं जन्मांतरके कर्मतैं दैवीसंपदाका लाभ होय जावै तौ पुराणादिकनके विचारतैं चतुर्थवर्णकूं औ भाषाप्रबंधादिकनके श्रवणतैं अंत्यजादिकनकूंभी भगवद्भक्ति औ तत्त्वज्ञानके लाभद्वारा मोक्षका लाभ निर्विघ्न होवै है, इसरीतिसैं **भगवद्भक्ति औ तत्त्वज्ञानका अधिकार सकल मनुष्यकूं है**, यह शास्त्रका निर्धार है.

तत्त्वज्ञानतैं स्वहेतु अज्ञानकी निवृत्तिविषै शंकासमाधान

अज्ञानके कार्य अन्तःकरणकी वृत्तिरूप तत्त्वज्ञानतैं ताके कारण अज्ञानकी निवृत्तिमैं शंका ॥ ११२ ॥

तत्त्वज्ञानतैं कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, यह अद्वैतग्रन्थनका सिद्धांत है. औ जीवब्रह्मके अभेदगोचर अन्तःकरणकी वृत्तिकूं तत्त्व-

ज्ञान कहैं हैं. अंतःकरणकूं अज्ञानकार्यता होनेतैं वृत्तिरूपतत्त्वज्ञानभी अज्ञानका कार्य है; औ कार्यकारणका परस्पर अविरोधही लोकमैं प्रसिद्ध है. यातैं तत्त्वज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति कहना संभवै नहीं.

उक्त शंकाका समाधान ॥ ११३ ॥

या **शंकाका यह समाधान** हैः—कार्यकारणका परस्पर अविरोध यह नियम सामान्य है. औ समानविषयक ज्ञानाज्ञानका परस्पर विरोध है; यह विशेष नियम हैं. यातैं विशेष नियमतैं सामान्य नियमका बाध होवै है. औ पटअग्निसंयोगतैं पटका नाश होवै है, तहां संयोगका उपादानकारण दो होवै हैं, यातैं पटभी उपादान कारण है, तथापि अग्निसंयोगका औ पटका परस्पर नाश्यनाशकभावरूप विरोध है, अविरोध नहीं; यातैं कार्यकारणका परस्पर अविरोध है, यह नियम संभवै नहीं. यद्यपि वैशेषिक शास्त्रकी रीतिसैं अग्निसंयोगतैं पटका नाश होवै नहीं. काहेतैं ? अग्निसंयोगतैं पटारंभकतंतुवोंमैं क्रिया होवैहै, क्रियातैं तंतुविभागतैं पटके असमवायिकारण तंतुसंयोगका नाश होवै है, तंतुसंयोगके नाशतैं पटका नाश होवै है. इसरीतिसैं वैशेषिकमतमैं असमवायिकारणके नाशतैं द्रव्यका नाश होवै है. यातैं पटके नाशमैं तंतुसंयोगके नाशकूं हेतुता है. पटअग्निके संयोगकूं पट नाशमैं हेतुता नहीं; तथापि पूर्वोक्त क्रमतैं पटका नाश होवै तौ अग्निसंयोगतैं पंचमक्षणमैं पटका नाश संभवै है; औ अग्निसंयोगतैं अव्यवहित उत्तर कालमैं पटका नाश प्रतीत होवैहै, यातैं वैशेषिकमत असंगत है. औ अग्निसंयोगतैं भस्मीभूतपटके अवयव संश्लिष्टही प्रतीत होवै है, तैसैं मुद्गरसैं चूर्णीभूत घटका कपालविभागजन्य संयोगनाशविनाही नाश होवै है, यातैं अवयव संयोगके नाशकूं अवयवीके नाशमैं कारणताका असंभव होनेतैं तंतुसंयोगके नाशकूं पटनाशमैं कारणता नहीं, किंतु पटअग्निका संयोगही पटके नाशमैं कारण है. औ पटअग्निके संयोगका अग्निसहित पट उपादान कारण है, यातैं कार्यकारणकाभी नाश्यनाशकभावविरोध प्रसिद्ध होनेतैं

तिनका परस्पर अविरोध है;यह नियम संभवै नहीं.इसरीतिसैं अविद्याजन्य वृत्तिज्ञानतैं कार्य सहित अविद्याका नाश होवै है; परंतुः—

अविद्यालेशसंबंधी विचार।

तत्त्वज्ञानसैं अविद्यारूप उपादानके नाश हुये जीवन्मुक्ति विद्वान्के देहके स्थितकी शंका ॥ ११४ ॥

सकल अविद्याका तत्त्वज्ञानसैं नाश होवै तौ जीवन्मुक्त विद्वान्के देहका तत्त्वज्ञानकालमैं अभाव हुया चाहिये. काहेतैं ? उपादान कारण अविद्याका नाश हुये कार्यकी स्थिति संभवै नहीं.

उक्त शंकाका कोईक आचार्यकी रीतिसैं समाधान ॥ ११५ ॥

और कोई यह समाधान कहैहैः—जैसैं धनुषका नाश हुयेभी प्रक्षिप्त बाणके वेगकी स्थिति रहै है, तैसैं विद्वान्के शरीरकी स्थिति कारणका नाश हुयेभी संभवै है.

उक्त समाधानका असंभव ॥ ११६ ॥

यह समाधानभी संभवै नहीं.काहेतैं ? निमित्तकारणका नाश हुये कार्यकी स्थिति रहैहै. उपादानका नाश हुये कार्यकी स्थिति संभवै नहीं. बाणके वेगका उपादानकारण बाण है औ ताका निमित्तकारण धनुष है; ताके नाशतैं बाणके वेगकी स्थिति संभवै है यातैं अविद्यारूप उपादानके नाश हुयेभी विद्वान्के शरीरकी स्थितिका असंभव होनेतैं,तत्त्वज्ञान हुयेभी अविद्याका लेश रहैहै; यह ग्रंथकारोंने लिख्या है.

अविद्यालेशके तीन प्रकार ॥ ११७ ॥

तहां मतभेदसैं अविद्यालेशका स्वरूप तीनप्रकारका है. जैसैं प्रक्षालित लशुनभांडमैं गंध रहैहै;तैसैं अविद्याका संस्कारकूं अविद्यालेश कहैं हैं,अथवा अग्निदग्ध पटकी नाईं स्वकार्यमैं असमर्थज्ञान बाधित अविद्याकूं अविद्यालेश कहै हैं, यद्वा आवरणशक्ति विक्षेपशक्तिरूप अंशद्वयवती अविद्या है. तत्त्वज्ञानसैं आवरणशक्तिविशिष्ट अविद्याअंशका नाश होवै

है, औ प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंध होनेतैं विक्षेपशक्तिविशिष्ट अविद्याअंशका नाश होवै नहीं. तत्त्वज्ञानतैं उत्तरकालभी देहादिक विक्षेपका उपादान अविद्याअंशका शेष रहै है; तासैं स्वरूपका आवरण होवै नहीं, ताहीकूं **अविद्यालेश** कहैं हैं.

प्रकृत अर्थमैं सर्वज्ञात्ममुनिका मत ॥ ११८ ॥

सर्वज्ञात्ममुनिका तौ यह मत हैः—तत्त्वज्ञानसैं उत्तरकालमैं शरीरादि प्रतिभास होवै नहीं. जीवन्मुक्तिप्रतिपादक श्रुतिवचनका स्वार्थसैं तात्पर्य नहीं. काहेतैं? श्रवणविधिका अर्थवादरूप जीवन्मुक्तिप्रतिपादक वचन हैं; जिस श्रवणके प्रतापतैं जीवते पुरुषकी मुक्ति होवैहै. ऐसा उत्तम आत्मश्रवण है. इसरीतिसैं आत्मश्रवणकी स्तुतिमैं तात्पर्य होनेतैं जीवन्मुक्तिप्रतिपादक वचनोंमैं ज्ञानीकूं देहादिकनका प्रतिभास कहना संभवै नहीं. इसरीतिसैं तत्त्वज्ञानसैं अव्यवहित उत्तर कालमैं ही विदेहमोक्ष होवैहै, या मतमैं ज्ञानसैं उत्तर अविद्याका लेश रहै नहीं परंतुः—

उक्त मतका ज्ञानीके अनुभवमैं विरोध ॥ ११९ ॥

यह मत ज्ञानीकी अनुभवसैं विरुद्ध है. जिस तत्त्वज्ञानसैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति होवैहै, तिस तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिका प्रकार कहैं हैंः— तत्त्वज्ञानसैं अविद्याकी निवृत्ति हुयां तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति उत्तरकालमैं होवै है; याक्रमतैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं? तत्त्वज्ञानसैं इतर अनात्मवस्तुका तौ शेष रहै नहीं.केवल चेतनकूं असंगता होनेतैं नाशकता संभवै नहीं. तत्त्वज्ञानकूं स्वनाशकताभी संभवै नहीं; यातैं तत्त्वज्ञानका नाश नहीं होवैगा.

अविद्याकी निवृत्तिकालमैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिकी रीति ॥ १२० ॥

इसरीतिसैं अविद्यानिवृत्तिसैं उत्तरकालमैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिके असंभवतैं अविद्याकी निवृत्तिकालमैं ही तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति या रीतिसैं होवैहैः—जैसैं जलमैं प्रक्षिप्त कतकरजतैं जलगत पंकका विश्लेष होवै,

ताके साथिही कतकरजकाभी विश्लेष होवै है. कतकरजके विश्लेषमैं साधनांतरकी अपेक्षा नहीं; औ तृणकूटमैं अंगारके प्रक्षेपतैं तृणकूटका भस्म होवै, ताके साथिही अंगारकाभी भस्म होवै है; तैसैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति होवै, ताके साथिही तत्त्वज्ञानकीभी निवृत्ति होवै है, यातैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिमैं साधनांतरकी अपेक्षा नहीं है.

प्रकृतअर्थमैं पंचपादिकाकारका मत ॥ १२१ ॥

पंचपादिकाकार पद्मपादाचार्यका यह मत है:—ज्ञानका अज्ञानमात्रसैं विरोध है, अज्ञानके कार्यसैं ज्ञानका विरोध नहीं होनेतैं तत्त्वज्ञानसैं केवल अज्ञानकी निवृत्ति होवै है, अज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरकालमैं उपादानके अभावतैं कार्यकी निवृत्ति होवै है, परन्तु देहादिक कार्यकी निवृत्तिमैं प्रारब्ध कर्म प्रतिबंधक है; यातैं उक्तरीतिसैं अविद्यालेश रहै जितने जीवन्मुक्तकूं देहादिकनकी प्रतीतिभी संभवै है प्रारब्धरूप प्रतिबंधका अभाव हुयां देहादिक औ तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति होवै है; या मतमैं प्रारब्धके अभावसहित अविद्याकी निवृत्तिही तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिका हेतु है.

तत्त्वज्ञानके करण औ सहकारी साधनविषै विचार

उत्तम औ मध्यम अधिकारीके भेदतैं तत्त्वज्ञानके दो साधनोंका कथन ॥ १२२ ॥

जो तत्त्वज्ञानसैं अविद्याकी निवृत्ति होवै है, सो तत्त्वज्ञानके दो साधन हैं. उत्तम अधिकारीकूं तौ श्रवणादिक साधन हैं औ मध्यम अधिकारीकूं निर्गुण ब्रह्मका अहंग्रह उपासनही तत्त्वज्ञानका साधन है. यह सकल अद्वैतशास्त्रका सिद्धांत है, परन्तुः—

उक्त दोनूं पक्षमैं प्रसंख्यानकूं तत्त्वज्ञानकी करणतारूप प्रमाणता ॥ १२३ ॥

दोनूं पक्षमैं तत्त्वज्ञानका करणरूप प्रमाण प्रसंख्यान है; यह कितने ग्रन्थकारोंका मत है. वृत्तिके प्रवाहकूं प्रसंख्यान कहैं हैं. जैसैं मध्यम

अधिकारीकूं निर्गुणब्रह्माकार निरंतर वृत्तिरूप उपासना कर्तव्य है, सोई प्रसंख्यान है, तैसैं उत्तम अधिकारीकूंभी मननसैं उत्तर निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानही ब्रह्मसाक्षात्कारका करण है. यद्यपि षड्विधप्रमाणमैं प्रसंख्यानके अभावतैं ताकूं प्रमाकी करणता संभवै नहीं; तथापि सगुणब्रह्मके ध्यानकूं सगुण ब्रह्मके साक्षात्कारकी करणता औ निर्गुण ब्रह्मके ध्यानकूं निर्गुण ब्रह्मके साक्षात्कारकी करणता सकल श्रुतिस्मृतिमैं प्रसिद्ध है. तैसैं व्यवहितकामिनीके प्रसंख्यानकूं कामिनीके साक्षात्कारकी करणता लोकमैं प्रसिद्ध है; यातैं निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानभी ब्रह्मसाक्षात्कारका करण संभवै है, यद्यपि प्रसंख्यानजन्य ब्रह्मज्ञानकूं प्रमाणजन्यताके अभावतैं प्रमात्वका असंभव है; तथापि संवादिभ्रमकी नाईं विषयके अबाधतैं प्रमात्व संभवै है. औ निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानका मूल शब्दप्रमाण है; यातैं भी ब्रह्मज्ञानकूं प्रमात्व संभवै है.

भामतीकार वाचस्पतिके मतमैं प्रसंख्यानकूं मनकी सहकारिता औ मनकूं ब्रह्मज्ञानकी कारणता ॥ १२४ ॥

भामतीकार वाचस्पतिका यह मत हैः—मनका सहकारी प्रसंख्यान है, ब्रह्मज्ञानका करण मन है, प्रसंख्यानकूं ज्ञानकी करणता अप्रसिद्ध है, सगुण निर्गुण ब्रह्मका ध्यानभी मनका सहकारी है, तिनके साक्षात्कारका करण ध्यान नहीं; किंतु मनही करण है, तैसैं व्यवहित कामिनीका ध्यानभी कामिनी साक्षात्कारका करण नहीं; किंतु कामिनीचिंतनसहित मनही ताके साक्षात्कारका करण है, याप्रकारतैं मनही ब्रह्मज्ञानका करण है.

अद्वैतग्रंथका मुख्यमत (एकाग्रतासहित मनकूं सहकारिता और वेदांतवाक्यरूप शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता) ॥ १२५ ॥

औ अद्वैतग्रंथनका मुख्य मत यह हैः-वाक्यजन्य ज्ञानतैं अनंतर प्रसंख्यानकी अपेक्षा नहीं; किंतु महावाक्यतैं ही अद्वैत ब्रह्मका साक्षा-

त्कार होवै है. औ सकल ज्ञानमैं सहकारी मन है, यातैं निदिध्यासन जन्य एकाग्रतासहित मन सहकारी है. औ वेदांतवाक्यरूप शब्दही ब्रह्मज्ञानका करण है, मन नहीं. काहेतैं ? वृत्तिरूप ज्ञानका उपादान होनेतैं आश्रय अंतःकरण है, यातैं ज्ञानका कर्ता मन है. ताकूं ज्ञानकी करणता संभवै नहीं. औ ज्ञानांतरमैं मनकूं करणता माने भी ब्रह्मज्ञानकी करणता सर्वथा विरुद्ध है. काहेतैं ? "यन्मनसा न मनुते" इत्यादिक श्रुतिमैं ब्रह्मकूं मानस ज्ञानकी विषयताका निषेध कऱ्या है, औ ब्रह्मकूं औपनिषदत्व कह्या है, यातैं उपनिषद्रूप शब्दही ब्रह्मज्ञानका करण है, यत कहिये जिस ब्रह्मकूं मन करिके लोक नहीं जानैं हैं, यह श्रुतिका अर्थ है. यद्यपि कैवल्यशाखामैं जहां मनकूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध कऱ्या है, तिसी स्थानमैं वाक्कूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध कऱ्या है, यातैं शब्दकूंभी ब्रह्मज्ञानकी करणता श्रुतिविरुद्ध है, तथापि शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता नहीं, इस अर्थमैं श्रुतिका तात्पर्य होवै तौ ब्रह्मकूं उपनिषद्वेद्यत्वरूप औपनिषदत्वकथन असंगत होवैगा. यातैं शब्दकी लक्षणावृत्तिसैं ब्रह्मगोचर ज्ञान होवैहै शक्तिवृत्तिसैं ज्ञान ब्रह्मका शब्दसैं होवै नहीं; इसरीतिसैं श्रुतिका तात्पर्य है, यातैं शक्तिवृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध है, औ लक्षणावृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता होनेतैं ब्रह्मकूं औपनिषदत्व संभवै है. ब्रह्मसाक्षात्कारकूं मानस मानैं हैं; तिनके मतमैंभी ब्रह्मका परोक्षज्ञान शब्दसैंही मान्या है यातैं ब्रह्मज्ञानमैं शब्दकूं करणता दोनूं मतमैं आवश्यक होनेतैं ब्रह्मसाक्षात्कारका करण शब्द है, मन नहीं. इसरीतिसैं ब्रह्मसाक्षात्कारका करण शब्द है.

शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञानका उत्पत्तिमैं शंकासमाधान ॥ १२६ ॥

यद्यपि शब्दमैं परोक्षज्ञानकी उत्पादनका सामर्थ्य है, शब्दसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्ति संभवै नहीं,तथापि शास्त्रोक्त श्रवणपूर्वक सो ब्रह्मगोचर परोक्षज्ञानके संस्कारविशिष्ट एकाग्रचित्तसहित शब्दसैं अपरोक्षज्ञान होवैहै

जैसें प्रतिबिंब औ बिंबके अभेदवादमैं जलपात्र औ दर्पणादिक सहकृत नेत्रसैं सूर्यादिकनका साक्षात्कार होवैहै, तहां केवल नेत्रका सूर्यादिकनके साक्षात्कारमैं सामर्थ्य नहीं है. चंचल वा मलिन उपाधिके सन्निधानसैं भी सामर्थ्य नहीं है; औ निश्चल निर्मल उपाधिसहकृत नेत्रमैं सूर्यादिकनके साक्षात्कारका सामर्थ्य है, तैसैं संस्कारविशिष्ट निर्मल निश्चल चित्तरूपी दर्पणके सहकारतैं शब्दसैंभी ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान संभवै हैं. अन्य दृष्टांतः—जैसैं लौकिक अग्निमैं होमतैं स्वर्गहेतु अपूर्वकी उत्पत्ति नहीं होवैहै औ वैदिक संस्कारसहित अग्निमैं होमतैं स्वर्गजनक अपूर्वकी उत्पत्ति होवैहै होमकूं स्वर्गसाधनता श्रुतिमैं कही है,द्वितीय क्षणमैं विनाशी होमकूं कालांतरभावि स्वर्गकी साधनता संभवै नहीं;यातैं स्वर्गसाधनताकी अनुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणतैं जैसैं अपूर्वकी सिद्धि होवैहै; तैसैं ब्रह्मज्ञानतैं अध्यासरूप सकल दुःखकी निवृत्ति श्रुतिमैं कही है; कर्तृत्वादिक अध्यास अपरोक्ष हैं; तिस अपरोक्ष अध्यासकी निवृत्ति परोक्षज्ञानतैं संभवै नहीं. अपरोक्ष ज्ञानतैं ही अपरोक्ष अध्यासकी निवृत्ति होवैहै;यातैं ब्रह्मज्ञानकूं अपरोक्षअध्यासकी निवृत्तिकी अनुपपत्तिसैं प्रमाणांतरके अगोचर ब्रह्मका शब्दसैं अपरोक्षज्ञान सिद्ध होवैहै. जैसैं श्रुतार्थापत्तिसैं अपूर्वकी सिद्धि होवै है, तैसैं शब्दजन्य ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानकी सिद्धि भी श्रुतार्थापत्तिसैं होवै है.

अन्यग्रंथकी रीतिसैं शब्दकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकता ॥ १२७ ॥

अन्यग्रंथमैं शब्दकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकता या दृष्टांतसैं कहीहैः—जैसैं बाह्यपदार्थके साक्षात्कारमैं असमर्थ मन है तथापि भावनासहित मनसैं नष्टवनिताका साक्षात्कार होवै है, तैसैं केवल शब्द तौ अपरोक्ष ज्ञानमैं असमर्थ है, परंतु पूर्व उक्त मनसहित शब्दसैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवै है.

विषय औ ज्ञानकी अपरोक्षताविषे विचार.

अन्यग्रन्थकारकी रीतिसैं ज्ञान औ विषय दोनूंसैं अपरोक्षत्वव्यवहारका कथन ॥ १२८ ॥

अन्यग्रंथकार इसरीतिसैं कहैं हैं—ज्ञान औ बिषय दोनूंमें अपरोक्षत्व व्यवहार होवैहै. काहेतें? नेत्रादिक इंद्रियतें ज्ञात घट होवै, तहां घटका प्रत्यक्ष ज्ञान है औ घट प्रत्यक्ष है. इसरीतिसैं उभयविध व्यवहार अनुभवसिद्ध है, तहां ज्ञानमैं अपरोक्षता करणके अधीन नहीं है. काहेतें? इंद्रियजन्य ज्ञान अपरोक्ष होवै औ अनुमानादिजन्य ज्ञान परोक्ष होवै, तौ ज्ञानमैं परोक्षता औ अपरोक्षता करणके अधीन होवै, सो इंद्रियजन्यज्ञानकूं अपरोक्षता ग्रंथकारोंनैं खंडन करी है, यातैं अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञान अपरोक्ष कहिये है. इसरीतिसैं ज्ञानमैं अपरोक्षता विषयके अधीन है, यातैं अपरोक्ष विषयका ज्ञान अपरोक्षही होवैहै. इंद्रियजन्य होवै अथवा प्रमाणांतरजन्य होवै, यामैं अभिनिवेश नहीं. इसीवास्तै सुखादिज्ञान, ईश्वरज्ञान, स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं है, तथापि प्रत्यक्ष है; यातैं ज्ञानमैं इंद्रियजन्यत्वरूप अपरोक्षत्व नहीं है; किंतु अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञान होवै सो अपरोक्ष ज्ञान कहियेहै.

उक्त अर्थमैं शंका समाधान ॥१२९॥

यद्यपि अपरोक्ष ज्ञानके विषयकूं अपरोक्ष कहैं हैं, यातैं अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञानकूं अपरोक्षता कहनेमैं अन्योन्याश्रय दोष होवै है. काहेतें? ज्ञानगत अपरोक्षत्वनिरूपणमैं विषयगत अपरोक्षत्वका ज्ञान हेतु है. औ विषयगत अपरोक्षत्वनिरूपणमैं ज्ञानगत अपरोक्षत्वका ज्ञान हेतु है, तथापि विषयमैं अपरोक्षता अपरोक्षज्ञानकी विषयतारूप मानैं तौ अन्योन्याश्रय दोष होवै यातैं विषयकी अपरोक्षता उक्तस्वरूप नहीं, किंतु प्रमातृचेतनसैं अभेदही विषयकी अपरोक्षता है, यातैं ज्ञानके अपरोक्षत्वनिरूपणमैं विषयके अपरोक्षत्वज्ञानकी अपेक्षा हुयांभी विषयके अपरोक्षत्व निरूपणमैं ज्ञानगत अपरोक्षत्वके ज्ञानका अनुपयोग होनेतैं अन्योन्याश्रय दोष नहीं.

विषयमैं परोक्षत्व अपरोक्षत्वके संपादक प्रमातृचेतनके भेद

औ अभेदसहितविषयगतपरोक्षत्व अपरोक्षत्वके अधीनही ज्ञानके परोक्षत्व अपरोक्षत्वका निरूपण ॥ १३० ॥

सुखादिक अन्तःकरणके धर्म साक्षिचेतनमैं अध्यस्त हैं; औ अधिष्ठानसैं पृथक् सत्ता अध्यस्तकी होवै नहीं, यातैं सुखादिकनका प्रमातृचेतनतैं सदा अभेद होनेतैं तिनमैं सदा अपरोक्षत्व है. औ अपरोक्ष सुखादिगोचर ज्ञानभी अपरोक्षही होवै है. बाह्य घटादिक यद्यपि बाह्यचेतनमैं अध्यस्त होनेतैं प्रमातृचेतनसैं तिनका सर्वदा अभेद नहीं; तथापि वृत्तिद्वारा बाह्यचेतनका प्रमातृचेतनसैं अभेद होवै, तिसकालमैं प्रमातृचेतनही घटादिकनका अधिष्ठान होवै है, यातैं इंद्रियजन्य घटादिगोचर वृत्ति होवै, तिसकालमैंही घटादिकनमैं अपरोक्षत्व धर्म होवै है. अपरोक्षत्वविशिष्ट घटादिकनका ज्ञानभी अपरोक्ष कहिये है. औ घटादिगोचर अनुमित्यादिक वृत्ति होवै तिसकालमैं प्रमातृचेतनसैं घटादिकनका अभेद नहीं होनेतैं तिनमैं अपरोक्षत्व धर्म होवै नहीं यातैं घटादिकनके अनुमित्यादि ज्ञानकूं अपरोक्ष नहीं कहैं हैं; किंतु परोक्ष कहैं हैं. औ ब्रह्मचेतनका प्रमातृचेतनसैं सदा अभेद होनेतैं ब्रह्मचेतन सदा अपरोक्ष है, यातैं महावाक्यरूप शब्दप्रमाणजन्य ब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्षही कहिये है. इस प्रकारसैं ज्ञानके परोक्षत्व औ अपरोक्षत्व प्रमाणाधीन नहीं, किंतु विषयगत परोक्षत्व अपरोक्षत्वके अधीनही ज्ञानके परोक्षत्व अपरोक्षत्व हैं. औ विषयमैं परोक्षत्व अपरोक्षत्वका संपादक प्रमातृचेतनका भेद औ अभेद हैं; यातैं शब्दजन्यब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्ष है, यह कथन संभवै है.

उक्तमतमैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानके अपरोक्षताकी प्राप्तिरूप दोष ॥ १३१ ॥

परंतु या मतमैं अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये. काहेतैं ? उक्तरीतिसैं प्रमातृचेतनस्वरूप होनेतैं ब्रह्म सदा अपरोक्ष है, औ अप-

रोक्षवस्तुगोचर ज्ञान अपरोक्षही होवै है, यातैं नित्य अपरोक्षस्वभाव ब्रह्मका परोक्ष ज्ञान संभवै नहीं. औ अवांतरवाक्यसैं सकल ग्रंथकारोंनैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान मान्या है. तैसैं "दशमोऽस्ति" यावाक्यतैं दशमका परोक्षज्ञानही होवै है औ पंचदशी आदिक ग्रंथनमैंभी उक्त वाक्यसैं दशमका परोक्ष ज्ञानही कह्या है. औ प्रमातृचेतनसैं अभिन्न दशम है, यातैं दशम विषयकूं अपरोक्षता होनेतैं ताका ज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये.

उक्त दोषसैं अपरोक्षताका अन्य लक्षण ॥ १३२ ॥

यातैं इसरीतिसैं माननां चाहियेः—जैसैं सुखादिक प्रमातृचेतनमैं अध्यस्त हैं; तैसैं धर्म अधर्मभी प्रमातृचेतनमैं अध्यस्त हैं यातैं सुखादिकनकी नाईं धर्मादिकभी प्रमातृचेतनसैं अभिन्न होनेतैं अपरोक्ष हुये चाहियें, तथापि योग्यविषयका प्रमातृचेतनसैं अभेदही विषयगत अपरोक्षताका संपादक है; धर्मादिक योग्य नहीं. यातैं तिनका प्रमातृचेतनसैं अभेद होनेतैंभी तिनमैं अपरोक्षता नहीं. जैसैं विषयगत योग्यता विषयगत अपरोक्षतामैं अपेक्षित है तैसैं प्रमाणगत योग्यताज्ञानकी अपरोक्षतामैं अपेक्षित है. अवांतर वाक्यमैं औ "दशमोऽस्ति" या वाक्यमैं अपरोक्षज्ञानजननकी योग्यता नहीं; किंतु महावाक्यमैं औ "त्वं दशमः" या वाक्यमैं अपरोक्षज्ञानके जननकी योग्यता है. जैसैं विषयकी योग्यतादिक प्रत्यक्षादिव्यवहारसैं जानिये हैं जिस विषयका प्रमातासैं अभेद होतैं प्रत्यक्षव्यवहार होवै, सो विषय योग्य कहिये है औ जिस विषयका प्रमातासैं अभेद होतें भी प्रत्यक्ष व्यवहार होवै नहीं, सो विषय अयोग्य कहिये है. जैसैं धर्म अधर्म संस्कार अयोग्य हैं, विषयकी नाईं प्रमाणमैंभी योग्यतादिक अनुभवके अनुसार जाननी बाह्य इंद्रियनमैं प्रत्यक्ष ज्ञानजननकी योग्यता है. औ अनुमानादिकनमैं परोक्षज्ञान जननकी योग्यता है. अनुपलब्धिमैं औ शब्दमैं उभयविध ज्ञानजननकी योग्यता है; परन्तु—

अपरोक्ष ज्ञानमैं सर्वज्ञात्ममुनिके मतका अनुवाद ॥ १३३ ॥

इतना विशेष हैः—प्रमातसैं असंबंधी पदार्थका शब्दसैं केवल परोक्षज्ञान होवै है, औ जिस पदार्थका प्रमातासैं तादात्म्य संबंध होवै तिसमैं योग्यता हुयांभी प्रमातासैं अभेदबोधक शब्द नहीं होवै. तौ शब्दसैं परोक्षज्ञानही होवै है, अपरोक्षज्ञान होवै नहीं. जैसैं "दशमोऽस्ति" इत्यादिक वाक्यनमैं प्रमातास अभेदबोधक शब्दके अभावतैं उक्त वाक्यनके श्रोताकूं स्वाभिन्न दशम ब्रह्मका भी परोक्षज्ञानही होवै है, अपरोक्षज्ञान होवै नहीं. औ जिस वाक्यमैं प्रमातासैं अभिन्न योग्य विषयका प्रमातासैं अभेदबोधक शब्द होवै, तिस वाक्यसैं परोक्ष ज्ञान होवै नहीं, किंतु अपरोक्ष ज्ञानही होवै है. यह मत सर्वज्ञात्ममुनिका है, या मतमैं केवल शब्दही अपरोक्षज्ञानका हेतु है, औ परोक्षज्ञानके संस्कारविशिष्ट एकाग्रचित्तसहित शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञान होवै है; यह मत प्रथम कह्या है.

नेडेहीं दूषित विषयगत अपरोक्षताके अधीन ज्ञानगत अपरोक्षता है या मतका अनुवाद ॥ १३४ ॥

अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञानकूं अपरोक्षत्व मानिकै ब्रह्मज्ञानकूं अपरोक्षता संभवै है, यह मध्यमैं तृतीय मत कह्या. या मतमैं नित्याऽपरोक्ष ब्रह्मगोचर अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये, यह दूषण कह्या.

अद्वैत विद्याचार्यकी रीतिसैं विषयगत औ ज्ञानगत अपरोक्षत्वका प्रकारांतरसैं कथन औ दूषित उक्तमतमैं दूषणांतरका कथन ॥ १३५ ॥

अद्वैत विद्याचार्यनैं अर्थगत अपरोक्षत्व औ ज्ञानगत अपरोक्षत्व प्रकारांतरसैं कह्या है. औ दूषित उक्त मतसैं दूषणांतर कह्या है. तथाहिः—प्रमातासैं अभिन्न अर्थकूं अपरोक्षस्वरूप मानिकै अपरोक्षअर्थगोचर ज्ञानकूं अपरोक्षत्व कहैं तौ स्वप्रकाश आत्मसुखरूप ज्ञानमैं अपरोक्ष ज्ञानके लक्ष-

णकी अव्याप्ति होवैगी. काहेतैं? अपरोक्ष अर्थ है गोचर कहिये विषय जिसका तिस ज्ञानकूं अपरोक्ष कहैं तौ ज्ञानका औ विषयका परस्पर भेदसापेक्ष विषयविषयिभाव संबंध है; तिसी स्थानमैं ज्ञानगत अपरोक्षलक्षण होवैगा. औ स्वप्रकाश सुखका ज्ञानसैं अभेद होनैतैं विषयविषयिभावके असंभवतैं तामैं उक्त लक्षण संभवै नहीं. यद्यपि प्रभाकरमतमैं ज्ञानकूं स्वप्रकाश कहैं हैं, औ अपने स्वरूपकूं तथा ज्ञाताकूं तैसैं ज्ञेय घटादिकनकूं ज्ञान विषय करै है, यातैं सकल ज्ञान त्रिपुटीगोचर होवै हैं; यह प्रभाकरका मत है. ताके मतमैं अभेद हुयांभी विषयविषयिभावका अंगीकार है, यातैं स्वप्रकाश ज्ञानरूप सुखमैं विषयविषयिभाव असंगत नहीं, स्वकहिये अपना स्वरूप है, प्रकाश कहिये विषयी जिसका सो स्वप्रकाश कहिये है; इसरीतिसैं स्वप्रकाशपदके अर्थसैंभी अभेदमैं विषयविषयिभाव संभवै है, तथापि प्रकाश्यप्रकाशकका भेदानुभव सिद्ध होनैतैं भेदविना प्रभाकरका विषयविषयिभाव कथन असंगत है, यातैं स्वप्रकाशपदका उक्त अर्थ नहीं; किंतु स्वकहिये अपनी सत्तासैं प्रकाश कहिये संशयादिराहित्यही स्वप्रकाश पदका अर्थ अद्वैतग्रन्थनमैं कह्या है.

अपरोक्षके उक्तलक्षणके असंभवका अनुवाद ॥ १३६ ॥

इसरीतिसैं स्वप्रकाशज्ञानतैं अभिन्नस्वरूप सुखमैं विषयविषयिभावके असंभवतैं अपरोक्षका उक्त लक्षण तामैं संभवै नहीं.

उक्तदोषसैं रहित अपरोक्षका लक्षण ॥ १३७ ॥

अपरोक्षका यह लक्षण हैः—स्वव्यवहारके अनुकूल चैतन्यसैं अभेद अपरोक्षविषयका लक्षण है. अन्तःकरण औ सुखादिक साक्षिचेतनमैं अध्यस्त होनैतैं धर्मसहित अन्तःकरणका साक्षिचेतनसै अभेद है. औ साक्षिचेतनसैं तिनका प्रकाश होनैतैं तिनके व्यवहारके अनुकूल साक्षिचेतन है; यातैं स्वकहिये अन्तःकरण औ सुखादिकनके व्यवहारके अनुकूल जो

साक्षिचेतन तासैं अभेदरूप अपरोक्षका लक्षण सुखादिसहित अन्तःकरणमैं संभवै है. औ धर्मादिकनका साक्षिचेतनसैं अभेद तौ है; परन्तु तिनमैं योग्यताके अभावतैं तिनके व्यवहारके अनुकूल साक्षिचेतन नहीं; यातैं स्वव्यवहारानुकूल चैतन्यतैं धर्मादिकनका अभेद नहीं होनेतैं तिनमैं अपरोक्षत्व नहीं, तैसैं घटादिगोचर वृत्तिकालमैं घटादिकनके अधिष्ठान चेतनका वृत्त्युपहित चेतनतैं अभेद होवै है; यातैं घटादिगोचरवृत्तिकालमैं घटादिचेतन घटादि व्यवहारके अनुकूल है; तासैं अभिन्न घटादिक अपरोक्ष कहिये है. घटादिगोचर वृत्तिके अभावकालमैं भी अपने अधिष्ठान चेतनसैं घटादिक अभिन्न है; परंतु तिसकालमैं तिनके व्यवहारके अनुकूल अधिष्ठानचेतन नहीं. काहेतैं ? वृत्त्युपहितसैं अभिन्न होयकै व्यवहारके अनुकूल होवै है; यातैं घटादिगोचर वृत्तिके अभावकालमैं घटादिक अपरोक्ष नहीं. तैसैं ब्रह्मगोचर वृत्त्युपहित साक्षिचेतनही ब्रह्मके व्यवहारके अनुकूल है, तासैं अभिन्न ब्रह्मकूं अपरोक्षता संभवै है, जैसैं स्वव्यवहारानुकूल चैतन्यतैं विषयका अभेद विषयगत प्रत्यक्षत्वका प्रयोजक है, तैसैं घटादिक विषयतैं घटादिक व्यवहारानुकूल चैतन्यका अभेद ज्ञानगत प्रत्यक्षत्वका प्रयोजक है.

वृत्तिरूपप्रत्यक्षज्ञानमैं उक्त अपरोक्षके लक्षणकी अव्याप्ति ॥ १३८॥

यद्यपि चेतनमैं घटादिक अध्यस्त है, औ विषयाकार वृत्तिकालमैं वृत्ति चेतनसैं विषयचेतनकी एकता होनेतैं स्वाधिष्ठान विषयचेतनसैं अभिन्न घटादिकनका वृत्तिचेतनसैं अभेद हुयेभी वृत्तिसैं घटादिकनका अभेद संभवै नहीं जैसैं रज्जुमैं कल्पित सर्प दंडमालाका रज्जुसैं अभेद हुयेभी सर्प दंडमालाका परस्पर भेदही होवै है अभेद होवै नहीं. औ ब्रह्ममैं कल्पित सकल द्वैतका ब्रह्मसैं अभेद हुयेभी परस्पर अभेद होवै नहीं. तैसैं वृत्तिचेतनसैं वृत्तिका औ घटादिकनका अभेद संभवै है, वृत्तिका औ घटादिक विषयका परस्पर अभेद संभवै नहीं; यातैं वृत्तिरूप प्रत्यक्षज्ञानमैं उक्त लक्षणकी अव्याप्ति है.

उक्त अव्याप्तिका अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं उद्धार ॥ १३९ ॥

तथापि अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं अपरोक्षत्वधर्म चेतनका है वृत्तिका नहीं. जैसैं अनुमितित्व इच्छात्व आदिक अंतःकरण वृत्तिके धर्म हैं तैसैं अपरोक्षत्व धर्म वृत्तिमैं नहीं है, किंतु विषयाकर वृत्त्युपहितचेतनका अपरोक्षत्व धर्म होनेतैं चेतनके अपरोक्षत्वका उपाधि वृत्ति है, है, यातैं वृत्तिमैं अपरोक्षत्वका आरोप करिकै वृत्तिज्ञान अपरोक्ष है; यह व्यवहार करै है. इसरीतिसैं वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं. यातैं अव्याप्ति नहीं जो वृत्तिज्ञानमैं अपरोक्षत्व धर्म इष्ट होवै औ अपरोक्षका लक्षण नहीं जावै तौ अव्याप्ति होवै; वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं; किंतु वृत्त्युपहित चेतनही लक्ष्य है यातैं अव्याप्तिशंका नहीं. चेतनका धर्म अपरोक्षत्व माननेसैं ही सुखादिक ज्ञानमैं अपरोक्षत्व संभवै है. वृत्तिका धर्म अपरोक्षत्व मानैं तौ सुखादिगोचरवृत्तिके अनंगीकार पक्षमैं साक्षिरूप सुखादिज्ञानमैं अपरोक्षत्व व्यवहार नहीं हुया चाहिये, यातैं अपरोक्षत्व धर्म चेतनका है वृत्तिका नहीं.

उक्त पक्षमैं शंका ॥ १४० ॥

या पक्षमैं यह शंका हैः—संसारदशामैं भी जीवका ब्रह्मसैं अभेद होनेतैं सर्वपुरुषनकूं ब्रह्म अपरोक्ष है. ऐसा व्यवहार हुया चाहिये. औ अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये. काहेतैं ? अवांतर वाक्य जन्य वृत्त्युपहित साक्षिचेतनका ब्रह्मरूप विषयतैं अभेद है; तथापिः—

उक्त शंकाका समाधान ॥ १४१ ॥

यह समाधान हैः—स्वव्यवहारानुकूल चेतनसैं अनावृत विषयका अभेद तौ अपरोक्ष विषयका लक्षण है; औ आनावृत विषयसैं स्वव्यवहारानुकूल चेतनका अभेद अपरोक्ष ज्ञानका लक्षण है. संसारदशामैं आवृत ब्रह्मका स्वव्यवहारानुकूल चेतनसैं अभेद नहीं हुयेभी अनावृत विषयका अभेद होनेतैं ब्रह्ममैं अपरोक्षत्व नहीं. तैसैं अवांतर वाक्यजन्य ज्ञानकाभी आवृत विषयतैं अभेद होनेतैं तिस ज्ञानकूं अपरोक्षत्व नहीं; यातैं उक्त शंका संभवै नहीं.

उक्त पक्षमैं अन्यशंका ॥ १४२ ॥

अन्यशंकाः—उक्त रीतिसैं अनावृत विषयके अभेदसैं अपरोक्षत्व मानैं तौ अन्योन्याश्रय दोष होवैगा. काहेतैं ? समानगोचरज्ञानमात्रकूं आवरण-निवर्तकता मानैं तौ परोक्षज्ञानसैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये औ सिद्धांतमैं असत्त्वापादक अज्ञानशक्तिका तिरोधान वा नाश तौ परोक्ष ज्ञानसैं होवै है. अभानापादकशक्तिविशिष्ट अज्ञानका परोक्षज्ञानसैं नाश होवै नहीं अपरोक्षज्ञानसैंही अज्ञानका नाश होवै है. इसरीतिसैं ज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धिके अधीन अज्ञानकी निवृत्ति है. औ अनावृत विषयतैं स्वव्यवहारानुकूल चेतनका अभेद हुयां ज्ञानका अपरोक्षत्व लक्षण कहनेतैं अज्ञाननिवृत्तिके अधीन ज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धि कही यातैं अन्योन्याश्रय दोष है.

उक्त शंकाका समाधान ॥ १४३ ॥

ताका यह समाधानहैः—यद्यपि पूर्व उक्तरीतिसैं अज्ञाननिवृत्तिकी ज्ञानके अपरोक्षत्वमैं अपेक्षा है, तथापि अज्ञानकी निवृत्तिमैं अपरोक्षत्वकी अपेक्षा नहीं. काहेतैं ? ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति माने तौ परोक्षज्ञानसैं भी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये इस दोषके परिहारके अर्थ अपरोक्ष ज्ञानसैं अज्ञान निवृत्ति कही है, तामैं अन्योन्याश्रय दोष होवैहै. यातैं ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति औ अपरोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्तिनहीं कहैं हैं, किंतु प्रमाणकी महिमातैं जहां विषयतैं ज्ञानका तादात्म्य संबंध होवै तिसज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. प्रमाणमहिमातैं बाह्य इंद्रियजन्य घटादिकनका ज्ञान विषयतैं तादात्म्यसंबंधवाला होवै है औ शब्दजन्य ब्रह्मज्ञानभी महावाक्यरूप प्रमाणकी महिमातैं विषयसैं तादात्म्यसंबंधवाला होवै है, यातैं उक्त उभयज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै. यद्यपि सर्वका उपादान ब्रह्म होनेतैं ब्रह्मगोचर सकल ज्ञानोंका तादात्म्यसंबंध है; यातैं अनुमितिरूप ब्रह्मज्ञानतैं औ अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मके परोक्षज्ञानतैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये,

तथापि उक्त ज्ञानका विषयतैं तादात्म्यसंबंध है, सो विषयकी महिमातैं है, प्रमाणकी महिमातैं नहीं.काहेतैं? महावाक्यतैं जीवब्रह्मके अभेद गोचर-ज्ञान होवै, ताका विषयसैं तादात्म्यसंबंध तौ प्रमाणकी महिमातैं कहैं हैं अन्यज्ञानका ब्रह्मसैं तादात्म्य संबंध है सो ब्रह्मकूं व्यापकता होनेतैं औ सकलकी उपादानता होनेतैं विषयकी महिमातैं कहैं हैं. इसरीतिसैं विलक्षण प्रमाणजन्य विषयसंबंधी ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. या कहनेमैं ज्ञानमात्रसैं अज्ञाननिवृत्तिकी आपत्ति नहीं, औ ज्ञानके अपरोक्षत्वकी अज्ञाननिवृत्तिमैं अपेक्षाके अभावतैं अन्योन्याश्रय दोषभी नहीं. इसरीतिसैं स्वव्यवहारानुकूल अनावृत चैतन्यसैं विषयका अभेद अपरोक्षविषयका लक्षण है. उक्त चैतन्यका विषयतैं अभेद अपरोक्ष ज्ञानका लक्षण है, यातैं शब्दजन्य ब्रह्मज्ञानविषैभी अपरोक्षता संभवै है.

शब्दसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिमैं कथन किये तीन मत विषै प्रथम मतकी समीचीनता ॥ १४४ ॥

या प्रकारतैं शब्दसैं अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्तिमैं तीनि मत कहे, तिनमैं आद्य मतही समीचीन है. काहेतैं?ज्ञानगत परोक्षत्व अपरोक्षत्व प्रमाणाधीन है. औ सहकारिसाधनविशिष्ट शब्दमैंभी अपरोक्ष ज्ञानके जननकी योग्यता है, यह प्रथम मत है. औ विषयके अधीन ही ज्ञानके अपरोक्षत्वादिक धर्म हैं. प्रमाणके अधीन नहीं. इस अभिप्रायतैं द्वितीय मत औ अद्वैत विद्याचार्यका तृतीयमत है.तिन दोनूं मतमैं भी केवल विषयके अधीन ही अपरोक्षत्वादिक-नकूं मानैं तौ अवांतर वाक्यसैं भी ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान हुया चाहिये यातैं ज्ञानके अपरोक्षत्वमैं प्रमाणके अधीनता अवश्य कही चाहिये, यातैं प्रथममतही समीचीन है.

वृत्तिके प्रयोजनका कथन ग्रंथके आरंभमैं उक्त तीन प्रश्नोंका औ तिनमैं कथन किये दोनूंके उत्तरका अनुवाद ॥ १४५ ॥

ग्रंथके आरंभमैं वृत्तिका स्वरूप, कारण, फल इन तीनिका प्रश्न है,

तिनमैं अंतःकरण औ अविद्याका प्रकाशरूप परिणाम वृत्ति कहिये है. या कहनेतैं वृत्तिका सामान्यरूप कह्या, तिसतैं अनंतर यथार्थत्व अयथार्थत्वादिक भेदकथनतैं वृत्तिका विशेष रूप कह्या, औ प्रमाणनिरूपणतैं वृत्तिके कारणका स्वरूप कह्या.

वृत्तिके प्रयोजनसंबंधि तृतीयप्रश्नके उत्तरका आरंभ ॥ १४६ ॥

वृत्तिके प्रयोजनका प्रश्न करयाथा, सो वृत्तिका प्रयोजन यह हैः- जीवकूं अवस्थात्रयका संबंध वृत्तिसैं होवै है, औ पुरुषार्थप्राप्तिभी वृत्तिसैं होवै है, यातैं संसारप्राप्तिकी हेतु वृत्ति है औ मोक्षप्राप्तिकी हेतु वृत्ति है. काहेतैं ? अवस्थात्रयके संबंधसैं जीवकूं संसार है.

वृत्तिप्रयोजनके कथनावसरमैं जाग्रतका लक्षण ॥ १४७ ॥

तहां इंद्रियजन्य ज्ञानकी अवस्थाकूं जाग्रत् अवस्था कहैहैं. अवस्था शब्द कालका वाचक है. यद्यपि सुखादिकनका ज्ञानकाल औ उदासीनकालभी जाग्रत् अवस्था कहिये है औ सुखादिक ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं जैसैं सुखादिज्ञानकालमैं अन्यविषयका ज्ञानभी इंद्रियजन्य होवै नहीं; तैसैं उदासीनकालमैं इंद्रियजन्यज्ञान है नहीं, तथापि वक्ष्यमाण स्वप्नावस्था औ सुषुप्ति अवस्थासैं भिन्न जो इंद्रियजन्यज्ञानका आधारकाल सो जाग्रत् अवस्था कहिये है सुखादिज्ञानकालमैं औ उदासीनकालमैं यद्यपि इंद्रियजन्य ज्ञान नहीं है,तथापि ताके संस्कार हैं, औ इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कार स्वप्नावस्था सुषुप्ति अवस्थामैंभी हैं, यातैं स्वप्नावस्था सुषुप्तिअवस्थासैं भिन्न काल कह्या. इसरीतिसैं जाग्रत अवस्था यह व्यवहार इंद्रियजन्य ज्ञानके अधीन है, सो इंद्रियजन्यज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप है, अंतःकरणकी वृत्तिके मतभेदसैं ये प्रयोजन हैं.

कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं आवरणका अभिभव वृत्तिका प्रयोजन ॥ १४८ ॥

कोई तौ आवरणका अभिभव वृत्तिका प्रयोजन कहै हैं. यद्यपि आवरणा-

भिभवमभी नाना मत हैं. जैसैं खद्योतके प्रकाशतैं महांधकारके एकदेश नाश होवै, तैसैं अज्ञानके एकदेशका नाश आवरणाभिभव शब्दका अर्थ है; यह सांप्रदायिक मत है.

समष्टिअज्ञानकूं जीवकी उपाधिताके पक्षमैं ब्रह्म वा ईश्वर वा जीवचेतनके संबंधसैं आवरणके अभिभवका संभव ॥ १४९ ॥

समष्टि अज्ञान जीवकी उपाधि है,या पक्षमैंघटादिकन विषयतैं चेतनका सदा संबंध है,यातैं चेतनसंबंधसैं तौ आवरणका अभिभव संभवै नहीं.काहेतैं? ब्रह्मचेतन तौ आवरणका साधक है विरोधी नहीं, औ ईश्वरचेतनसैं आवरणका अभिभव होवै तौ"इदं मयावगतम्"ऐसा व्यवहार जीवनकूं नहीं हुया चहिये; किंतु "ईश्वरेणावगतम्" ऐसा व्यवहार हुया चाहिये.काहेतैं ? ईश्वर जीवका व्यावहारिक भेद है;यातैं ईश्वरावगत वस्तु जीवका अवगत होवै नहीं यातैं जीवनचेतनके संबंधसैं आवरणका अभिभव कहै तौ या पक्षमैं जीवनचेतनका घटादिकनसैं सदा संबंध है काहेतैं ? जीवचेतनकी उपाधि मूलाज्ञान है, तामैं आरोपित प्रतिबिंबत्वविशिष्टचेतनकूं जीव कहैं हैं. मूलाज्ञानका घटादिकनसैं सदा संबंध होनेतैं जीवचेतनका सदा संबंध है.यातैं घटादिकनके आवरणका सदा अभिभव चाहिये. यातैं वृत्तिसैं आवरणका अभिभव कहै तो परोक्षवृत्तिसभी आवरणका अभिभव हुया चाहिये.

या पक्षमैं अपरोक्षवृत्तिसैं वा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट चेतनसैं आवरणके अभिभवका संभव ॥ १५० ॥

अपरोक्षवृत्तिसैं आवरणका अभिभव होवैहै अथवा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट चेतनसैं आवरणका अभिभव होवै है. जैसैं खद्योतके प्रकाशतैं महांधकारके एकदेशका नाश होवै है,खद्योतके अभावकालमैं महांधकारका फेरि विस्तार होवै है, तैसैं अपरोक्षवृत्तिसंबंधसैं अथवा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट चेतनके संबंधसैं मूलाज्ञानके अंशका नाश होवै है, वृत्तिके अभावदशामैं अज्ञानका प्रसरण होवै है, यह संप्रदायके अनुसारी मत है.

उक्तपक्षकी रीतिसैं आवरणनाशरूप वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ १८१ ॥

तिसतैं अज्ञानके अंशका नाश अपरोक्षवृत्तिका प्रयोजन है, औ असत्त्वापादक अज्ञानांशका नाश परोक्षवृत्तिका प्रयोजन है; इसरीतिसैं आवरणनाश वृत्तिका प्रयोजन है यह पक्ष कह्या.

द्वितीय पक्षकी रीतिसैं जीवचेतनसैं विषयके सम्बन्धरूप वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ १८२ ॥

जीवचेतनसैं विषयका संबंध वृत्तिका प्रयोजन है, यह दूसरा पक्ष है. याकूं कहैहैः—समष्टि अज्ञानमें प्रतिबिंब जीव है,या पक्षमैं जीवचेतनका घटादिकनसैं सर्वदा संबंध है, परंतु जीवके सामान्यसंबंधसैं विषयका प्रकाश होवै नहीं; यातैं विषयके प्रकाशका हेतु जीवसैं विजातीय संबंध वृत्तिका प्रयोजन है जीव चेतनका विषयतैं संबंध सर्वदा है, परंतु वह संबंध विषय प्रकाश हेतु नहीं.वृत्तिविशिष्ट जीवका विषयतैं संबंध होवै तौ विषयका प्रकाश होवैहै,यातैं प्रकाशहेतु संबंधवृत्तिके अधीन है. सो प्रकाशहेतु जीवका विषयतैं संबंध अभिव्यंजक अभिव्यंग्यभावहै.विषयमैं अभिव्यंजकता है,जीवचेतनमैं अभिव्यंग्यता है. जामैं प्रतिबिंब होवै ताकूं अभिव्यंजक कहैहैं, जाका प्रतिबिंब होवै सो अभिव्यंग्य कहिये है. जैसे दर्पणमैं मुखका प्रतिबिंब होवै तहां दर्पण अभिव्यंजक है मुख अभिव्यंग्य है. तैसैं घटादिक विषयनमैं चेतनका प्रतिबिंब होवैहै,यातैं घटादिक अभिव्यंजक हैं,चेतन अभिव्यंग्य है. इस रीतिसैं प्रतिबिंबग्रहणरूप व्यंजकता घटादिक विषयमैं है. प्रतिबिंबसमर्पणरूप व्यंग्यता चेतनमैं है, घटादिकनमें स्वभावसे प्रतिबिंबग्रहणकी सामर्थ्य नहीं. किंतु स्वाकारवृत्तिसंबंधसैं चेतनप्रतिबिंबके ग्रहण योग्य होवै है. जैसैं दर्पणसंबंध विना कुड्यमैं सूर्यका प्रतिबिंब होवै नहीं. औ दर्पण संबंधसैं होवै है; यातैं सूर्यप्रतिबिंबग्रहणकी योग्यता कुड्यमैं दर्पणसंबंधसैं होवैहै. जैसैं दृष्टांतमैं सूर्यप्रभाका कुड्यसैं सर्वदा सामान्य संबंध है, औ

अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभावसंबंध दर्पणाधीन है. तैसैं जीवचेतनका विषयतैं सर्वदा सम्बन्ध है, परंतु वृत्तिसम्बन्धसैं घटादिकनमैं जीवचेतनके प्रतिबिंबकी ग्रहणयोग्यता होवै है; यातै जीवचेतनका घटादिकनमैं अभिव्यंजक अभिव्यंग्यभावसंबंध वृत्तिके अधीन है. इसरीतिसैं जीवचेतनसैं घटादिकनके विलक्षण संबंधकी हेतु वृत्ति है; यातैं विषयसम्बन्धार्थ वृत्ति है, ता सम्बंधसैं विषयका प्रकाश होवै है, जीवचेतन विभु है, या पक्षमैं विलक्षण सम्बंधकी जनक वृत्ति है. औ-

अन्तःकरणविशिष्ट चेतन जीव है या पक्षमैं विषयसम्बंधार्थ वृत्तिकी अपेक्षा ॥ १५३ ॥

अंतःकरणविशिष्ट चेतन जीव है; या पक्षमैं तौ वृत्तिविना जीवचेतनतैं घटादिकनका सर्वथा सम्बंध नहीं. इंद्रियविषयके संबंधसैं अंतःकरणकी वृत्ति घटादिदेशमैं जावै, तब जीवचेतनका घटादिकनतैं सम्बंध होवै है. वृत्तिके बाह्यगमनविना अंतर जीवका बाह्य घटादिकनतैं सम्बंध होवै नहीं. इसरीतिसैं अंतःकरणावच्छिन्न परिच्छिन्न जीव है, या पक्षमैं विषयसम्बंधार्थ वृत्ति है, यह अर्थ स्पष्टही है.

उक्त दोनूं पक्षनकी विलक्षणता ॥ १५४ ॥

इसरीतिसैं अज्ञानोपाधिक जीव है, या पक्षमैं जीवचेतनका विषयतैं सम्बंध तौ सदा है, अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभाव सम्बंध सदा नहीं है, तिसके अर्थ वृत्ति है. औ अंतःकरणावच्छिन्न जीव है, या पक्षमैं जीवका विषयतैं सर्वथा सम्बंध नहीं है, ताके अर्थ वृत्ति है. इसरीतिसैं वृत्तिके फल सम्बंधमैं विलक्षणता ग्रंथकारोंनैं कही है. परंतुः-

मतभेदसैं संबंधमैं विलक्षणताके कथनकी असंगतता ॥ १५५ ॥

मतभेदसैं सम्बंधमैं विलक्षणताका कथन असंगत है. काहेतैं ? अंतःकरण जीवकी उपाधि है. या पक्षमैं भी अज्ञान तौ जीवभावकी उपाधि अवश्य

इष्ट है अन्यथा प्राज्ञरूप जीवका अभाव होवै है; यातैं जीवभावकी उपाधि सर्वके मतमैं अज्ञान है. कर्तृत्वादिक अभिमान अंतःकरणविशिष्टमैं होवै है, यातैं अंतःकरणावच्छिन्नकूं जीव कहैं हैं. औ अज्ञानमैं प्रतिबिंब जीव है, या पक्षमैं भी अज्ञानविशिष्ट प्रमाता नहीं है, किंतु अंतःकरणविशिष्टही प्रमाता है. औ जीवचेतनका तौ विषयतैं सम्बंध सर्वदा है, परन्तु प्रमातृचेतनका विषयतैं संबंध नहीं. औ प्रमातृचेतनके सम्बंधसैं ही विषयका प्रकाश होवै है. जीव चेतनके सबंधस विषयका प्रकाश होवै नहीं; जैसैं ब्रह्मचेतन ईश्वरचेतन अज्ञानके साधक हैं, तैसैं अविद्योपाधिक जीवचेतन हैं, ताके संबंधसैं विषयम ज्ञातता क व्यवहार होवै नहीं औ जीवचेतनकूं ज्ञाततादिकका अभिमान भी होवै नहीं. प्रमाताके संबंधसैं ही विषयमैं ज्ञाततादिक व्यवहार होवै है. औ व्यवहारका अभिमानभी प्रमाताकूं होवैहै, सो प्रमाता विषयतैं भिन्नदेशमैं है; यातैं प्रमाताका विषयतैं सदा संबंध नहीं. प्रामातास विषयका सम्बंध वृत्तिके अधीन है. इसरीतिसैं जीवकी उपाधिकूं व्यापक मानैं अथवा परिच्छिन्न मानैं तौ दोनूं पक्षमैं प्रमातासैं विषयसम्बंध वृत्तिके अधीन समान है. तामैं विलक्षणताकथन केवल बुद्धिप्रवीणताख्यापनके अर्थ है औ प्रमाताका विषयमैं सम्बंध नहीं; इसी वास्तै अप्रवीणताका साधक है.

च्यारि चेतनके कथनपूर्वक उक्त अर्थकी सिद्धि ॥ १८६ ॥

प्रमातृचेतन, प्रमाणचेतन, विषयचेतन औ फलचेतन भेदसैं च्यारि प्रकारका चेतन कह्या है. जो प्रमाताका विषयतैं सम्बंध होवै तौ प्रमातृचेतनसैं विषयचेतनका विभाग कथन असंगत होवैगा. अंतःकरणविशिष्ट चेतन प्रमातृचेतन है, वृत्त्यवच्छिन्नचेतन प्रमाणचेतन है, घटाद्यवच्छिन्नचेतन विषयचेतन है औ वृत्तिसम्बंधसैं घटादिकनमैं चेतनका प्रतिबिंब होवै ताकूं फलचेतन कहैं हैं. औ कोई ऐसैं कहैं हैं, घटावच्छि-

अचेतनही अज्ञात होवै तब विषयचेतन कहिये है, औ ज्ञात होवै तब घटावच्छिन्नचेतनकूं ही फलचेतन कहैं हैं ताहीकूं प्रमेयचेतन कहैं हैं. परंतु विद्यारण्यस्वामीनैं औ वार्तिककारनैं प्रमाणवृत्तिसैं उत्तरकालमैं जो घटादिकनमैं चेतनका आभास होवै सोई फलचेतन कह्या है. इसरीतिसैं प्रमातृचेतन परिच्छिन्न है, औ ताके सम्बंधसैं ही विषयका प्रकाश होवै है. जीवचेतनकूं विभु मानैं तौभी प्रमातासैं विषयका संबंध वृत्तिकृत है, यातैं दोनूं मतमैं विषयसंबंधमैं विलक्षणता नहीं.

जाग्रत्मैं होनेवाली वृत्तिके अनुवादपूर्वक स्वप्नावस्थाका लक्षण ॥ १५७ ॥

उक्त प्रयोजनवाली इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्ति जाग्रत् अवस्थामैं होवै है; इंद्रियसैं अजन्य जो विषयगोचर अंतःकरणकी अपरोक्षवृत्ति ताकी अवस्थाकूं स्वप्नावस्था कहैं हैं. स्वप्नमैं ज्ञेय औ ज्ञान अन्तःकरणका परिणाम है.

सुषुप्ति अवस्थाका लक्षण ॥ १५८ ॥

सुखगोचर अविद्यागोचर अज्ञानका साक्षात्परिणामरूपवृत्तिकी अवस्थाकूं सुषुप्ति अवस्था कहैं हैं. सुषुप्तिमैं अविद्याकी वृत्ति सुखगोचर औ अज्ञानगोचर होवै है. यद्यपि अविद्यागोचरवृत्ति जाग्रत्मैं "अहं न जानामि" इसरीतिसैं होवै है, तथापि वह वृत्ति अंतःकरणकी है, अविद्याकी नहीं. यातैं सुषुप्तिलक्षणकी जाग्रत्मैं अतिव्याप्ति नहीं. तैसैं प्रातिभासिक रजताकार वृत्ति जाग्रत्मैं अविद्याका परिणाम है, सो अविद्यागोचर नहीं, तैसैं सुखाकार वृत्ति जाग्रत्मैं है सो अविद्याका परिणाम नहीं है. इसरीतिसैं सुखगोचर औ अविद्यागोचर अविद्यावृत्तिकी अवस्थाकूं सुषुप्ति अवस्था कहैं हैं.

सुषुप्तिसम्बंधी अर्थका कथन ॥ १५९ ॥

सुषुप्तिमैं अविद्याकी वृत्तिमैं आरूढ साक्षी अविद्याकूं प्रकाशै है, औ स्वरूप सुखकूं प्रकाशै है सुषुप्तिअवस्थामैं सुखाकार अविद्याकार परिणाम जिस अज्ञानांशका हुया है, तिस अज्ञानांशमैं तिसपुरुषका अंतःकरण लीन है. जाग्रत् कालमैं तिस अज्ञानांशका परिणाम अंतःकरण होवै है; यातैं अज्ञानकी वृत्तिसैं अनुभूत सुखकी जाग्रत्मैं स्मृति होवै है. उपादानका औ कार्यका भेद नहीं होनेतैं अनुभवस्मरणकूं व्यधिकरणता नहीं. इसरीतिसैं तीनि अवस्था हैं. मरणका औ मूर्छाकाभी कोई सुषुप्तिमैं अंतर्भाव कहैं हैं कोई पृथक् कहै हैं.

उक्त अवस्था भेदकूं वृत्तिकी अधीनता ॥ १६० ॥

यह अवस्थाभेद वृत्तिके अधीन है. जाग्रत स्वप्नमैं तौ अंतःकरणकी वृत्ति है, जाग्रतमैं इंद्रियजन्य है, स्वप्नमैं इंद्रियअजन्य है. सुषुप्तिमैं अज्ञानकी वृत्ति है.

वृत्तिके प्रयोजनका कथन ॥ १६१ ॥

अवस्थाका अभिमानही बंध है, भ्रमज्ञानकूं अभिमान कहैं हैं, सोभी वृत्तिविशेष है; यातैं वृत्तिकृत बंधही संसार है. औ वेदांतवाक्यसैं "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति होवै तासैं प्रपंचसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवै है सोई मोक्ष है; यातैं वृत्तिका संसारदशामैं तौ व्यवहारसिद्धि प्रयोजन है औ परमप्रयोजन मोक्ष है.

कल्पितकी निवृत्तिविषै विचार ।

कल्पितकी निवृत्तिकूं अधिष्ठानरूपतापूर्वक मोक्षमैं द्वैतापत्तिदोषके कथनकी अयुक्तता ॥ १६२ ॥

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है, यातैं संसारनिवृत्ति मोक्ष है. ऐसा कहनेतैं ब्रह्मरूप मोक्ष है, यह सिद्ध होवै है, यातैं कल्पितकी निवृत्तिकूं कल्पितका ध्वंस मानिकै मोक्षमैं द्वैतापत्ति दोषका कथन अज्ञानप्रयुक्त है.

न्यायमकरंदकारोक्त अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्तिपक्षमैं दूषण ॥ १२२ ॥

न्यायमकरंदकारनैं कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं मानी औ द्वैतापत्तिकाभी समाधान कह्या है, परंतु तिनका लेख अनुभवके अनुसार नहीं. काहेतैं ? यह तिनका लेख हैः—कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है जो अधिष्ठानरूप कहै तौ अधिष्ठान औ कल्पितनिवृत्ति एकही पदार्थ है. दो पदार्थ नहीं; यह सिद्ध होवै है. तहां यह पूछै हैः—अधिष्ठानमैं अंतर्भाव मानिकै कल्पितनिवृत्तिका लोप इष्ट है अथवा कल्पितनिवृत्तिमैं अंतर्भाव मानिकै पृथक् अधिष्ठानका लोप इष्ट है ? अन्यप्रकार संभवै नहीं एकमैं अपरका अंतर्भावही कहना होवैगा. जो प्रथम पक्ष कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं ? संसारका अधिष्ठान ब्रह्म है, औ संसारकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न नहीं होवै तौ संसारनिवृत्तिके साधनमैं प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? संसारनिवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न तौ है नहीं औ ब्रह्म सिद्ध है. व्यापारसाध्यके अर्थ प्रवृत्ति होवै है, स्वभावसिद्ध ब्रह्मके अर्थ ज्ञानसाधन श्रवणादिकनमैं प्रवृत्ति संभवै नहीं यातैं संसारनिवृत्तिका नित्यसिद्ध ब्रह्ममैं अंतर्भाव संभवै नहीं. औ जो निवृत्तमैं ब्रह्मका अंतर्भाव कहै तौभी संसारभ्रमका असंभव होनेतैं ताकी निवृत्तिजनक ज्ञानके साधन श्रवणादिकनमैं प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? संसारकी निवृत्ति तौ ज्ञानसैं उत्तरकालमैं होवै है ज्ञानसैं प्रथम कल्पितकी निवृत्ति होवै नहीं, यह अनुभवसिद्ध है. औ संसारनिवृत्तिसैं पृथक् ब्रह्म है नहीं, यातैं ज्ञानतैं पूर्व ब्रह्मरूप अधिष्ठानके अभावतैं संसारभ्रम संभवै नहीं; यातैं अनुभवसिद्ध संसारका अभाव तौ कह्या जावै नहीं. सत्य कहना होवैगा. ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति संभवै नहीं; यातैं संसारनिवृत्तिमैं ब्रह्मका अंतर्भाव संभवै नहीं, औ संसारनिवृत्ति ज्ञानसैं पूर्वकालमैं है नहीं; ज्ञानसैं उत्तरकालमैं होनेतैं सादि है औ ब्रह्म अनादि है. सादि पदार्थमैं अनादि पदार्थका

अंतर्भाव कथन अयुक्त है. इसरीतिसैं दोनूंका परस्पर अंतर्भाव संभवै नहीं यातैं कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानरूप है, यह पक्ष संभवै नहीं. औ जो ऐसैं कहै, परस्पर अंतर्भाव किसीका नहीं कहैं हैं; तथापि कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानसैं पृथक् नहीं, अधिष्ठानकी अवस्थाविशेष कल्पितनिवृत्ति है. अज्ञात औ ज्ञात दो अवस्था अधिष्ठानकी होवैं हैं ज्ञानसैं पूर्व अज्ञात अवस्था है, औ ज्ञानसैं उत्तरकालमैं ज्ञात अवस्था होवै है. ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्ति है, ज्ञात अधिष्ठान सादि है; यातैं ज्ञानसाधन श्रवणादिक निष्फल नहीं. औ संसारनिवृत्ति ब्रह्मसैं पृथक् नहीं, इस रीतिसैं ज्ञात अधिष्ठानरूपही कल्पित निवृत्तिकूं मानैं सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानके विषयकूं ज्ञात कहैं हैं, अज्ञानके विषयकूं अज्ञात कहैं हैं, अज्ञानकृत आवरणही अज्ञानकी विषयता कहिये है. जब ज्ञानसैं अज्ञानका अभाव होवै, तब अज्ञात व्यवहार होवै नहीं; तैसैं विदेहदशामैं देहादिकनके अभावतैं ज्ञानका अभाव होनेतैं ज्ञातताका अभाव होवै है, यातैं विदेहदशामैं अज्ञात अवस्थाकी नांई ज्ञात अवस्थाकाभी अभाव होनेतैं ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पित निवृत्तिका मोक्षमैं अभाव हुया चाहिये. जो मोक्षमैं अभाव मानैं तौ कल्पितनिवृत्तिकूं अनंतताके अभावतैं औषधजन्य रोगनिवृत्तिकी नांई परमपुरुषार्थताका अभाव होवैगा. यातैं--

न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितकी निवृत्तिका निरूपण ॥ १६४ ॥

कल्पित निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं, तासैं भिन्न है और अधिष्ठान भिन्नभी कल्पितकी निवृत्ति द्वैतकी संपादक नहीं. काहेतैं ? अधिष्ठान भिन्न सत्य होवै तौ द्वैत होवै. सत्यसैं विलक्षणपदार्थ द्वैतका हेतु होवै तौ सिद्धांतमैं सदा अद्वैत है, या अर्थका बाध होवैगा. यातैं सत्यपदार्थका भेदही द्वैतका साधक है कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है और सत्य नहीं. यातैं द्वैतसिद्धि होवै नहीं.

न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं कल्पितनिवृत्तिके स्वरूप निर्णयवास्तै अनेक विकल्पनका लेख ॥ १६५ ॥

कल्पितनिवृत्तिके स्वरूपनिर्णयवास्तै इसरीतिसैं विकल्प लिखेहैं:—अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितकी निवृत्ति सत्‌रूप है वा असत्‌रूप है वा सदसत्‌रूपहै वा सदसत्‌विलक्षण है ? जो सत्‌रूप कहै तौ व्यावहारिक सत् है अथवा पारमार्थिक सत् है ? जो व्यावहारिकसत् कहै तौ ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर व्यावहारिक सत्‌का संभव नहीं होनेतैं ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर संसारनिवृत्तिका अभाव चाहिये. काहेतैं ? ब्रह्मज्ञानसैं प्रथम जाका बाध होवै नहीं औ ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर जाकी सत्तास्फूर्ति होवै नहीं सो व्यावहारिक सत् कहिये है; यातैं कल्पित निवृत्तिकूं व्यावहारिक सत् मानैं तौ ज्ञानसैं उत्तर ताका संभव होवै नहीं यातैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पित निवृत्तिकूं पारमार्थिक सत्‌रूप कहै तौ द्वैत होवैगा इसरीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्ति सत्‌रूप नहीं. जो अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्तिकूं असत् कहै तौ असत् शब्दका अर्थ अनिर्वचनीय है अथवा तुच्छ है? जो अनिर्वचनीय कहै तौ दोष आगे चतुर्थ विकल्पके खंडनमैं कहैंगे. तुच्छ कहै तौ संसारनिवृत्तिकूं पुरुषार्थता नहीं होवैगी, यातैं द्वितीय विकल्प संभवै नहीं. औ अधिष्ठानसैं भिन्नकूं सदसत्‌रूप कहै तौ एक पदार्थकूं सत्‌स्वरूपता औ असत्‌स्वरूपता विरोधी होनेतैं संभवै नहीं. औ सदसत्‌रूप मानें पूर्वउक्त सत्‌पक्षका दोष होवैगा औ असत्‌पक्षका दोष होवैगा. काहेतै ? कल्पितनिवृत्तिमैं सत् अंश है यातैं द्वैत होवैगा औ असत् अंशतैं अपुरुषार्थता होवैगी. औ सदसत्‌शब्दका ऐसा अर्थ करे सत् कहिये व्यावहारिकसत्ताका आश्रय है औ असत् कहिये पारमार्थिक सत्‌सैं भिन्न है, यातैं सत् असत्‌का विरोध नहीं. काहेतैं ? घटादिक व्यावहारिक सत्ताके आश्रय औ पारमार्थिक सत्‌सैं भिन्न प्रसिद्ध हैं; यातैं उक्त विरोध नहीं औ पारमार्थिक सत्ताका निषेध करनेतैं द्वैत नहीं. व्यावहारिक सत्ता है तुच्छ नहीं, यातैं अपुरुषार्थभी नहीं इस

रीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्ति पारमार्थिकसत्ताशून्य व्यावहारिक सत्तावाली है इसअभिप्रायतैं सत्‌असत्‌रूप कहै तौ प्रथम विकल्पमैं व्यावहारिक सत् मानैं तौ जो दोष कह्या "ज्ञानसैं उत्तर व्यावहारिक पदार्थका असंभव होवै है" तिस दोषतैं यह अर्थभी संभवै नहीं; यातैं तृतीय विकल्प भी संभवै नहीं. औ अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पित निवृत्ति सदसत् विलक्षण है यह चतुर्थ पक्ष कहै तौ सद्विलक्षण कहनेसैं द्वैत नहीं; औ असत् विलक्षण कहनेसैं अपुरुषार्थताभी नहीं, तथापि संभवै नहीं, काहेतैं ? सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय होवै है, यातैं कल्पितकी निवृत्ति अनिर्वचनीय होवै है यह सिद्ध होवैगा. औ माया अथवा ताका कार्य अनिर्वचनीय होवै है. यातैं अज्ञान सहित संसारकी निवृत्ति अनिर्वचनीय होवै तौ मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप अज्ञान सहित प्रपंचकी निवृत्ति माननी होवैगी. मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप उक्त निवृत्तिकूं कहै तौ घटरूप घटकी निवृत्ति है, इस कथनकी नाईं उक्त कथन हास्यका आस्पद है औ ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञानसहित प्रपञ्चकी निवृत्ति होवै तिसतैं अनंतर पुरुषार्थसाधन सामग्री कोई रहै नहीं यह सिद्धांत है. ब्रह्मज्ञानका फल कल्पितकी निवृत्ति मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप होवै ताका निवर्तक कोई रह्या नहीं, यातैं मोक्षदशामैं भी माया वा ताके कार्यका नित्यसंबंध रहनेतैं निर्विशेष ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षका अभाव होवैगा. यातैं चतुर्थ पक्षभी संभवै नहीं. इसरीतिसैं अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न है सत्‌रूप नहीं, यातैं द्वैत नहीं. असत् नहीं, यातैं पुरुषार्थता नहीं. सदसद्रूप नहीं, यातैं उभयपक्षउक्त दोष नहीं. अनिर्वचनीय नहीं, यातै मोक्षदशामैं अज्ञान तत्कार्यका शेष नहीं. यातैं उक्त चतुर्विधप्रकारसैं विलक्षण अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न है.

न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं उक्त च्यारि प्रकारसैं विलक्षण औ ब्रह्मसैं भिन्न पंचमप्रकाररूप कल्पितकी निवृत्तिका स्वरूप ॥ १६६ ॥

पंचमाकार ताकूं कहैं. जैसैं सदसतसैं विलक्षण पदार्थकी अद्वैतमतमैं अनीर्वचनीय परिभाषा है. तैसैं सत्स्वरूप १, असद्रूप २, सदसद्रूप ३, सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय ४ इन च्यारिप्रकारसैं विलक्षणप्रकारवाली अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति है. चतुर्विधप्रकारस विलक्षणप्रकारका नाम पंचम प्रकार है, यातैं अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न हैं,ता निवृत्तिमैं पंचम प्रकार हैं; यह न्यायमकरंदमैं लिख्या हैः—

न्यायमकरन्दकारके मतकी असमीचीनता ॥ १६७ ॥

सो समीचीन नहीं. काहेतैं? व्यावहारिक सत् पदार्थ तौ लोकमैं प्रसिद्ध है औ अनिर्वचनीय पदार्थभी इंद्रजालकृत लोकमैं प्रसिद्ध हैं; तैसैं पारमार्थिक सत्पदार्थ शास्त्रमैं ब्रह्म प्रसिद्ध है. औ विद्वानोंके अनुभवसिद्ध ब्रह्मात्मा है इस सर्वसैं विलक्षण कोई वस्तु लोकशास्त्रमैं प्रसिद्ध नहीं. अत्यंत अप्रसिद्ध-रूप अज्ञानसहित संसारकी निवृत्ति मानैं तौ पुरुषार्थका अभाव होवैगा. काहेतैं ? पुरुषकी अभिलाषाका विषय पुरुषार्थ कहियेहै.अत्यंत अप्रसिद्धमैं पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं;किंतु प्रसिद्धमैं अभिलाषा होवै है, यातैं प्रसि-द्धपदार्थनसैं विलक्षण कल्पितनिवृत्ति नहीं. यद्यपि कल्पितनिवृत्तिकूं अ-धिष्ठानरूप मानैं तौभी संसारका अधिष्ठान ब्रह्म प्रसिद्ध नहीं, तथापि पूर्व अनुभूतमैं अभिलाषा होवै है, यह नियम नहीं; किंतु अनुभूतके सजा-तीयमैं अभिलाषा होवैहै. जैसैं भयरूप अनर्थहेतु सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रज्जुरूप है; तैसैं जन्ममरणादिरूप अनर्थ हेतु संसारकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूप है, इसरीतिसैं अधिष्ठानत्व धर्मसैं ब्रह्मरूप संसारकी निवृत्ति अनुभू-तके सजातीय होनेतैं पुरुषकी अभिलाषा संभवै है. औ पंचम प्रकारवा-दीके मतमैं अनुभूत सजातीय नहीं होनेतैं प्रवृत्ति संभवै नहीं; औ अधि-ष्ठानसैं भिन्न मानैं तौ भाष्यकारके वचनसैं विरोध होवैगा. भाष्यकारनैं कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानरूपही कही है.

न्यायमकरंदकारोक्त ज्ञात अधिष्ठानरूपकल्पितकी निवृत्तिपक्षमैं दोषका उद्धार औ प्रसंगमैं विशेषण उपाधि और उपलक्षणका लक्षण ॥ १६८ ॥

ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्ति माननेमैं जो दोष कह्या हैः—मोक्षदशामैं ज्ञातत्वके अभावतैं कल्पितनिवृत्तिका अभाव होनेतैं कल्पितका उज्जीवन होवैगा, ताका यह समाधान हैः—ज्ञातत्वविशिष्ट औ ज्ञातत्वउपहित ब्रह्म तौ मोक्षकालमैं नहीं है. काहेतैं ? ज्ञातत्वविशेषणवालेकूं ज्ञातत्वविशिष्ट कहैं हैं, औ ज्ञातत्वउपाधिवालेकूं ज्ञातत्वउपहित कहैं हैं. कार्यमैं सम्बंधी जो वर्तमानव्यावर्तक सो विशेषण कहिये है. जैसैं नीलरूपवाला घट उपजै है, या स्थानमैं नीलरूप विशेषण है. काहेतैं ? उत्पत्तिरूपकार्यसैं सम्बन्धी है. औ घटमैं वर्तमान हुवा पीत घटसैं व्यावर्तक है. औ कार्यमैं असम्बन्धी वर्तमान व्यावर्तक उपाधि कहिये है जैसैं भेरी उपहित आकाशमैं शब्द है इस स्थानमैं भेरी उपाधि है. काहेतैं ? शब्दकी अधिकारणतामैं भेरीका सम्बंध नहीं औ वर्तमान भेरी बाह्याकाशतैं व्यावर्तक है. औ कार्यमैं असम्बंधी व्यावर्तक होवै सो उपलक्षण कहिये है. उपलक्षणमैं वर्तमानताकी अपेक्षा नहीं. अतीतभी उपलक्षण होवै है. औ उपाधि तौ विशेष्यके सर्वदेशमैं होवै है. उपलक्षण एकदेशमैं होवै है. जैसैं "काकवद्‌ गृहं गच्छ" ऐसा कहैं, जिस गृहमैं काकसंयोग देख्या है, तिस गृहसैं काक चल्या जाव ताभी गमन करैहै. इहां गृहका काक उपलक्षण है. काहेतैं ? गमनरूप कार्यम असम्बंधी है औ गृहके एक देशमैं है; तैसैं वर्तमान औ अतीत काक अन्यगृहतैं व्यावर्तक है. इसरीतिसैं विशेषण औ उपाधि तौ वर्तमान होवै है, यातैं विशेष्यके सर्वदेशमैं औ सर्वकालमैं होवै है. विशेष्यके जा देशमैं जा कालमैं नहीं होवै ता देशमैं ता कालमैं विशिष्ट व्यवहार नहीं होवै है औ उपहित व्यवहारभी नहीं होवै है.

किंतु जितने कालमैं जितने देशमैं व्यावर्तक होवै उतने देशमैं औ कालमैं विशिष्ट व्यवहार औ उपहित व्यवहार होवै है, सो मोक्षदशामैं ज्ञातत्वका संबंध नहीं, किंतु पूर्वज्ञातत्व हुया है, यातैं ज्ञातत्वविशिष्ट औ ज्ञातत्वउपहित तौ अधिष्ठान नहीं है, औ व्यावर्तक मात्रकूं उपलक्षण कहैं हैं, वर्तमानमैं आग्रह नहीं; यातैं विशेष्यके एक देशमैं सम्बंध हुये औ एककालमैं सम्बंध हुयेभी व्यावर्तककूं उपलक्षण कहैं हैं. इतर पदार्थसैं भेदज्ञानकूं व्यावृत्ति कहै हैं. विशेषण, उपाधि, उपलक्षण ये तीनूं इतरसैं व्यावृत्ति करैहैं तिनमैं विशेषण तौ यावत् देशकालमैं आप होवै, तिस देश कालस्थ स्वविशिष्ट विशेष्यकी व्यावृत्ति करै है. जाकी व्यावृत्ति विशेषणसैं होवै सो विशिष्ट कहिये है, औ जिस देशकालमैं व्यावर्तक होवै तिस देशकालस्थ व्यावर्तनीयकी व्यावृत्ति करै, आप बहिर्भूत रहै सो उपाधि कहिये हैं. जाकी व्यावृत्ति उपाधिसैं होवै; सो उपहित कहिये हैं; औ व्यावर्तनीयके एकदेशमैं कदाचित् होयके व्यावृत्ति करै तौ उपाधिकी नाई आप बहिर्भूत रहै सो उपलक्षण कहिये है; जाकी व्यावृत्ति उपलक्षणसैं होवै सो उपलक्षित कहिये है. यातैं यह निष्कर्ष हुया:—व्यावर्तक व्यावर्तनीय इन दोनूंमैं विशिष्ट व्यवहार होवैहै, जितने देशमैं व्यावर्तक होवै उतने देशमैं स्थित व्यावर्तनीय मात्रमैं उपहित व्यवहार होवै है, परंतु व्यावर्तक सद्भावकालमैं व्यावर्तककूं त्यागिकै उपहित व्यवहार होवै है औ व्यावर्तनीयके एक देशमैं कदाचित् व्यावर्तक होवै, तहां व्यावर्तनीय मात्रमैं उपलक्षित व्यवहार होवै है इहां व्यावर्तक सद्भावकी अपेक्षा नहीं. इसरीतिसैं विशेषणादिकनके भेदतैं अंतःकरणविशिष्ट **प्रमाता** है, अंतःकरणोपहित **जीव साक्षी** है औ अंतःकरणोपलक्षित **ईश्वर साक्षी** है, इहां प्रसंग यह है. मोक्षदशामैं ज्ञातत्वके अभावतैं ज्ञातत्वविशिष्ट औ ज्ञातत्वोपहित तौ अधिष्ठान संभवै नहीं, तथापि ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठान मोक्षदशामैंभीहैऔ

अधिष्ठानरूपनिवृत्तिके पक्षमैं पंचमप्रकारवादीकी शंका ॥ १६९ ॥

जो पंचमप्रकारवादी यह शंका करैः—जामैं कदाचित् ज्ञातत्व होवै तामैं ज्ञातत्वके अभावकालमैं भी ज्ञातत्वोपलक्षित मानैं तौ ज्ञातत्वसैं पूर्वकालमैंभी भावी ज्ञातत्वकूं मानिकै ज्ञातत्वोपलक्षित कह्या चाहिये. जो पूर्वकालमैं ज्ञातत्वोपलक्षित मानैं तौ संसारकालमैंभी ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठानरूप संसार निवृत्तिके होनेतैं अनायासतैं पुरुषार्थप्राप्ति होवैगी; यातैं ज्ञातत्वके अभावकालमैं ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठानरूप कल्पितनिवृत्ति कहना योग्य नहीं.

उक्त शंकाका समाधान ॥ १७० ॥

ताका यह समाधान हैः—व्यावर्तक संबंधसैं उत्तरकालमैं उपलक्षित व्यवहार होवै है, पूर्वकालमैं नहीं होवै है जैसे काकसंबंधसैं उत्तरकालमैं काकोपलक्षित व्यवहार होवै है. तैसैं ज्ञातत्वकी उत्पत्तिसैं पूर्व संसारदशामैं ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठान नहीं, किंतु उत्तरकालमैं ज्ञातत्वके असद्भावकालमैं भी ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठान है, ताका स्वरूपही संसारनिवृत्ति है.

न्यायमकरंदतैं अन्यरीतिसैं अधिष्ठानतैं भिन्न कल्पितकी निवृत्तिका स्वरूप ॥ १७१ ॥

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है; या पक्षमैं आग्रह होवै तौ न्यायमकरंदग्रंथमैं उक्तरीतिसैं अत्यंत अप्रसिद्ध पंचमप्रकार मानना निष्फल है. काहेतैं ? अनिर्वचनीयकी निवृत्ति अनिर्वचनीय है. निवृत्ति नाम ध्वंसका है, तिस ध्वंसकूं अनंत अभावरूप मानैं औ अधिष्ठानसैं भिन्न मानैं तौ मोक्षदशामैं द्वैत होवै, सो ध्वंस अनंत अभावरूप नहीं; किंतु क्षणिक भावविकार है. यास्कनाम मुनिनैं वेदका अंग निरुक्त कऱ्या है; तामैं जन्म, सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय, विनाश ये षट्भावविकार कहे हैं. भाव कहिये अनिर्वचनीय वस्तु ताके विकार हैं, अवस्थाविशेष हैं. अनिर्वचनी-

यकी अवस्था विशेष होनेतैं जन्मादिक नाशपर्यंत अनिर्वचनीय हैं. जैसैं जन्म क्षणिक है. काहेतैं ? आद्यक्षणसंबंधकूं जन्म कहैं हैं; प्रथम क्षणमैं "जायते" ऐसा व्यवहार होवै है, द्वितीयादिक्षिणमैं "जातः" ऐसा व्यवहार होवै है "जायते" ऐसा व्यवहार होवै नहीं. तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका चूर्णादिभाव होवै तब एक क्षणमैं "घटो नश्यति" ऐसा व्यवहार होवै है, द्वितीयादिक्षणमैं "नष्टो घटः" ऐसा व्यवहार होवै है, "नश्यति" यह व्यवहार होवै नहीं; यातैं जन्मनाश क्षणिक है, वर्तमान जन्म घटका है, यह "जायते घटः" या वाक्यसैं प्रतीत होवै है. अतीत जन्म घटका है. यह "जातो घटः" या वाक्यसैं प्रतीत होवै है. जैसैं घटका वर्तमान नाश है, यह "नश्यति घटः" या वाक्यसैं प्रतीत होवै है औ "नष्टो घटः" या वाक्यसैं घटका अतीत नाश प्रतीत होवै है. जो ध्वंसरूप नाश अनंत होवै तौ नाशमैं अतीतत्व व्यवहार नहीं हुया चाहिये; यातैं नाश अनंत नहीं किंतु क्षणिक है औ भावविकार है; यातैं अभावरूप नहीं. औ अनुपलब्धिनिरूपणमैं अनंत अभाव ध्वंस कह्या, सो न्यायकी रीतिसैं कह्या है. वेदांतमतमैं एक अत्यंताभावही अभावपदार्थ है; इसरीतिसैं कल्पितकी निवृत्ति क्षणिक है, अनिर्वचनीय है जैसैं विद्वान्‌के अनिर्वचनीय शरीरादिक ज्ञानसैं उत्तरभी प्रारब्धबलतैं किंचित्काल रहै है. द्वैतके साधक नहीं तैसैं ज्ञानसैं उत्तरकाल कल्पितकी निवृत्ति एक क्षण रहै है; यातैं द्वैतकी साधक नहीं. एक क्षणतैं उत्तर कल्पित निवृत्तिका अत्यंताभाव है सो ब्रह्मरूप है.

उक्तमतमैं पुरुषार्थका स्वरूप. (दुःखाभाव वा केवल सुख) ॥ १७२ ॥

या मतमैं दुःखनिवृत्ति क्षणिकभाव होनेतैं पुरुषार्थ नहीं; किंतु दुःखाभाव पुरुषार्थ है, अथवा दुःखाभावभी पुरुषार्थ नहीं; किंतु केवल सुखही पुरुषार्थ है. काहेतैं ? अनंत दुःखसहित ग्राम्यधर्मादिकनका सुख है; तामैं स्वभावसैं सकल जीवनकी प्रवृत्ति होवै है. जो दुःखाभावभी पुरुषकी

अभिलाषाका विषय होवै तौ सर्वथा दुःखग्रसित सुखमैं पुरुषकी अभिलाषा नहीं हुई चाहिये; औ जहां दुःखाभावमैं अभिलाषा होवै है, तहां भी स्वरूपसुखानुभवका प्रतिबंधक दुःख है, ताके अभावकालमैं स्वरूप सुखका प्रादुर्भाव होवै है, यातैं दुःखाभावमैं पुरुषकी अभिलाषास्वरूप सुखके निमित्त है. इसरीतिसैं मुख्य पुरुषार्थ सुख है, दुःखाभाव नहीं, यातैं दुःखात्यन्ताभावकूंभी ब्रह्मरूप नहीं मानैं औ अनिर्वचनीय मानैं तौ ताका भी बाध संभवै है; परंतु अनिर्वचनीयका बाधरूप अभाव तौ अधिष्ठान-रूप अनुभवसिद्ध है, यातैं अज्ञानसहित भावाभावरूप प्रपंच औ ताकी निवृत्ति सकल अनिर्वचनीय है, तिन सर्वका अधिष्ठानरूप बाध होयकै निर्द्वैतस्वरूप परमानन्द परमपुरुषार्थ मोक्ष है.

इति श्रीमन्निश्चलदाससंज्ञकसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे जीवेश्वर-स्वरूपनिरूपणपूर्वकवृत्तिप्रयोजननिरूपणसहितकल्पित—निवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नामाष्टमः प्रकाशः ॥ ८ ॥
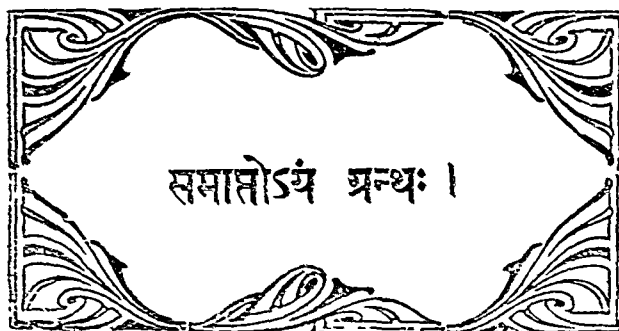
क्रय्यपुस्तकें-(वेदान्तग्रंथ-भाषा.)

नाम.

आत्मपुराण-भाषामें दशोपनिषदोंका भावार्थ चिद्घनानंद स्वामिकृत ... ...

योगवासिष्ठ-बड़ा भाषा छः प्रकरणोंमें श्रीगुरुवसिष्ठजी और श्रीरामचंद्रजीका संवादोक्त अपूर्व ग्रंथ है दो जिल्दोंमें

स्वरूपानुसंधान-वेदान्तियोंको अवश्य लेने योग्य ...

योगवासिष्ठ-भाषामें वैराग्य और मुमुक्षु प्रकरण बड़ाअक्षर ग्लेज कागज ... ...

ज्ञानवैराग्यप्रकाश-(भाषा वेदान्त)-इसके देखनेसे विषयी पुरुषोंकाभी चित्त संसारसे उपरामको प्राप्त होजाता है फिर विरक्तोंकी कौन कथा है ... ...

योगवासिष्ठसार-भाषा ... ...

पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश-(कामलीवाले बाबाजी कृत) इसमें चारवेद, षट्शास्त्रका सार और अठारह पुराणोंकी कथा आदिका अध्यात्मविद्यापर अर्थ लिखागया है। आत्मज्ञानियोंको अत्यंत दुर्लभ है ... ...

अभिलाषसागर-भाषामें स्वामी अभिलाषदास उदासी-कृत-इसमें वंदनविचार, ग्रंथविचार, मार्गविचार, भजन-विचार, जड़ब्रह्मविचार, चैतन्यब्रह्मविचार, निराकार ब्रह्म-विचार, मिथ्याब्रह्मविचार, अहंब्रह्मविचार, ब्रह्मविचार, वर्तमानब्रह्मविचारादि विषय अच्छीरीतिसेवर्णित कियेहैं।